ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५८ — गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०९, जनवरी १९८४ ई० — संख्या १, पूर्ण संख्या ६८६

लीलामत्स्यको नमस्कार

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥

(श्रीमद्भा० ८ । २४ । ६१)

'प्रलयकालीन समुद्रमें जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टिशक्ति लुप्त हो चुकी थी, उस समय उनके मुखसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमें चला गया था । भगवान्‌ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं सत्यव्रत (वैवस्वत मनु) तथा सप्तर्षियोंको मत्स्यपुराणरूपी वेदका उपदेश किया । समस्त जगत्‌के परम कारणभूत उन लीलामत्स्य भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ।'

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५८ | गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०९, जनवरी १९८४ ई० | संख्या १ | पूर्ण संख्या ६८६

लीलामत्स्यको नमस्कार

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥
(श्रीमद्भा० ८ । २४ । ६१)

'प्रलयकालीन समुद्रमें जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टिशक्ति लुप्त हो चुकी थी, उस समय उनके मुखसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमें चला गया था । भगवान्‌ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं सत्यव्रत (वैवस्वत मनु) तथा सप्तर्षियोंको मत्स्यपुराणरूपी वेदका उपदेश किया । समस्त जगत्‌के परम कारणभूत उन लीलामत्स्य भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ।'

मत्स्यपुराण

(जगद्गुरु शंकराचार्य दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका आशीर्वाद)

मत्स्यपुराण अठारह पुराणोंमें एक है। **'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्'** इस प्रमाण-वचनके अनुसार सभी पुराणोंमें सर्गवर्णनादि पाँच विषय होते हैं। मत्स्यपुराणमें भी ये विषय वर्णित हैं। साथही मनुष्यकी मनः-कामनाएँ पूर्ण करनेवाले अनेक प्रकारके व्रतोंका भी विशद वर्णन है। इसके पढ़नेसे अपने पूर्वजोंके पवित्र जीवनपद्धतिकी जानकारी होगी। 'कल्याण'पत्र तथा गीताप्रेसद्वारा सदा ही पवित्र ग्रन्थोंका प्रकाशन होता आया है। हम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि पुराने विशेषाङ्कोंके समान मत्स्यपुराणाङ्क भी धार्मिक जनोंके करपल्लवोंमें विराजकर अपनी जनकल्याणरूप लक्ष्यसिद्धि प्राप्त करे।

मत्स्यपुराणकी दिव्यता

(लेखक—पूर्वाम्नाय पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीनिरञ्जनदेवजी तीर्थजी महाराजके शुभाशीर्वाद)

मत्स्यपुराण महामत्स्यद्वारा राजा सत्यव्रत वैवस्वत मनु एवं सप्तर्षियोंको कथित अत्यन्त दिव्य एवं लोकोत्तर पुराण है। इसे सभी शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर गाणपत्यादि सम्प्रदायोंके लोग समान आदरसे देखते हैं; क्योंकि इसमें लगभग आधे भागमें शिवमहिमा और शेषमें विष्णु, शक्ति, गणपति, सूर्यादिकी भी महामहिमा है। सभी मन्दिर एवं प्रतिमाके निर्माण-प्रतिष्ठादिके लिये यही ग्रन्थ मूलप्रतिरूपमें मान्य है। इसके व्रत-दानादिके प्रकरण भी बड़े महत्त्वके हैं। ऐसे दिव्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थका अर्थसहित प्रकाशन, विशेषकर ऐसे समयमें जब कि संस्कृत साहित्यकी उपेक्षा भी हो रही है, सभी प्रकार अभिनन्दनीय है। भगवान् जगन्नाथ सबका कल्याण करें।

मत्स्यपुराण

(पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराजका आशीर्वचन)

सुप्रसिद्ध धार्मिक पत्र 'कल्याण'का विशेषाङ्क मत्स्यपुराणाङ्क प्रकाशित हो रहा है, यह आनन्दकी बात है। भारतीय संस्कृतिमें पुराणोंकी बड़ी अद्भुत महिमा है। कहा गया है कि योग-जप-तप आदिसे भी शुभ ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो मनुष्यको श्रद्धासे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये। इससे दिव्य ज्ञान एवं भगवत्प्राप्तिपूर्वक मोक्षतक सहजमें ही सिद्ध हो जाता है। हम विशेषाङ्ककी सफलताके लिये मङ्गलाशंसा करते हुए भगवान् श्रीद्वारकाधीश श्रीचन्द्र-मौलीश्वरसे प्रार्थना करते हैं।

धर्म-सदाचारका मूलस्रोत—मत्स्यपुराण

(तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीजयेन्द्रसरस्वतीजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

प्रायः आजकल पुराणोंमें लोगोंकी श्रद्धा कम हो गयी है। यह प्रवृत्ति कैसे सुधरे—इसके लिये बड़ी चिन्ता होती है। पुराणानुशीलनसे परम लाभ है। इसके लिये जनताको 'कल्याण' पढ़ना चाहिये; क्योंकि यह पत्र पुराणों एवं इतिहासोंको एक कर यथासमय अपने विशेषाङ्कके रूपमें लोगोंकी सेवामें उपस्थित करनेमें सफल हुआ है। इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होती है और हमारा उसके लिये परम आशीर्वाद है। हर्षकी बात है कि 'कल्याण'के इस प्रयाससे जनताकी अभिरुचि पुराणोंमें बढ़ेगी और वेदतत्त्वार्थका प्रकाश होगा।

मत्स्यपुराण

(जगद्गुरु शंकराचार्य दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका आशीर्वाद)

मत्स्यपुराण अठारह पुराणोंमें एक है। **'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्'** इस प्रमाण-वचनके अनुसार सभी पुराणोंमें सर्गवर्णनादि पाँच विषय होते हैं। मत्स्यपुराणमें भी ये विषय वर्णित हैं। साथही मनुष्यकी मनः-कामनाएँ पूर्ण करनेवाले अनेक प्रकारके व्रतोंका भी विशद वर्णन है। इसके पढ़नेसे अपने पूर्वजोंके पवित्र जीवनपद्धतिकी जानकारी होगी। 'कल्याण'पत्र तथा गीताप्रेसद्वारा सदा ही पवित्र ग्रन्थोंका प्रकाशन होता आया है। हम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि पुराने विशेषाङ्कोंके समान मत्स्यपुराणाङ्क भी धार्मिक जनोंके करपल्लवोंमें विराजकर अपनी जनकल्याणरूपं लक्ष्यसिद्धि प्राप्त करे।

मत्स्यपुराणकी दिव्यता

(लेखक—पूर्वाम्नाय पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीनिरञ्जनदेवजी तीर्थजी महाराजके शुभाशीर्वाद)

मत्स्यपुराण महामत्स्यद्वारा राजा सत्यव्रत वैवस्वत मनु एवं सप्तर्षियोंको कथित अत्यन्त दिव्य एवं लोकोत्तर पुराण है। इसे सभी शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर गाणपत्यादि सम्प्रदायोंके लोग समान आदरसे देखते हैं; क्योंकि इसमें लगभग आधे भागमें शिवमहिमा और शेषमें विष्णु, शक्ति, गणपति, सूर्यादिकी भी महामहिमा है। सभी मन्दिर एवं प्रतिमाके निर्माण-प्रतिष्ठादिके लिये यही ग्रन्थ मूलप्रतिरूपमें मान्य है। इसके व्रत-दानादिके प्रकरण भी बड़े महत्त्वके हैं। ऐसे दिव्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थका अर्थसहित प्रकाशन, विशेषकर ऐसे समयमें जब कि संस्कृत साहित्यकी उपेक्षा भी हो रही है, सभी प्रकार अभिनन्दनीय है। भगवान् जगन्नाथ सबका कल्याण करें।

मत्स्यपुराण

(पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराजका आशीर्वचन)

सुप्रसिद्ध धार्मिक पत्र 'कल्याण'का विशेषाङ्क मत्स्यपुराणाङ्क प्रकाशित हो रहा है, यह आनन्दकी बात है। भारतीय संस्कृतिमें पुराणोंकी बड़ी अद्भुत महिमा है। कहा गया है कि योग-जप-तप आदिसे भी शुभ ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो मनुष्यको श्रद्धासे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये। इससे दिव्य ज्ञान एवं भगवत्प्राप्तिपूर्वक मोक्षतक सहजमें ही सिद्ध हो जाता है। हम विशेषाङ्ककी सफलताके लिये मङ्गलाशंसा करते हुए भगवान् श्रीद्वारकाधीश श्रीचन्द्र-मौलीश्वरसे प्रार्थना करते हैं।

धर्म-सदाचारका मूलस्रोत—मत्स्यपुराण

(तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीजयेन्द्रसरस्वतीजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

प्रायः आजकल पुराणोंमें लोगोंकी श्रद्धा कम हो गयी है। यह प्रवृत्ति कैसे सुधरे—इसके लिये बड़ी चिन्ता होती है। पुराणानुशीलनसे परम लाभ है। इसके लिये जनताको 'कल्याण' पढ़ना चाहिये; क्योंकि यह पत्र पुराणों एवं इतिहासोंको एक कर यथासम्भव अपने विशेषाङ्कके रूपमें लोगोंकी सेवामें उपस्थित करनेमें सफल हुआ है। इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होती है और हमारा उसके लिये परम आशीर्वाद है। हर्षकी बात है कि 'कल्याण'के इस प्रयाससे जनताकी अभिरुचि पुराणोंमें बढ़ेगी और वेदतत्त्वार्थका प्रकाश होगा।

हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' (छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत, जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता—सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसलिये हमारे यहाँ वेदोंके बाद पुराणोंका ही सबसे अधिक सम्मान है, अपितु कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें तो लिखा है कि—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः॥
(सृष्टि० २।५०-५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।'

यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंमें विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों-(उपनिषदों-) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार-तत्त्वका बहुत ही संक्षेपसे कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको प्रायः निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

[पुराणोंमें भी मत्स्यपुराणका विशिष्ट स्थान है। इसके अध्ययनसे पुरुषार्थ-सिद्धिके विविध उपाय ज्ञात होते हैं, जिनके अनुष्ठानसे मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है।]

मत्स्यजयन्ती और मत्स्यद्वादशीका परिचय

पुराणोंके अनुसार चैत्र शुक्ला तृतीयाको कृतमाला नदीके जलसे प्रकट होकर मत्स्य भगवान् राजा सत्यव्रतके हाथमें आये, अतः यह उनकी जयन्ती-तिथि है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको मत्स्यद्वादशी कहते हैं। यह उनकी विशेष अर्चाकी तिथि है। इन दोनों दिनोंमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उपवास रहकर तथा भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर षोडशोपचार अर्चन, पूजन और दानादि द्वारा मत्स्य भगवान् की विशेष आराधना करनी चाहिये।

हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—'**इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**' (छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत, जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता—सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसलिये हमारे यहाँ वेदोंके बाद पुराणोंका ही सबसे अधिक सम्मान है, अपितु कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें तो लिखा है कि—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः॥
(सृष्टि० २।५०-५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।'

यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंमें विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों-(उपनिषदों-) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार-तत्त्वका बहुत ही संक्षेपसे कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको प्रायः निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

[पुराणोंमें भी मत्स्यपुराणका विशिष्ट स्थान है। इसके अध्ययनसे पुरुषार्थ-सिद्धिके विविध उपाय ज्ञात होते हैं, जिनके अनुष्ठानसे मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है।]

मत्स्यजयन्ती और मत्स्यद्वादशीका परिचय

पुराणोंके अनुसार चैत्र शुक्ला तृतीयाको कृतमाला नदीके जलसे प्रकट होकर मत्स्य भगवान् राजा सत्यव्रतके हाथमें आये, अतः यह उनकी जयन्ती-तिथि है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको मत्स्यद्वादशी कहते हैं। यह उनकी विशेष अर्चाकी तिथि है। इन दोनों दिनोंमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उपवास रहकर तथा भगवान्की प्रतिमा बनाकर षोडशोपचार अर्चन, पूजन और दानादि द्वारा मत्स्य भगवान् की विशेष आराधना करनी चाहिये।

माहात्म्य, नर्मदा-माहात्म्य है। फिर ऋषियोंके नाम-गोत्र तथा वंशवर्णन है तथा धेनुदान, मृगचर्मदान एवं वृषोत्सर्गका वर्णन है। तदनन्तर ७ अध्यायोंमें सती-सावित्रीकी कथा और १३ अध्यायोंमें राजधर्मोंका विस्तारसे वर्णन है। पुनः शान्ति-विधान, यात्राकाल, अङ्गोंके स्फुरणका फल, स्वप्नोंका फल, यात्राके शकुनोंका फल आदिका वर्णन है। वामनावतार, फिर वाराहावतारकी कथा तथा समुद्र-मन्थनका वर्णन एवं प्रासाद-गृह-निर्माण-सम्बन्धी वास्तुविद्याका विधान है। फिर १३ अध्यायोंमें देवमन्दिरोंका निर्माण, देव-प्रतिष्ठा आदिका वर्णन और कलियुगमें होनेवाले राजाओंका कथन है। तदनन्तर १६ अध्यायोंमें षोडश महादानोंका वर्णन करके एक अध्यायमें कल्पोंका वर्णन किया गया है। पुराणके अन्तमें इसके श्रवण-पठनका माहात्म्य बताते हुए कहा है—यह पुराण परम पवित्र है, आयुको बढ़ानेवाला है। यह कीर्तिकी वृद्धि करनेवाला है। यह पवित्र है, कल्याण करनेवाला है, महापापोंका भी नाश करनेवाला तथा शुभ है। इस पुराणके एक श्लोकके एक पादको भी जो कोई पढ़ता है, वह भी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। वह श्रीमन्नारायणके पदको प्राप्त कर लेता है। वह कामदेवके सदृश सुन्दर हो जाता है तथा दिव्य सुखोंका भोग करता है।*

मत्स्यादि पुराणोंमें बड़ी ही सुन्दर सरस सुखद शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। उनके पठनसे मनोरञ्जनके साथ-ही-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त होती है।

सनातन संस्कृतिका मूर्तरूप पुराण

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृत-साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्र-मन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी-कोष है, पुराण सनातन आर्य-संस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थ-रहस्य और तीर्थमाहात्म्य है, पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है, पुराणमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्म-फलनिरूपण, नक्षत्र-विज्ञान, रत्नविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि-आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढ़े पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणोंका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक मानने और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं, पुराणोंके अन्तस्तलमें प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देखा। यथार्थतः उन्होंने पुराणोंकी ज्ञानपरम्परापर भी दृष्टिपात नहीं किया। वस्तुतः पुराणोंमें जो कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता—उसमें विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे ग्रन्थोंकी दुर्दशा—हुई उससे उसके बहुत-से अंश आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

* एतत् पवित्रमायुष्यमेतत् कीर्तिविवर्धनम्। एतत् पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम्॥
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः। नारायणाख्यं पदमेति नूनं माङ्गल्यदिव्यानि सुखानि भुङ्क्ते॥
(मत्स्यपु० २९० । २९-३०)

माहात्म्य, नर्मदा-माहात्म्य है। फिर ऋषियोंके नाम-गोत्र तथा वंशवर्णन है तथा धेनुदान, मृगचर्मदान एवं वृषोत्सर्गका वर्णन है। तदनन्तर ७ अध्यायोंमें सती-सावित्रीकी कथा और १३ अध्यायोंमें राजधर्मोंका विस्तारसे वर्णन है। पुनः शान्ति-विधान, यात्राकाल, अङ्गोंके स्फुरणका फल, स्वप्नोंका फल, यात्राके शकुनोंका फल आदिका वर्णन है। वामनावतार, फिर वाराहावतारकी कथा तथा समुद्र-मन्थनका वर्णन एवं प्रासाद-गृह-निर्माण-सम्बन्धी वास्तुविद्याका विधान है। फिर १३ अध्यायोंमें देवमन्दिरोंका निर्माण, देव-प्रतिष्ठा आदिका वर्णन और कलियुगमें होनेवाले राजाओंका कथन है। तदनन्तर १६ अध्यायोंमें षोडश महादानोंका वर्णन करके एक अध्यायमें कल्पोंका वर्णन किया गया है। पुराणके अन्तमें इसके श्रवण-पठनका माहात्म्य बताते हुए कहा है—यह पुराण परम पवित्र है, आयुको बढ़ानेवाला है। यह कीर्तिकी वृद्धि करनेवाला है। यह पवित्र है, कल्याण करनेवाला है, महापापोंका भी नाश करनेवाला तथा शुभ है। इस पुराणके एक श्लोकके एक पादको भी जो कोई पढ़ता है, वह भी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। वह श्रीमन्नारायणके पदको प्राप्त कर लेता है। वह कामदेवके सदृश सुन्दर हो जाता है तथा दिव्य सुखोंका भोग करता है।*

मत्स्यादि पुराणोंमें बड़ी ही सुन्दर सरस सुखद शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। उनके पठनसे मनोरञ्जनके साथ-ही-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त होती है।

सनातन संस्कृतिका मूर्तरूप पुराण

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृत-साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्र-मन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी-कोष है, पुराण सनातन आर्य-संस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थ-रहस्य और तीर्थमाहात्म्य है, पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है, पुराणमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्म-फलनिरूपण, नक्षत्र-विज्ञान, रत्नविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि-आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढ़े पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणोंका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक मानने और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं, पुराणोंके अन्तस्तलमें प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देखा। यथार्थतः उन्होंने पुराणोंकी ज्ञानपरम्परापर भी दृष्टिपात नहीं किया। वस्तुतः पुराणोंमें जो कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता—उसमें विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे ग्रन्थोंकी दुर्दशा—हुई उससे उसके बहुत-से अंश आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

---

* एतत् पवित्रमायुष्यमेतत् कीर्तिविवर्धनम्। एतत् पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम्॥
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः। नारायणाख्यं पदमेति नूनं माङ्गल्यदिव्यानि सुखानि भुङ्क्ते॥
(मत्स्यपु० २९० । २९-३०)

पुराणोंकी उपयोगिता

(परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वेदोंकी जो मुख्य-मुख्य बातें हैं, उन्हींको पुराणोंमें कथाओंद्वारा बताया गया है, जिससे वेदोंकी गहरी बातें भी सुगमतासे मनुष्योंकी समझमें आ जायँ। मनुष्योंके कल्याणके लिये जितनी उपासनाएँ हैं, साधन हैं, उन सबका वर्णन स्पष्टतया पुराणोंमें आता है। समय, अध्ययन (शिक्षा), विचार, भाव आदिके बदल जानेसे आज पुराणोंकी सब बातें हमारी समझमें नहीं आ रही हैं। फिर भी यदि हम आस्तिकभावसे पुराणोंका अध्ययन करें और उसके अनुसार अपना जीवन बनायें तो व्यवहार और परमार्थकी विचित्र विचित्र बातें हमारी समझमें आ सकती हैं। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका वर्णन पुराणोंमें आता है; अतः पुराणोंसे प्रत्येक मनुष्य लाभ उठा सकता है।

पुराणोंमें यह 'मत्स्यपुराण' है। इसमें बहुत उपयोगी सामग्रियाँ वर्णित हैं। हमें ऐसे ग्रन्थोंको पढ़ना चाहिये और अपने-अपने घरोंमें संग्रहरूपसे रखना चाहिये; क्योंकि आगेका समय बड़ा भयंकर आ रहा है, जिसमें इन ग्रन्थोंका संरक्षण होना कठिन प्रतीत हो रहा है। अभी तो हमें भगवत्कृपासे मत्स्यपुराण आदि ग्रन्थ पढ़ने एवं देखनेको मिल रहे हैं। इसलिये इन ग्रन्थोंसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा लेना चाहिये।

मत्स्यपुराणका संक्षिप्त परिचय

(ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

मत्स्यपुराण सभी पुरुषार्थप्रद है। (म० पु० २९१।१) आश्वलायन श्रौतसूत्रके अनुसार अश्वमेधयज्ञके पारिप्लवमें प्रति ८वें दिन इसका पाठ होता था—'**अष्टमेऽहनि मत्स्यः ⋯सामन्दः⋯। मत्स्याः पुञ्जिष्टाः, पुराणविद्या वेदः सोऽयमिति पुराणमाचक्षीत।**' (आश्व० २।४।७।८) और वर्षभरमें इसकी दस आवृत्तियाँ होती थीं। फिर इसके बाद प्रति तीसरे दिन '**वेदानां सामवेदोऽस्मि**'से प्रसिद्ध सामवेदकी आवृत्ति होती थी। इसीलिये इसे वेदके समान ही अनादि एवं आदरणीय कहा गया है—**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥** (मत्स्य० ३।३[1])

कहते हैं—पुराणसंहिता मुख्यतः इसीका नाम है[2]—'**पुराणसंहिता चेयं**' (भाग० ८।२४।५४-५५)। यद्यपि महाभारतमें किसी पुराणका नाम नहीं आया, पर उस (६।१८७।५७-५८)में इसका नाम स्पष्टरूपसे आया है—

इत्येतन्मात्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम्।

भाषाकी मनोरमता एवं निरूपणशैलीमें यह काव्यों, उपन्यासोंसे भी श्रेष्ठ है। इसकी कार्तवीर्य सहस्रार्जुन-चरित्र आदिकी पदावली अनेक शब्दालंकारोंको आत्मसात् कर सरस प्राञ्जल भाषा और साहित्यका परमोत्कृष्ट अद्भुत आदर्शरूप प्रस्तुत करती है[3]। इसीलिये कालिदासके रघुवंश, विक्रमोर्वशीय, शाकुन्तल, मालविकाग्नि-मित्रका तथा अन्य कवियोंका भी यह मुख्य उपजीव्य रहा है।[4] ज्योतिष वर्णनमें यह सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि आदिको मात करता है। इसका दान-प्रकरण अ० ८२-९२, २०५—

१—यह श्लोक मत्स्यपु० ३।३-४, ५३।३, वायुपुराण १।६०, शिवपुराण वायवी० १।३१-३२, ब्रह्माण्डपु० १।१००, मार्कण्डेयपु० ४५।२०, ब्रह्म० १६१।२७, पद्मपु० १।१।५८ आदि बीसों स्थलोंपर प्राप्त होता है। पुर- अग्रगमने (६।८५) धातु तथा 'पुरा ह्यनति' वायु० १।२०३ से भी यही सिद्ध है। २—विष्णुपु० १।१।२६में वह भी इस नामसे निर्दिष्ट है। ३—It is a Composition of considerable interest' (Wills Visņu) ४—इसमें शकुन्तलाना० का०अ० ४५—४७में उर्वशी-पुरूरवाका अ० १२—१४, ११५—१८में, तथा रघुवंश ३।१५के चन्द्रकला-पानका मूल इसी अङ्कके पृ० ११५ पर देखना चाहिये। अमरुशतक २ पर त्रिपुरवृत्तका प्रभाव है। ५—'बल्लालसेनके दानसागर तथा लक्ष्मीधरके सभी निबन्धोंमें सभी पुराणोंसे अधिक इसी मत्स्यपुराणके प्रायः साढ़े छः सौ (६४७) दानसम्बन्धी श्लोक संगृहीत हैं।

पुराणोंकी उपयोगिता

(परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वेदोंकी जो मुख्य-मुख्य बातें हैं, उन्हींको पुराणोंमें कथाओंद्वारा बताया गया है, जिससे वेदोंकी गहरी बातें भी सुगमतासे मनुष्योंकी समझमें आ जायँ। मनुष्योंके कल्याणके लिये जितनी उपासनाएँ हैं, साधन हैं, उन सबका वर्णन स्पष्टतया पुराणोंमें आता है। समय, अध्ययन (शिक्षा), विचार, भाव आदिके बदल जानेसे आज पुराणोंकी सब बातें हमारी समझमें नहीं आ रही हैं। फिर भी यदि हम आस्तिकभावसे पुराणोंका अध्ययन करें और उसके अनुसार अपना जीवन बनायें तो व्यवहार और परमार्थकी विचित्र विचित्र बातें हमारी समझमें आ सकती हैं। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका वर्णन पुराणोंमें आता है; अतः पुराणोंसे प्रत्येक मनुष्य लाभ उठा सकता है।

पुराणोंमें यह 'मत्स्यपुराण' है। इसमें बहुत उपयोगी सामग्रियाँ वर्णित हैं। हमें ऐसे ग्रन्थोंको पढ़ना चाहिये और अपने-अपने घरोंमें संग्रहरूपसे रखना चाहिये; क्योंकि आगेका समय बड़ा भयंकर आ रहा है, जिसमें इन ग्रन्थोंका संरक्षण होना कठिन प्रतीत हो रहा है। अभी तो हमें भगवत्कृपासे मत्स्यपुराण आदि ग्रन्थ पढ़ने एवं देखनेको मिल रहे हैं। इसलिये इन ग्रन्थोंसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा लेना चाहिये।

मत्स्यपुराणका संक्षिप्त परिचय

(ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

मत्स्यपुराण सभी पुरुषार्थप्रद है। (म० पु० २९१।१) आश्वलायन श्रौतसूत्रके अनुसार अश्वमेधयज्ञके पारिप्लवमें प्रति ८वें दिन इसका पाठ होता था—'अष्टमेऽहनि मत्स्यः ···सामन्दः···। मत्स्याः पुञ्जिष्टाः, पुराणविद्या वेदः सोऽयमिति पुराणमाचक्षीत।' (आश्व० २।४।७।८) और वर्षभरमें इसकी दस आवृत्तियाँ होती थीं। फिर इसके बाद प्रति तीसरे दिन 'वेदानां सामवेदोऽस्मि'से प्रसिद्ध सामवेदकी आवृत्ति होती थी। इसीलिये इसे वेदके समान ही अनादि एवं आदरणीय कहा गया है—**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥** (मत्स्य० ३।३[1]) कहते हैं—पुराणसंहिता मुख्यतः इसीका नाम है[2]—'पुराणसंहिता चेयं' (भाग० ८।२४।५४-५५)। यद्यपि महाभारतमें किसी पुराणका नाम नहीं आया, पर उस (६।१८७।५७-५८)में इसका नाम स्पष्टरूपसे आया है—

इत्येतन्मात्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम्।

भाषाकी मनोरमता एवं निरूपणशैलीमें यह काव्यों, उपन्यासोंसे भी श्रेष्ठ है। इसकी कार्तवीर्य सहस्रार्जुन-चरित्र आदिकी पदावली अनेक शब्दालंकारोंको आत्मसात् कर सरस प्राञ्जल भाषा और साहित्यका परमोत्कृष्ट अद्भुत आदर्शरूप प्रस्तुत करती है[3]। इसीलिये कालिदासके रघुवंश, विक्रमोर्वशीय, शाकुन्तल, मालविकाग्नि-मित्रको तथा अन्य कवियोंका भी यह मुख्य उपजीव्य रहा है[4]। ज्योतिष वर्णनमें यह सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि आदिको मात करता है। इसका दान-प्रकरण अ० ८२-९२, २०५—

१—यह श्लोक मत्स्यपु० ३।३-४, ५३।३, वायुपुराण १।६०, शिवपुराण वायवी० १।३१-३२, ब्रह्माण्डपु० १।१००, मार्कण्डेयपु० ४५।२०, ब्रह्म० १६१।२७, पद्मपु० १।१।५४ आदि बीसों स्थलोंपर प्राप्त होता है। पुर- अग्रगमने (६।८५) धातु तथा 'पुरा ह्यनति' वायु० १।२०३ से भी यही सिद्ध है। २—विष्णुपु० ३।१।२६में वह भी इस नामसे निर्दिष्ट है। ३—It is a Composition of considerable interest' (Wills Visnu) ४—इसमें शकुन्तलाना० का० अ० ४५—४७में उर्वशी-पुरूरवाका अ० १२—१८, ११५—१८में, तथा रघुवंश ३।१५के चन्द्रकला-पानका मूल इसी अङ्कके पृ० ११५ पर देखना चाहिये। अमरुशतक २ पर त्रिपुरवृत्तका प्रभाव है। ५—बल्लालसेनके दानसागर तथा लक्ष्मीधरके सभी निबन्धोंमें सभी पुराणोंसे अधिक इसी मत्स्यपुराणके प्रायः साढ़े छः सौ (६४७) दानसम्बन्धी श्लोक संगृहीत हैं।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत

मत्स्यमहापुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण, शौनक आदि मुनियोंका सूतजीसे पुराणविषयक प्रश्न, सूतद्वारा मत्स्यपुराणका वर्णनारम्भ, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपसे सूर्य-नन्दन मनुको मोहित करना, तत्पश्चात् उन्हें आगामी प्रलयकालकी सूचना देना

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः। भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः॥ १ ॥

पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति ।
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवाना-
स्तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम्॥ २ ॥*

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ ३ ॥

अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः। त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे॥ ४ ॥

प्रचण्ड वेगसे प्रवृत्त हुए ताण्डव नृत्यके आवेशमें जिनके द्वारा दिग्गजगण दूर फेंक दिये जाते हैं, उन भगवान् शंकरके चरणकमल (हम सभीके) विघ्नोंका विनाश करें। मत्स्यावतारके समय पाताललोकसे ऊपरको उछलते हुए जिन भगवान् विष्णुकी पूँछके आघातसे समुद्र ऊपरको उछल पड़ते हैं तथा ब्रह्माण्ड-खण्डोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुई अस्त-व्यस्तताके कारण सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको व्याप्त करके पुनः नीचे गिरते हैं, उन भगवान्‌के मुखसे उच्चरित हुई श्रुतियोंकी ध्वनि आपलोगोंके अमङ्गलका विनाश करे। नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार कर तत्पश्चात् जय† (महाभारत, पुराण आदि)का पाठ करना चाहिये। जो अजन्मा होनेपर भी क्रियाके सम्पर्कसे 'नारायण' नामसे स्मरण किये जाते हैं, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) रूप हैं एवं त्रिवेद (ऋक्, यजुः, साम) जिनका स्वरूप है, उन स्वयम्भू भगवान्‌को नमस्कार है॥ १-४॥

---

* ग्रन्थकारके दो मङ्गल-श्लोकोंमें शिव-विष्णुकी वन्दनासे ग्रन्थकी गम्भीरता एवं शिव-विष्णु-उभयपरकता सिद्ध होती है। ४। २८ आदिमें भी शिवसे ही सृष्टि निर्दिष्ट है।

† महाभारतकी नीलकण्ठी व्याख्या एवं भविष्यपुराण १। ४। ८६—८८के—'अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत॥ कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः।···जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥'—इस वचनके अनुसार रामायण, महाभारत तथा सभी पुराण, विष्णुधर्म, शिवधर्म आदि 'जय' कहे जाते हैं।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत

मत्स्यमहापुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण, शौनक आदि मुनियोंका सूतजीसे पुराणविषयक प्रश्न, सूतद्वारा मत्स्यपुराणका वर्णनारम्भ, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपसे सूर्य-नन्दन मनुको मोहित करना, तत्पश्चात् उन्हें आगामी प्रलयकालकी सूचना देना

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः। भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः॥ १॥

पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति।
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवाना-
स्तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम्॥ २॥*

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ ३॥
अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः। त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे॥ ४॥

प्रचण्ड वेगसे प्रवृत्त हुए ताण्डव नृत्यके आवेशमें जिनके द्वारा दिग्गजगण दूर फेंक दिये जाते हैं, उन भगवान् शंकरके चरणकमल (हम सभीके) विघ्नोंका विनाश करें। मत्स्यावतारके समय पाताललोकसे ऊपरको उछलते हुए जिन भगवान् विष्णुकी पूँछके आघातसे समुद्र ऊपरको उछल पड़ते हैं तथा ब्रह्माण्ड-खण्डोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुई अस्त-व्यस्तताके कारण सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको व्याप्त करके पुनः नीचे गिरते हैं, उन भगवान्‌के मुखसे उच्चरित हुई श्रुतियोंकी ध्वनि आपलोगोंके अमङ्गलका विनाश करे। नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार कर तत्पश्चात् जय† (महाभारत, पुराण आदि)का पाठ करना चाहिये। जो अजन्मा होनेपर भी क्रियाके सम्पर्कसे 'नारायण' नामसे स्मरण किये जाते हैं, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) रूप हैं एवं त्रिवेद (ऋक्, यजुः, साम) जिनका स्वरूप है, उन स्वयम्भू भगवान्‌को नमस्कार है॥ १—४॥

---

* ग्रन्थकारके दो मङ्गल-श्लोकोंमें शिव-विष्णुकी वन्दनासे ग्रन्थकी गम्भीरता एवं शिव-विष्णु-उभयपरकता सिद्ध होती है। ४। २८ आदिमें भी शिवसे ही सृष्टि निर्दिष्ट है।

† महाभारतकी नीलकण्ठी व्याख्या एवं भविष्यपुराण १। ४। ८६—८८के—'अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत॥ कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः।...जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥'—इस वचनके अनुसार रामायण, महाभारत तथा सभी पुराण, विष्णुधर्म, शिवधर्म आदि 'जय' कहे जाते हैं।

सकूँ ।' तब विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये । उस समय आकाशसे देवताओंद्वारा की गयी महती पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ११—१७ ॥

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् । पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः । रक्षणायाकरोद् यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९ ॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः । सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम् । तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥ २१ ॥
पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् । स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः ॥ २२ ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद् रविनन्दनः । यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥ २३ ॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम् । तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम ॥ २४ ॥
ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत । यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥ २५ ॥
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः । तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेश्वरः ॥ २६ ॥
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक् कथं भवेत् । योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद् वपुः ॥ २७ ॥
ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव । हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः । साधु साध्विति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयानघ ॥ २९ ॥
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते । भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ॥ ३० ॥
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता । महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ॥ ३१ ॥
स्वेदाण्डजोद्भिदो ये वै ये च जीवा जरायुजाः । अस्यां निधाय सर्वांस्तानानाथान् पाहि सुव्रत ॥ ३२ ॥
युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौर्नृप । शृङ्गेऽस्मिन् मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि ॥ ३३ ॥
ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च । प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते ॥ ३४ ॥
एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान् नृपः । मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ॥ ३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

एक समयकी बात है, आश्रममें पितृ-तर्पण करते हुए महाराज मनुकी हथेलीपर जलके साथ ही एक मछली आ गिरी । उस मछलीके रूपको देखकर वे नरेश दयार्द्र हो गये तथा उसे उस कमण्डलुमें डालकर उसकी रक्षाका प्रयत्न करने लगे । एक ही दिन-रातमें वह (वहाँ) मत्स्यरूपसे सोलह अङ्गुल बड़ा हो गया और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों कहने लगा । तब राजाने उस जलचारी जीवको मिट्टीके एक बड़े घड़ेमें डाल दिया । वहाँ भी वह एक (ही) रातमें तीन हाथ बढ़ गया । पुनः उस मत्स्यने सूर्यपुत्र मनुसे आर्तवाणीमें कहा—'राजन् ! मैं आपकी शरणमें हूँ; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।' तदनन्तर उन सूर्य-नन्दन (वैवस्वत मनु)ने उस मत्स्यको कुएँमें रख दिया, परंतु जब वह मत्स्य उस कुएँमें भी न अँट सका, तब राजाने उसे सरोवरमें डाल दिया । वहाँ वह पुनः एक योजन बड़े आकारका हो गया और दीन होकर कहने लगा—'नृपश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।' तत्पश्चात् मनुने उसे गङ्गामें छोड़ दिया । जब उसने वहाँ और भी विशाल रूप धारण कर लिया, तब भूपालने उसे समुद्रमें डाल दिया । जब उस मत्स्यने सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लिया, तब मनुने भयभीत होकर उससे पूछा—'आप कोई असुरराज तो नहीं हैं ? अथवा वासुदेव भगवान् हैं, अन्यथा दूसरा कोई ऐसा कैसे हो सकता है ? भला, इस प्रकार कई करोड़ योजनोंके समान विस्तारवाला शरीर किसका हो सकता है ? केशव ! मुझे ज्ञात हो गया कि 'आप मत्स्यका रूप धारण करके मुझे खिन्न कर रहे हैं । हृषीकेश ! आप जगदीश्वर एवं जगत्के निवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है ।'

सकूँ।' तब विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस समय आकाशसे देवताओंद्वारा की गयी महती पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ११—१७ ॥

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्। पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः। रक्षणायाकरोद् यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९ ॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः। सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम्। तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥ २१ ॥
पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम्। स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः ॥ २२ ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद् रविनन्दनः। यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥ २३ ॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम्। तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम ॥ २४ ॥
ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत। यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥ २५ ॥
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः। तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेश्वरः ॥ २६ ॥
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक् कथं भवेत्। योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद् वपुः ॥ २७ ॥
ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव। हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः। साधु साध्विति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयानघ ॥ २९ ॥
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते। भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ॥ ३० ॥
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता। महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ॥ ३१ ॥
स्वेदाण्डजोद्भिदो ये वै ये च जीवा जरायुजाः। अस्यां निधाय सर्वांस्ताननाथान् पाहि सुव्रत ॥ ३२ ॥
युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौर्नृप। शृङ्गेऽस्मिन् मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि ॥ ३३ ॥
ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च। प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते ॥ ३४ ॥
एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान् नृपः। मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ॥ ३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

एक समयकी बात है, आश्रममें पितृ-तर्पण करते हुए महाराज मनुकी हथेलीपर जलके साथ ही एक मछली आ गिरी। उस मछलीके रूपको देखकर वे नरेश दयार्द्र हो गये तथा उसे उस कमण्डलुमें डालकर उसकी रक्षाका प्रयत्न करने लगे। एक ही दिन-रातमें वह (वहाँ) मत्स्यरूपसे सोलह अङ्गुल बड़ा हो गया और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों कहने लगा। तब राजाने उस जलचारी जीवको मिट्टीके एक बड़े घड़ेमें डाल दिया। वहाँ भी वह एक (ही) रातमें तीन हाथ बढ़ गया। पुनः उस मत्स्यने सूर्यपुत्र मनुसे आर्तवाणीमें कहा—'राजन्! मैं आपकी शरणमें हूँ; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तदनन्तर उन सूर्य-नन्दन (वैवस्वत मनु)ने उस मत्स्यको कुएँमें रख दिया, परंतु जब वह मत्स्य उस कुएँमें भी न अँट सका, तब राजाने उसे सरोवरमें डाल दिया। वहाँ वह पुनः एक योजन बड़े आकारका हो गया और दीन होकर कहने लगा—'नृपश्रेष्ठ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तत्पश्चात् मनुने उसे गङ्गामें छोड़ दिया। जब उसने वहाँ और भी विशाल रूप धारण कर लिया, तब भूपालने उसे समुद्रमें डाल दिया। जब उस मत्स्यने सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लिया, तब मनुने भयभीत होकर उससे पूछा—'आप कोई असुरराज तो नहीं हैं? अथवा वासुदेव भगवान् हैं, अन्यथा दूसरा कोई ऐसा कैसे हो सकता है? भला, इस प्रकार कई करोड़ योजनोंके समान विस्तारवाला शरीर किसका हो सकता है? केशव! मुझे ज्ञात हो गया कि 'आप मत्स्यका रूप धारण करके मुझे खिन्न कर रहे हैं। हृषीकेश! आप जगदीश्वर एवं जगत्‌के निवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है।'

नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः । भवो वेदाः पुराणानि विद्याभिः सर्वतोवृतम् ॥ १३ ॥
त्वया सार्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये । एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये ॥ १४ ॥
वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते । एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १५ ॥
मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम् । अभ्यसन् यावदाभूतसम्प्लवं पूर्वसूचितम् ॥ १६ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—'महामुने ! आजसे लेकर सौ वर्षतक इस भूतलपर वृष्टि नहीं होगी, जिसके फलस्वरूप परम अमाङ्गलिक एवं अत्यन्त भयंकर दुर्भिक्ष आ पड़ेगा । तदनन्तर युगान्त प्रलयके उपस्थित होनेपर तपे हुए ...रकी वर्षा करनेवाली सूर्यकी सात भयंकर किरणें ...-मोटे जीवोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हो जायँगी । ...ानल भी अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेगा । ...ललोकसे ऊपर उठकर संकर्षणके मुखसे निकली हुई ...ग्नि तथा भगवान् रुद्रके ललाटसे उत्पन्न तीसरे ...की अग्नि भी तीनों लोकोंको भस्म करती हुई भभक ...ी । परंतप ! इस प्रकार जब सारी पृथ्वी जलकर ...की ढेर बन जायगी और गगन-मण्डल ऊष्मासे ...त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रोंसहित सारा ...त् नष्ट हो जायगा । उस समय संवर्त, भीमनाद, ...ा, चण्ड, बलाहक, विद्युत्पताक और शोण नामक ... ये सात प्रलयकारक मेघ हैं, ये सभी अग्निके प्रस्वेदसे ...न्न हुए जलकी घोर वृष्टि करके सारी पृथ्वीको ...लावित कर देंगे । तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर ...मेक हो जायँगे और इन तीनों लोकोंको पूर्णरूपसे एकार्णवके आकारमें परिणत कर देंगे । सुव्रत ! उस समय तुम इस वेदरूपी नौकाको ग्रहण करके इसपर समस्त जीवों और बीजोंको लाद देना तथा मेरे द्वारा प्रदान की गयी रस्सीके बन्धनसे इस नावको मेरे सींगमें बाँध देना । परंतप ! (ऐसे भीषण कालमें जब कि) सारा देव-समूह जलकर भस्म हो जायगा तो भी मेरे प्रभावसे सुरक्षित होनेके कारण एकमात्र तुम्हीं अवशेष रह जाओगे । इस आन्तर-प्रलयमें सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकोंसहित ब्रह्मा, पुण्यतोया नर्मदा नदी, महर्षि मार्कण्डेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह (नौका-स्थित) विश्व—ये ही बचेंगे । महीपते ! चाक्षुष-मन्वन्तरके प्रलयकालमें जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णवमें निमग्न हो जायगी और तुम्हारेद्वारा सृष्टिका प्रारम्भ होगा, तब मैं वेदोंका (पुनः) प्रवर्तन करूँगा ।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य वहीं अन्तर्धान हो गये तथा मनु भी वहीं स्थित रहकर भगवान् वासुदेवकी कृपासे प्राप्त हुए योगका तबतक अभ्यास करते रहे, जबतक पूर्वसूचित प्रलयका समय उपस्थित न हुआ ॥ ३—१६ ॥

काले यथोक्ते सञ्जाते वासुदेवमुखोद्गते । शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥ १७ ॥
भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत् । भूतान् सर्वान् समाकृष्य योगेनारोप्य धर्मवित् ॥ १८ ॥
भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत् । उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ १९ ॥
आभूतसम्प्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना ।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा । तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ २० ॥
यद् भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्टयादिकमहं द्विजाः । तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर भगवान् वासुदेवके मुखसे कहे गये पूर्वोक्त ...यकालके उपस्थित होनेपर भगवान् जनार्दन एक ...गवाले मत्स्यके रूपमें प्रादुर्भूत हुए । उसी समय एक ...र्प भी रज्जु-रूपसे बहता हुआ मनुके पार्श्वभागमें आ पहुँचा । तब धर्मज्ञ मनुने अपने योगबलसे समस्त जीवोंको खींचकर नौकापर लाद लिया और उसे सर्परूपी रस्सीसे मत्स्यके सींगमें बाँध दिया । तत्पश्चात् भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके वे स्वयं भी उस नौकापर बैठ

नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः। भवो वेदाः पुराणानि विद्याभिः सर्वतोवृतम्॥ १३॥
त्वया सार्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये। एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये॥ १४॥
वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १५॥
मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम्। अभ्यसन् यावदाभूतसम्प्लवं पूर्वसूचितम्॥ १६॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—'महामुने! आजसे लेकर सौ वर्षतक इस भूतलपर वृष्टि नहीं होगी, जिसके फलस्वरूप परम अमाङ्गलिक एवं अत्यन्त भयंकर दुर्भिक्ष आ पड़ेगा। तदनन्तर युगान्त प्रलयके उपस्थित होनेपर तपे हुए अंगारकी वर्षा करनेवाली सूर्यकी सात भयंकर किरणें छोटे-मोटे जीवोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हो जायँगी। बडवानल भी अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेगा। पाताललोकसे ऊपर उठकर संकर्षणके मुखसे निकली हुई विषाग्नि तथा भगवान् रुद्रके ललाटसे उत्पन्न तीसरे नेत्रकी अग्नि भी तीनों लोकोंको भस्म करती हुई भभक उठेगी। परंतप! इस प्रकार जब सारी पृथ्वी जलकर राखकी ढेर बन जायगी और गगन-मण्डल ऊष्मासे संतप्त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रोंसहित सारा जगत् नष्ट हो जायगा। उस समय संवर्त, भीमनाद, द्रोण, चण्ड, बलाहक, विद्युत्पताक और शोण नामक जो ये सात प्रलयकारक मेघ हैं, ये सभी अग्निके प्रस्वेदसे उत्पन्न हुए जलकी घोर वृष्टि करके सारी पृथ्वीको आप्लावित कर देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जायँगे और इन तीनों लोकोंको पूर्णरूपसे एकार्णवके आकारमें परिणत कर देंगे। सुव्रत! उस समय तुम इस वेदरूपी नौकाको ग्रहण करके इसपर समस्त जीवों और बीजोंको लाद देना तथा मेरे द्वारा प्रदान की गयी रस्सीके बन्धनसे इस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। परंतप! (ऐसे भीषण कालमें जब कि) सारा देव-समूह जलकर भस्म हो जायगा तो भी मेरे प्रभावसे सुरक्षित होनेके कारण एकमात्र तुम्हीं अवशेष रह जाओगे। इस आन्तर-प्रलयमें सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकोंसहित ब्रह्मा, पुण्यतोया नर्मदा नदी, महर्षि मार्कण्डेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह (नौका-स्थित) विश्व—ये ही बचेंगे। महीपते! चाक्षुष-मन्वन्तरके प्रलयकालमें जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णवमें निमग्न हो जायगी और तुम्हारेद्वारा सृष्टिका प्रारम्भ होगा, तब मैं वेदोंका (पुनः) प्रवर्तन करूँगा।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य वहीं अन्तर्धान हो गये तथा मनु भी वहीं स्थित रहकर भगवान् वासुदेवकी कृपासे प्राप्त हुए योगका तबतक अभ्यास करते रहे, जबतक पूर्वसूचित प्रलयका समय उपस्थित न हुआ॥ ३—१६॥

काले यथोक्ते सञ्जाते वासुदेवमुखोद्गते। शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः॥ १७॥
भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत्। भूतान् सर्वान् समाकृष्य योगेनारोप्य धर्मवित्॥ १८॥
भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत्। उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ १९॥
आभूतसम्प्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥ २०॥
यद् भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहं द्विजाः। तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम्॥ २१॥

तदनन्तर भगवान् वासुदेवके मुखसे कहे गये पूर्वोक्त प्रलयकालके उपस्थित होनेपर भगवान् जनार्दन एक सींगवाले मत्स्यके रूपमें प्रादुर्भूत हुए। उसी समय एक सर्प भी रज्जु-रूपसे बहता हुआ मनुके पार्श्वभागमें आ पहुँचा। तब धर्मज्ञ मनुने अपने योगबलसे समस्त जीवोंको खींचकर नौकापर लाद लिया और उसे सर्परूपी रस्सीसे मत्स्यके सींगमें बाँध दिया। तत्पश्चात् भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके वे स्वयं भी उस नौकापर बैठ

स्वयं अकेले ही आविर्भूत हुए। उन्होंने अपने शरीरसे अनेक प्रकारके जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छासे (पूर्वसृष्टिका) भलीभाँति ध्यान करके प्रथमतः जलकी ही रचना की और उसमें (अपने वीर्यस्वरूप) बीजका निक्षेप किया। वही बीज एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सुवर्ण एवं रजतमय अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, उसकी कान्ति दस सहस्र सूर्योंके सदृश थी। तत्पश्चात् महातेजस्वी स्वयम्भू स्वयं ही उस अण्डेके भीतर प्रविष्ट हो गये तथा अपने प्रभावसे एवं उस अण्डेमें सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण वे पुनः विष्णु-भावको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उस अण्डेके भीतर सर्वप्रथम ये भगवान् सूर्य उत्पन्न हुए, जो आदिसे प्रकट होनेके कारण 'आदित्य' और वेदोंका पाठ करनेसे 'ब्रह्मा' नामसे विख्यात हुए। उन्होंने ही उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त कर स्वर्गलोक और भूतलकी रचना की तथा उन दोनोंके मध्यमें सम्पूर्ण दिशाओं और अविनाशी आकाशका निर्माण किया। उस समय उस अण्डेके जरायु-भागसे मेरु आदि सातों पर्वत प्रकट हुए और जो उल्व (गर्भाशय) था, वह विद्युत्समूहसहित मेघमण्डलके रूपमें परिणत हुआ तथा उसी अण्डेसे नदियाँ, पितृगण और मनुसमुदाय उत्पन्न हुए। नाना रत्नोंसे परिपूर्ण जो ये लवण, इक्षु, सुरा आदि सातों समुद्र हैं, वे भी उस अण्डेके अन्तःस्थित जलसे प्रकट हुए। शत्रुदमन! जब उन प्रजापति देवको सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई, तब वहीं उनके तेजसे ये मार्तण्ड (सूर्य) प्रादुर्भूत हुए। चूँकि ये अण्डेके मृत हो जानेके पश्चात् उत्पन्न हुए थे, इसलिये 'मार्तण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन महात्माका जो रजोगुणमय रूप था, वह लोकपितामह चतुर्मुख भगवान् ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ। जिन्होंने देवता, असुर और मानवसहित समस्त जगत्‌की रचना की, उन्हें तुम रजोगुणरूप सुप्रसिद्ध महान् सत्त्व समझो ॥ २५–३७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मनुमत्स्यसंवादवर्णन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

मनुका मत्स्यभगवान्‌से ब्रह्माके चतुर्मुख होने तथा लोकोंकी सृष्टि करनेके विषयमें प्रश्न एवं मत्स्यभगवान्‌द्वारा उत्तररूपमें ब्रह्मासे वेद, सरस्वती, पाँचवें मुख और मनु आदिकी उत्पत्तिका कथन

मनुरुवाच

चतुर्मुखत्वमगमत् कस्माल्लोकपितामहः। कथं तु लोकानसृजद् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ १ ॥

मनुने पूछा—भगवन्! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ लोकपितामह ब्रह्मा चतुर्मुख कैसे हुए तथा उन्होंने (सभी) लोकोंकी रचना किस प्रकार की? ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः। आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः ॥ २ ॥
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ३ ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः। मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः ॥ ४ ॥
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः। मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत् तेन मानसाः ॥ ५ ॥
मरीचिरभवत् पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषिः। अङ्गिराश्चाभवत् पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम् ॥ ६ ॥
ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत। प्रचेताश्च ततः पुत्रो वसिष्ठश्चाभवत् पुनः ॥ ७ ॥
पुत्रो भृगुरभूत् तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत्। दशेमान् मानसान् ब्रह्मा मुनीन् पुत्रानजीजनत् ॥ ८ ॥
शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापतेः। अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाद् दक्षः प्रजापतिरजायत ॥ ९ ॥

स्वयं अकेले ही आविर्भूत हुए। उन्होंने अपने शरीरसे अनेक प्रकारके जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छासे (पूर्वसृष्टिका) भलीभाँति ध्यान करके प्रथमतः जलकी ही रचना की और उसमें (अपने वीर्यस्वरूप) बीजका निक्षेप किया। वही बीज एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सुवर्ण एवं रजतमय अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, उसकी कान्ति दस सहस्र सूर्योंके सदृश थी। तत्पश्चात् महातेजस्वी स्वयम्भू स्वयं ही उस अण्डेके भीतर प्रविष्ट हो गये तथा अपने प्रभावसे एवं उस अण्डेमें सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण वे पुनः विष्णु-भावको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उस अण्डेके भीतर सर्वप्रथम ये भगवान् सूर्य उत्पन्न हुए, जो आदिसे प्रकट होनेके कारण 'आदित्य' और वेदोंका पाठ करनेसे 'ब्रह्मा' नामसे विख्यात हुए। उन्होंने ही उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त कर स्वर्गलोक और भूतलकी रचना की तथा उन दोनोंके मध्यमें सम्पूर्ण दिशाओं और अविनाशी आकाशका निर्माण किया। उस समय उस अण्डेके जरायु-भागसे मेरु आदि सातों पर्वत प्रकट हुए और जो उल्ब (गर्भाशय) था, वह विद्युत्समूहसहित मेघमण्डलके रूपमें परिणत हुआ तथा उसी अण्डेसे नदियाँ, पितृगण और मनुसमुदाय उत्पन्न हुए। नाना रत्नोंसे परिपूर्ण जो ये लवण, इक्षु, सुरा आदि सातों समुद्र हैं, वे भी उस अण्डेके अन्तःस्थित जलसे प्रकट हुए। शत्रुदमन! जब उन प्रजापति देवको सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई, तब वहीं उनके तेजसे ये मार्तण्ड (सूर्य) प्रादुर्भूत हुए। चूँकि ये अण्डेके मृत हो जानेके पश्चात् उत्पन्न हुए थे, इसलिये 'मार्तण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन महात्माका जो रजोगुणमय रूप था, वह लोकपितामह चतुर्मुख भगवान् ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ। जिन्होंने देवता, असुर और मानवसहित समस्त जगत्‌की रचना की, उन्हें तुम रजोगुणरूप सुप्रसिद्ध महान् सत्त्व समझो ॥२५-३७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मनुमत्स्यसंवादवर्णन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

मनुका मत्स्यभगवान्‌से ब्रह्माके चतुर्मुख होने तथा लोकोंकी सृष्टि करनेके विषयमें प्रश्न एवं मत्स्यभगवान्‌द्वारा उत्तररूपमें ब्रह्मासे वेद, सरस्वती, पाँचवें मुख और मनु आदिकी उत्पत्तिका कथन

मनुरुवाच

चतुर्मुखत्वमगमत् कस्माल्लोकपितामहः। कथं तु लोकानसृजद् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ १ ॥

मनुने पूछा—भगवन्! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ लोकपितामह ब्रह्मा चतुर्मुख कैसे हुए तथा उन्होंने (सभी) लोकोंकी रचना किस प्रकार की? ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः। आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः ॥ २ ॥
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ३ ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः। मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः ॥ ४ ॥
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः। मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत् तेन मानसाः ॥ ५ ॥
मरीचिरभवत् पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषिः। अङ्गिराश्चाभवत् पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम् ॥ ६ ॥
ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत। प्रचेताश्च ततः पुत्रो वसिष्ठश्चाभवत् पुनः ॥ ७ ॥
पुत्रो भृगुरभूत् तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत्। दशेमान् मानसान् ब्रह्मा मुनीन् पुत्रानजीजनत् ॥ ८ ॥
शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापतेः। अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाद् दक्षः प्रजापतिरजायत ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु। प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु॥ १८॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम्। पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चेतीन्द्रियसंग्रहः॥ १९॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः। उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः॥ २०॥
मन एकादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम्। इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः॥ २१॥
श्रयन्ति यस्मात् तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम्। शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः॥ २२॥
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया। आकाशं शब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम्॥ २३॥
आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्। वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः॥ २४॥
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्। तेजोविकारादभवद् वारि राजंश्चतुर्गुणम्॥ २५॥
रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम्। भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत् पञ्चगुणान्विता॥ २६॥
प्रायो गन्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी। एभिः सम्पादितं भुङ्क्ते पुरुषः पञ्चविंशकः॥ २७॥
ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः। एवं षड्विंशकं प्रोक्तं शरीरमिह मानवैः॥ २८॥
सांख्यं संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते। एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद् वेधा अजीजनत्॥ २९॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! सत्त्व, रजस् और तमस्—जो ये तीनों गुण बतलाये गये हैं, इनकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहा जाता है। कुछ लोग इसे प्रधान कहते हैं। दूसरे लोग इसे अव्यक्त नामसे भी निर्देश करते हैं। यही प्रकृति प्रजाकी सृष्टि करती है और (यही सृष्टिको) बिगाड़ती भी है। इन्हीं तीनों गुणोंके क्षुब्ध होनेपर इनसे तीन देवता उत्पन्न होते हैं। इन (तीनों देवों)की मूर्ति तो एक ही है, परंतु वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओंके रूपमें विभक्त हो जाती है। तदनन्तर प्रधानके विकृत होनेपर उससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, जिससे लोकोंके मध्यमें उसकी सदा 'महान्' रूपसे ख्याति होती है। उस महत्तत्त्वसे मानको बढ़ानेवाला अहंकार प्रकट होता है। उस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ आविर्भूत होती हैं, जिनमें पाँच बुद्धि (ज्ञान)के वशीभूत रहती हैं और दूसरी पाँच कर्मके अधीन रहती हैं। इस इन्द्रिय-समुदायमें क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा पायु (गुदा), उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), हस्त, पाद और वाणी—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दसों इन्द्रियोंके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्सर्ग (मल एवं अपानवायु आदिका त्याग), आनन्दन (आनन्दप्रदान), आदान (ग्रहण करना), गमन और आलाप—ये दस कार्य हैं। इन दसों इन्द्रियोंके अतिरिक्त मननामक ग्यारहवीं इन्द्रिय है, जिसमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके समस्त गुण वर्तमान हैं। इन इन्द्रियोंके जो सूक्ष्म अवयव उस मनीषीके शरीरका आश्रय लेते हैं, वे तन्मात्र कहलाते हैं और जिसके सम्पर्कसे तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, उसे शरीर कहा जाता है। उस शरीरका सम्बन्ध होनेके कारण विद्वान्लोग जीवको भी 'शरीरी' कहते हैं। जब सृष्टि करनेकी इच्छासे मनको प्रेरित किया जाता है, तब वही सृष्टिकी रचना करता है। उस समय शब्दतन्मात्रसे शब्दरूप गुणवाला आकाश प्रकट होता है। इसी आकाशके विकृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है, जो शब्द और स्पर्श—दो गुणोंवाली है। तत्पश्चात् वायु और स्पर्शतन्मात्रसे तेजका आविर्भाव होता है, जो शब्द, स्पर्श और रूपनामक तीन विकारोंसे युक्त होनेके कारण त्रिगुणात्मक हुआ। राजन्! इस त्रिगुणात्मक तेजमें विकार उत्पन्न होनेसे चार गुणोंवाले जलका प्राकट्य होता है, जो रस-तन्मात्रसे उद्भूत होनेके कारण प्रायः रसगुणप्रधान ही होता है। तत्पश्चात् पाँच गुणोंसे सम्पन्न पृथ्वीका प्रादुर्भाव होता है। वह प्रायः गन्ध-गुणसे ही युक्त रहती है। यही (इन सबका यथार्थ ज्ञान रखना ही) श्रेष्ठ बुद्धि है। इन्हीं चौबीस (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत,

इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु। प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु ॥ १८ ॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम्। पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चेतीन्द्रियसंग्रहः ॥ १९ ॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः। उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः ॥ २० ॥
मन एकादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम्। इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ २१ ॥
श्रयन्ति यस्मात् तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम्। शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः ॥ २२ ॥
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया। आकाशं शब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम् ॥ २३ ॥
आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्। वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः ॥ २४ ॥
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्। तेजोविकारादभवद् वारि राजंश्चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥
रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम्। भूमिस्तु गन्धतन्मात्राद्भूत् पञ्चगुणान्विता ॥ २६ ॥
प्रायो गन्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी। एभिः सम्पादितं भुङ्क्ते पुरुषः पञ्चविंशकः ॥ २७ ॥
ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः। एवं षड्विंशकं प्रोक्तं शरीरमिह मानवैः ॥ २८ ॥
सांख्यं संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते। एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद् वेधा अजीजनत् ॥ २९ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे ! सत्त्व, रजस् और तमस्—जो ये तीनों गुण बतलाये गये हैं, इनकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहा जाता है। कुछ लोग इसे प्रधान कहते हैं। दूसरे लोग इसे अव्यक्त नामसे भी निर्देश करते हैं। यही प्रकृति प्रजाकी सृष्टि करती है और (यही सृष्टिको) बिगाड़ती भी है। इन्हीं तीनों गुणोंके क्षुब्ध होनेपर इनसे तीन देवता उत्पन्न होते हैं। इन (तीनों देवों)की मूर्ति तो एक ही है, परंतु वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओंके रूपमें विभक्त हो जाती है। तदनन्तर प्रधानके विकृत होनेपर उससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, जिससे लोकोंके मध्यमें उसकी सदा 'महान्' रूपसे ख्याति होती है। उस महत्तत्त्वसे मानको बढ़ानेवाला अहंकार प्रकट होता है। उस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ आविर्भूत होती हैं, जिनमें पाँच बुद्धि (ज्ञान)के वशीभूत रहती हैं और दूसरी पाँच कर्मके अधीन रहती हैं। इस इन्द्रिय-समुदायमें क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा पायु (गुदा), उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), हस्त, पाद और वाणी—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दसों इन्द्रियोंके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्सर्ग (मल एवं अपानवायु आदिका त्याग), आनन्दन (आनन्दप्रदान), आदान (ग्रहण करना), गमन और आलाप—ये दस कार्य हैं। इन दसों इन्द्रियोंके अतिरिक्त मननामक ग्यारहवीं इन्द्रिय है, जिसमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके समस्त गुण वर्तमान हैं। इन इन्द्रियोंके जो सूक्ष्म अवयव उस मनीषीके शरीरका आश्रय लेते हैं, वे तन्मात्र कहलाते हैं और जिसके सम्पर्कसे तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, उसे शरीर कहा जाता है। उस शरीरका सम्बन्ध होनेके कारण विद्वान्लोग जीवको भी 'शरीरी' कहते हैं। जब सृष्टि करनेकी इच्छासे मनको प्रेरित किया जाता है, तब वही सृष्टिकी रचना करता है। उस समय शब्दतन्मात्रसे शब्दरूप गुणवाला आकाश प्रकट होता है। इसी आकाशके विकृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है, जो शब्द और स्पर्श—दो गुणोंवाली है। तत्पश्चात् वायु और स्पर्शतन्मात्रसे तेजका आविर्भाव होता है, जो शब्द, स्पर्श और रूपनामक तीन विकारोंसे युक्त होनेके कारण त्रिगुणात्मक हुआ। राजन् ! इस त्रिगुणात्मक तेजमें विकार उत्पन्न होनेसे चार गुणोंवाले जलका प्राकट्य होता है, जो रस-तन्मात्रसे उद्भूत होनेके कारण प्रायः रसगुणप्रधान ही होता है। तत्पश्चात् पाँच गुणोंसे सम्पन्न पृथ्वीका प्रादुर्भाव होता है। वह प्रायः गन्ध-गुणसे ही युक्त रहती है। यही (इन सबका यथार्थ ज्ञान रखना ही) श्रेष्ठ बुद्धि है। इन्हीं चौबीस (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत,

ततस्तानब्रवीद् ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान् । प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः । गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम् ।
सम्बभूव तया सार्धमतिकामातुरो विभुः । सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः । ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम् । तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते ॥ ४५ ॥
वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः । स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे ॥ ४६ ॥
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः । औत्तमिप्रमुखास्तद्वद् येषां त्वं सप्तमोऽधुना ॥ ४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मुखोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तदनन्तर ब्रह्माने अपने उन मरीचि आदि मानस पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुमलोग भूतलपर चारों ओर देवता, असुर और मानवरूप प्रजाओंकी सृष्टि करो। पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन पुत्रोंने अनेकों प्रकारकी प्रजाओंकी रचना की । सृष्टि-कार्यके लिये अपने उन पुत्रोंके चले जानेपर विश्वात्मा ब्रह्माने प्रणाम करनेके लिये चरणोंमें पड़ी हुई उस अनिन्दिता शतरूपा*का पाणिग्रहण किया । तदनन्तर अधिक समय व्यतीत होनेके उपरान्त शतरूपा-के गर्भसे मनु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो स्वायम्भुव नामसे विख्यात हुआ । उसे विराट् भी कहा जाता है तथा अपने पिता ब्रह्माके रूप और गुणकी समानताके कारण उसे लोग अधिपुरुष भी कहते हैं—ऐसा हमने सुना है । उस ब्रह्म-वंशमें सात-सातके विभागसे जो बहुत-से महाभाग्यशाली एवं नियमोंका पालन करनेवाले स्वारोचिष आदि तथा उसी प्रकार औत्तमि आदि स्वायम्भुव मनु हुए हैं, वे सभी ब्रह्माके समान ही स्वरूपवाले थे । उन्हींमें इस समय तुम सातवें मनु हो ॥ ४१—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मुखोत्पत्तिनामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेसे ब्रह्मा दोषी क्यों नहीं हुए—एतद्विषयक मनुका प्रश्न, मत्स्यभगवान्का उत्तर तथा इसी प्रसङ्गमें आदि सृष्टिका वर्णन

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो । कथं न दोषमगमत् कर्मणानेन पद्मभूः ॥ १ ॥
परस्परं च सम्बन्धः सगोत्राणामभूत् कथम् । वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्धि मे संशयं विभो ॥ २ ॥

मनुने पूछा—सर्वव्यापी भगवन् ! अहो ! पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन तो अत्यन्त कष्टका विषय है, परंतु ऐसा कर्म करनेपर भी कमलयोनि ब्रह्मा दोषभागी क्यों नहीं हुए ? तथा उनके सगोत्र पुत्रोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ ? विभो ! मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ १-२ ॥

* इसमें तथा अगले अध्यायमें शतरूपाका वर्णन है । शतरूपाका यहाँ अर्थ शतेन्द्रिया माया (मत्स्यपुराण ४ । २४) या मूल प्रकृति है । क्योंकि इसे तथा हरिवंश १ । २ । १ को छोड़ अन्यत्र सर्वत्र शतरूपा स्वायम्भुव मनुकी पत्नी कही गयी है । यहाँ ४ । ३३ में उनकी पत्नी 'अनन्ती' कही गयी है ।

ततस्तानब्रवीद् ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान्। प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः। गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम्।
सम्बभूव तया सार्धमतिकामातुरो विभुः। सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः। ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्। तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते ॥ ४५ ॥
वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः। स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे ॥ ४६ ॥
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः। औत्तमिप्रमुखास्तद्वद् येषां त्वं सप्तमोऽधुना ॥ ४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मुखोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तदनन्तर ब्रह्माने अपने उन मरीचि आदि मानस पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुमलोग भूतलपर चारों ओर देवता, असुर और मानवरूप प्रजाओंकी सृष्टि करो। पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन पुत्रोंने अनेकों प्रकारकी प्रजाओंकी रचना की। सृष्टि-कार्यके लिये अपने उन पुत्रोंके चले जानेपर विश्वात्मा ब्रह्माने प्रणाम करनेके लिये चरणोंमें पड़ी हुई उस अनिन्दिता शतरूपा*का पाणिग्रहण किया। तदनन्तर अधिक समय व्यतीत होनेके उपरान्त शतरूपाके गर्भसे मनु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो स्वायम्भुव नामसे विख्यात हुआ। उसे विराट् भी कहा जाता है तथा अपने पिता ब्रह्माके रूप और गुणकी समानताके कारण उसे लोग अधिपुरुष भी कहते हैं—ऐसा हमने सुना है। उस ब्रह्म-वंशमें सात-सातके विभागसे जो बहुत-से महाभाग्यशाली एवं नियमोंका पालन करनेवाले स्वारोचिष आदि तथा उसी प्रकार औत्तमि आदि स्वायम्भुव मनु हुए हैं, वे सभी ब्रह्माके समान ही स्वरूपवाले थे। उन्हींमें इस समय तुम सातवें मनु हो ॥ ४१—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मुखोत्पत्तिनामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेसे ब्रह्मा दोषी क्यों नहीं हुए—एतद्विषयक मनुका प्रश्न, मत्स्यभगवान्का उत्तर तथा इसी प्रसङ्गमें आदि सृष्टिका वर्णन

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो। कथं न दोषमगमत् कर्मणानेन पद्मभूः ॥ १ ॥
परस्परं च सम्बन्धः सगोत्राणामभूत् कथम्। वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्धि मे संशयं विभो ॥ २ ॥

मनुने पूछा—सर्वव्यापी भगवन्! अहो! पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन तो अत्यन्त कष्टका विषय है, परंतु ऐसा कर्म करनेपर भी कमलयोनि ब्रह्मा दोषभागी क्यों नहीं हुए? तथा उनके सगोत्र पुत्रोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ? विभो! मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ १-२ ॥

* इसमें तथा अगले अध्यायमें शतरूपाका वर्णन है। शतरूपाका यहाँ अर्थ शतेन्द्रिया माया (मत्स्यपुराण ४। २४) या मूल प्रकृति है। क्योंकि इसे तथा हरिवंश १। २। १ को छोड़ अन्यत्र सर्वत्र शतरूपा स्वायम्भुव मनुकी पत्नी कही गयी है। यहाँ ४। ३३ में उनकी पत्नी 'अनन्ती' कही गयी है।

चतुरानन ! आपने ही तो मुझे इस प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंकी इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेके लिये पैदा किया है। विभो ! आपने ही पहले मुझे ऐसी आज्ञा दी है कि स्त्री-पुरुषका कोई विचार न करके तुम प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र सर्वदा उनके मनको क्षुब्ध किया करो। इसलिये विभो ! मैं निरपराध हूँ, तथापि आपने मुझे वैसा शाप दे डाला है; अतः भगवन् ! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मैं पुनः अपने पूर्वशरीरको प्राप्त कर सकूँ' ॥ ३—१६ ॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते यादवान्वयसम्भवः। रामो नाम यदा मर्त्यो मत्सत्त्वबलमाश्रितः ॥ १७ ॥
अवतीर्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति। तद्भ्रातुस्तत्समस्य त्वं तदा पुत्रत्वमेष्यसि ॥ १८ ॥
एवं शरीरमासाद्य भुक्त्वा भोगानशेषतः। ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः ॥ १९ ॥
विद्याधराधिपत्यं च यावदाभूतसम्प्लवम्। सुखानि धर्मतः प्राप्य मत्समीपं गमिष्यसि ॥ २० ॥
एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः। शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम् ॥ २१ ॥

ब्रह्माने कहा—कामदेव ! वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर असुरोंके विनाशक श्रीराम जब मेरे बल-पराक्रमसे सम्पन्न होकर मानव-रूपमें यदुवंशमें (बलरामरूपसे) अवतीर्ण होंगे और द्वारकाको अपना निवासस्थान बनायेंगे, उस समय तुम उन्हींके समान बल-पराक्रमशाली उनके भ्राता (श्रीकृष्ण) के पुत्ररूपमें उत्पन्न होगे। इस प्रकार शरीरको प्राप्तकर (द्वारकामें) सम्पूर्ण भोगोंका भोग करनेके उपरान्त तुम भरत-वंशमें महाराज वत्सके पुत्र होगे। तत्पश्चात् विद्याधरोंके अधिपति होकर महाप्रलय-पर्यन्त धर्मपूर्वक सुखोंका उपभोग करके मेरे समीप वापस आ जाओगे। इस प्रकार शाप और कृपासे संयुक्त कामदेव शोक और आनन्दसे अभिभूत होकर जैसे आया था, वैसे ही चला गया ॥ १७—२१ ॥

मनुरुवाच

कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यद्वंशे कामसम्भवः। कथं च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः ॥ २२ ॥
भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराभवत्। एतत् सर्वं समाचक्ष्व मूलतः संशयो हि मे ॥ २३ ॥

मनुने पूछा—भगवन् ! आपने जिनके वंशमें कामदेवकी उत्पत्ति बतलायी है, वे यदु कौन हैं ? भगवान् रुद्रने कामदेवको किसलिये और कैसे जलाया तथा भरतवंशमें पहले किसकी और कौन-सी सृष्टि हुई थी ? (इन बातोंको सुनकर) मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है; अतः आप प्रारम्भसे ही इन सबका वर्णन कीजिये ॥ २२—२३ ॥

मत्स्य उवाच

या सा देहार्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी। जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥ २४ ॥
रतिर्मनस्तपोबुद्धिर्महान्दिक्सम्भ्रमस्तथा। ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥ २५ ॥
ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः। तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥ २६ ॥
ततोऽसृजद् वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्। सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ २७ ॥
वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्। राजन्यानसृजद् बाह्वोर्विट्शूद्रानूरुपादयोः ॥ २८ ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च। छन्दांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ततः परम् ॥ २९ ॥
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत् पुनः। कोटीश्च चतुराशीतिर्जरामरणवर्जिताः ॥ ३० ॥
वामोऽसृजन्मर्त्यांस्तान् ब्रह्मणा विनिवारितः। नैवंविधा भवेत् सृष्टिर्जरामरणवर्जिता ॥ ३१ ॥
शुभाशुभात्मिका या तु सैव सृष्टिः प्रशस्यते। एवं स्थितः स तेनादौ सृष्टेः स्थाणुरतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन् ! ब्रह्माके शरीरके आधे भागसे जो ब्रह्मवादिनी गायत्री उत्पन्न हुई थी और जो मनुकी माता थी तथा जिसे शतरूपा और शतेन्द्रिया नामसे भी जाना जाता था, उसी शतरूपाके गर्भसे ब्रह्माजीने रति, मन, तप, बुद्धि, महान्, दिक् तथा सम्भ्रम—इन सात संतानोंको जन्म दिया।

चतुरानन ! आपने ही तो मुझे इस प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंकी इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेके लिये पैदा किया है। विभो ! आपने ही पहले मुझे ऐसी आज्ञा दी है कि स्त्री-पुरुषका कोई विचार न करके तुम प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र सर्वदा उनके मनको क्षुब्ध किया करो। इसलिये विभो ! मैं निरपराध हूँ, तथापि आपने मुझे वैसा शाप दे डाला है; अतः भगवन् ! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मैं पुनः अपने पूर्वशरीरको प्राप्त कर सकूँ' ॥ ३—१६ ॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते यादवान्वयसम्भवः। रामो नाम यदा मर्त्यो मत्सत्त्वबलमाश्रितः ॥ १७ ॥
अवतीर्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति। तद्भ्रातुस्तत्समस्य त्वं तदा पुत्रत्वमेष्यसि ॥ १८ ॥
एवं शरीरमासाद्य भुक्त्वा भोगानशेषतः। ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः ॥ १९ ॥
विद्याधराधिपत्यं च यावदाभूतसम्प्लवम्। सुखानि धर्मतः प्राप्य मत्समीपं गमिष्यसि ॥ २० ॥
एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः। शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम् ॥ २१ ॥

ब्रह्माने कहा—कामदेव ! वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर असुरोंके विनाशक श्रीराम जब मेरे बल-पराक्रमसे सम्पन्न होकर मानव-रूपमें यदुवंशमें (बलरामरूपसे) अवतीर्ण होंगे और द्वारकाको अपना निवासस्थान बनायेंगे, उस समय तुम उन्हींके समान बल-पराक्रमशाली उनके भ्राता (श्रीकृष्ण) के पुत्ररूपमें उत्पन्न होगे। इस प्रकार शरीरको प्राप्तकर (द्वारकामें) सम्पूर्ण भोगोंका भोग करनेके उपरान्त तुम भरत-वंशमें महाराज वत्सके पुत्र होगे। तत्पश्चात् विद्याधरोंके अधिपति होकर महाप्रलय-पर्यन्त धर्मपूर्वक सुखोंका उपभोग करके मेरे समीप वापस आ जाओगे। इस प्रकार शाप और कृपासे संयुक्त कामदेव शोक और आनन्दसे अभिभूत होकर जैसे आया था, वैसे ही चला गया ॥ १७—२१ ॥

मनुरुवाच

कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यद्वंशे कामसम्भवः। कथं च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः ॥ २२ ॥
भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराभवत्। एतत् सर्वं समाचक्ष्व मूलतः संशयो हि मे ॥ २३ ॥

मनुने पूछा—भगवन् ! आपने जिनके वंशमें कामदेवकी उत्पत्ति बतलायी है, वे यदु कौन हैं ? भगवान् रुद्रने कामदेवको किसलिये और कैसे जलाया तथा भरतवंशमें पहले किसकी और कौन-सी सृष्टि हुई थी ? (इन बातोंको सुनकर) मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है; अतः आप प्रारम्भसे ही इन सबका वर्णन कीजिये ॥ २२—२३ ॥

मत्स्य उवाच

या सा देहार्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी। जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥ २४ ॥
रतिर्मनस्तपोबुद्धिर्महान्दिक्सम्भ्रमस्तथा। ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥ २५ ॥
ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः। तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥ २६ ॥
ततोऽसृजद् वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्। सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ २७ ॥
वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्। राजन्यानसृजद् बाह्वोर्विट्शूद्रानूरुपादयोः ॥ २८ ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च। छन्दांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ततः परम् ॥ २९ ॥
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत् पुनः। कोटीश्च चतुराशीतिर्जरामरणवर्जिताः ॥ ३० ॥
वामोऽसृजन्मर्त्यास्तान् ब्रह्मणा विनिवारितः। नैवंविधा भवेत् सृष्टिर्जरामरणवर्जिता ॥ ३१ ॥
शुभाशुभात्मिका या तु सैव सृष्टिः प्रशस्यते। एवं स्थितः स तेनादौ सृष्टेः स्थाणुरतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन् ! ब्रह्माके शरीरके आधे भागसे जो ब्रह्मवादिनी गायत्री उत्पन्न हुई थी और जो मनुकी माता थी तथा जिसे शतरूपा और शतेन्द्रिया नामसे भी जाना जाता था, उसी शतरूपाके गर्भसे ब्रह्माजीने रति, मन, तप, बुद्धि, महान्, दिक् तथा सम्भ्रम—इन सात संतानोंको जन्म दिया।

पुत्रोंको पैदा किया। आग्नेयीने ऊरुके संयोगसे अग्नि, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरस् और गय—इन छः परम कान्तिमान् पुत्रोंको जन्म दिया। पितरोंकी कन्या सुनीथाने अङ्गके सम्पर्कसे वेनको उत्पन्न किया। (वेन अत्यन्त अन्यायी था। जब वह विप्रशापसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब) ब्राह्मणोंने उस अन्यायी वेनके हाथका मन्थन किया। उससे महातेजस्वी पृथु नामका पुत्र प्रकट हुआ। उनके (अन्तर्धान और हविर्धान नामक) दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें अन्तर्धानने शिखण्डिनीके गर्भसे मारीच नामक पुत्र पैदा किया ॥ ३३–४४½ ॥

हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्। प्राचीनबर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम्॥ ४५॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः। हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तिताः॥ ४६॥
सवर्णायां तु सामुद्रयां दशाधत्त सुतान् प्रभुः। सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः॥ ४७॥
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्ततः। देवादेशाच्च तानग्निरदहद् रविनन्दन॥ ४८॥
सोमकन्याभवत् पत्नी मारीषा नाम विश्रुता। तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्र्यमजीजनत्॥ ४९॥
दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः। अजीजनत् सोमकन्या नदीं चन्द्रवतीं तथा॥ ५०॥
सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः। तासां तु विस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः॥ ५१॥
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः। वलोमुखाः शङ्कुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा॥ ५२॥
अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा। श्वसूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्रमुखास्तथा॥ ५३॥
जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकशः। स सृष्ट्वा मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत्॥ ५४॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः। देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत्॥ ५५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अग्नि-कन्या धिषणाने हविर्धानके संयोगसे प्राचीन-बर्हिष्, साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ—इन छः पुत्रोंको जन्म दिया। इनमें महान् ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हि प्रजापति थे। उन्होंने हविर्धान नामसे विख्यात बहुत-सी प्रजाओंका विस्तार किया तथा समुद्र-कन्या सवर्णाके गर्भसे दस पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी धनुर्वेदके पारगामी विद्वान् थे तथा प्रचेता नामसे विख्यात हुए। रविनन्दन! इन्हीं प्रचेताओंके तपसे सुरक्षित रहकर वृक्ष जगत्में चारों ओर शोभा पा रहे थे, परंतु इन्द्रदेवके आदेशसे अग्निने उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। तत्पश्चात् चन्द्रमाकी कन्या, जो मारिषा नामसे विख्यात थी, उन प्रचेताओंकी पत्नी हुई। उसने उनके संयोगसे एक दक्ष नामक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया। दक्षकी उत्पत्तिके पश्चात् उस सोमकन्याने समस्त वृक्षों और ओषधियोंको तथा चन्द्रवती नामकी नदीको उत्पन्न किया। चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए उस दक्ष प्रजापतिकी अस्सी करोड़ संतानें हुईं, जो इस समय लोकमें सर्वत्र फैली हुई हैं और जिनका विस्तार मैं आगे वर्णन करूँगा। उनमेंसे किन्हींके दो पैर थे तो किन्हींके अनेकों पैर थे। किन्हींके मुख टेढ़े-मेढ़े थे तो किन्हींके कान खूँटे-जैसे थे तथा किन्हींके कान (बालोंसे) आच्छादित थे। किन्हींके मुख घोड़े और रीछके सदृश थे तथा कोई सिंहके समान मुखवाले थे। कुछ लोग कुत्ते और सूअरके सदृश मुखवाले थे तो किन्हींका मुख ऊँटके समान था। इस प्रकार धर्मात्मा दक्षने अपने मनसे अनेकों प्रकारके सभी म्लेच्छोंकी सृष्टि की, तत्पश्चात् स्त्रियोंको उत्पन्न किया। उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको तथा नक्षत्र नामवाली सत्ताईस स्त्रियोंको चन्द्रमाको प्रदान किया। उन्हीं कन्याओंसे देवता, असुर और मानव आदिसे परिपूर्ण यह सारा जगत् प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ४५–५५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पुत्रोंको पैदा किया। आग्नेयीने ऊरुके संयोगसे अग्नि, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरस् और गय—इन छः परम कान्तिमान् पुत्रोंको जन्म दिया। पितरोंकी कन्या सुनीथाने अङ्गके सम्पर्कसे वेनको उत्पन्न किया। (वेन अत्यन्त अन्यायी था। जब वह विप्रशापसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब) ब्राह्मणोंने उस अन्यायी वेनके हाथका मन्थन किया। उससे महातेजस्वी पृथु नामका पुत्र प्रकट हुआ। उनके (अन्तर्धान और हविर्धान नामक) दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें अन्तर्धानने शिखण्डिनीके गर्भसे मारीच नामक पुत्र पैदा किया ॥ ३३–४४१/२ ॥

हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्। प्राचीनबर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम् ॥ ४५ ॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः। हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तिताः ॥ ४६ ॥
सवर्णायां तु सामुद्र्यां दशाधत्त सुतान् प्रभुः। सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ४७ ॥
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्ततः। देवादेशाच्च तानग्निरदहद् रविनन्दन ॥ ४८ ॥
सोमकन्याभवत् पत्नी मारीषा नाम विश्रुता। तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्र्यमजीजनत् ॥ ४९ ॥
दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः। अजीजनत् सोमकन्या नदीं चन्द्रवतीं तथा ॥ ५० ॥
सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः। तासां तु विस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः ॥ ५१ ॥
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः। वलीमुखाः शङ्कुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा ॥ ५२ ॥
अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा। श्वसूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्रमुखास्तथा ॥ ५३ ॥
जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकशः। स सृष्ट्वा मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत् ॥ ५४ ॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः। देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत् ॥ ५५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अग्नि-कन्या धिषणाने हविर्धानके संयोगसे प्राचीनबर्हिष्, साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ—इन छः पुत्रोंको जन्म दिया। इनमें महान् ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हि प्रजापति थे। उन्होंने हविर्धान नामसे विख्यात बहुत-सी प्रजाओंका विस्तार किया तथा समुद्र-कन्या सवर्णाके गर्भसे दस पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी धनुर्वेदके पारगामी विद्वान् थे तथा प्रचेता नामसे विख्यात हुए। रविनन्दन ! इन्हीं प्रचेताओंके तपसे सुरक्षित रहकर वृक्ष जगत्में चारों ओर शोभा पा रहे थे, परंतु इन्द्रदेवके आदेशसे अग्निने उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। तत्पश्चात् चन्द्रमाकी कन्या, जो मारिषा नामसे विख्यात थी, उन प्रचेताओंकी पत्नी हुई। उसने उनके संयोगसे एक दक्ष नामक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया। दक्षकी उत्पत्तिके पश्चात् उस सोमकन्याने समस्त वृक्षों और ओषधियोंको तथा चन्द्रवती नामकी नदीको उत्पन्न किया। चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए उस दक्ष प्रजापतिकी अस्सी करोड़ संतानें हुईं, जो इस समय लोकमें सर्वत्र फैली हुई हैं और जिनका विस्तार मैं आगे वर्णन करूँगा। उनमेंसे किन्हींके दो पैर थे तो किन्हींके अनेकों पैर थे। किन्हींके मुख टेढ़े-मेढ़े थे तो किन्हींके कान खूँटे-जैसे थे तथा किन्हींके कान (बालोंसे) आच्छादित थे। किन्हींके मुख घोड़े और रीछके सदृश थे तथा कोई सिंहके समान मुखवाले थे। कुछ लोग कुत्ते और सूअरके सदृश मुखवाले थे तो किन्हींका मुख ऊँटके समान था। इस प्रकार धर्मात्मा दक्षने अपने मनसे अनेकों प्रकारके सभी म्लेच्छोंकी सृष्टि की, तत्पश्चात् स्त्रियोंको उत्पन्न किया। उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको तथा नक्षत्र नामवाली सत्ताईस स्त्रियोंको चन्द्रमाको प्रदान किया। उन्हीं कन्याओंसे देवता, असुर और मानव आदिसे परिपूर्ण यह सारा जगत् प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ४५–५५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

उसी मार्गसे चले गये (और पुनः वापस नहीं आये)। तभीसे छोटा भाई बड़े भाईको ढूँढने नहीं जाता। यदि जाता है तो वह दुःखभागी होता है। इसलिये ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २–११ ॥*

ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः। वीरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥ १२ ॥
प्रादात् स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥ १३ ॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते। द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात् ॥ १४ ॥
शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः। मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुंधती ॥ १५ ॥
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी। धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान् निबोधत ॥ १६ ॥
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत्। मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ १७ ॥
भानोस्तु भानवस्तद्वन्मुहूर्तायां मुहूर्तकाः। लम्बायां घोषनामानो नागवीथी तु यामिजा ॥ १८ ॥
पृथिवीतलसम्भूतमरुंधत्यामजायत। संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिं निबोधत ॥ १९ ॥
ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम्। वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गं निबोधत ॥ २० ॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वै दण्ड एव च। शाम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः ॥ २२ ॥
ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत। द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ॥ २३ ॥
कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च। मनोहरा धरात् पुत्रानवापाथ हरेः सुता ॥ २४ ॥
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा। अवाप चानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ॥ २५ ॥
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत। तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २६ ॥
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेयस्ततः स्मृतः।
प्रत्यूषस्य ऋषेः पुत्रो विभुर्नाम्नाथ देवलः। विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥ २७ ॥
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु। तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः ॥ २८ ॥

तदनन्तर उन पुत्रोंके भी विनष्ट हो जानेपर प्रचेता-नन्दन प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दक्षने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुनन्दन शुक्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और दो कन्याएँ अङ्गिराको प्रदान कर दीं। अब आपलोग इन देवमाताओंके नाम तथा जिस प्रकार इनकी संतानोंका विस्तार हुआ, वह सब आदिसे ही विस्तारपूर्वक सुनिये। इनमेंसे मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुंधती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और सुन्दरी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतलायी गयी हैं। अब इनके पुत्रोंके भी नाम सुनिये—विश्वाने (दस) विश्वेदेवोंको, साध्याने (बारह) साध्योंको, मरुत्वतीने (उनचास) मरुतोंको, वसुने आठ वसुओंको, भानुने (बारह) सूर्योंको, मुहूर्ताने मुहूर्तकको, लम्बाने घोषको, यामीने नागवीथीको और संकल्पाने संकल्पको जन्म दिया। अरुंधतीके गर्भसे भूतलपर होनेवाले समस्त जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति हुई। अब वसुओंकी सृष्टिके विषयमें सुनिये—ये जो प्रभाशाली देवता सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हैं, वे सभी 'वसु' नामसे विख्यात हैं। अब इनके सृष्टि-विस्तारका वर्णन सुनिये। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इनमें आप नामक वसुके शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवक्त्र नामक चार पुत्र हुए, जो सब-के-सब यज्ञ-रक्षाके अधिकारी हैं। (शेष वसुओंमें) ध्रुवका पुत्र काल हुआ। सोमसे वर्चाकी उत्पत्ति हुई। धरके कल्याणिनीके गर्भसे द्रविण और हव्यवाह नामके दो

* विष्णुपुराण १ । १५ । १०१, ब्रह्म० २ । ८०, वायु० ६५ आदिमें ऐसा ही है, पर भागवत० ६ । ५में कुछ इसके विपरीत भी सम्मति है।

उसी मार्गसे चले गये (और पुनः वापस नहीं आये) । तभीसे छोटा भाई बड़े भाईको ढूँढ़ने नहीं जाता । यदि जाता है तो वह दुःखभागी होता है । इसलिये ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २—११ ॥*

ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः । वीरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥ १२ ॥
प्रादात् स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥ १३ ॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते । द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात् ॥ १४ ॥
शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः । मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुंधती ॥ १५ ॥
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी । धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान् निबोधत ॥ १६ ॥
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् । मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ १७ ॥
भानोस्तु भानवस्तद्वन्मुहूर्तायां मुहूर्तकाः । लम्बायां घोषनामानो नागवीथी तु यामिजा ॥ १८ ॥
पृथिवीतलसम्भूतमरुंधत्यामजायत । संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिं निबोधत ॥ १९ ॥
ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम् । वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गं निबोधत ॥ २० ॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वै दण्ड एव च । शाम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः ॥ २२ ॥
ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत । द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ॥ २३ ॥
कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च । मनोहरा धरात् पुत्रानवापाथ हरेः सुता ॥ २४ ॥
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा । अवाप चानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ॥ २५ ॥
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत । तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २६ ॥
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेयस्ततः स्मृतः ।
प्रत्यूषस्य ऋषेः पुत्रो विभुर्नाम्नाथ देवलः । विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥ २७ ॥
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु । तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः ॥ २८ ॥

तदनन्तर उन पुत्रोंके भी विनष्ट हो जानेपर प्रचेता-नन्दन प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं । उनमेंसे दक्षने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुनन्दन शुक्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और दो कन्याएँ अङ्गिराको प्रदान कर दीं । अब आपलोग इन देवमाताओंके नाम तथा जिस प्रकार इनकी संतानोंका विस्तार हुआ, वह सब आदिसे ही विस्तारपूर्वक सुनिये । इनमेंसे मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुंधती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और सुन्दरी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतलायी गयी हैं । अब इनके पुत्रोंके भी नाम सुनिये—विश्वाने (दस) विश्वेदेवोंको, साध्याने (बारह) साध्योंको, मरुत्वतीने (उनचास) मरुतोंको, वसुने आठ वसुओंको, भानुने (बारह) सूर्योंको, मुहूर्ताने मुहूर्तकको, लम्बाने घोषको, यामीने नागवीथीको और संकल्पाने संकल्पको जन्म दिया । अरुंधतीके गर्भसे भूतलपर होनेवाले समस्त जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति हुई । अब वसुओंकी सृष्टिके विषयमें सुनिये—ये जो प्रभाशाली देवता सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हैं, वे सभी 'वसु' नामसे विख्यात हैं । अब इनके सृष्टि-विस्तारका वर्णन सुनिये । आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं । इनमें आप नामक वसुके शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवक्त्र नामक चार पुत्र हुए, जो सब-के-सब यज्ञ-रक्षाके अधिकारी हैं । (शेष वसुओंमें) ध्रुवका पुत्र काल हुआ । सोमसे वर्चाकी उत्पत्ति हुई । धरके कल्याणिनीके गर्भसे द्रविण और हव्यवाह नामके दो

* विष्णुपुराण १ । १५ । १०१, ब्रह्म० २ । ८०, वायु० ६५ आदिमें ऐसा ही है, पर भागवत० ६ । ५में कुछ इसके विपरीत भी सम्मति है ।

हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा। भूतसंतापनश्चैव महानाभस्तथैव च ॥ १४ ॥
एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः। महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः ॥ १५ ॥

सूतजी कहते हैं—(शौनकादि ऋषियो !) अब मैं कश्यपकी पत्नियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करता हूँ। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा और मुनि—ये तेरह कश्यपकी पत्नियाँ थीं। अब इनके पुत्रोंका वर्णन सुनिये। चाक्षुष मनुके कार्यकालमें जो तुषित नामके देवगण थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें द्वादश आदित्यके नामसे प्रख्यात हुए। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, यम, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सभी सहस्र किरणोंसे सम्पन्न हैं और द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। अदितिने मरीचि-नन्दन कश्यपके संयोगसे इन श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया था। महर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण नामसे विख्यात हुए। द्विजवरो ! ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर तथा प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। हमने सुना है कि दितिने महर्षि कश्यपके सम्पर्कसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपुके उसीके समान पराक्रमी प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लादनामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, बाष्कल और चौथा विरोचन। उस विरोचनने बलिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। विप्रवरो ! बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें बाण ज्येष्ठ था। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण तथा इसी प्रकारके और भी बहुत-से पुत्र थे, जो बाणसे छोटे, परंतु सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें बाणके सहस्र भुजाएँ थीं और वह समस्त अस्त्रसमूहोंका ज्ञाता था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकर उसके नगरमें निवास करते थे। उसने (अपनी तपस्याके प्रभावसे) पिनाकधारी शंकरजीकी समतावाले महाकाल-पदको प्राप्त कर लिया था। (दितिके द्वितीय पुत्र) हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसंतापन और महानाभनामक पुत्र हुए। इनसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सतहत्तर करोड़ थी। वे सभी महान् बलशाली, विशाल शरीरवाले, नाना प्रकारका रूप धारण करनेमें समर्थ और महान् ओजस्वी थे ॥ १—१५ ॥

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्। विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद् येषां मध्ये महाबलः ॥ १६ ॥
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः। अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो वामनस्तथा ॥ १७ ॥
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरागर्भशिरास्तथा। विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ॥ १८ ॥
इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च। एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ॥ १९ ॥
असिलोमा पुलोमा च विन्दुर्बाणो महासुरः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः ॥ २० ॥
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा। उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ॥ २१ ॥
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः। पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते ॥ २२ ॥
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे। तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत् पुरा ॥ २३ ॥
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत् पुरा। अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ॥ २४ ॥
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु। विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ॥ २५ ॥
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश। व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च ॥ २६ ॥
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा। नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ॥ २७ ॥
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः। संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः ॥ २८ ॥
अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ॥ २९ ॥

हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा। भूतसंतापनश्चैव महानाभस्तथैव च ॥ १४ ॥
एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः। महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः ॥ १५ ॥

सूतजी कहते हैं—(शौनकादि ऋषियो !) अब मैं कश्यपकी पत्नियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करता हूँ। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा और मुनि—ये तेरह कश्यपकी पत्नियाँ थीं। अब इनके पुत्रोंका वर्णन सुनिये। चाक्षुष मनुके कार्यकालमें जो तुषित नामके देवगण थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें द्वादश आदित्यके नामसे प्रख्यात हुए। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, यम, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सभी सहस्र किरणोंसे सम्पन्न हैं और द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। अदितिने मरीचि-नन्दन कश्यपके संयोगसे इन श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया था। महर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण नामसे विख्यात हुए। द्विजवरो ! ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर तथा प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। हमने सुना है कि दितिने महर्षि कश्यपके सम्पर्कसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपुके उसीके समान पराक्रमी प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लादनामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, बाष्कल और चौथा विरोचन। उस विरोचनने बलिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। विप्रवरो ! बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें बाण ज्येष्ठ था। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण तथा इसी प्रकारके और भी बहुत-से पुत्र थे, जो बाणसे छोटे, परंतु सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें बाणके सहस्र भुजाएँ थीं और वह समस्त अस्त्रसमूहोंका ज्ञाता था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकर उसके नगरमें निवास करते थे। उसने (अपनी तपस्याके प्रभावसे) पिनाकधारी शंकरजीकी समतावाले महाकाल-पदको प्राप्त कर लिया था। (दितिके द्वितीय पुत्र) हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसंतापन और महानाभनामक पुत्र हुए। इनसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सतहत्तर करोड़ थी। वे सभी महान् बलशाली, विशाल शरीरवाले, नाना प्रकारका रूप धारण करनेमें समर्थ और महान् ओजस्वी थे ॥ १—१५ ॥

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्। विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद् येषां मध्ये महाबलः ॥ १६ ॥
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः। अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो वामनस्तथा ॥ १७ ॥
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरागर्भशिरास्तथा। विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ॥ १८ ॥
इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च। एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ॥ १९ ॥
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः ॥ २० ॥
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा। उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ॥ २१ ॥
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः। पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते ॥ २२ ॥
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे। तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत् पुरा ॥ २३ ॥
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत् पुरा। अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ॥ २४ ॥
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु। विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ॥ २५ ॥
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश। व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च ॥ २६ ॥
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा। नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ॥ २७ ॥
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः। संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः ॥ २८ ॥
अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ॥ २९ ॥

एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः । शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥ ४० ॥
शङ्कुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा । कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः ॥ ४१ ॥
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् । प्रायशो यत् पुरा दग्धं जनमेजयमन्दिरे ॥ ४२ ॥
रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् । दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात् क्षयम् ॥ ४३ ॥
रुद्राणां च गणं तद्वद् गोमहिष्यो वराङ्गनाः । सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ॥ ४४ ॥
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा । तथा किंनरगन्धर्वानरिष्टाजनयद् बहून् ॥ ४५ ॥
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत् । विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ॥ ४६ ॥
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद् दितिः । जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(विनताके दो पुत्र) गरुड़ और अरुण आकाशचारी छोटे-बड़े समस्त पक्षियोंके स्वामी हैं। (उसकी तीसरी संतान) सौदामिनी नामकी कन्या है, जो गगन-मण्डलमें विख्यात है। अरुणके सम्पाति और जटायु नामके दो पुत्र हुए। उनमें सम्पातिके पुत्र बभ्रु और शीघ्रग नामसे विख्यात हुए। जटायुके दो पुत्र कर्णिकार और शतगामी नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त जटायुके सारस, रज्जुबाल और भेरुण्डनामक पुत्र भी थे। इन पक्षियोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है। सुव्रत! सुरसा तथा कद्रूके गर्भसे सहस्र फणोंवाले एक-एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई। परंतप! उनमें छब्बीस प्रधान हैं। उनके नाम ये हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनंजय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि। इन सभी सर्पोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अगणित थी, परंतु प्राचीनकालमें जनमेजयके सर्पयज्ञमें (इनमेंसे) प्रायः अधिकांश जला दिये गये। क्रोधवशाने अपने ही नामवाले (क्रोधवश-नामक) दंष्ट्रधारी एक लाख राक्षसोंको जन्म दिया, जो भीमसेनद्वारा नष्ट कर दिये गये। संयत व्रतवाली सुरभिने महर्षि कश्यपके संयोगसे रुद्रगणों तथा सुन्दर अङ्गोंवाली गायों और भैंसोंको उत्पन्न किया। मुनिने मुनि-समुदाय तथा अप्सरा-समूहको पैदा किया, उसी प्रकार अरिष्टाने बहुत-से किंनर और गन्धर्वोंको जन्म दिया। इरासे समस्त तृण, वृक्ष, लता और झाड़ी आदिकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार विश्वाने करोड़ों यक्षों और राक्षसोंको पैदा किया तथा दितिने कश्यपके सम्पर्कसे उनचास मरुतोंको उत्पन्न किया, जो सभी धर्मज्ञ और देवप्रिय थे ॥ ३४—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

मरुतोंकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें दितिकी तपस्या, मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन, कश्यपद्वारा दितिको वरदान, गर्भिणी स्त्रियोंके लिये नियम तथा मरुतोंकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

दितेः पुत्राः कथं जाता मरुतो देववल्लभाः । देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! (दैत्योंकी जननी) दितिके पुत्र उनचास मरुत देवताओंके प्रिय कैसे बन गये? तथा अपने सौतेले भाई देवताओंके साथ उनकी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गयी? ॥ १ ॥

एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः । शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥ ४० ॥
शङ्कुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा । कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः ॥ ४१ ॥
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् । प्रायशो यत् पुरा दग्धं जनमेजयमन्दिरे ॥ ४२ ॥
रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् । दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात् क्षयम् ॥ ४३ ॥
रुद्राणां च गणं तद्वद् गोमहिष्यो वराङ्गनाः । सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ॥ ४४ ॥
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा । तथा किंनरगन्धर्वानरिष्टाजनयद् बहून् ॥ ४५ ॥
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत् । विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ॥ ४६ ॥
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद् दितिः । जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(विनताके दो पुत्र) गरुड़ और अरुण आकाशचारी छोटे-बड़े समस्त पक्षियोंके स्वामी हैं । (उसकी तीसरी संतान) सौदामिनी नामकी कन्या है, जो गगन-मण्डलमें विख्यात है । अरुणके सम्पाति और जटायु नामके दो पुत्र हुए । उनमें सम्पातिके पुत्र बभ्रु और शीघ्रग नामसे विख्यात हुए । जटायुके दो पुत्र कर्णिकार और शतगामी नामसे प्रसिद्ध हुए । इनके अतिरिक्त जटायुके सारस, रज्जुबाल और भेरुण्डनामक पुत्र भी थे । इन पक्षियोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है । सुव्रत ! सुरसा तथा कद्रूके गर्भसे सहस्र फणोंवाले एक-एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई । परंतप ! उनमें छब्बीस प्रधान हैं । उनके नाम ये हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनंजय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि । इन सभी सर्पोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अगणित थी, परंतु प्राचीनकालमें जनमेजयके सर्पयज्ञमें (इनमेंसे) प्रायः अधिकांश जला दिये गये । क्रोधवशाने अपने ही नामवाले (क्रोधवश-नामक) दंष्ट्रधारी एक लाख राक्षसोंको जन्म दिया, जो भीमसेनद्वारा नष्ट कर दिये गये । संयत व्रतवाली सुरभिने महर्षि कश्यपके संयोगसे रुद्रगणों तथा सुन्दर अङ्गोंवाली गायों और भैंसोंको उत्पन्न किया । मुनिने मुनि-समुदाय तथा अप्सरा-समूहको पैदा किया, उसी प्रकार अरिष्टाने बहुत-से किन्नर और गन्धर्वोंको जन्म दिया । इरासे समस्त तृण, वृक्ष, लता और झाड़ी आदिकी उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार विश्वाने करोड़ों यक्षों और राक्षसोंको पैदा किया तथा दितिने कश्यपके सम्पर्कसे उनचास मरुतोंको उत्पन्न किया, जो सभी धर्मज्ञ और देवप्रिय थे ॥ ३४—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

मरुतोंकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें दितिकी तपस्या, मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन, कश्यपद्वारा दितिको वरदान, गर्भिणी स्त्रियोंके लिये नियम तथा मरुतोंकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

दितेः पुत्राः कथं जाता मरुतो देववल्लभाः । देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! (दैत्योंकी जननी) दितिके पुत्र उनचास मरुत देवताओंके प्रिय कैसे बन गये ? तथा अपने सौतेले भाई देवताओंके साथ उनकी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गयी ? ॥ १ ॥

शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकड़े रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करना चाहिये। उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वाम भागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य आदिका भी प्रबन्ध करे। (अर्थाभावके कारण) गीत-वाद्य आदिका प्रबन्ध न हो सकनेपर मनुष्यको कामदेव और भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करना चाहिये। पुनः कामदेव नामक भगवान् विष्णुकी अर्चना करते समय उन्हें सुगन्धित जलसे स्नान कराना चाहिये। श्वेत पुष्प, अक्षत और तिलोंद्वारा उन मधुसूदनकी विधिवत् पूजा करे। उस समय उन 'विष्णुके पैरोंमें कामदेव, जङ्घाओंमें सौभाग्यदाता, ऊरुओंमें स्मर, कटिभागमें मन्मथ, उदरमें स्वच्छोदर, वक्षःस्थलमें अनङ्ग, मुखमें पद्ममुख, बाहुओंमें पञ्चशर और मस्तकमें सर्वात्माको नमस्कार है'—यों कहकर भगवान् केशवका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। तदनन्तर प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।' ॥ ९–२० ॥

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्। उपवासी त्रयादश्यामर्चयेद् विष्णुमव्ययम् ॥ २१ ॥
फलमेकं च सम्प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत्। ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ॥ २२ ॥
शय्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम्। काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् ॥ २३ ॥
वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूज्यं शक्त्या विभूषणैः। शय्यागन्धादिकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत् ॥ २४ ॥
होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत्। गव्येन हविषा तद्वत् पायसेन च धर्मवित् ॥ २५ ॥
विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद् वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्। इक्षुदण्डानथो दद्यात् पुष्पमालाश्च शक्तितः ॥ २६ ॥
यः कुर्याद् विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम्। स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम् ॥ २७ ॥
इह लोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यफलमश्नुते। यः स्मरः संस्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः ॥ २८ ॥
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्। एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः ॥ २९ ॥

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन एक फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्ण-निर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ अनङ्ग-(कामदेव) को समर्पित करे (अर्थात् अनङ्गके उद्देश्यसे ब्राह्मणको दान दे)। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये कि 'आप प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् उस धमज्ञ व्रतीको गोदुग्धसे बनी हुई हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गन्ना और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ

शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकड़े रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करना चाहिये। उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वाम भागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य आदिका भी प्रबन्ध करे। (अर्थाभावके कारण) गीत-वाद्य आदिका प्रबन्ध न हो सकनेपर मनुष्यको कामदेव और भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करना चाहिये। पुनः कामदेव नामक भगवान् विष्णुकी अर्चना करते समय उन्हें सुगन्धित जलसे स्नान कराना चाहिये। श्वेत पुष्प, अक्षत और तिलोंद्वारा उन मधुसूदनकी विधिवत् पूजा करे। उस समय उन 'विष्णुके पैरोंमें कामदेव, जङ्घाओंमें सौभाग्यदाता, ऊरुओंमें स्मर, कटिभागमें मन्मथ, उदरमें स्वच्छोदर, वक्षःस्थलमें अनङ्ग, मुखमें पद्ममुख, बाहुओंमें पञ्चशर और मस्तकमें सर्वात्माको नमस्कार है'—यों कहकर भगवान् केशवका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। तदनन्तर प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।' ॥ ९–२० ॥

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्। उपवासी त्रयोदश्यामर्चयेद् विष्णुमव्ययम् ॥ २१ ॥
फलमेकं च सम्प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत्। ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ॥ २२ ॥
शय्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम्। काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् ॥ २३ ॥
वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूज्यं शक्त्या विभूषणैः। शय्यागन्धादिकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत् ॥ २४ ॥
होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत्। गव्येन हविषा तद्वत् पायसेन च धर्मवित् ॥ २५ ॥
विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद् वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्। इक्षुदण्डानथो दद्यात् पुष्पमालाश्च शक्तितः ॥ २६ ॥
यः कुर्याद् विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम्। स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम् ॥ २७ ॥
इह लोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यफलमश्नुते। यः स्मरः संस्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः ॥ २८ ॥
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्। एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः ॥ २९ ॥

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन एक फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्ण-निर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ अनङ्ग-(कामदेव) को समर्पित करे (अर्थात् अनङ्गके उद्देश्यसे ब्राह्मणको दान दे)। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये कि 'आप प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ व्रतीको गोदुग्धसे बनी हुई हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गन्ना और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ

(यज्ञकी समाप्तिके बाद) कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और पुनः उससे कहा—'वरानने ! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और इस गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है । वरवर्णिनि ! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये । उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये । वह घरकी सामग्री मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, बिमवटपर न बैठे, मनको उद्विग्न न करे, नखसे, लुआठीसे अथवा राखसे पृथ्वीपर रेखा न खींचे, सदा नींदमें अलसायी हुई न रहे, कठिन परिश्रमका काम न करे, भूसी, लुआठी, भस्म, हड्डी और खोपड़ीपर न बैठे, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं । वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर, न उद्विग्न-चित्त होकर एवं न भीगे चरणोंसे ही कभी शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे । वह अपनी रक्षाका ध्यान रखे, स्वच्छ वेष-भूषासे युक्त रहे, वास्तु-पूजनमें तत्पर रहे, प्रसन्न-मुखी होकर सदा पतिके हितमें संलग्न रहे, तृतीया तिथिको दान करे, पर्व-सम्बन्धी व्रत एवं नक्तव्रतका पालन करे । जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है । इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है । प्रिये ! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके इस गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो । तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ ।' दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं सभी जीवोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । तब दिति महर्षि कश्यपद्वारा बताये गये नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी ॥ ३६—४९ ॥

अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेः पार्श्वमुपागतः । विहाय देवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः ॥ ५० ॥
दितिच्छिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः । विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो बहिः ॥ ५१ ॥
अजानन् किल तत्कार्यमात्मनः शुभमाचरन् । ततो वर्षशतान्ते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥
मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा । अकृत्वा पादयोः शौचं प्रसुप्ता मुक्तमूर्धजा ॥ ५३ ॥
निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिराः क्वचित् । ततस्तदन्तरं लब्ध्वा प्रविष्टस्तु शचीपतिः ॥ ५४ ॥
वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः । ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥ ५५ ॥
रुदन्तः सप्त ते बाला निषिद्धा गिरिदारिणा । भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तधा हरिः ॥ ५६ ॥
चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः । एवमेकोनपञ्चाशद् भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम् ॥ ५७ ॥
इन्द्रो निवारयामास मा रोदिष्टः पुनः पुनः । ततः स चिन्तयामास किमेतदिति वृत्रहा ॥ ५८ ॥
धर्मस्य कस्य माहात्म्यात् पुनः सञ्जीवितास्त्वमी । विदित्वा ध्यानयोगेन मदनद्वादशीफलम् ॥ ५९ ॥
नूनमेतत् परिणतमधुना कृष्णपूजनात् । वज्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयुः ॥ ६० ॥
एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोऽप्यलम् । अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भवन्त्विति ॥ ६१ ॥
यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः । मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः ॥ ६२ ॥
ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः । अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ६३ ॥
कृत्वा मरुद्गणं देवैः समानममराधिपः । दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद् दिवम् ॥ ६४ ॥
यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः । न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः ॥ ६५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मरुदुत्पत्तौ मदनद्वादशीव्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(यज्ञकी समाप्तिके बाद) कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और पुनः उससे कहा—'वरानने ! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और इस गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है । वरवर्णिनि ! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये । उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये । वह घरकी सामग्री मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, बिमवटपर न बैठे, मनको उद्विग्न न करे, नखसे, लुआठीसे अथवा राखसे पृथ्वीपर रेखा न खींचे, सदा नींदमें अलसायी हुई न रहे, कठिन परिश्रमका काम न करे, भूसी, लुआठी, भस्म, हड्डी और खोपड़ीपर न बैठे, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं । वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर, न उद्विग्न-चित्त होकर एवं न भीगे चरणोंसे ही कभी शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे । वह अपनी रक्षाका ध्यान रखे स्वच्छ वेष-भूषासे युक्त रहे, वास्तु-पूजनमें तत्पर रहे, प्रसन्न-मुखी होकर सदा पतिके हितमें संलग्न रहे, तृतीया तिथिको दान करे, पर्व-सम्बन्धी व्रत एवं नक्तव्रतका पालन करे । जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है । इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है । प्रिये ! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके इस गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो । तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ ।' दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं सभी जीवोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । तब दिति महर्षि कश्यपद्वारा बताये गये नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी ॥ ३६—४९ ॥

अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेः पार्श्वमुपागतः । विहाय देवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः ॥ ५० ॥
दितिच्छिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः । विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो बहिः ॥ ५१ ॥
अजानन् किल तत्कार्यमात्मनः शुभमाचरन् । ततो वर्षशतान्ते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥
मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा । अकृत्वा पादयोः शौचं प्रसुप्ता मुक्तमूर्धजा ॥ ५३ ॥
निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिराः क्वचित् । ततस्तदन्तरं लब्ध्वा प्रविष्टस्तु शचीपतिः ॥ ५४ ॥
वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः । ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥ ५५ ॥
रुदन्तः सप्त ते बाला निषिद्धा गिरिदारिणा । भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तधा हरिः ॥ ५६ ॥
चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः । एवमेकोनपञ्चाशद् भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम् ॥ ५७ ॥
इन्द्रो निवारयामास मा रोदिष्टः पुनः पुनः । ततः स चिन्तयामास किमेतदिति वृत्रहा ॥ ५८ ॥
धर्मस्य कस्य माहात्म्यात् पुनः सञ्जीवितास्त्वमी । विदित्वा ध्यानयोगेन मदनद्वादशीफलम् ॥ ५९ ॥
नूनमेतत् परिणतमधुना कृष्णपूजनात् । वज्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयुः ॥ ६० ॥
एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोऽप्यलम् । अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भवन्त्विति ॥ ६१ ॥
यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः । मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः ॥ ६२ ॥
ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः । अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ६३ ॥
कृत्वा मरुद्गणं देवैः समानममराधिपः । दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद् दिवम् ॥ ६४ ॥
यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः । न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः ॥ ६५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मरुदुत्पत्तौ मदनद्वादशीव्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत उवाच

यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसां च चन्द्रम् ॥ २ ॥
नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्मलतावितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत् ॥ ३ ॥
विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निं च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥ ४ ॥
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षःपशुभूतयक्षवेतालराजं त्वथ शूलपाणिम् ॥ ५ ॥
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिंनराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ॥ ६ ॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिशां गजानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावत*नामधेयम् ॥ ७ ॥
सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसं चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ॥ ८ ॥
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चच्चैतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधर्माणमरातिकेतुम् ॥ ९ ॥
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम् ।
सुकेतुमन्तं दिशि पश्चिमायां चकार पश्चाद् भुवनाण्डगर्भः ॥ १० ॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतं चकार ।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम् ॥ ११ ॥
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ।
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः ॥ १२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! जब महाराज पृथु समस्त भूमण्डलके अधिनायक-पदपर अभिषिक्त होकर सबके अधिपति हुए, उस समय उन हिरण्यगर्भ ब्रह्माने चन्द्रमाको ओषधि, यज्ञ, व्रत, तप, नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म और लतासमूहका अध्यक्ष बनाया। उन्होंने वरुणको जलका, कुबेरको धन और राजाओंका,† विष्णुको आदित्योंका, अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि शिवको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको छोटी-बड़ी नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, प्रबल पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, ऐरावत नामक गजेन्द्रको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको वन्य जीवोंका, वृषभको गौओंका और पाकड़को समस्त वनस्पतियोंका अधिनायक नियुक्त किया। फिर ब्रह्माने सर्गारम्भके समय सम्पूर्ण दिशाओंके अधिनायकोंको भी अभिषिक्त किया।

* पाठान्तर॰ ऐरावण । † इसीलिये वेदादिमें कुबेरको 'राजाधिराज वैश्रवण' कहा गया है ।

सूत उवाच

यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसां च चन्द्रम् ॥ २ ॥
नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्मलतावितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत् ॥ ३ ॥
विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निं च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥ ४ ॥
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षःपशुभूतयक्षवेतालराजं त्वथ शूलपाणिम् ॥ ५ ॥
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं सरित्नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ॥ ६ ॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिशां गजानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावत*नामधेयम् ॥ ७ ॥
सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसं चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ॥ ८ ॥
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चच्चैतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधर्माणमरातिकेतुम् ॥ ९ ॥
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम् ।
सुकेतुमन्तं दिशि पश्चिमायां चकार पश्चाद् भुवनाण्डगर्भः ॥ १० ॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतं चकार ।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम् ॥ ११ ॥
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ।
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः ॥ १२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! जब महाराज पृथु समस्त भूमण्डलके अधिनायक-पदपर अभिषिक्त होकर सबके अधिपति हुए, उस समय उन हिरण्यगर्भ ब्रह्माने चन्द्रमाको ओषधि, यज्ञ, व्रत, तप, नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म और लतासमूहका अध्यक्ष बनाया। उन्होंने वरुणको जलका, कुबेरको धन और राजाओंका,† विष्णुको आदित्योंका, अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि शिवको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको छोटी-बड़ी नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, प्रबल पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, ऐरावत नामक गजेन्द्रको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको वन्य जीवोंका, वृषभको गौओंका और पाकड़को समस्त वनस्पतियोंका अधिनायक नियुक्त किया। फिर ब्रह्माने सर्गारम्भके समय सम्पूर्ण दिशाओंके अधिनायकोंको भी अभिषिक्त किया।

* पाठान्तर॰ ऐरावण । † इसीलिये वेदादिमें कुबेरको 'राजाधिराज वैश्रवण' कहा गया है ।

ये सभी प्रतिसर्गकी रचना करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव-मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब इसके पश्चात् स्वारोचिष मनुका वृत्तान्त सुनो। स्वारोचिष मनुके नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु—ये चार पुत्र थे, जो सभी देवताओंके सदृश वर्चस्वी और कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। इस मन्वन्तरमें दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। इस स्वारोचिष-मन्वन्तरमें होनेवाले देवगण तुषित नामसे प्रसिद्ध हैं तथा महर्षि वसिष्ठके हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात पुत्र प्रजापति कहे गये हैं। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके अनन्तर औत्तमि नामक (तीसरे) शुभकारक मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें औत्तमि नामक मनु हुए थे, जिन्होंने दस पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभस् तथा सह। इनमें सबसे कनिष्ठ सह परम उदार एवं कीर्तिका विस्तारक था। इस मन्वन्तरमें भावना नामक देवगण हुए तथा कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित और सम्मित—ये सप्तर्षि कहलाये। ये सातों अत्यन्त ऊर्जस्वी और योगके प्रवर्धक थे ॥ २—१४ ॥

मन्वन्तरं चतुर्थस्तु तामसं नाम विश्रुतम्। कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च ॥ १५ ॥
तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्त तामसे। साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ॥ १६ ॥
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः। तपोरतिस्तपस्यश्च तपोद्युतिपरंतपौ ॥ १७ ॥
तपोभोगी तपोयोगी धर्माचाररताः सदा। तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्धनाः ॥ १८ ॥
पञ्चमस्य मनोस्तद्वद् रैवतस्यान्तरं शृणु। देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः ॥ १९ ॥
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः। देवाश्चामूर्तरजसस्तथा प्रकृतयः शुभाः ॥ २० ॥
अरुणस्तत्त्वदर्शी च वित्तवान् हव्यपः कपिः। युक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः ॥ २१ ॥
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः। भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च ॥ २२ ॥
विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे। चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः ॥ २३ ॥
ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः। चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्चयोनयः ॥ २४ ॥
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश। प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु ॥ २५ ॥
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्। सप्तमं तत् प्रवक्ष्यामि यद् वैवस्वतमुच्यते ॥ २६ ॥
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा। भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं ये महर्षयः। कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम् ॥ २८ ॥
साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ। आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्त देवगणाः स्मृताः ॥ २९ ॥
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दश पुत्राः स्मृता भुवि। मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्त महर्षयः ॥ ३० ॥
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्।

चौथा मन्वन्तर तामस नामसे विख्यात है। इस तामस-मन्वन्तरमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान्—ये सात मुनि हुए तथा देवगण साध्य नामसे कहे गये। तामस मनुके अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोद्युति, परंतप, तपोभोगी और तपोयोगी नामक दस पुत्र थे। ये सभी सदा सदाचारमें निरत रहनेवाले एवं वंशविस्तारक थे। अब पाँचवें रैवत-मन्वन्तरका वृत्तान्त सुनो। इस मन्वन्तरमें देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। देवगण अमूर्तरजा नामसे विख्यात थे और (सभी छः) प्रकृतियाँ (प्रजाएँ) सत्कर्ममें निरत रहती थीं। अरुण, तत्त्वदर्शी, वित्तवान्, हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र थे, जो सभी धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके पश्चात् छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद,

ये सभी प्रतिसर्गकी रचना करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव-मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब इसके पश्चात् स्वारोचिष मनुका वृत्तान्त सुनो। स्वारोचिष मनुके नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु—ये चार पुत्र थे, जो सभी देवताओंके सदृश वर्चस्वी और कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। इस मन्वन्तरमें दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। इस स्वारोचिष-मन्वन्तरमें होनेवाले देवगण तुषित नामसे प्रसिद्ध हैं तथा महर्षि वसिष्ठके हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात पुत्र प्रजापति कहे गये हैं। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके अनन्तर औत्तमि नामक (तीसरे) शुभकारक मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें औत्तमि नामक मनु हुए थे, जिन्होंने दस पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभस् तथा सह। इनमें सबसे कनिष्ठ सह परम उदार एवं कीर्तिका विस्तारक था। इस मन्वन्तरमें भावना नामक देवगण हुए तथा कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित और सम्मित—ये सप्तर्षि कहलाये। ये सातों अत्यन्त ऊर्जस्वी और योगके प्रवर्धक थे॥ २—१४॥

मन्वन्तरं चतुर्थस्तु तामसं नाम विश्रुतम्। कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च॥ १५॥
तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्त तामसे। साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे॥ १६॥
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः। तपोरतिस्तपस्यश्च तपोद्युतिपरंतपौ॥ १७॥
तपोभोगी तपोयोगी धर्माचाररताः सदा। तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्धनाः॥ १८॥
पञ्चमस्य मनोस्तद्वद् रैवतस्यान्तरं शृणु। देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः॥ १९॥
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः। देवाश्चामूर्तरजसस्तथा प्रकृतयः शुभाः॥ २०॥
अरुणस्तत्त्वदर्शी च वित्तवान् हव्यपः कपिः। युक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः॥ २१॥
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः। भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च॥ २२॥
विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे। चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः॥ २३॥
ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः। चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्चयोनयः॥ २४॥
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश। प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु॥ २५॥
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्। सप्तमं तत् प्रवक्ष्यामि यद् वैवस्वतमुच्यते॥ २६॥
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा। भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान्॥ २७॥
जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं ये महर्षयः। कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्॥ २८॥
साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ। आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्त देवगणाः स्मृताः॥ २९॥
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दश पुत्राः स्मृता भुवि। मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्त महर्षयः॥ ३०॥
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्।

चौथा मन्वन्तर तामस नामसे विख्यात है। इस तामस-मन्वन्तरमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान्—ये सात मुनि हुए तथा देवगण साध्य नामसे कहे गये। तामस मनुके अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोद्युति, परंतप, तपोभोगी और तपोयोगी नामक दस पुत्र थे। ये सभी सदा सदाचारमें निरत रहनेवाले एवं वंशविस्तारक थे। अब पाँचवें रैवत-मन्वन्तरका वृत्तान्त सुनो। इस मन्वन्तरमें देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। देवगण अमूर्तरजा नामसे विख्यात थे और (सभी छः) प्रकृतियाँ (प्रजाएँ) सत्कर्ममें निरत रहती थीं। अरुण, तत्त्वदर्शी, वित्तवान्, हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र थे, जो सभी धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके पश्चात् छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद,

दसवाँ अध्याय

महाराज पृथुका चरित्र और पृथ्वी-दोहनका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा । पार्थिवाः पृथिवीयोगात् पृथिवी कस्य योगतः ॥ १ ॥
किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेः किं पारिभाषिकी । गौरितीयं च विख्याता सूत कस्माद् ब्रवीहि नः ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! सुना जाता है कि पूर्वकालमें बहुत-से भूपाल इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं । पृथ्वीके सम्बन्धसे ही वे 'पार्थिव' या पृथ्वीपति कहे गये हैं, परंतु भूमिका 'पृथ्वी' यह पारिभाषिक नाम किस सम्बन्धसे तथा किस कारण पड़ा एवं यह 'गौ' नामसे क्यों विख्यात हुई ? इनका रहस्य हमें बतलाइये ॥ १—२ ॥

सूत उवाच

वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः । मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीता सुदुर्मुखा ॥ ३ ॥
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा । अधर्मनिरतश्चासीद् बलवान् वसुधाधिपः ॥ ४ ॥
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः । धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽथ महर्षिभिः ॥ ५ ॥
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः । शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥ ६ ॥
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद् देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः ॥ ७ ॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः । पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः ॥ ८ ॥
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात् सधनुः सशरो गदी । दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः ॥ ९ ॥
पृथोरेवाभवद् यत्नात् ततः पृथुरजायत । स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम् ॥ १० ॥
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत् पुनः । निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ॥ ११ ॥
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः । ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ॥ १२ ॥
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः । ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ १३ ॥
पृथुरप्यवदद् वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते । सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥ १४ ॥
तथैव साब्रवीद् भूमिर्दुदोह स नराधिपः । स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ॥ १५ ॥
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक एक प्रजापति हुए थे । उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया । सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था । उसके गर्भसे वेन नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ; किंतु वह सदा अधर्ममें ही निरत रहता था । परायी स्त्रियोंका अपहरण उसका नित्यका काम था । इस प्रकार वह लोकमें भी अधर्मका ही प्रचार करने लगा । तब महर्षियोंने जागतिक धर्माचरणकी सिद्धिके लिये उससे (बड़ी) अनुनय-विनय की; परंतु अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण जब उसने उनकी बात न मानी (प्रजाको अभय नहीं किया), तब महर्षियोंने उसे शाप देकर मार डाला । तत्पश्चात् (शासकहीन राज्यमें) अराजकताके भयसे भीत होकर उन निष्पाप ब्राह्मणोंने बलपूर्वक वेनके शरीरका मन्थन किया । मन्थन करनेपर उसके शरीरसे शरीरस्थित माताके अंशसे म्लेच्छ जातियाँ प्रकट हुईं, जिनका रंग काले अञ्जनका-सा था । (फिर) उसके शरीरस्थित धर्मपरायण पिता(अङ्ग)के अंशभूत दाहिने हाथसे एक धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर दिव्य तेजसे सम्पन्न था । वह रत्नजटित कवच और बाजूबंदसे विभूषित था, उसके हाथोंमें धनुष-बाण और गदा शोभा पा रहे थे । महान् प्रयत्नसे मथे जानेपर वह वेनकी पृथु (मोटी) भुजासे प्रकट हुआ था, अतः पृथु नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

दसवाँ अध्याय

महाराज पृथुका चरित्र और पृथ्वी-दोहनका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा। पार्थिवाः पृथिवीयोगात् पृथिवी कस्य योगतः॥ १॥
किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेः किं पारिभाषिकी। गौरितीयं च विख्याता सूत कस्माद् ब्रवीहि नः॥ २॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सुना जाता है कि पूर्वकालमें बहुत-से भूपाल इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं। पृथ्वीके सम्बन्धसे ही वे 'पार्थिव' या पृथ्वीपति कहे गये हैं, परंतु भूमिका 'पृथ्वी' यह पारिभाषिक नाम किस सम्बन्धसे तथा किस कारण पड़ा एवं यह 'गौ' नामसे क्यों विख्यात हुई? इनका रहस्य हमें बतलाइये॥ १-२॥

सूत उवाच

वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः। मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीता सुदुर्मुखा॥ ३॥
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा। अधर्मनिरतश्चासीद् बलवान् वसुधाधिपः॥ ४॥
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः। धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽथ महर्षिभिः॥ ५॥
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः। शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः॥ ६॥
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद् देहमकल्मषाः। तत्कायान्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः॥ ७॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः। पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः॥ ८॥
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात् सधनुः सशरो गदी। दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः॥ ९॥
पृथोरेवाभवद् यत्नात् ततः पृथुरजायत। स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम्॥ १०॥
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत् पुनः। निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम्॥ ११॥
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः। ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता॥ १२॥
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः। ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत्॥ १३॥
पृथुरप्यवदद् वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते। सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च॥ १४॥
तथैव साब्रवीद् भूमिर्दुदोह स नराधिपः। स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम्॥ १५॥
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक एक प्रजापति हुए थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया। सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था। उसके गर्भसे वेन नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ; किंतु वह सदा अधर्ममें ही निरत रहता था। परायी स्त्रियोंका अपहरण उसका नित्यका काम था। इस प्रकार वह लोकमें भी अधर्मका ही प्रचार करने लगा। तब महर्षियोंने जागतिक धर्माचरणकी सिद्धिके लिये उससे (बड़ी) अनुनय-विनय की; परंतु अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण जब उसने उनकी बात न मानी (प्रजाको अभय नहीं किया), तब महर्षियोंने उसे शाप देकर मार डाला। तत्पश्चात् (शासकहीन राज्यमें) अराजकताके भयसे भीत होकर उन निष्पाप ब्राह्मणोंने बलपूर्वक वेनके शरीरका मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे शरीरस्थित माताके अंशसे म्लेच्छ जातियाँ प्रकट हुईं, जिनका रंग काले अञ्जनका-सा था। (फिर) उसके शरीरस्थित धर्मपरायण पिता (अङ्ग)के अंशभूत दाहिने हाथसे एक धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर दिव्य तेजसे सम्पन्न था। वह रत्नजटित कवच और बाजूबंदसे विभूषित था, उसके हाथोंमें धनुष-बाण और गदा शोभा पा रहे थे। महान् प्रयत्नसे मथे जानेपर वह वेनकी पृथु (मोटी) भुजासे प्रकट हुआ था, अतः पृथु नामसे प्रसिद्ध हुआ।

और सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था। अप्सराओंके साथ गन्धर्वोंने भी पूर्वकालमें चैत्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया था; उस कार्यमें नाट्य-वेदका पारगामी विद्वान् वररुचि नामक गन्धर्व दुहनेवाला था। पर्वतोंने पृथ्वीसे अनेक प्रकारके रत्नों और दिव्य ओषधियोंका दोहन किया। उसमें महाचल सुमेरु दुहनेवाला, हिमवान् बछड़ा और पात्र शैलमय था। वृक्षोंने पृथ्वीसे पलाश-पत्रके पात्रमें (टहनी आदिके) कटनेके बाद पुनः उगनेवाला दूध दुहा। उस समय पुष्प और लताओंसे लदा हुआ शालवृक्ष दुहनेवाला था और समृद्धिशाली एवं सर्ववृक्षमय पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था। इसी प्रकार अन्यान्य वर्गके प्राणियोंने भी उस समय अपने-अपने इच्छानुसार पृथ्वीका दोहन किया था ॥ १६—२८ ॥

आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति। न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत् ॥ २९ ॥
नोपसर्गभयं किंचित् पृथौ राजनि शासति। नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः ॥ ३० ॥
धनुष्कोट्या च शैलेन्द्रानुत्सार्य स महाबलः। भुवस्तलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ ३१ ॥
न पुरग्रामदुर्गाणि न चायुधधरा नराः। क्षयातिशयदुःखं च नार्थशास्त्रस्य चादरः ॥ ३२ ॥
धर्मैकवासना लोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति। कथितानि च पात्राणि यत् क्षीरं च मया तव ॥ ३३ ॥
येषां यत्र रुचिस्तत्तद् देयं तेभ्यो विजानता। यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ३४ ॥
दुहितृत्वं गता यस्मात् पृथोर्धर्मवतो मही। तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

महाराज पृथुके राज्यमें प्रजा दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे सम्पन्न थी। उस समय न कोई दरिद्र था, न रोगी और न कोई पाप-कर्म ही करता था। महाराज पृथुके शासनकालमें किसी उपसर्ग (आधिदैविक एवं आधिभौतिक उपद्रव)का भय नहीं था। लोग दुःख-शोकसे रहित होकर सदा सुखमय जीवन-यापन करते थे। उन महाबली पृथुने प्रजाओंकी हितकामनासे प्रेरित होकर अपने धनुषकी कोटिसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर पृथ्वीके धरातलको समतल कर दिया था। पृथुके राज्य-कालमें न तो पुर, ग्राम और दुर्ग थे, न मनुष्य अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। (उस समय आत्मरक्षाके लिये इनकी कोई आवश्यकता न थी।) रोगोंका सर्वथा अभाव था। क्षय-विनाश एवं सातिशयता—परस्परकी विषमताका दुःख* उन्हें नहीं देखना पड़ता था। प्रजाओंमें अर्थशास्त्रके प्रति आदर नहीं था; अर्थात् लोभका चिह्नमात्र भी नहीं था। उनमें एकमात्र धर्मकी ही वासना थी। ऋषियो! इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वीके दोहनपात्रोंका तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, उसका भी वर्णन किया। उनमें जिस वर्णके प्राणियोंकी जिस पदार्थकी प्राप्तिकी रुचि हो, उसे वही पदार्थ यज्ञों और श्राद्धोंमें अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार यह पृथ्वी-दोहनका प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। यतः पृथ्वी धर्मात्मा पृथुकी कन्या बन चुकी थी, अतः पृथुके अतिशय अनुरागके कारण विद्वानोंद्वारा (यह) 'पृथ्वी' नामसे कही जाने लगी ॥ २९—३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वैन्याभिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

* इसे विस्तारसे समझनेके लिये योगवासिष्ठ १।१।३०—४० देखना चाहिये।

और सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था। अप्सराओंके साथ गन्धर्वोंने भी पूर्वकालमें चैत्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया था; उस कार्यमें नाट्य-वेदका पारगामी विद्वान् वररुचि नामक गन्धर्व दुहनेवाला था। पर्वतोंने पृथ्वीसे अनेक प्रकारके रत्नों और दिव्य ओषधियोंका दोहन किया। उसमें महाचल सुमेरु दुहनेवाला, हिमवान् बछड़ा और पात्र शैलमय था। वृक्षोंने पृथ्वीसे पलाश-पत्रके पात्रमें (टहनी आदिके) कटनेके बाद पुनः उगनेवाला दूध दुहा। उस समय पुष्प और लताओंसे लदा हुआ शालवृक्ष दुहनेवाला था और समृद्धिशाली एवं सर्ववृक्षमय पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था। इसी प्रकार अन्यान्य वर्गके प्राणियोंने भी उस समय अपने-अपने इच्छानुसार पृथ्वीका दोहन किया था॥ १६—२८॥

आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति। न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत्॥ २९॥
नोपसर्गभयं किंचित् पृथौ राजनि शासति। नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः॥ ३०॥
धनुष्कोट्या च शैलेन्द्रानुत्सार्य स महाबलः। भुवस्तलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया॥ ३१॥
न पुरग्रामदुर्गाणि न चायुधधरा नराः। क्षयातिशयदुःखं च नार्थशास्त्रस्य चादरः॥ ३२॥
धर्मैकवासना लोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति। कथितानि च पात्राणि यत् क्षीरं च मया तव॥ ३३॥
येषां यत्र रुचिस्तत्तद् देयं तेभ्यो विजानता। यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ३४॥
दुहितृत्वं गता यस्मात् पृथोर्धर्मवतो मही। तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः॥ ३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

महाराज पृथुके राज्यमें प्रजा दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे सम्पन्न थी। उस समय न कोई दरिद्र था, न रोगी और न कोई पाप-कर्म ही करता था। महाराज पृथुके शासनकालमें किसी उपसर्ग (आधिदैविक एवं आधिभौतिक उपद्रव)का भय नहीं था। लोग दुःख-शोकसे रहित होकर सदा सुखमय जीवन-यापन करते थे। उन महाबली पृथुने प्रजाओंकी हितकामनासे प्रेरित होकर अपने धनुषकी कोटिसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर पृथ्वीके धरातलको समतल कर दिया था। पृथुके राज्य-कालमें न तो पुर, ग्राम और दुर्ग थे, न मनुष्य अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। (उस समय आत्मरक्षाके लिये इनकी कोई आवश्यकता न थी।) रोगोंका सर्वथा अभाव था। क्षय-विनाश, एवं सातिशयता—परस्परकी विषमताका दुःख* उन्हें नहीं देखना पड़ता था। प्रजाओंमें अर्थशास्त्रके प्रति आदर नहीं था, अर्थात् लोभका चिह्नमात्र भी नहीं था। उनमें एकमात्र धर्मकी ही वासना थी। ऋषियो! इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वीके दोहनपात्रोंका तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, उसका भी वर्णन किया। उनमें जिस वर्णके प्राणियोंकी जिस पदार्थकी प्राप्तिकी रुचि हो, उसे वही पदार्थ यज्ञों और श्राद्धोंमें अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार यह पृथ्वी-दोहनका प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। यतः पृथ्वी धर्मात्मा पृथुकी कन्या बन चुकी थी, अतः पृथुके अतिशय अनुरागके कारण विद्वानोंद्वारा (यह) 'पृथ्वी' नामसे कही जाने लगी॥ २९—३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वैन्याभिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०॥

* इसे विस्तारसे समझनेके लिये योगवासिष्ठ १।१।३०—४० देखना चाहिये।

वसुमान् बोले—राजन् ! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरेद्वारा स्वतःअर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। नरेन्द्र! निश्चय जानिये कि मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा। वे सब आपके ही अधिकारमें रहें ॥ ५ ॥

शिबिरुवाच

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्ति तात।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ६ ॥

शिबिने कहा—तात ! मैं उशीनरका पुत्र शिबि आपसे पूछता हूँ। यदि अन्तरिक्ष या स्वर्गमें मेरे भी पुण्यलोक हों तो बताइये; क्योंकि मैं आपको उक्त धर्मका ज्ञाता मानता हूँ ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन् परीप्समानो मावमंस्था नरेन्द्र।
तेनानन्ता दिवि लोकाः स्थिता वै विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥ ७ ॥

ययाति बोले—नरेन्द्र ! जो-जो साधु पुरुष तुमसे कुछ माँगनेके लिये आये, उनका तुमने वाणीसे कौन कहे, मनसे भी अपमान नहीं किया। इस कारण स्वर्गमें तुम्हारे लिये अनन्त लोक विद्यमान हैं, जो विद्युत्के समान तेजोमय, भाँति-भाँतिके सुमधुर शब्दोंसे युक्त तथा महान् हैं ॥ ७ ॥

शिबिरुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन् मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।
न चाहं तान् प्रतिपद्येह दत्त्वा यत्र त्वं तात गन्तासि लोके ॥ ८ ॥

शिबिने कहा—महाराज ! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरेद्वारा स्वयं अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। तात ! उन सबको देकर निश्चय ही मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा, जिन लोकोंमें आप जा रहे होंगे ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः।
तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि वाचम् ॥ ९ ॥

ययाति बोले—नरदेव शिबि ! जिस प्रकार तुम इन्द्रके समान प्रभावशाली हो, उसी प्रकार तुम्हारे वे लोक भी अनन्त हैं, तथापि दूसरेके दिये हुए लोकमें मैं विहार नहीं कर सकता; इसीलिये तुम्हारे दिये हुएका अभिनन्दन नहीं करता ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान् नः प्रतिनन्दसि। सर्वे प्रदाय ताँल्लोकान् गन्तारो नरकं वयम् ॥ १० ॥

अष्टकने कहा—राजन् ! यदि आप हममेंसे एक-एकके दिये हुए लोकोंको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण नहीं करते तो हम सब लोग अपने पुण्यलोक आपकी सेवामें समर्पित करके नरक (भूलोक)में जानेको तैयार हैं ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

यदर्हास्तद् वदध्वं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः। अहं तु नाभिगृह्णामि यत् कृतं न मया पुरा ॥ ११ ॥
अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं न तत्तथास्तीह नरेन्द्रसिंह।
अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम् ॥ १२ ॥

वसुमान् बोले—राजन् ! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरेद्वारा स्वतःअर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। नरेन्द्र ! निश्चय जानिये कि मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा । वे सब आपके ही अधिकारमें रहें ॥ ५ ॥

शिबिरुवाच

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्ति तात।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ६ ॥

शिबिने कहा—तात ! मैं उशीनरका पुत्र शिबि आपसे पूछता हूँ। यदि अन्तरिक्ष या स्वर्गमें मेरे भी पुण्यलोक हों तो बताइये; क्योंकि मैं आपको उक्त धर्मका ज्ञाता मानता हूँ ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन् परीप्समानो मावमंस्था नरेन्द्र।
तेनानन्ता दिवि लोकाः स्थिता वै विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥ ७ ॥

ययाति बोले—नरेन्द्र ! जो-जो साधु पुरुष तुमसे कुछ माँगनेके लिये आये, उनका तुमने वाणीसे कौन कहे, मनसे भी अपमान नहीं किया। इस कारण स्वर्गमें तुम्हारे लिये अनन्त लोक विद्यमान हैं, जो विद्युत्के समान तेजोमय, भाँति-भाँतिके सुमधुर शब्दोंसे युक्त तथा महान् हैं ॥ ७ ॥

शिबिरुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन् मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।
न चाहं तान् प्रतिपद्येह दत्त्वा यत्र त्वं तात गन्तासि लोके ॥ ८ ॥

शिबिने कहा—महाराज ! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरेद्वारा स्वयं अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये । तात ! उन सबको देकर निश्चय ही मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा, जिन लोकोंमें आप जा रहे होंगे ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः।
तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि वाचम् ॥ ९ ॥

ययाति बोले—नरदेव शिबि ! जिस प्रकार तुम इन्द्रके समान प्रभावशाली हो, उसी प्रकार तुम्हारे वे लोक भी अनन्त हैं, तथापि दूसरेके दिये हुए लोकमें मैं विहार नहीं कर सकता; इसीलिये तुम्हारे दिये हुएका अभिनन्दन नहीं करता ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान् नः प्रतिनन्दसि। सर्वे प्रदाय ताँल्लोकान् गन्तारो नरकं वयम् ॥ १० ॥

अष्टकने कहा—राजन् ! यदि आप हममेंसे एक-एकके दिये हुए लोकोंको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण नहीं करते तो हम सब लोग अपने पुण्यलोक आपकी सेवामें समर्पित करके नरक (भूलोक)में जानेको तैयार हैं ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

यदर्हास्तद् वदध्वं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः। अहं तु नाभिगृह्णामि यत् कृतं न मया पुरा ॥ ११ ॥
अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं न तत्तथास्तीह नरेन्द्रसिंह।
अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम् ॥ १२ ॥

दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा ह्रीः श्रीस्तितिक्षा समताऽऽनृशंस्यम् ।
राजन्त्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि शिवौ स्थितान्यप्रतिमेषु बुद्ध्या ।
एवं वृत्तं ह्रीनिषेवी बिभर्ति तस्माच्छिबिरभिगन्ता रथेन ॥ २० ॥

ययातिने कहा—राजन् ! उशीनरके पुत्र शिबिने ब्रह्मलोकके मार्गकी प्राप्तिके लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया था, इसलिये ये तुमलोगोंमें श्रेष्ठ हैं। नरेश्वर ! दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ह्री, श्री, क्षमा, समता और दयालुता—ये सभी अनुपम गुण राजा शिबिमें विद्यमान हैं तथा बुद्धिमें भी उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है। राजा शिबि ऐसे सदाचारसम्पन्न और लज्जाशील हैं। (इनमें अभिमानकी मात्रा छू भी नहीं गयी है।) इसीलिये शिबि रथारूढ़ हो हम सबसे आगे बढ़ गये हैं ॥ १९-२० ॥

शौनक उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम् ।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः ।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्रियो वा ॥ २१ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर अष्टकने कौतूहलवश इन्द्र-तुल्य अपने नाना राजा ययातिसे पुनः प्रश्न किया—'महाराज ! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। आप उसे सच-सच बताइये। आप कहाँसे आये हैं, कौन हैं और किसके पुत्र हैं ? आपने जो कुछ किया है, उसे करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण इस संसारमें नहीं है' ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम् ।
गुह्यं मन्त्रं मामकेभ्यो ब्रवीमि मातामहो भवतां सुप्रकाशः ॥ २२ ॥
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय ऋद्धां महीमददां ब्राह्मणेभ्यः ।
मेध्यानश्वान् नैकशस्तान् सुरूपांस्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥ २३ ॥
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम् ।
गोभिः सुवर्णैश्च धनैश्च मुख्यैरश्वाः सनागाः शतशस्त्वर्बुदानि ॥ २४ ॥
सत्येन मे द्यौश्च वसुंधरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु ।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥ २५ ॥
साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं प्रतर्दनं वसुमन्तं शिबिं च ।
सर्वे देवा मुनयश्च लोकाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥ २६ ॥
यो नः स्वर्गजितं सर्वं यथावृत्तं निवेदयेत् । अनसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स भजेन्नः सलोकताम् ॥ २७ ॥

ययातिने कहा—मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता राजा ययाति हूँ। मैं इस लोकमें चक्रवर्ती नरेश था। तुम सब लोग मेरे अपने हो, अतः तुमसे गुप्त बात भी खोलकर बतलाये देता हूँ। मैं तुमलोगोंका नाना हूँ। (यद्यपि पहले भी यह बात बता चुका हूँ, तथापि पुनः स्पष्ट कर देता हूँ।) मैंने इस सारी पृथ्वीको जीत लिया था और पुनः इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीको ब्राह्मणोंको दान भी कर दिया था। मनुष्य जब ए[क] सुन्दर पवित्र अश्वोंका दान करते हैं, तब वे पु[ण्यात्मा] देवता होते हैं। मैंने सब तरहके अन्न, गौ, सुवर्ण[…] उत्तम धनसे परिपूर्ण यह प्रशस्त पृथ्वी ब्रा[ह्मणोंको] दान कर दी थी एवं सौ अर्बुद (दस अ[रब …] हाथियोंसहित घोड़ोंका दान भी किया था। सत्य[से ही] पृथ्वी और आकाश टिके हुए हैं। इसी प्रकार

दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा ह्रीः श्रीस्तितिक्षा समताऽऽनृशंस्यम् ।
राजन्स्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि शिबौ स्थितान्यप्रतिमेषु बुद्ध्या ।
एवं वृत्तं ह्रीनिषेवी बिभर्ति तस्माच्छिबिरभिगन्ता रथेन ॥ २० ॥

ययातिने कहा—राजन् ! उशीनरके पुत्र शिबिने ब्रह्मलोकके मार्गकी प्राप्तिके लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया था, इसलिये ये तुमलोगोंमें श्रेष्ठ हैं । नरेश्वर ! दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ह्री, श्री, क्षमा, समता और दयालुता—ये सभी अनुपम गुण राजा शिबिमें विद्यमान हैं तथा बुद्धिमें भी उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है । राजा शिबि ऐसे सदाचारसम्पन्न और लज्जाशील हैं । (इनमें अभिमानकी मात्रा छू भी नहीं गयी है ।) इसीलिये शिबि रथारूढ़ हो हम सबसे आगे बढ़ गये हैं ॥ १९-२० ॥

शौनक उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम् ।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः ।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्रियो वा ॥ २१ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर अष्टकने कौतूहलवश इन्द्र-तुल्य अपने नाना राजा ययातिसे पुनः प्रश्न किया—'महाराज ! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ । आप उसे सच-सच बताइये । आप कहाँसे आये हैं, कौन हैं और किसके पुत्र हैं ? आपने जो कुछ किया है, उसे करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण इस संसारमें नहीं है' ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम् ।
गुह्यं मन्त्रं मामकेभ्यो ब्रवीमि मातामहो भवतां सुप्रकाशः ॥ २२ ॥
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय ऋद्धां महीमददां ब्राह्मणेभ्यः ।
मेध्यानश्वान् नैकशस्तान् सुरूपांस्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥ २३ ॥
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम् ।
गोभिः सुवर्णैश्च धनैश्च मुख्यैरश्वाः सनागाः शतशस्त्वर्बुदानि ॥ २४ ॥
सत्येन मे द्यौश्च वसुंधरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु ।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥ २५ ॥
साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं प्रतर्दनं वसुमन्तं शिबिं च ।
सर्वे देवा मुनयश्च लोकाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥ २६ ॥
यो नः स्वर्गजितं सर्वं यथावृत्तं निवेदयेत् । अनसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स भजेन्नः सलोकताम् ॥ २७ ॥

ययातिने कहा—मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता राजा ययाति हूँ । मैं इस लोकमें चक्रवर्ती नरेश था । तुम सब लोग मेरे अपने हो, अतः तुमसे गुप्त बात भी खोलकर बतलाये देता हूँ । मैं तुमलोगोंका नाना हूँ । (यद्यपि पहले भी यह बात बता चुका हूँ, तथापि पुनः स्पष्ट कर देता हूँ ।) मैंने इस सारी पृथ्वीको जीत लिया था और पुनः इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीको ब्राह्मणोंको दान भी कर दिया था । मनुष्य जब एक सौ सुन्दर पवित्र अश्वोंका दान करते हैं, तब वे पुण्यात्मा देवता होते हैं । मैंने सब तरहके अन्न, गौ, सुवर्ण तथा उत्तम धनसे परिपूर्ण यह प्रशस्त पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी एवं सौ अर्बुद (दस अरब) हाथियोंसहित घोड़ोंका दान भी किया था । सत्यसे ही पृथ्वी और आकाश टिके हुए हैं । इसी प्रकार सत्यसे

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः । विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥ ५ ॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः । महारथा महेष्वासा नामतस्तान् निबोधत ॥ ६ ॥
सहस्रजिरथो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिको लघुः । सहस्रजेस्तु दायादः शतजिर्नाम पार्थिवः ॥ ७ ॥
शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः । हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥ ८ ॥
हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः । धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः ॥ ९ ॥
संहतस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः । आसीन्महिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥ १० ॥
वाराणस्यामभूद् राजा कथितं पूर्वमेव तु । रुद्रश्रेण्यस्य पुत्रोऽभूद् दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥ ११ ॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान् । कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ १२ ॥
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च । कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् ततोऽर्जुनः ॥ १३ ॥
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः । वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥ १४ ॥
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् । तस्मै दत्ता वरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥
पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे राजसत्तमः । अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापि निवारणम् ॥ १६ ॥
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् । संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद् भवेत् ॥ १७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र परम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमसे एवं विस्तारपूर्वक* वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग मेरे कथनानुसार उसे ध्यानपूर्वक सुनिये । यदुके पाँच पुत्र हुए, जो सभी देव-पुत्र-सदृश तेजस्वी, महारथी और महान् धनुर्धर थे । उन्हें नामनिर्देशानुसार यों जानिये—उनमें ज्येष्ठका नाम सहस्रजि था, शेष चारोंका नाम क्रमशः क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु था । सहस्रजिका पुत्र राजा शतजि हुआ । शतजिके हैहय, हय और वेणुहय नामक परम यशस्वी तीन पुत्र हुए । हैहयका विश्वविख्यात पुत्र धर्मनेत्र हुआ । धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र संहत हुआ । संहतका पुत्र राजा महिष्मान् हुआ । महिष्मान्का पुत्र प्रतापी रुद्रश्रेण्य था, जो वाराणसी नगरीका राजा हुआ । इसका वृत्तान्त पहले ही कहा जा चुका है । रुद्रश्रेण्यका पुत्र दुर्दम नामका राजा हुआ । दुर्दमका पुत्र परम बुद्धिमान् एवं पराक्रमी कनक था । कनकके चार विश्वविख्यात पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चौथा कृतौजा । इनमें कृतवीर्यसे अर्जुनका जन्म हुआ, जो सहस्र भुजाधारी (होनेके कारण सहस्रार्जुन नामसे प्रसिद्ध था) तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर था । पुरुषश्रेष्ठ कृतवीर्यनन्दन राजा सहस्रार्जुनने दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते हुए महर्षि अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयकी आराधना की । उससे प्रसन्न होकर दत्तात्रेयने उसे चार वर प्रदान किये । उनमें प्रथम वरके रूपमें राजश्रेष्ठ अर्जुनने अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगीं । दूसरे वरसे सत्पुरुषोंके साथ अधर्म करनेवालोंके निवारणका अधिकार माँगा । तीसरे वरसे युद्धद्वारा सारी पृथ्वीको जीतकर धर्मानुसार उसका पालन करना था और चौथा वर यह माँगा कि रणभूमिमें युद्ध करते समय मुझसे अधिक बलवान्के हाथों मेरा वध हो ॥ ५–१७ ॥

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥ १८ ॥
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः । रथो ध्वजश्च सञ्जज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः ॥ १९ ॥
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा । निरर्गलानि वृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः ॥ २० ॥
सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः । सर्वे काञ्चनयूपास्ते सर्वाः काञ्चनवेदिकाः ॥ २१ ॥

* यह वर्णन भागवत ९।२३।१९ से २४।६७ तक तथा वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी मिलता है ।

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः। विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥ ५ ॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः। महारथा महेष्वासा नामतस्तान् निबोधत ॥ ६ ॥
सहस्रजिरथो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिको लघुः। सहस्रजेस्तु दायादः शतजिर्नाम पार्थिवः ॥ ७ ॥
शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः। हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥ ८ ॥
हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः। धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः ॥ ९ ॥
संहतस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः। आसीन्महिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥ १० ॥
वाराणस्यामभूद् राजा कथितं पूर्वमेव तु। रुद्रश्रेण्यस्य पुत्रोऽभूद् दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥ ११ ॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान्। कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ १२ ॥
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च। कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् ततोऽर्जुनः ॥ १३ ॥
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः। वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥ १४ ॥
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्। तस्मै दत्ता वरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥
पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे राजसत्तमः। अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापि निवारणम् ॥ १६ ॥
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्। संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद् भवेत् ॥ १७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र परम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमसे एवं विस्तारपूर्वक* वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग मेरे कथनानुसार उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो सभी देव-पुत्र-सदृश तेजस्वी, महारथी और महान् धनुर्धर थे। उन्हें नामनिर्देशानुसार यों जानिये—उनमें ज्येष्ठका नाम सहस्रजि था, शेष चारोंका नाम क्रमशः क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु था। सहस्रजिका पुत्र राजा शतजि हुआ। शतजिके हैहय, हय और वेणुहय नामक परम यशस्वी तीन पुत्र हुए। हैहयका विश्वविख्यात पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र संहत हुआ। संहतका पुत्र राजा महिष्मान् हुआ। महिष्मान्का पुत्र प्रतापी रुद्रश्रेण्य था, जो वाराणसी नगरीका राजा हुआ। इसका वृत्तान्त पहले ही कहा जा चुका है। रुद्रश्रेण्यका पुत्र दुर्दम नामका राजा हुआ। दुर्दमका पुत्र परम बुद्धिमान् एवं पराक्रमी कनक था। कनकके चार विश्वविख्यात पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चौथा कृतौजा। इनमें कृतवीर्यसे अर्जुनका जन्म हुआ, जो सहस्र भुजाधारी (होनेके कारण सहस्रार्जुन नामसे प्रसिद्ध था) तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर था। पुरुषश्रेष्ठ कृतवीर्यनन्दन राजा सहस्रार्जुनने दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते हुए महर्षि अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयकी आराधना की। उससे प्रसन्न होकर दत्तात्रेयने उसे चार वर प्रदान किये। उनमें प्रथम वरके रूपमें राजश्रेष्ठ अर्जुनने अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगीं। दूसरे वरसे सत्पुरुषोंके साथ अधर्म करनेवालोंके निवारणका अधिकार माँगा। तीसरे वरसे युद्धद्वारा सारी पृथ्वीको जीतकर धर्मानुसार उसका पालन करना था और चौथा वर यह माँगा कि रणभूमिमें युद्ध करते समय मुझसे अधिक बलवान्के हाथों मेरा वध हो ॥ ५–१७ ॥

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता। सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥ १८ ॥
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः। रथो ध्वजश्च सञ्जज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः ॥ १९ ॥
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा। निरर्गलानि वृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः ॥ २० ॥
सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः। सर्वे काञ्चनयूपास्ते सर्वाः काञ्चनवेदिकाः ॥ २१ ॥

* यह वर्णन भागवत ९।२३।१९ से २४।६७ तक तथा वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें मिलता है।

तव् वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा। यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥ ४१
यस्माद् वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय। तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हरिष्यति ॥ ४२
छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रथमं तरसा बली। तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां स वधिष्यति भार्गवः ॥ ४३

मनुष्योंमें महान् तेजस्वी अर्जुनने कर्कोटक नागके पुत्रको जीतकर अपनी माहिष्मती पुरीमें बाँध रखा था। भूपाल अर्जुन वर्षा-ऋतुमें प्रवाहके सम्मुख सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए ही समुद्रके वेगको रोक देता था। ललनाओंके साथ जलविहार करते समय उसके गलेसे टूटकर गिरी हुई मालाओंको धारण करनेवाली तथा लहररूपी भ्रुकुटियोंके व्याजसे भयभीत-सी हुई नर्मदा चकित होकर उसके निकट आ जाती थी। वह अकेला ही अपनी सहस्र भुजाओंसे अगाध समुद्रको विलोडित कर देता था एवं वर्षाकालमें वेगसे बहती हुई नर्मदाको और भी उद्धत वेगवाली बना देता था। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा विलोडन करनेसे महासागरके क्षुब्ध हो जानेपर पातालनिवासी बड़े-बड़े असुर अत्यन्त निश्चेष्ट हो जाते थे। अपनी सहस्र भुजाओंसे महासागरका विलोडन करते समय वह समुद्रकी उठती हुई विशाल लहरोंके मध्य आयी हुई मछलियों और बड़े-बड़े तिमिङ्गिलोंके चूर्णसे उसे व्याप्त कर देता था तथा वायुके झकोरेसे उठे हुए फेनसमूहसे फेनिल और भँवरोंके चपेटसे दुःसह बना देता था। उस समय पूर्वकालमें मन्दराचलके मन्थनके विक्षोभसे चकित एवं पुनः अमृतोत्पादनकी आशङ्कासे सशङ्कित-से हुए बड़े-बड़े नागोंके मस्तक इस प्रकार निश्चल हो जाते थे, जैसे सायंकाल वायुके स्थगित हो जानेपर केलेके पत्ते प्रशान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार अर्जुनने एक बार लंकामें जाकर अपने पाँच बाणोंद्वारा सेनासहित रावणको मोहित कर दिया और उसे बलपूर्वक जीतकर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चामें बाँध लिया, फिर माहिष्मती पुरीमें लाकर उसे बंदी बना लिया। यह सुनकर महर्षि पुलस्त्यने माहिष्मतीपुरीमें जाकर अर्जुनको अनेकों प्रकारसे समझा-बुझाकर प्रसन्न किया। तब अर्जुनने महर्षि पुलस्त्यद्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उस पुलस्त्य-पौत्र राक्षसराज रावणको बन्धनमुक्त कर दिया। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेपर ऐसा भयंकर शब्द होता था, मानो प्रलयकालीन सहस्रों बादलोंकी घटाके मध्य वज्रकी गड़गड़ाहट हो रही हो; परंतु विधिका पराक्रम धन्य है, जो भृगुकुलोत्पन्न परशुरामजीने उसकी हजारों भुजाओंको हेमतालके वनकी भाँति काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया। इसका कारण यह है कि एक बार सामर्थ्यशाली महर्षि आपव* (वसिष्ठ) ने क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देते हुए कहा था—'हैहय! चूँकि तुमने मेरे लोकप्रसिद्ध वनको जलाकर भस्म कर दिया है, इसलिये तुम्हारेद्वारा किये गये इस दुष्कर कर्मका फल कोई दूसरा हरण कर लेगा। भृगुकुलमें उत्पन्न एक तपस्वी एवं बलवान् ब्राह्मण पहले तुम्हारी सहस्रों भुजाओंको काटकर फिर तुम्हारा वध कर देगा' ॥ २९—४३ ॥

सूत उवाच

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः। वरश्चैवं तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः। कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः ॥ ४५ ॥
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च। जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशांपते ॥ ४६ ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः ॥ ४७ ॥

* आपुशब्द वरुणका वाचक है। उनके पुत्र मैत्रावारुणि होनेसे यहाँ महर्षि वसिष्ठ ही महाभारत, हरिवंश, देवीभागवत तथा उसके व्याख्याताओंके अनुसार 'आपव' नामसे निर्दिष्ट हैं।

तद् वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा। यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥ ४१ ॥
यस्माद् वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय। तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हरिष्यति ॥ ४२ ॥
छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रथमं तरसा बली। तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां स वधिष्यति भार्गवः ॥ ४३ ॥

मनुष्योंमें महान् तेजस्वी अर्जुनने कर्कोटक नागके पुत्रको जीतकर अपनी माहिष्मती पुरीमें बाँध रखा था। भूपाल अर्जुन वर्षा-ऋतुमें प्रवाहके सम्मुख सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए ही समुद्रके वेगको रोक देता था। ललनाओंके साथ जलविहार करते समय उसके गलेसे टूटकर गिरी हुई मालाओंको धारण करनेवाली तथा लहररूपी भ्रुकुटियोंके व्याजसे भयभीत-सी हुई नर्मदा चकित होकर उसके निकट आ जाती थी। वह अकेला ही अपनी सहस्र भुजाओंसे अगाध समुद्रको विलोडित कर देता था एवं वर्षाकालमें वेगसे बहती हुई नर्मदाको और भी उद्धत वेगवाली बना देता था। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा विलोडन करनेसे महासागरके क्षुब्ध हो जानेपर पातालनिवासी बड़े-बड़े असुर अत्यन्त निश्चेष्ट हो जाते थे। अपनी सहस्र भुजाओंसे महासागरका विलोडन करते समय वह समुद्रकी उठती हुई विशाल लहरोंके मध्य आयी हुई मछलियों और बड़े-बड़े तिमिङ्गिलोंके चूर्णसे उसे व्याप्त कर देता था तथा वायुके झकोरेसे उठे हुए फेनसमूहसे फेनिल और भँवरोंके चपेटसे दुःसह बना देता था। उस समय पूर्वकालमें मन्दराचलके मन्थनके विक्षोभसे चकित एवं पुनः अमृतोत्पादनकी आशङ्कासे सशङ्कित-से हुए बड़े-बड़े नागोंके मस्तक इस प्रकार निश्चल हो जाते थे, जैसे सायंकाल वायुके स्थगित हो जानेपर केलेके पत्ते प्रशान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार अर्जुनने एक बार लंकामें जाकर अपने पाँच बाणोंद्वारा सेनासहित रावणको मोहित कर दिया और उसे बलपूर्वक जीतकर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चामें बाँध लिया, फिर माहिष्मती पुरीमें लाकर उसे बंदी बना लिया। यह सुनकर महर्षि पुलस्त्यने माहिष्मतीपुरीमें जाकर अर्जुनको अनेकों प्रकारसे समझा-बुझाकर प्रसन्न किया। तब अर्जुनने महर्षि पुलस्त्यद्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उस पुलस्त्य-पौत्र राक्षसराज रावणको बन्धन-मुक्त कर दिया। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेपर ऐसा भयंकर शब्द होता था, मानो प्रलयकालीन सहस्रों बादलोंकी घटाके मध्य वज्रकी गड़गड़ाहट हो रही हो; परंतु विधिका पराक्रम धन्य है, जो भृगुकुलोत्पन्न परशुरामजीने उसकी हजारों भुजाओंको हेमतालके वनकी भाँति काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया। इसका कारण यह है कि एक बार सामर्थ्य-शाली महर्षि आपव* (वसिष्ठ) ने क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देते हुए कहा था—'हैहय! चूँकि तुमने मेरे लोकप्रसिद्ध वनको जलाकर भस्म कर दिया है, इसलिये तुम्हारेद्वारा किये गये इस दुष्कर कर्मका फल कोई दूसरा हरण कर लेगा। भृगुकुलमें उत्पन्न एक तपस्वी एवं बलवान् ब्राह्मण पहले तुम्हारी सहस्रों भुजाओंको काटकर फिर तुम्हारा वध कर देगा' ॥ २९—४३ ॥

सूत उवाच

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः। वरश्चैवं तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः। कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः ॥ ४५ ॥
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च। जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशांपते ॥ ४६ ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः ॥ ४७ ॥

* आपुशब्द वरुणका वाचक है। उनके पुत्र मैत्रावारुणिके होनेसे यहाँ महर्षि वसिष्ठ ही महाभारत, हरिवंश, देवीभागवत तथा उसके व्याख्याताओंके अनुसार 'आपव' नामसे निर्दिष्ट हैं।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! एक बार सूर्य* ब्राह्मणका रूप धारण करके कार्तवीर्यके निकट पहुँचे और कहने लगे—'नरेश्वर ! मैं सूर्य हूँ, आप मुझे एक बार तृप्ति प्रदान कीजिये' ॥ ३ ॥

राजोवाच

भगवन् केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर । कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम् ॥ ४ ॥

राजाने पूछा—भगवन् ! किस पदार्थसे आपकी तृप्ति होगी ? दिवाकर ! मैं आपको किस प्रकारका भोजन प्रदान करूँ ? आपकी बात सुनकर मैं उसी प्रकारका विधान करूँगा ॥ ४ ॥

आदित्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर । तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ॥ ५ ॥

सूर्य बोले—दानिशिरोमणे ! मुझे समस्त स्थावर अर्थात् वृक्ष आदिको आहाररूपमें प्रदान कीजिये । मैं उसीसे तृप्त होऊँगा । राजन् ! वही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ तृप्ति होगी ॥ ५ ॥

कार्तवीर्य उवाच

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च । निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ तेन त्वां प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥

कार्तवीर्यने कहा—तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्य ! ये समस्त वृक्ष मेरे तेज और बलद्वारा जलाये नहीं जा सकते; अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ; ॥ ६ ॥

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान् । ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥ ७ ॥
आविष्टा मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान् । शुष्कान् भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिर्नराधिप ॥ ८ ॥

सूर्य बोले—नरेश्वर ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये मैं आपको ऐसे अक्षय एवं सर्वतोमुखी बाण दे रहा हूँ, जो मेरे तेजसे युक्त होनेके कारण चलाये जानेपर स्वयं जल उठेंगे और मेरे तेजसे परिपूर्ण हुए वे सारे वृक्षोंको सुखा देंगे; फिर सूख जानेपर उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे । उससे मेरी तृप्ति हो जायगी ॥ ७-८ ॥

सूत उवाच

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत । ततो ददाह सम्प्राप्तान् स्थावरान् सर्वमेव च ॥ ९ ॥
ग्रामांस्तथाऽऽश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च । तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ १० ॥
एवं प्राचीमन्वदहं ततः सर्वां सदक्षिणाम् । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्हता घोरेण तेजसा ॥ ११ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः । दशवर्षसहस्राणि तत्रास्ते स महान् ऋषिः ॥ १२ ॥
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधनः । सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ॥ १३ ॥
क्रोधाच्छशाप राजर्षिं कीर्तितं वो यथा मया ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर सूर्यने कार्तवीर्य अर्जुनको अपने बाण प्रदान कर दिये । तब अर्जुनने सम्मुख आये हुए समस्त वृक्षों, ग्रामों, आश्रमों, घोषों, नगरों, तपोवनों तथा रमणीय वनों एवं उपवनोंको जलाकर राखका ढेर बना दिया । इस प्रकार पूर्व दिशाको जलाकर फिर समूची दक्षिण दिशाको भी भस्म कर दिया । उस भयंकर तेजसे पृथ्वी वृक्षों एवं तृणोंसे रहित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गयी । उसी समय महर्षि आपव, जो महान् तेजस्वी और तपस्याके धनी थे, दस हजार वर्षोंसे जलके भीतर बैठकर तप कर रहे थे, व्रत पूर्ण होनेपर बाहर निकले तो उन महामुनिने अर्जुनद्वारा अपने आश्रमको जलाया हुआ देखा । तब उन्होंने क्रुद्ध होकर राजर्षि अर्जुनको उक्त शाप दे दिया, जैसा कि मैंने अभी आपलोगोंको बतलाया है ॥ ९–१३½ ॥

* यहाँ आदित्य सूर्य हैं, पर हरिवंश १ । ३३ आदिके अनुसार अग्निदेव ही ब्राह्मणरूपमें आये थे ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! एक बार सूर्य* ब्राह्मणका रूप धारण करके कार्तवीर्यके निकट पहुँचे और कहने लगे—'नरेश्वर ! मैं सूर्य हूँ, आप मुझे एक बार तृप्ति प्रदान कीजिये' ॥ ३ ॥

राजोवाच

भगवन् केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर । कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम् ॥ ४ ॥

राजाने पूछा—भगवन् ! किस पदार्थसे आपकी तृप्ति होगी ? दिवाकर ! मैं आपको किस प्रकारका भोजन प्रदान करूँ ? आपकी बात सुनकर मैं उसी प्रकारका विधान करूँगा ॥ ४ ॥

आदित्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर । तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ॥ ५ ॥

सूर्य बोले—दानिशिरोमणे ! मुझे समस्त स्थावर अर्थात् वृक्ष आदिको आहाररूपमें प्रदान कीजिये । मैं उसीसे तृप्त होऊँगा । राजन् ! वही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ तृप्ति होगी ॥ ५ ॥

कार्तवीर्य उवाच

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च । निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ तेन त्वां प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥

कार्तवीर्यने कहा—तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्य ! ये समस्त वृक्ष मेरे तेज और बलद्वारा जलाये नहीं जा सकते; अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान् । ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥ ७ ॥
आविष्टा मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान् । शुष्कान् भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिर्नराधिप ॥ ८ ॥

सूर्य बोले—नरेश्वर! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये मैं आपको ऐसे अक्षय एवं सर्वतोमुखी बाण दे रहा हूँ, जो मेरे तेजसे युक्त होनेके कारण चलाये जानेपर स्वयं जल उठेंगे और मेरे तेजसे परिपूर्ण हुए वे सारे वृक्षोंको सुखा देंगे; फिर सूख जानेपर उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे । उससे मेरी तृप्ति हो जायगी ॥ ७-८ ॥

सूत उवाच

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत । ततो ददाह सम्प्राप्तान् स्थावरान् सर्वमेव च ॥ ९ ॥
ग्रामांस्तथाऽऽश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च । तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ १० ॥
एवं प्राचीमन्वदहत् ततः सर्वां सदक्षिणाम् । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्हता घोरेण तेजसा ॥ ११ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः । दशवर्षसहस्राणि तत्रास्ते स महान् ऋषिः ॥ १२ ॥
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधनः । सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ॥ १३ ॥
क्रोधाच्छशाप राजर्षिं कीर्तितं वो यथा मया ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर सूर्यने कार्तवीर्य अर्जुनको अपने बाण प्रदान कर दिये । तब अर्जुनने सम्मुख आये हुए समस्त वृक्षों, ग्रामों, आश्रमों, घोषों, नगरों, तपोवनों तथा रमणीय वनों एवं उपवनोंको जलाकर राखका ढेर बना दिया । इस प्रकार पूर्व दिशाको जलाकर फिर समूची दक्षिण दिशाको भी भस्म कर दिया । उस भयंकर तेजसे पृथ्वी वृक्षों एवं तृणोंसे रहित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गयी । उसी समय महर्षि आपव, जो महान् तेजस्वी और तपस्याके धनी थे, दस हजार वर्षोंसे जलके भीतर बैठकर तप कर रहे थे, व्रत पूर्ण होनेपर बाहर निकले तो उन महामुनिने अर्जुनद्वारा अपने आश्रमको जलाया हुआ देखा । तब उन्होंने क्रुद्ध होकर राजर्षि अर्जुनको उक्त शाप दे दिया, जैसा कि मैंने अभी आपलोगोंको बतलाया है ॥ ९-१३½ ॥

* यहाँ आदित्य सूर्य हैं, पर हरिवंश १ । ३३ आदिके अनुसार अग्निदेव ही ब्राह्मणरूपमें आये थे ।

जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः। रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः॥ २८॥
परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत् पिता। रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः॥ २९॥
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे। प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः॥ ३०॥
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी। नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः॥ ३१॥
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्। ज्यामघस्याभवद् भार्या शैव्या परिणता सती॥ ३२॥
अपुत्रो न्यवसद् राजा भार्यामन्यां न विन्दति। तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः॥ ३३॥
भार्यामुवाच संत्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते। एवमुक्ताब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च॥ ३४॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति। तस्मात् सा तपसोग्रेण कन्यायाः सम्प्रसूयत॥ ३५॥
पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती।
राजपुत्र्यां च विद्वान् स स्नुषायां क्रथकैशिकौ। लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम्॥ ३६॥
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान् रणविशारदान्। लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चात्मजः॥ ३७॥
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः। क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्॥ ३८॥
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा॥ ३९॥
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः।
दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः। दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते॥ ४०॥

इन (राजा रुक्मकवच)के रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरिनामक पाँच पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी एवं श्रेष्ठ धनुर्धर थे। पिता रुक्मकवचने इनमेंसे परिघ और हरि—इन दोनोंको विदेह देशके राज-पदपर नियुक्त कर दिया। रुक्मेषु प्रधान राजा हुआ और पृथुरुक्म उसका आश्रित बन गया। उन लोगोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया। वहाँ एकत्र ब्राह्मणद्वारा समझाये-बुझाये जानेपर वह प्रशान्त-चित्त होकर वानप्रस्थीरूपसे आश्रमोंमें स्थिररूपसे रहने लगा। कुछ दिनोंके पश्चात् वह (एक ब्राह्मणकी शिक्षासे) ध्वजायुक्त रथपर सवार हो हाथमें धनुष धारणकर दूसरे देशकी ओर चल पड़ा। वह केवल जीविकोपार्जनकी कामनासे अकेले ही नर्मदा-तटपर जा पहुँचा। वहाँ दूसरोंद्वारा उपभुक्त ऋक्षवान् गिरि (शतपुरा पर्वत-श्रेणी) पर जाकर निश्चितरूपसे निवास करने लगा। ज्यामघकी सती-साध्वी पत्नी शैव्या* प्रौढ़ा हो गयी थी। (उसके गर्भसे) कोई पुत्र न उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यद्यपि राजा ज्यामघ पुत्रहीन अवस्थामें ही जीवनयापन कर रहे थे, तथापि उन्होंने दूसरी पत्नी नहीं स्वीकार की। एक बार किसी युद्धमें राजा ज्यामघकी विजय हुई। वहाँ उन्हें (विवाहार्थ) एक कन्या प्राप्त हुई। (पर) उसे लाकर पत्नीको देते हुए राजाने उससे भयपूर्वक कहा—'शुचिस्मिते! यह (मेरी स्त्री नहीं,) तुम्हारी स्नुषा (पुत्रवधू) है।' इस प्रकार कहे जानेपर उसने राजासे पूछा—'यह किसकी स्नुषा है?' ॥ २८—३४ ॥

तब राजाने कहा—(प्रिये) तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीकी यह पत्नी होगी। (यह आश्चर्य देख-सुनकर वह कन्या तप करने लगी।) तत्पश्चात् उस कन्याकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप वृद्धा प्रायः बूढ़ी होनेपर भी शैव्याने (गर्भ धारण किया और) विदर्भ नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस विद्वान् विदर्भने स्नुषाभूता उस राजकुमारीके गर्भसे क्रथ, कैशिक

* प्रायः अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंमें एवं भागवतादिकी टीकाओंमें 'ज्यामघ'की पत्नी शैव्या ही कही गयी है। कुछ मत्स्यपुराणकी प्रतियोंमें 'चैत्रा' नाम भी आया है, परंतु यह अनुकृतिमें भ्रान्तिका ही परिणाम है।

जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः। रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः॥ २८॥
परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत् पिता। रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः॥ २९॥
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे। प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः॥ ३०॥
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी। नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः॥ ३१॥
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्। ज्यामघस्याभवद् भार्या शैव्या परिणता सती॥ ३२॥
अपुत्रो न्यवसद् राजा भार्यामन्यां न विन्दति। तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः॥ ३३॥
भार्यामुवाच संत्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते। एवमुक्ताब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च॥ ३४॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति। तस्मात् सा तपसोग्रेण कन्यायाः सम्प्रसूयत॥ ३५॥
पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती।
राजपुत्र्यां च विद्वान् स स्नुषायां क्रथकैशिकौ। लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम्॥ ३६॥
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान् रणविशारदान्। लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चात्मजः॥ ३७॥
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः। क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्॥ ३८॥
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा॥ ३९॥
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः।
दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः। दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते॥ ४०॥

इन (राजा रुक्मकवच)के रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरिनामक पाँच पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी एवं श्रेष्ठ धनुर्धर थे। पिता रुक्मकवचने इनमेंसे परिघ और हरि—इन दोनोंको विदेह देशके राज-पदपर नियुक्त कर दिया। रुक्मेषु प्रधान राजा हुआ और पृथुरुक्म उसका आश्रित बन गया। उन लोगोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया। वहाँ एकत्र ब्राह्मणद्वारा समझाये-बुझाये जानेपर वह प्रशान्त-चित्त होकर वानप्रस्थीरूपसे आश्रमोंमें स्थिररूपसे रहने लगा। कुछ दिनोंके पश्चात् वह (एक ब्राह्मणकी शिक्षासे) ध्वजायुक्त रथपर सवार हो हाथमें धनुष धारणकर दूसरे देशकी ओर चल पड़ा। वह केवल जीविकोपार्जनकी कामनासे अकेले ही नर्मदा-तटपर जा पहुँचा। वहाँ दूसरोंद्वारा उपभुक्त ऋक्षवान् गिरि (शतपुरा पर्वत-श्रेणी) पर जाकर निश्चितरूपसे निवास करने लगा। ज्यामघकी सती-साध्वी पत्नी शैव्या* प्रौढ़ा हो गयी थी। (उसके गर्भसे) कोई पुत्र न उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यद्यपि राजा ज्यामघ पुत्रहीन अवस्थामें ही जीवनयापन कर रहे थे, तथापि उन्होंने दूसरी पत्नी नहीं स्वीकार की। एक बार किसी युद्धमें राजा ज्यामघकी विजय हुई। वहाँ उन्हें (विवाहार्थ) एक कन्या प्राप्त हुई। (पर) उसे लाकर पत्नीको देते हुए राजाने उससे भयपूर्वक कहा—'शुचिस्मिते! यह (मेरी स्त्री नहीं,) तुम्हारी स्नुषा (पुत्रवधू) है।' इस प्रकार कहे जानेपर उसने राजासे पूछा—'यह किसकी स्नुषा है?' ॥ २८—३४ ॥

तब राजाने कहा—(प्रिये) तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीकी यह पत्नी होगी। (यह आश्चर्य देख-सुनकर वह कन्या तप करने लगी।) तत्पश्चात् उस कन्याकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप वृद्धा प्रायः बूढ़ी होनेपर भी शैव्याने (गर्भ धारण किया और) विदर्भ नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस विद्वान् विदर्भने स्नुषाभूता उस राजकुमारीके गर्भसे क्रथ, कैशिक

* प्रायः अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंमें एवं भागवतादिकी टीकाओंमें 'ज्यामघ'की पत्नी शैव्या ही कही गयी है। कुछ मत्स्यपुराणकी प्रतियोंमें 'चैत्रा' नाम भी आया है, परंतु यह अनुकृतिमें भ्रान्तिका ही परिणाम है।

जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्धनः ।
अपुत्रस्त्वभवद् राजा चचार परमं तपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ॥ ५१ ॥
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत् । तदोपस्पर्शनात् तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ५२ ॥
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै सा निम्नगोत्तमा । चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम् ॥ ५३ ॥
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः । जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः ॥ ५४ ॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः । ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः ॥ ५५ ॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा । पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ॥ ५६ ॥
अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् । गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः ॥ ५७ ॥
यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् । बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ ५८ ॥
षष्टिशतं च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः । एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ॥ ५९ ॥
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः । रूपवान् सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा ॥ ६० ॥
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् । कुकुरं भजमानं च शशिं कम्बलबर्हिषम् ॥ ६१ ॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयो धृतिः । कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तस्य चात्मजः ॥ ६२ ॥
तस्यासीत् तनुजः सर्पो विद्वान् पुत्रो नलः किल । ख्यायते तस्य नाम्ना स नन्दनो दरदुन्दुभिः ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् राजा देवावृधका जन्म हुआ, जो वन्धुओंके साथ सुदृढ़ मैत्रीके प्रवर्धक थे । परंतु राजा (देवावृध)को कोई पुत्र न था । उन्होंने 'मुझे सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न पुत्र पैदा हो' ऐसी अभिलाषासे युक्त हो अत्यन्त घोर तप किया । अन्तमें उन्होंने मन्त्रको संयुक्त कर [illegible]शा* नदीके जलका स्पर्श किया । इस प्रकार स्पर्श करनेके कारण पर्णाशा नदी राजाका प्रिय करनेका [illegible] करने लगी । वह श्रेष्ठ नदी उस राजाके कल्याण-की चिन्तासे व्याकुल हो उठी । अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँची कि मैं ऐसी किसी दूसरी स्त्रीको नहीं देख पा रही हूँ, जिसके गर्भसे इस प्रकारका (राजाकी अभि-लाषाके अनुसार) पुत्र पैदा हो सके, इसलिये आज मैं स्वयं ही हजारों प्रकारका रूप धारण करूँगी । तत्पश्चात् पर्णाशाने परम सुन्दर शरीर धारण करके कुमारीरूपमें प्रकट होकर राजाको सूचित किया । तब महान् व्रत-शाली राजाने उसे (पत्नीरूपसे) स्वीकार कर लिया । तदुपरान्त नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधके संयोगसे नवें महीनेमें सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न बभ्रु नामक पुत्रको जन्म दिया । पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग वंशानुकीर्तन-प्रसङ्गमें महात्मा देवावृधके गुणोंका कीर्तन करते हुए ऐसी गाथा गाते हैं—उद्गार प्रकट करते हैं—'इन (बभ्रु)के विषयमें हमलोग जैसा (दूरसे) सुन रहे थे, उसी प्रकार (इन्हें) निकट आकर भी देख रहे हैं । बभ्रु तो सभी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध (साक्षात्) देवताओंके समान हैं । राजन् ! बभ्रु और देवावृधके प्रभावसे इनके छिहत्तर हजार पूर्वज अमरत्वको प्राप्त हो गये । राजा बभ्रु यज्ञानुष्ठानी, दानशील, शूरवीर, ब्राह्मणभक्त, सुदृढ़व्रती, सौन्दर्यशाली, महान् तेजस्वी तथा विख्यात बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे । तदनन्तर (बभ्रुके संयोगसे) कङ्ककी कन्याने कुकुर, भजमान, शशि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको जन्म दिया । कुकुरका पुत्र वृष्णि,† वृष्णिका पुत्र धृति, उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र तैत्तिरि, उसका पुत्र सर्प, उसका पुत्र विद्वान् नल‡ था । नलका पुत्र दरदुन्दुभि§ नामसे कहा जाता था ॥ ५१–६३ ॥

* भारतमें पर्णाशा नामकी दो नदियाँ हैं । ये दोनों राजस्थानकी पूर्वी सीमापर स्थित हैं और पारियात्र पर्वतसे निकली हैं । (द्रष्टव्य मत्स्य० १२ । ५० तथा वायुपुराण ३८ । १७६) † ऊपर ४८वें श्लोकमें 'वृष्णि'का उल्लेख हो चुका है, अतः अधिकांश अन्य पुराणसम्मत यहाँ 'धृष्णु' पाठ मानना चाहिये, या इन्हें द्वितीय वृष्णि मानना चाहिये । ‡ पुराणोंमें दो नल तो प्रसिद्ध ही हैं, पर (मत्स्य० ११४ । २४ पर) ये तीसरे नल हैं । § पद्म० १।१३ । ४०में चन्दनोदकदुंदुभि नाम है ।

जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्धनः ।
अपुत्रस्त्वभवद् राजा चचार परमं तपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ॥ ५१ ॥
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत् । तदोपस्पर्शनात् तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ५२ ॥
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै सा निम्नगोत्तमा । चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम् ॥ ५३ ॥
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः । जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः ॥ ५४ ॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः । ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः ॥ ५५ ॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा । पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ॥ ५६ ॥
अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् । गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः ॥ ५७ ॥
यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् । बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ ५८ ॥
षष्टिशतं च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः । एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ॥ ५९ ॥
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः । रूपवान् सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा ॥ ६० ॥
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् । कुकुरं भजमानं च शशिं कम्बलबर्हिषम् ॥ ६१ ॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयो धृतिः । कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तस्य चात्मजः ॥ ६२ ॥
तस्यासीत् तनुजः सर्पो विद्वान् पुत्रो नलः किल । ख्यायते तस्य नाम्ना स नन्दनो दरदुन्दुभिः ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् राजा देवावृधका जन्म हुआ, जो बन्धुओंके साथ सुदृढ़ मैत्रीके प्रवर्धक थे । परंतु राजा (देवावृध)को कोई पुत्र न था । उन्होंने 'मुझे सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न पुत्र पैदा हो' ऐसी अभिलाषासे युक्त हो अत्यन्त घोर तप किया । अन्तमें उन्होंने मन्त्रको संयुक्त कर पर्णाशा* नदीके जलका स्पर्श किया । इस प्रकार स्पर्श करनेके कारण पर्णाशा नदी राजाका प्रिय करनेका कार्य करने लगी । वह श्रेष्ठ नदी उस राजाके कल्याणकी चिन्तासे व्याकुल हो उठी । अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँची कि मैं ऐसी किसी दूसरी स्त्रीको नहीं देख पा रही हूँ; जिसके गर्भसे इस प्रकारका (राजाकी अभिलाषाके अनुसार) पुत्र पैदा हो सके, इसलिये आज मैं स्वयं ही हजारों प्रकारका रूप धारण करूँगी । तत्पश्चात् पर्णाशाने परम सुन्दर शरीर धारण करके कुमारीरूपमें प्रकट होकर राजाको सूचित किया । तब महान् व्रतशाली राजाने उसे (पत्नीरूपसे) स्वीकार कर लिया । तदुपरान्त नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधके संयोगसे नवें महीनेमें सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न बभ्रु नामक पुत्रको जन्म दिया । पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग वंशानुकीर्तन-प्रसङ्गमें महात्मा देवावृधके गुणोंका कीर्तन करते हुए ऐसी गाथा गाते हैं—उद्गार प्रकट करते हैं—'इन (बभ्रु)के विषयमें हमलोग जैसा (दूरसे) सुन रहे थे, उसी प्रकार (इन्हें) निकट आकर भी देख रहे हैं । बभ्रु तो सभी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध (साक्षात्) देवताओंके समान हैं । राजन् ! बभ्रु और देवावृधके प्रभावसे इनके छिहत्तर हजार पूर्वज अमरत्वको प्राप्त हो गये । राजा बभ्रु यज्ञानुष्ठानी, दानशील, शूरवीर, ब्राह्मणभक्त, सुदृढ़व्रती, सौन्दर्यशाली, महान् तेजस्वी तथा विख्यात बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे । तदनन्तर (बभ्रुके संयोगसे) कङ्ककी कन्याने कुकुर, भजमान, शशि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको जन्म दिया । कुकुरका पुत्र वृष्णि,† वृष्णिका पुत्र धृति, उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र तैत्तिरि, उसका पुत्र सर्प, उसका पुत्र विद्वान् नल‡ था । नलका पुत्र दरदुन्दुभि§ नामसे कहा जाता था ॥ ५१—६३ ॥

* भारतमें पर्णाशा नामकी दो नदियाँ हैं । ये दोनों राजस्थानकी पूर्वी सीमापर स्थित हैं और पारियात्र पर्वतसे निकली हैं । (द्रष्टव्य मत्स्य० १२ । ५० तथा वायुपुराण ३८ । १७६) † ऊपर ४८वें श्लोकमें 'वृष्णि'का उल्लेख हो चुका है, अतः अधिकांश अन्य पुराणसम्मत यहाँ 'धृष्णु' पाठ मानना चाहिये, या इन्हें द्वितीय वृष्णि मानना चाहिये । ‡ पुराणोंमें दो नल तो प्रसिद्ध ही हैं, पर (मत्स्य० ११४ । २४ पर) ये तीसरे नल हैं । § पद्म० १।१३ । ४०में चन्दनोदकदुंदुभि नाम है ।

अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्तयः। सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः ॥ ८४ ॥
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः ॥ ८५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस ज्येष्ठ था। उनके नाम हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु, अजभू, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिद। उनके कंसा, कंसवती, सतन्तू, राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी पाँच बहनें थीं, जो परम सुन्दरी थीं। अपनी संतानों-सहित उग्रसेन कुकुर-वंशमें उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। भजमानका पुत्र महारथी विदूरथ और शूरवीर राजाधिदेव विदूरथका पुत्र हुआ। राजाधिदेवके शोणाश्व और श्वेतवाहन नामक दो पुत्र हुए, जो देवोंके सदृश कान्तिमान् और नियम एवं व्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। शोणाश्वके शमी, देवशर्मा, निकुन्त, शक्र और शत्रुजित् नामक पाँच शूरवीर एवं युद्धनिपुण पुत्र हुए। शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रका पुत्र प्रतिक्षेत्र, उसका पुत्र भोज और उसका पुत्र हृदीक हुआ। हृदीकके दस अनुपम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें कृतवर्मा ज्येष्ठ और शतधन्वा मँझला था। शेषके नाम (इस प्रकार) हैं—देवार्ह, नाभ, धिषण, महाबल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक। देवार्हके कम्बलबर्हिष् नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र असोमजा और असोमजाका पुत्र तमोजा हुआ। इसके बाद सुदंष्ट्र, सुनाभ और कृष्ण नामके तीन राजा और हुए, जो परम पराक्रमी और उत्तम कीर्तिवाले थे। इनके कोई संतान नहीं हुई। ये सभी अन्धकवंशी माने गये हैं। जो मनुष्य अन्धकोंके इस वंशका नित्य कीर्तन करता है, वह स्वयं पुत्रवान् होकर अपने वंशकी वृद्धि करता है ॥ ७४–८५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

वृष्णिवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें स्यमन्तक मणिकी कथा

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ॥ १ ॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रं शिनिं चैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ॥ २ ॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु द्वौ सुतौ। प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ ॥ ३ ॥
स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः ॥ ४ ॥
हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः। गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ॥ ५ ॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते ॥ ६ ॥
ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ह्यृक्षमैक्षत। ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित् ॥ ७ ॥
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात्। अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ॥ ८ ॥
प्रसेनं तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः। गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात् ॥ ९ ॥
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः।
तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह। हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ॥ १० ॥
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः। यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्याशमागमत् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा तु महाशब्दं स चक्रे ऋक्षराड् बली।

अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्तयः। सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः ॥ ८४ ॥
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः ॥ ८५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस ज्येष्ठ था। उनके नाम हैं——न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु, अजभू, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिद। उनके कंसा, कंसवती, सतन्तू, राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी पाँच बहनें थीं, जो परम सुन्दरी थीं। अपनी संतानों-सहित उग्रसेन कुकुर-वंशमें उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। भजमानका पुत्र महारथी विदूरथ और शूरवीर राजाधिदेव विदूरथका पुत्र हुआ। राजाधिदेवके शोणाश्व और श्वेतवाहन नामक दो पुत्र हुए, जो देवोंके सदृश कान्तिमान् और नियम एवं व्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। शोणाश्वके शमी, देवशर्मा, निकुन्त, शक्र और शत्रुजित् नामक पाँच शूरवीर एवं युद्धनिपुण पुत्र हुए। शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रका पुत्र प्रतिक्षेत्र, उसका पुत्र भोज और उसका पुत्र हृदीक हुआ। हृदीकके दस अनुपम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें कृतवर्मा ज्येष्ठ और शतधन्वा मँझला था। शेषके नाम (इस प्रकार) हैं—देवार्ह, नाभ, धिषण, महाबल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक। देवार्हके कम्बलबर्हिष् नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र असोमजा और असोमजाका पुत्र तमोजा हुआ। इसके बाद सुदंष्ट्र, सुनाभ और कृष्ण नामके तीन राजा और हुए, जो परम पराक्रमी और उत्तम कीर्तिवाले थे। इनके कोई संतान नहीं हुई। ये सभी अन्धकवंशी माने गये हैं। जो मनुष्य अन्धकोंके इस वंशका नित्य कीर्तन करता है, वह स्वयं पुत्रवान् होकर अपने वंशकी वृद्धि करता है ॥ ७४—८५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

वृष्णिवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें स्यमन्तक मणिकी कथा

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ॥ १ ॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रं शिनिं चैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ॥ २ ॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु द्वौ सुतौ। प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ ॥ ३ ॥
स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः ॥ ४ ॥
हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः। गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः॥ ५ ॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते ॥ ६ ॥
ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ह्यृक्षमैक्षत। ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित् ॥ ७ ॥
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात्। अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ॥ ८ ॥
प्रसेनं तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः। गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात् ॥ ९ ॥
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः।
तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह। हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ॥ १० ॥
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः। यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्याशमागमत् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा तु महाशब्दं स चक्रे ऋक्षराट् बली।

अथ व्रतवती तस्माद् भङ्गकारात् तु पूर्वजात् । सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः ॥ २
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता । तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात् ॥ २
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् । सत्यकस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ॥ २
सत्यवान् युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान् । असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २
द्युम्नेर्युगंधरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिताः ।

जाम्बवान्ने कहा—प्रभो ! मेरी अभिलाषा है कि मैं आपके चक्र-प्रहारसे मृत्युको प्राप्त होऊँ । यह मेरी सौन्दर्यशालिनी कन्या आपको पतिरूपमें प्राप्त करे । प्रभो ! यह मणि, जिसे मैंने प्रसेनको मारकर प्राप्त किया है, आपके ही पास रहे । तत्पश्चात् सामर्थ्यशाली एवं महाबाहु श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उन जाम्बवान्का वध करके कृतकृत्य हो कन्यासहित मणिको ग्रहण कर लिया ।* घर लौटकर भगवान् जनार्दनने समस्त सात्वतोंकी भरी सभामें वह मणि सत्राजित्को समर्पित कर दी; क्योंकि वे उस मिथ्यापवादसे अत्यन्त दुःखी थे । उस समय सभी यदुवंशियोंने वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णसे यों कहा—'श्रीकृष्ण ! हमलोगोंका तो यह दृढ़ निश्चय था कि प्रसेन तुम्हारे ही हाथों मारा गया है । केकयराजकी दस सौन्दर्यशालिनी कन्याएँ सत्राजित्की पत्नियाँ थीं । उनके गर्भसे सत्राजित्के एक सौ पुत्र उ[त्पन्न] हुए थे, जो विश्वविख्यात, प्रशंसित एवं म[हा]पराक्रमी थे । उनमें भंगकार ज्येष्ठ था । उस भंगकारके संयोगसे व्रतवतीने तीन कमलनयनी सु[कुमारी] कन्याओंको जन्म दिया । उनके नाम हैं—स्त्रि[यों]में सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढ़व्रतपरायणा व्रतिनी तथा पद्माव[ती]। भंगकारने इन तीनोंको पत्नीरूपमें श्रीकृष्णको प्र[दान] किया था । कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शि[नि]का जन्म हुआ । उसका पुत्र सत्यक और सत्यकका सात्यकि हुआ । सत्यवान् और प्रतापी युयुधान—दोनों शिनिके नाती थे । युयुधानका पुत्र असंग उसका पुत्र द्युम्नि हुआ । द्युम्निका पुत्र यु[गंधर] हुआ । इस प्रकार यह शिनि-वंशका वर्णन [किया] गया ॥ १५—२३½ ॥

अनमित्रान्वयो ह्येष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः ॥ २४ ॥
अनमित्रस्य संजज्ञे पृथ्व्यां वीरो युधाजितः । अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च ॥ २५
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत । जयन्तस्तु जयन्त्यां तु पुत्रः समभवच्छुभः ॥ २६
सदायज्ञोऽतिवीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः । अक्रूरः सुषुवे तस्मात् सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ॥ २७
रत्ना कन्या च शैब्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान् । पुत्रानुत्पादयामास त्वेकादश महाबलान् ॥ २८
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य एव च । सवीतरः सदापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः ॥ २९
धर्मभृद् धर्मवर्माणो धृष्टमानस्तथैव च । सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते ॥ ३०
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्धनौ । देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंनिभौ ॥ ३१
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ ३२
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च । अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा ॥ ३३
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो वेद कृष्णादपोहिताम् । न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित् ॥ ३४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अब मैं वृष्णि-वंशमें उत्पन्न अनमित्रके वंशका वर्णन कर रहा हूँ । अनमित्रकी दूसरी पत्नी पृथ्वीके गर्भसे वीरवर युधाजित् पैदा हुए । उनके वृषभ और क्षत्र नामक दो अन्य शूरवीर पुत्र थे । वृषभने काशिराजकी जय[न्ती]

* यह कथा प्रायः कल्किपुराणसे मिलती है । और अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें जाम्बवान् कन्या-दान करनेके बाद भी जीवित ही रहते हैं । कल्किपुराणके अन्तमें जाम्बवान् तथा मणिबिन्दुकी ऐसी स्थिति हुई है ।

अथ व्रतवती तस्माद् भङ्गकारात् तु पूर्वजात्। सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः ॥ २० ॥
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता। तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात् ॥ २१ ॥
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्। सत्यकस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ॥ २२ ॥
सत्यवान् युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान्। असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २३ ॥
द्युम्नेर्युगंधरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिताः।

जाम्बवान्ने कहा—प्रभो ! मेरी अभिलाषा है कि मैं आपके चक्र-प्रहारसे मृत्युको प्राप्त होऊँ। यह मेरी सौन्दर्यशालिनी कन्या आपको पतिरूपमें प्राप्त करे। प्रभो ! यह मणि, जिसे मैंने प्रसेनको मारकर प्राप्त किया है, आपके ही पास रहे। तत्पश्चात् सामर्थ्यशाली एवं महाबाहु श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उन जाम्बवान्का वध करके कृतकृत्य हो कन्यासहित मणिको ग्रहण कर लिया।* घर लौटकर भगवान् जनार्दनने समस्त सात्वतोंकी भरी सभामें वह मणि सत्राजित्को समर्पित कर दी; क्योंकि वे उस मिथ्यापवादसे अत्यन्त दुःखी थे। उस समय सभी यदुवंशियोंने वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णसे यों कहा—'श्रीकृष्ण ! हमलोगोंका तो यह दृढ़ निश्चय था कि प्रसेन तुम्हारे ही हाथों मारा गया है। केकयराजकी दस सौन्दर्यशालिनी कन्याएँ सत्राजित्की पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे सत्राजित्के एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो विश्वविख्यात, प्रशंसित एवं महान् पराक्रमी थे। उनमें भंगकार ज्येष्ठ था। उस ज्येष्ठ भंगकारके संयोगसे व्रतवतीने तीन कमलनयनी सुकुमारी कन्याओंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढ़व्रतपरायणा व्रतिनी तथा पद्मावती। भंगकारने इन तीनोंको पत्नीरूपमें श्रीकृष्णको प्रदान किया था। कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ। उसका पुत्र सत्यक और सत्यकका पुत्र सात्यकि हुआ। सत्यवान् और प्रतापी युयुधान—ये दोनों शिनिके नाती थे। युयुधानका पुत्र असंग और उसका पुत्र द्युम्नि हुआ। द्युम्निका पुत्र युगंधर हुआ। इस प्रकार यह शिनि-वंशका वर्णन किया गया ॥ १५–२३½ ॥

अनमित्रान्वयो ह्येष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः ॥ २४ ॥
अनमित्रस्य संजज्ञे पृथ्व्यां वीरो युधाजितः। अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च ॥ २५ ॥
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत। जयन्तस्तु जयन्त्यां तु पुत्रः समभवच्छुभः ॥ २६ ॥
सदायज्ञोऽतिवीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः। अक्रूरः सुषुवे तस्मात् सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ॥ २७ ॥
रत्ना कन्या च शैब्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान्। पुत्रानुत्पादयामास त्वेकादश महाबलान् ॥ २८ ॥
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य एव च। सवीतरः सदापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः ॥ २९ ॥
धर्मभृद् धर्मवर्माणो धृष्टमानस्तथैव च। सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते ॥ ३० ॥
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्धनौ। देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंनिभौ ॥ ३१ ॥
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च। अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ ३२ ॥
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च। अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा ॥ ३३ ॥
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो वेद कृष्णादपोहिताम्। न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अब मैं वृष्णि-वंशमें उत्पन्न अनमित्रके वंशका वर्णन कर रहा हूँ। अनमित्रकी दूसरी पत्नी पृथ्वीके गर्भसे वीरवर युधाजित् पैदा हुए। उनके वृषभ और क्षत्र नामवाले दो अन्य शूरवीर पुत्र थे। वृषभने काशिराजकी जयन्ती

* यह कथा प्रायः कल्किपुराणसे मिलती है। और अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें जाम्बवान् कन्या-दान करनेके बाद भी जीवित ही रहते हैं। कल्किपुराणके अन्तमें जाम्बवान् तथा शशबिन्दुकी ऐसी स्थिति हुई है।

लिया। चेदि-नरेशकी पत्नी श्रुतश्रवाके गर्भसे एक सुनीथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेकों प्रकारके धर्मोंका आचरण करनेवाला एवं शत्रुओंका विनाशक था। तत्पश्चात् शूरने अपनी पृथा नाम्नी कन्याको मित्रतावश वृद्ध राजा कुन्तिभोजको पुत्रीरूपमें दे दिया। इसी कारण वसुदेवकी बहन यह पृथा कुन्ती नामसे विख्यात हुई। उसे वसुदेवने पाण्डुको (पत्नीरूपमें) प्रदान किया था। उस अनिन्द्यसुन्दरी पाण्डु-पत्नी कुन्तीने पाण्डुकी वंशवृद्धिके लिये (पतिकी आज्ञासे) महारथी देवपुत्रोंको जन्म दिया था। उनमें धर्मके संयोगसे युधिष्ठिर पैदा हुए, वायुके सम्पर्कसे वृकोदर (भीमसेन)का जन्म हुआ और इन्द्रके सकाशसे इन्द्रके ही समान पराक्रमी धनंजय (अर्जुन) की उत्पत्ति हुई। साथ ही अश्विनीकुमारोंके संयोगसे माद्रवती (माद्री)के गर्भसे रूप, शील एवं सद्‌गुणोंसे समन्वित नकुल और सहदेव पैदा हुए—ऐसा हमलोगोंने सुना है ॥ १—१० ॥

रोहिणी पौरवी चैव पत्न्यावानकदुन्दुभेः। लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च सुतं प्रियम् ॥ ११ ॥
दुर्दमं दमनं सुभ्रं पिण्डारकमहाहनू। चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा ॥ १२ ॥
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि।
उदारो भद्रसेनश्च भद्रवासस्तथैव च। षष्ठो भद्रविदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ॥ १३ ॥
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संबभूव ह। लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः ॥ १४ ॥
अनुजा त्वभवत् कृष्णात् सुभद्रा भद्रभाषिणी। देवक्यां तु महातेजा जज्ञे शूरी महायशाः ॥ १५ ॥
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः।
उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता। एकां कन्यां च सुभगां कंसस्तामभ्यघातयत् ॥ १६ ॥
विजयं रोचमानं च वर्धमानं तु देवलम्। एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्यां प्रजज्ञिरे ॥ १७ ॥
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत। वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दनो नाम नामतः ॥ १८ ॥

आनकदुन्दुभि (वसुदेव)के संयोगसे रोहिणी (उनकी चौबीस पत्नियोंमें प्रथम)ने विश्वविख्यात ज्येष्ठ पुत्र राम (बलराम)को, तत्पश्चात् प्रिय पुत्र सारण, दुर्दम, दमन, सुभ्रु, पिण्डारक और महाहनुको प्राप्त किया। (उनकी दूसरी पत्नी पौरवीके भी भद्र, सुभद्रादि पुत्र हुए।) उसी समय रोहिणीके गर्भसे चित्रा और अक्षी नामवाली (अथवा सुन्दर नेत्रोंवाली) दो कन्याएँ भी पैदा हुईं। वसुदेवजीके सम्पर्कसे देवकीके गर्भसे सुषेण, कीर्तिमान्, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिन्हें कंसने मार डाला। फिर उसी समय (देवकीके गर्भसे) आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णके बाद उनकी छोटी बहन शुभभाषिणी सुभद्रा पैदा हुई। तदनन्तर देवकीके गर्भसे महान् तेजस्वी एवं महायशस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ताम्राके गर्भसे शौरिकुलका उद्वहन करनेवाला सहदेव नामक पुत्र पैदा हुआ। देवरक्षिताने उपासङ्गधर नामक पुत्रको और एक सुन्दरी कन्याको, जिसे कंसने मार डाला, उत्पन्न किया। विजय, रोचमान, वर्धमान और देवल—ये सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न पुत्र उपदेवीके गर्भसे पैदा हुए थे। महात्मा अवगाह वृकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए। इसी वृकदेवीके गर्भसे नन्दन नामक एक और पुत्र पैदा हुआ था ॥ ११—१८ ॥

सप्तमं देवकीपुत्रं मदनं सुषुवे नृप। गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १९ ॥
श्रद्धादेव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा। वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम् ॥ २० ॥
सुतनू रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ। पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ ॥ २१ ॥
जरा नाम निषादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः। सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्त्वौ बभूवतुः ॥ २२ ॥

*

लिया । चेदि-नरेशकी पत्नी श्रुतश्रवाके गर्भसे एक सुनीथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेकों प्रकारके धर्मोंका आचरण करनेवाला एवं शत्रुओंका विनाशक था । तत्पश्चात् शूरने अपनी पृथा नाम्नी कन्याको मित्रतावश वृद्ध राजा कुन्तिभोजको पुत्रीरूपमें दे दिया । इसी कारण वसुदेवकी बहन यह पृथा कुन्ती नामसे विख्यात हुई । उसे वसुदेवने पाण्डुको (पत्नीरूपमें) प्रदान किया था । उस अनिन्द्यसुन्दरी पाण्डु-पत्नी कुन्तीने पाण्डुकी वंशवृद्धिके लिये (पतिकी आज्ञासे) महारथी देवपुत्रोंको जन्म दिया था । उनमें धर्मके संयोगसे युधिष्ठिर पैदा हुए, वायुके सम्पर्कसे वृकोदर (भीमसेन)का जन्म हुआ और इन्द्रके सकाशसे इन्द्रके ही समान पराक्रमी धनंजय (अर्जुन) की उत्पत्ति हुई । साथ ही अश्विनीकुमारोंके संयोगसे माद्रवती (माद्री)के गर्भसे रूप, शील एवं सद्गुणोंसे समन्वित नकुल और सहदेव पैदा हुए—ऐसा हमलोगोंने सुना है ॥ १—१० ॥

रोहिणी पौरवी चैव पत्न्यावानकदुन्दुभेः । लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च सुतं प्रियम् ॥ ११ ॥
दुर्दमं दमनं सुभ्रं पिण्डारकमहाहनू । चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा ॥ १२ ॥
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि ।
उदारो भद्रसेनश्च भद्रवासस्तथैव च । षष्ठो भद्रविदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ॥ १३ ॥
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संबभूव ह । लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः ॥ १४ ॥
अनुजा त्वभवत् कृष्णात् सुभद्रा भद्रभाषिणी । देवक्यां तु महातेजा जज्ञे शूरी महायशाः ॥ १५ ॥
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः ।
उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता । एकां कन्यां च सुभगां कंसस्तामभ्यघातयत् ॥ १६ ॥
विजयं रोचमानं च वर्धमानं तु देवलम् । एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्यां प्रजज्ञिरे ॥ १७ ॥
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत । वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दनो नाम नामतः ॥ १८ ॥

आनकदुन्दुभि (वसुदेव)के संयोगसे रोहिणी (उनकी चौवीस पत्नियोंमें प्रथम)ने विश्वविख्यात ज्येष्ठ पुत्र राम (बलराम)को, तत्पश्चात् प्रिय पुत्र सारण, दुर्दम, दमन, सुभ्रु, पिण्डारक और महाहनुको प्राप्त किया । (उनकी दूसरी पत्नी पौरवीके भी भद्र, सुभद्रादि पुत्र हुए ।) उसी समय रोहिणीके गर्भसे चित्रा और अक्षी नामवाली (अथवा सुन्दर नेत्रोंवाली) दो कन्याएँ भी पैदा हुईं । वसुदेवजीके सम्पर्कसे देवकीके गर्भसे सुषेण, कीर्तिमान्, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिन्हें कंसने मार डाला । फिर उसी समय (देवकीके गर्भसे) आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए । श्रीकृष्णके बाद उनकी छोटी बहन शुभभाषिणी सुभद्रा पैदा हुई । तदनन्तर देवकीके गर्भसे महान् तेजस्वी एवं महायशस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ताम्राके गर्भसे शौरिकुलका उद्वहन करनेवाला सहदेव नामक पुत्र पैदा हुआ । देवरक्षिताने उपासङ्गधर नामक पुत्रको और एक सुन्दरी कन्याको, जिसे कंसने मार डाला, उत्पन्न किया । विजय, रोचमान, वर्धमान और देवल—ये सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न पुत्र उपदेवीके गर्भसे पैदा हुए थे । महात्मा अवगाह वृकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए । इसी वृकदेवीके गर्भसे नन्दन नामक एक और पुत्र पैदा हुआ था ॥ ११—१८ ॥

सप्तमं देवकीपुत्रं मदनं सुषुवे नृप । गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १९ ॥
श्रद्धादेव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा । वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम् ॥ २० ॥
सुतनू रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ । पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ ॥ २१ ॥
जरा नाम निषादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः । सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्त्वौ बभूवतुः ॥ २२ ॥

*

भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद् ब्रवीमि ते। मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः ॥ ४ ॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः। अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥ ५ ॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत्।
अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति। अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति ॥ ६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला-विहार करनेके लिये मृत्युलोकमें मानव-योनिमें अवतीर्ण हुए। वे वसुदेवजीकी तपस्यासे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनके नेत्र कमल-सदृश अति रमणीय थे, उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित हो रहा था और उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे विभूषित था। वसुदेवजीने इन दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीकृष्णको देखकर उनसे कहा—'प्रभो ! आप इस रूपको समेट लीजिये। देव ! मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये आपसे ऐसा कह रहा हूँ; क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी (छः) पुत्रोंको मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे।' वसुदेवजीकी बात सुनकर अच्युत भगवान्ने शूरनन्दन वसुदेवजीको (अपनेको नन्दके घर पहुँचा देनेकी) आज्ञा देकर उस रूपका संवरण कर लिया। (तब वसुदेवजी उन्हें नन्दगोपके घर ले गये और) उन्हें नन्दगोपके हाथमें समर्पित करके यों बोले—'सखे ! इस (बालक) की रक्षा करो, इससे यदुवंशियोंका सब प्रकारसे कल्याण होगा। देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुआ यह बालक कंसका वध करेगा' ॥

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी। नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ॥ ७ ॥
यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत। या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत् ॥ ८ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! ये वसुदेव कौन थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और जिन्हें भगवान् 'तात-पिता' कहकर पुकारते थे तथा यशस्विनी देवकी कौन थीं, जिन्होंने भगवान्को अपने गर्भसे जन्म दिया ? साथ ही ये नन्दगोप कौन थे तथा महाव्रतपरायणा यशोदा कौन थीं, जिन्होंने बालकरूपमें भगवान्का पालन-पोषण किया ? ॥ ७-८ ॥

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता। ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ॥ ९ ॥
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत्। ये तया काङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः ॥ १० ॥
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥ ११ ॥
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः। कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ १२ ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा। सुभामा च तथा शैब्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥ १३ ॥
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा।
सुशीला च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा। एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ॥ १४ ॥
रुक्मिणी जनयामास पुत्रान् रणविशारदान्। चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥ १५ ॥
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च।
परशुं चारुगुप्तं च चारुभद्रं सुचारुकम्। चारुहासं कनिष्ठं च कन्यां चारुमतीं तथा ॥ १६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पुरुष (वसुदेवजी) कश्यप हैं और उनकी प्रिय पत्नी देवकी अदिति (प्रकृति) कही गयी हैं। कश्यप ब्रह्माके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका। देवकी देवीने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वरसे जो कामनाएँ की थीं, उन सभी कामनाओंको महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दिया। वे ही योगात्मा भगवान् योगमाया-के आश्रयसे समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए मानव-शरीर धारण करके भूतलपर अवतीर्ण हुए। उस समय

भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद् ब्रवीमि ते । मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः ॥ ४ ॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः । अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥ ५ ॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् ।
अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति । अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति ॥ ६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला-विहार करनेके लिये मृत्युलोकमें मानव-योनिमें अवतीर्ण हुए । वे वसुदेवजीकी तपस्यासे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए । उनके नेत्र कमल-सदृश अति रमणीय थे, उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित हो रहा था और उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे विभूषित था । वसुदेवजीने इन दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीकृष्णको देखकर उनसे कहा—'प्रभो ! आप इस रूपको समेट लीजिये । देव ! मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये आपसे ऐसा कह रहा हूँ; क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी (छः) पुत्रोंको मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे ।' वसुदेवजीकी बात सुनकर अच्युत भगवान्ने शूरनन्दन वसुदेवजीको (अपनेको नन्दके घर पहुँचा देनेकी) आज्ञा देकर उस रूपका संवरण कर लिया । (तब वसुदेवजी उन्हें नन्दगोपके घर ले गये और) उन्हें नन्दगोपके हाथमें समर्पित करके यों बोले—'सखे ! इस (बालक) की रक्षा करो, इससे यदुवंशियोंका सब प्रकारसे कल्याण होगा । देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुआ यह बालक कंसका वध करेगा' ॥

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी । नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ॥ ७ ॥
यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत । या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत् ॥ ८ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! ये वसुदेव कौन थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और जिन्हें भगवान् 'तात-पिता' कहकर पुकारते थे तथा यशस्विनी देवकी कौन थीं, जिन्होंने भगवान्को अपने गर्भसे जन्म दिया ? साथ ही ये नन्दगोप कौन थे तथा महाव्रतपरायणा यशोदा कौन थीं, जिन्होंने बालकरूपमें भगवान्का पालन-पोषण किया ? ॥ ७-८ ॥

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता । ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ॥ ९ ॥
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् । ये तया काङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः ॥ १० ॥
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् । मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥ ११ ॥
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः । कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ १२ ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा । सुभामा च तथा शैव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥ १३ ॥
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा ।
सुशीला च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा । एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ॥ १४ ॥
रुक्मिणी जनयामास पुत्रान् रणविशारदान् । चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥ १५ ॥
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च ।
परशुं चारुगुप्तं च चारुभद्रं सुचारुकम् । चारुहासं कनिष्ठं च कन्यां चारुमतीं तथा ॥ १६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पुरुष (वसुदेवजी) कश्यप हैं और उनकी प्रिय पत्नी देवकी अदिति (प्रकृति) कही गयी हैं । कश्यप ब्रह्माके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका । देवकी देवीने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वरसे जो कामनाएँ की थीं, उन सभी कामनाओंको महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दिया । वे ही योगात्मा भगवान् योगमाया-के आश्रयसे समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए मानव-शरीर धारण करके भूतलपर अवतीर्ण हुए । उस समय

ऋषय ऊचुः

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिचरस्तथा* । शालङ्किर्नारदश्चैव सिद्धो धन्वन्तरिस्तथा ॥ ३० ॥
आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सहदैवतैः । किमर्थं सङ्घशो भूताः स्मृताः सम्भूतयः कति ॥ ३१ ॥
भविष्याः कति चैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः । ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते ॥ ३२ ॥
यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ण्यन्धकोत्तमः । पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३३ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर (मणिभद्र), शालङ्कि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा देवसमाज—इन सबके साथ आदिदेव भगवान् विष्णु संघबद्ध होकर किसलिये अवतीर्ण होते हैं ? इन महापुरुषके कितने अवतार हो चुके और भविष्यमें कितने अन्य अवतार होनेवाले हैं ? ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके थक जानेपर ये किस कारण भूतलपर उत्पन्न होते हैं ? वृष्णि और अन्धक-वंशमें सर्वश्रेष्ठ विष्णु (श्रीकृष्ण) जिस प्रयोजनसे भूतलपर बारंबार मानव-योनिमें प्रकट होते हैं, वह सभी कारण हम सब प्रश्नकर्ताओंको बतलाइये ॥ ३०–३३ ॥

सूत उवाच

त्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते । युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः ॥ ३४ ॥
देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः । हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक् प्रशासति ॥ ३५ ॥
बलिनाधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात् । सख्यमासीत् परमकं देवानामसुरैः सह ॥ ३६ ॥
युगाख्यासुरसम्पूर्णं ह्यासीदत्याकुलं जगत् । निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुराः समम् ॥ ३७ ॥
मृधो बलिविमर्दाय सम्प्रवृद्धः सुदारुणः । देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरो महान् ॥ ३८ ॥
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह । भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! युग-युगमें जब लोग धर्मसे विमुख हो जाते हैं तथा शुभ कर्मोंमें विशेषरूपसे [illegible] आ जाती है, तब भगवान् विष्णु अपने दिव्य [illegible] त्याग कर भूतलपर मानव-योनिमें प्रकट होते हैं । पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुके त्रिलोकीका शासन करते समय देवासुर-संग्रामके अवसरपर भगवान् श्रीहरि अवतीर्ण हुए थे । इसी प्रकार क्रमशः जब बलि तीनों लोकोंपर अधिष्ठित था, उस समय देवताओंकी असुरोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी थी । ऐसा समय एक युगतक चलता रहा । उस समय सारा जगत् असुरोंसे व्याप्त होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा था । देवता और असुर—दोनों समानरूपसे उसकी आज्ञाके अधीन थे । अन्तमें (बलि-बन्धनके समय) बलिका विमर्दन करनेके लिये देवताओं और असुरोंके बीच अत्यन्त भयंकर एवं महान् विनाशकारी घोर संग्राम प्रारम्भ हो गया । तब भगवान् विष्णु धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये तथा देवताओं और असुरोंके प्रति दिये गये भृगुके शापके कारण पृथ्वीपर मानव-योनिमें उत्पन्न हुए ॥

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्राप्तवान् स्वतः । देवासुरं यथा वृत्तं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ४० ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! उस समय भगवान् विष्णु देवताओं और असुरोंके लिये अपने-आप इस अवताररूप कार्यमें कैसे प्रवृत्त हुए थे ? तथा वह देवासुरसंग्राम जिस प्रकार हुआ था ? वह सब हमलोगोंको बतलाइये ॥ ४० ॥

सूत उवाच

तेषां दायनिमित्तं ते संग्रामास्तु सुदारुणाः । वराहाद्या दश द्वौ च शण्डामर्कान्तरे स्मृताः ॥ ४१ ॥
नामतस्तु समासेन शृणु तेषां विवक्षतः । प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ॥ ४२ ॥

* वायुपुराण ९७ । ३ आदिमें मणिकर और मणिरथ पाठ है, सबका भाव 'मणिभद्र' से ही है ।

ऋषय ऊचुः

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिश्चरस्तथा। शालङ्किर्नारदश्चैव सिद्धो धन्वन्तरिस्तथा ॥ ३० ॥
आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सहदैवतैः। किमर्थं सङ्घशो भूताः स्मृताः सम्भूतयः कति ॥ ३१ ॥
भविष्याः कति चैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः। ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते ॥ ३२ ॥
यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ण्यन्धकोत्तमः। पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३३ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर (मणिभद्र), शालङ्कि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा देवसमाज—इन सबके साथ आदिदेव भगवान् विष्णु संबद्ध होकर किसलिये अवतीर्ण होते हैं? इन महापुरुषके कितने अवतार हो चुके और भविष्यमें कितने अन्य अवतार होनेवाले हैं? ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके थक जानेपर ये किस कारण भूतलपर उत्पन्न होते हैं? वृष्णि और अन्धक-वंशमें सर्वश्रेष्ठ विष्णु (श्रीकृष्ण) जिस प्रयोजनसे भूतलपर बारंबार मानव-योनिमें प्रकट होते हैं, वह सभी कारण हम सब प्रश्नकर्ताओंको बतलाइये ॥ ३०-३३ ॥

सूत उवाच

त्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते। युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः ॥ ३४ ॥
देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः। हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक् प्रशासति ॥ ३५ ॥
बलिनाधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात्। सख्यमासीत् परमकं देवानामसुरैः सह ॥ ३६ ॥
युगाख्यासुरसम्पूर्ण ह्यासीदत्याकुलं जगत्। निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुराः समम् ॥ ३७ ॥
मृधो बलिविमर्दाय सम्प्रवृद्धः सुदारुणः। देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरो महान् ॥ ३८ ॥
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह। भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! युग-युगमें जब लोग धर्मसे विमुख हो जाते हैं तथा शुभ कर्मोंमें विशेषरूपसे [illegible] आ जाती है, तब भगवान् विष्णु अपने दिव्य [illegible] त्याग कर भूतलपर मानव-योनिमें प्रकट होते हैं। पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुके त्रिलोकीका शासन करते समय देवासुर-संग्रामके अवसरपर भगवान् श्रीहरि अवतीर्ण हुए थे। इसी प्रकार क्रमशः जब बलि तीनों लोकोंपर अधिष्ठित था, उस समय देवताओंकी असुरोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी थी। ऐसा समय एक युगतक चलता रहा। उस समय सारा जगत् असुरोंसे व्याप्त होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा था। देवता और असुर—दोनों समानरूपसे उसकी आज्ञाके अधीन थे। अन्तमें (बलि-बन्धनके समय) बलिका विमर्दन करनेके लिये देवताओं और असुरोंके बीच अत्यन्त भयंकर एवं महान् विनाशकारी घोर संग्राम प्रारम्भ हो गया। तब भगवान् विष्णु धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये तथा देवताओं और असुरोंके प्रति दिये गये भृगुके शापके कारण पृथ्वीपर मानव-योनिमें उत्पन्न हुए ॥

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्राप्तवान् स्वतः। देवासुरं यथा वृत्तं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ४० ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उस समय भगवान् विष्णु देवताओं और असुरोंके लिये अपने-आप इस अवताररूप कार्यमें कैसे प्रवृत्त हुए थे? तथा वह देवासुरसंग्राम जिस प्रकार हुआ था? वह सब हमलोगोंको बतलाइये ॥ ४० ॥

सूत उवाच

तेषां दायनिमित्तं ते संग्रामास्तु सुदारुणाः। वराहाद्या दश द्वौ च शण्डामर्कान्तरे स्मृताः ॥ ४१ ॥
नामतस्तु समासेन शृणु तेषां विवक्षतः। प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ॥ ४२ ॥

* वायुपुराण ९७। २ आदिमें मणिकर और मणिरथ पाठ है, सबका भाव 'मणिभद्र' से ही है।

किसी यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस) यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर अवभृथ-स्नानके समय शण्ड और अमर्क नामक दोनों दैत्यपुरोहित देवताओंके दृष्टिगोचर हुए थे। इस प्रकार ये बारह युद्ध देवताओं और असुरोंके बीच घटित हुए थे, जो देवताओं और असुरोंके विनाशक और प्रजाओंके लिये हितकारी थे ॥ ४१—५४½ ॥

हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ ॥ ५५ ॥
द्विसप्तति तथान्यानि नियुतान्यधिकानि च। अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यतां गतः ॥ ५६ ॥
पर्यायेण तु राजाभूद् बलिर्वर्षायुतं पुनः। षष्टिवर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः ॥ ५७ ॥
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह। तावत्कालं तु प्रह्लादो निवृत्तो ह्यसुरैः सह ॥ ५८ ॥
इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः। दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः ॥ ५९ ॥
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते। असपत्नमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः ॥ ६० ॥
प्रह्लादस्य हते तस्मिंस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्।
पर्यायेण तु सम्प्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने। ततोऽसुरान् परित्यज्य शुक्रो देवानगच्छत ॥ ६१ ॥
यज्ञे देवानथ गतान् दितिजाः काव्यमाह्वयन्। किं त्वं नो मिषतां राज्यं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गतः ॥ ६२ ॥
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्। एवमुक्तोऽब्रवीद् दैत्यान् विषण्णान् सान्त्वयन् गिरा ॥ ६३ ॥
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वोऽसुराः। मन्त्राश्चौषधयश्चैव रसा वसु च यत्परम् ॥ ६४ ॥
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै। तत् सर्वं वः प्रदास्यामि युष्मदर्थं धृता मया ॥ ६५ ॥

पूर्वकालमें राजा हिरण्यकशिपु एक अरब सात करोड़ बीस लाख अस्सी हजार वर्षोंतक त्रिलोकीके ऐश्वर्यका उपभोग करता हुआ (सिंहासनपर) विराजमान था। तदनन्तर पर्यायक्रमसे बलि राजा हुए। इनका ... दो करोड़ सत्तर हजार वर्षोंतक था। जितने ... बलिका शासनकाल था, उतने कालतक प्रह्लाद अपने अनुयायी असुरोंके साथ निवृत्तिमार्गपर अवलम्बित रहे। इन महान् ओजस्वी तीनों दैत्योंको असुरोंका इन्द्र (अध्यक्ष) जानना चाहिये। इस प्रकार दस युगपर्यन्त यह सारा विश्व दैत्योंके अधीन था। पुनः कालक्रमानुसार गत युद्धमें प्रह्लादके मारे जानेपर पर्याय-क्रमसे त्रिलोकीका राज्य इन्द्रके हाथोंमें आ गया। उस समय दस युगतक यह विश्व शत्रुहीन था, तब इन्द्र निश्चिन्ततापूर्वक त्रिलोकीका पालन कर रहे थे। उसी समय शुक्राचार्य असुरोंका परित्याग कर एक देव-यज्ञमें चले आये। इस प्रकार यज्ञके अवसरपर शुक्राचार्यको देवताओंके पक्षमें गया हुआ देखकर दैत्योंने शुक्राचार्यको उपालम्भ देते हुए कहा—'गुरुदेव! आप हमलोगोंके देखते-देखते हमारे राज्यको छोड़कर देवताओंके यज्ञमें क्यों चले गये? अब हमलोग यहाँ किसी प्रकार ठहर नहीं सकते, अतः रसातलमें प्रवेश कर जायँगे।' दैत्योंके इस प्रकार गिड़गिड़ानेपर शुक्राचार्य उन दुःखी दैत्योंको मधुर वाणीसे सान्त्वना देते हुए बोले—'असुरो! तुमलोग डरो मत, मैं अपने तेजोबलसे पुनः तुमलोगोंको धारण करूँगा अर्थात् अपनाऊँगा; क्योंकि त्रिलोकीमें जितने मन्त्र, ओषधि, रस और धन-सम्पत्ति हैं, वे सब-के-सब मेरे पास हैं।* इनका चतुर्थांश ही देवोंके अधिकारमें है। मैं वह सारा-का-सारा तुमलोगोंको प्रदान कर दूँगा; क्योंकि तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने उन्हें धारण कर रखा है ॥ ५५—६५ ॥

ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा वृतान् काव्येन धीमता। सम्मन्त्रयन्ति देवा वै संविग्नास्तु जिघृक्षया ॥ ६६ ॥
काव्यो ह्येष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात्। साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाप्याययिष्यति ॥ ६७ ॥

* महाभारत उद्योगपर्व तथा भीष्मपर्व ६। २२-२३ में भी शुक्रको इन धन-रत्नोंका अधिकारी कहा गया है।

किसी यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस) यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर अवभृथ-स्नानके समय शण्ड और अमर्क नामक दोनों दैत्यपुरोहित देवताओंके दृष्टिगोचर हुए थे। इस प्रकार ये बारह युद्ध देवताओं और असुरोंके बीच घटित हुए थे, जो देवताओं और असुरोंके विनाशक और प्रजाओंके लिये हितकारी थे ॥ ४१—५४½ ॥

हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ ॥ ५५ ॥
द्विसप्तति तथान्यानि नियुतान्यधिकानि च। अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यतां गतः ॥ ५६ ॥
पर्यायेण तु राजाभूद् बलिर्वर्षायुतं पुनः। षष्टिवर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः ॥ ५७ ॥
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह। तावत्कालं तु प्रह्लादो निवृत्तो ह्यसुरैः सह ॥ ५८ ॥
इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः। दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः ॥ ५९ ॥
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते। असपत्नमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः ॥ ६० ॥
प्रह्लादस्य हते तस्मिंस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्।
पर्यायेण तु सम्प्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने। ततोऽसुरान् परित्यज्य शुक्रो देवानगच्छत ॥ ६१ ॥
यज्ञे देवानथ गतान् दितिजाः काव्यमाह्वयन्। किं त्वं नो मिषतां राज्यं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गतः ॥ ६२ ॥
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्। एवमुक्तोऽब्रवीद् दैत्यान् विषण्णान् सान्त्वयन् गिरा ॥ ६३ ॥
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वोऽसुराः। मन्त्राश्चौषधयश्चैव रसा वसु च यत्परम् ॥ ६४ ॥
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै। तत् सर्वं वः प्रदास्यामि युष्मदर्थं धृता मया ॥ ६५ ॥

पूर्वकालमें राजा हिरण्यकशिपु एक अरब सात करोड़ बीस लाख अस्सी हजार वर्षोंतक त्रिलोकीके ऐश्वर्यका उपभोग करता हुआ (सिंहासनपर) विराजमान था। तदनन्तर पर्यायक्रमसे बलि राजा हुए। इनका ॥ल दो करोड़ सत्तर हजार वर्षोंतक था। जितने बलिका शासनकाल था, उतने कालतक प्रह्लाद अपने अनुयायी असुरोंके साथ निवृत्तिमार्गपर अवलम्बित रहे। इन महान् ओजस्वी तीनों दैत्योंको असुरोंका इन्द्र (अध्यक्ष) जानना चाहिये। इस प्रकार दस युगपर्यन्त यह सारा विश्व दैत्योंके अधीन था। पुनः कालक्रमानुसार गत युद्धमें प्रह्लादके मारे जानेपर पर्याय-क्रमसे त्रिलोकीका राज्य इन्द्रके हाथोंमें आ गया। उस समय दस युगतक यह विश्व शत्रुहीन था, तब इन्द्र निश्चिन्ततापूर्वक त्रिलोकीका पालन कर रहे थे। उसी समय शुक्राचार्य असुरोंका परित्याग कर एक देव-यज्ञमें चले आये। इस प्रकार यज्ञके अवसरपर शुक्राचार्यको देवताओंके पक्षमें गया हुआ देखकर दैत्योंने शुक्राचार्यको उपालम्भ देते हुए कहा—'गुरुदेव! आप हमलोगोंके देखते-देखते हमारे राज्यको छोड़कर देवताओंके यज्ञमें क्यों चले गये! अब हमलोग यहाँ किसी प्रकार ठहर नहीं सकते, अतः रसातलमें प्रवेश कर जायँगे।' दैत्योंके इस प्रकार गिड़गिड़ानेपर शुक्राचार्य उन दुःखी दैत्योंको मधुर वाणीसे सान्त्वना देते हुए बोले—'असुरो! तुमलोग डरो मत, मैं अपने तेजोबलसे पुनः तुमलोगोंको धारण करूँगा अर्थात् अपनाऊँगा; क्योंकि त्रिलोकीमें जितने मन्त्र, ओषधि, रस और धन-सम्पत्ति हैं, वे सब-के-सब मेरे पास हैं।* इनका चतुर्थांश ही देवोंके अधिकारमें है। मैं वह सारा-का-सारा तुमलोगोंको प्रदान कर दूँगा; क्योंकि तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने उन्हें धारण कर रखा है ॥ ५५—६५ ॥

ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा वृतान् काव्येन धीमता। सम्मन्त्रयन्ति देवा वै संविग्नास्तु जिघृक्षया ॥ ६६ ॥
काव्यो ह्येष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात्। साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाप्याययिष्यति ॥ ६७ ॥

* महाभारत उद्योगपर्व तथा भीष्मपर्व ६। २२-२३ में भी शुक्रको ही धन-रत्नोंका अधिकारी कहा गया है।

सुनकर तथा दैत्योंके शस्त्रास्त्र रख देनेपर देवतालोग प्रसन्न हो गये। उनकी चिन्ता नष्ट हो गयी और वे युद्धसे विरत हो गये। युद्ध बंद हो जानेपर शुक्राचार्यने असुरोंसे कहा—'दानवो ! तुमलोग अपने अभिमान आदि कुप्रवृत्तियोंका त्याग कर तपस्यामें लग जाओ और कुछ कालतक उपासना करो; क्योंकि काल ही अभीष्ट कार्यका साधक होता है। इस प्रकार तुमलोग मेरे पिताजीके आश्रममें निवास करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करो।' असुरोंको ऐसी शिक्षा देकर शुक्राचार्य महादेवजीके पास जा पहुँचे (और उनसे निवेदन करने लगे) ॥७६–८०॥

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ। पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च ॥ ८१ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् देवो व्रतं त्वं चर भार्गव।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः। यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि ॥ ८२ ॥
तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः।
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद् वचः। व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो ॥ ८३ ॥
ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत्।
तदा तस्मिन् गते शुक्रे ह्यसुराणां हिताय वै। मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥ ८४ ॥
तद् बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्ये न्यस्ते तदा सुरैः। अस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद् देवास्तान् समुपाद्रवन् ॥ ८५ ॥
दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरःसराः ॥ ८६ ॥

शुक्राचार्यने कहा—'देव ! मैं देवताओंके पराभव असुरोंकी विजयके लिये आपसे उन मन्त्रोंको चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके पास नहीं हैं।' ऐसा जानेपर महादेवजीने कहा—'भार्गव ! तुम्हारा हो। इसके लिये तुम्हें कठोर व्रतका पालन करना पड़ेगा। यदि तुम पूरे एक सहस्र वर्षोंतक नीचा सिर करके कनीके धुएँका पान करोगे, तब कहीं तुम्हें उन मन्त्रोंकी प्राप्ति हो सकेगी।' तब भृगुनन्दन शुक्रने महादेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरणोंका स्पर्श किया और कहा—'देव ! ठीक है, मैं वैसा ही करूँगा। प्रभो ! मैं आजसे ही आपके आदेशानुसार व्रत-पालनमें लग रहा हूँ।' इस प्रकार महादेवजीसे विदा होकर शुक्राचार्य धूमको उत्पन्न करनेवाले कुण्डधार यक्षके निकट गये और असुरोंके हितार्थ मन्त्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य-पूर्वक महेश्वरके आश्रममें निवास करने लगे। तदनन्तर जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि असुरोंद्वारा राज्य छोड़नेमें ऐसी कूटनीति और यह छिद्र था, तब वे अमर्षसे भर गये; फिर तो वे संगठित हो कवच धारणकर हथियारोंसे सुसज्जित हो बृहस्पतिजीको आगे करके असुरोंपर टूट पड़े ॥ ८१—८६ ॥

दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः। उत्पेतुः सहसा ते वै संत्रस्तास्तान् वचोऽब्रुवन् ॥ ८७ ॥
न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते। दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं सम्प्राप्ता नो जिघांसया ॥ ८८ ॥
अनाचार्या वयं देवास्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः। चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥ ८९ ॥
रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन। अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम् ॥ ९० ॥
यापयामः कृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः। निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः ॥ ९१ ॥
एवमुक्त्वासुरान्योऽन्यं शरणं काव्यमातरम्। प्रापद्यन्त ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयं तु सा ॥ ९२ ॥
न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः। मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति ॥ ९३ ॥

इस प्रकार पुनः देवताओंको आयुध धारण करके आक्रमण करते देख असुरगण सहसा भयभीत होकर उठ खड़े हुए और देवताओंसे बोले—'देवगण ! हमलोगोंने शस्त्रास्त्र रख दिया है, आपलोगों-

सुनकर तथा दैत्योंके शस्त्रास्त्र रख देनेपर देवतालोग प्रसन्न हो गये। उनकी चिन्ता नष्ट हो गयी और वे युद्धसे विरत हो गये। युद्ध बंद हो जानेपर शुक्राचार्यने असुरोंसे कहा—'दानवो ! तुमलोग अपने अभिमान आदि कुप्रवृत्तियोंका त्याग कर तपस्यामें लग जाओ और कुछ कालतक उपासना करो; क्योंकि काल ही अभीष्ट कार्यका साधक होता है। इस प्रकार तुमलोग मेरे पिताजीके आश्रममें निवास करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करो।' असुरोंको ऐसी शिक्षा देकर शुक्राचार्य महादेवजीके पास जा पहुँचे (और उनसे निवेदन करने लगे) ॥७६–८०॥

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ। पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च ॥ ८१ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् देवो व्रतं त्वं चर भार्गव।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः। यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि ॥ ८२ ॥
तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः।
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद् वचः। व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो ॥ ८३ ॥
ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत्।
तदा तस्मिन् गते शुक्रे ह्यसुराणां हिताय वै। मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥ ८४ ॥
तद् बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्ये न्यस्ते तदा सुरैः। अस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद् देवास्तान् समुपाद्रवन् ॥ ८५ ॥
दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरःसराः ॥ ८६ ॥

शुक्राचार्यने कहा—'देव ! मैं देवताओंके पराभव असुरोंकी विजयके लिये आपसे उन मन्त्रोंको चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके पास नहीं हैं।' ऐसा जानेपर महादेवजीने कहा—'भार्गव ! तुम्हारा हो। इसके लिये तुम्हें कठोर व्रतका पालन करना पड़ेगा। यदि तुम पूरे एक सहस्र वर्षोंतक नीचा सिर करके कनीके धुएँका पान करोगे, तब कहीं तुम्हें उन मन्त्रोंकी प्राप्ति हो सकेगी।' तब भृगुनन्दन शुक्रने महादेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरणोंका स्पर्श किया और कहा—'देव ! ठीक है, मैं वैसा ही करूँगा। प्रभो ! मैं आजसे ही आपके आदेशानुसार व्रत-पालनमें लग रहा हूँ।' इस प्रकार महादेवजीसे विदा होकर शुक्राचार्य धूमको उत्पन्न करनेवाले कुण्डधार यक्षके निकट गये और असुरोंके हितार्थ मन्त्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य-पूर्वक महेश्वरके आश्रममें निवास करने लगे। तदनन्तर जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि असुरोंद्वारा राज्य छोड़नेमें ऐसी कूटनीति और यह छिद्र था, तब वे अमर्षसे भर गये; फिर तो वे संगठित हो कवच धारणकर हथियारोंसे सुसज्जित हो बृहस्पतिजीको आगे करके असुरोंपर टूट पड़े ॥ ८१—८६ ॥

दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः। उत्पेतुः सहसा ते वै संत्रस्तास्तान् वचोऽब्रुवन् ॥ ८७ ॥
न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते। दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं सम्प्राप्ता नो जिघांसया ॥ ८८ ॥
अनाचार्या वयं देवास्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः। चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥ ८९ ॥
रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन। अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम् ॥ ९० ॥
यापयामः कृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः। निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः ॥ ९१ ॥
एवमुक्त्वासुरान्योऽन्यं शरणं काव्यमातरम्। प्रापद्यन्त ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयं तु सा ॥ ९२ ॥
न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः। मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति ॥ ९३ ॥

इस प्रकार पुनः देवताओंको आयुध धारण करके आक्रमण करते देख असुरगण सहसा भयभीत होकर उठ खड़े हुए और देवताओंसे बोले—'देवगण ! हमलोगोंने शस्त्रास्त्र रख दिया है, आपलोगों-

यह सुनकर वे दोनों देवता—इन्द्र और विष्णु भयभीत हो गये। तब विष्णुने इन्द्रसे कहा—'हम दोनों एक साथ किस प्रकार (इस संकटसे) मुक्त हो सकेंगे ?' यह सुनकर इन्द्र बोले—'प्रभो ! जबतक यह हम दोनोंको जला नहीं देती है, उसके पूर्व ही आप इसे मार डालिये। मैं तो आपके द्वारा विशेषरूपसे अभिभूत हो चुका हूँ, इसलिये आप ही इसका वध कर दीजिये, अब विलम्ब मत कीजिये।' तब भगवान् विष्णु एक ओर उस देवीकी भीषण दुर्भावना—दुश्चेष्टा तथा दूसरी ओर स्त्रीवधरूप घोर पापको देखकर गम्भीर चिन्तामें पड़ गये। फिर उस देवीके क्रूर विचारको जानकर उस आपत्तिसे उद्धार पानेके लिये उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रका ध्यान किया। अस्त्रके आ जानेपर शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करनेमें निपुण एवं भयभीत विष्णु क्रुद्ध हो उठे और तुरंत ही उन्होंने अपना अस्त्र लेकर (पापसे) डरते-डरते उसके सिरको काट गिराया। इधर ऐश्वर्यशाली भृगु उस भयंकर स्त्री-वधको देख कुपित हो गये और वे उस भार्या-वधको निमित्त बनाकर भगवान् विष्णुको शाप देते हुए बोले—'विष्णो ! चूँकि "स्त्री अवध्य होती है"—इस धर्मको जानते हुए भी तुमने मेरी भार्याका प्राण हरण किया है, अतः तुम मृत्युलोकमें सात बार मानव-योनिमें जन्म धारण करोगे।' उसी शापके कारण धर्मका ह्रास हो जानेपर भगवान् विष्णु लोकके कल्याणके लिये मृत्युलोकमें पुनः-पुनः मानव-योनिमें अवतीर्ण होते हैं* ॥ १०१—१०७ ॥

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन्। समानीय ततः कायमसौ गृह्येदमब्रवीत् ॥१०८॥
एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम्। ततस्तां योज्य शिरसा अभिजीवेति सोऽब्रवीत्॥१०९॥
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा। तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं वदाम्यहम् ॥११०॥
ततस्तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्। ततोऽभिव्याहृते तस्य देवी स जीविता तदा ॥१११॥
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव। साधु साध्विति चक्रुस्ते वचसा सर्वतो दिशम्॥११२॥
एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा। मिषतां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत् ॥११३॥

भगवान् विष्णुको ऐसा शाप देकर भृगुने फिर तुरंत ही (ख्यातिके) उस सिरको उठा लिया और उसे देवीके शरीरके निकट लाकर तथा उस शरीरसे जोड़कर इस प्रकार कहा—'देवि ! यह तुम विष्णुद्वारा मार डाली गयी हो, अब मैं तुम्हें पुनः जिलाये देता हूँ।' यों कहकर उसके शरीरको सिरसे जोड़कर कहा—'जी उठो'। पुनः वे प्रतिज्ञा करते हुए बोले—'यदि मैं सम्पूर्ण धर्मोंको जानता हूँ तथा मेरेद्वारा सम्पूर्ण धर्मोंका आचरण भी किया गया हो अथवा यदि मैं सत्यवादी होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ।' तत्पश्चात् देवीके शरीरका शीतल जलसे प्रोक्षण करके उन्होंने पुनः कहा—'जीवित हो जाओ!' भृगुके यों कहते ही देवी तुरंत जीवित होकर उठ बैठी। उस देवीको सोकर उठी हुईकी भाँति जीवित देखकर सभी प्राणी 'ठीक है, ठीक है'—ऐसा कहने लगे। उनका यह साधुवाद सभी दिशाओंमें गूँज उठा। इस प्रकार महर्षि भृगुने सभी देवताओंके देखते-देखते देवीको पुनः जीवन प्रदान कर दिया, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १०८—११३ ॥

* यह कथा वाल्मीकीय रामायण १। २४। २१-२५, योगवासिष्ठ १। १। ६१-६५ तथा भविष्यपुराण ४। ६३। १-१३में भी आती है।

यह सुनकर वे दोनों देवता—इन्द्र और विष्णु भयभीत हो गये। तब विष्णुने इन्द्रसे कहा—'हम दोनों एक साथ किस प्रकार (इस संकटसे) मुक्त हो सकेंगे?' यह सुनकर इन्द्र बोले—'प्रभो! जबतक यह हम दोनोंको जला नहीं देती है, उसके पूर्व ही आप इसे मार डालिये। मैं तो आपके द्वारा विशेषरूपसे अभिभूत हो चुका हूँ, इसलिये आप ही इसका वध कर दीजिये, अब विलम्ब मत कीजिये।' तब भगवान् विष्णु एक ओर उस देवीकी भीषण दुर्भावना—दुश्चेष्टा तथा दूसरी ओर स्त्रीवधरूप घोर पापको देखकर गम्भीर चिन्तामें पड़ गये। फिर उस देवीके क्रूर विचारको जानकर उस आपत्तिसे उद्धार पानेके लिये उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रका ध्यान किया। अबके आ जानेपर शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करनेमें निपुण एवं भयभीत विष्णु क्रुद्ध हो उठे और तुरंत ही उन्होंने अपना अस्त्र लेकर (पापसे) डरते-डरते उसके सिरको काट गिराया। इधर ऐश्वर्यशाली भृगु उस भयंकर स्त्री-वधको देख कुपित हो गये और वे उस भार्या-वधको निमित्त बनाकर भगवान् विष्णुको शाप देते हुए बोले—'विष्णो! चूँकि 'स्त्री अवध्य होती है'—इस धर्मको जानते हुए भी तुमने मेरी भार्याका प्राण हरण किया है, अतः तुम मृत्युलोकमें सात बार मानव-योनिमें जन्म धारण करोगे।' उसी शापके कारण धर्मका ह्रास हो जानेपर भगवान् विष्णु लोकके कल्याणके लिये मृत्युलोकमें पुनः-पुनः मानव-योनिमें अवतीर्ण होते हैं* ॥ १०१—१०७ ॥

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन्। समानीय ततः कायमसौ गृह्येदमब्रवीत्॥१०८॥
एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम्। ततस्तां योज्य शिरसा अभिजीवेति सोऽब्रवीत्॥१०९॥
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा। तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं वदाम्यहम्॥११०॥
ततस्तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्। ततोऽभिव्याहृते तस्य देवी स जीविता तदा॥१११॥
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव। साधु साध्विति चक्रुस्ते वचसा सर्वतो दिशम्॥११२॥
एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा। मिषतां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत्॥११३॥

भगवान् विष्णुको ऐसा शाप देकर भृगुने फिर तुरंत ही (ख्यातिके) उस सिरको उठा लिया और उसे देवीके शरीरके निकट लाकर तथा उस शरीरसे जोड़कर इस प्रकार कहा—'देवि! यह तुम विष्णुद्वारा मार डाली गयी हो, अब मैं तुम्हें पुनः जिलाये देता हूँ।' यों कहकर उसके शरीरको सिरसे जोड़कर कहा—'जी उठो'। पुनः वे प्रतिज्ञा करते हुए बोले—'यदि मैं सम्पूर्ण धर्मोंको जानता हूँ तथा मेरेद्वारा सम्पूर्ण धर्मोंका आचरण भी किया गया हो अथवा यदि मैं सत्यवादी होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ।' तत्पश्चात् देवीके शरीरका शीतल जलसे प्रोक्षण करके उन्होंने पुनः कहा—'जीवित हो जाओ!' भृगुके यों कहते ही देवी तुरंत जीवित होकर उठ बैठी। उस देवीको सोकर उठी हुईकी भाँति जीवित देखकर सभी प्राणी 'ठीक है, ठीक है'—ऐसा कहने लगे। उनका वह साधुवाद सभी दिशाओंमें गूँज उठा। इस प्रकार महर्षि भृगुने सभी देवताओंके देखते-देखते देवीको पुनः जीवन प्रदान कर दिया, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १०८—११३ ॥

* यह कथा वाल्मीकीय रामायण १। २४। २१—२५, योगवासिष्ठ १। १। ६१—६५ तथा भविष्यपुराण ४। ६३। १—१३में भी आती है।

एतान् दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः। प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ ॥१२६॥
एतांल्लब्ध्वा वरान् काव्यः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य दिव्यस्तोत्रं महेश्वरे। तथा तिर्यक् स्थितश्चैव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१२७॥

महादेवजीने कहा—भृगुनन्दन ! अबतक एकमात्र तुमने ही इस व्रतका अनुष्ठान किया है, किसी अन्यके द्वारा इस व्रतका पालन नहीं हो सका है; इसलिये तुम अकेले ही अपने तप, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, बल और तेजसे समस्त देवताओंको पराजित कर दोगे। ब्रह्मन् ! तुम्हारी जो कुछ भी अभिलाषा है, वह सारी-की-सारी तुम्हें प्राप्त हो जायगी, किंतु तुम यह मन्त्र किसी दूसरेको मत बतलाना। द्विजोत्तम ! इससे तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके दमनकर्ता हो जाओगे।' भृगुनन्दन शुक्राचार्यको इतना वरदान देनेके पश्चात् शंकरजीने पुनः उन्हें प्रजेशत्व (प्रजापति), धनेशत्व (धनाध्यक्ष) और अवध्यत्वका भी वर प्रदान किया। इन वरदानोंको पाकर शुक्राचार्यका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। उसी हर्षावेगके कारण उनके हृदयमें भगवान् शंकरके प्रति एक दिव्य स्तोत्र प्रादुर्भूत हो गया। तब वे उसी तिर्यक्-अवस्थामें पड़े-पड़े नीललोहित शंकरजीकी स्तुति करने लगे ॥१२३—१२७॥

शुक्र उवाच

नमोऽस्तु शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे। लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसःपते* ॥१२८॥
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च। संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥१२९॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे। वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे ॥१३०॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च। कवये राजवृक्षाय तक्षकक्रीडनाय च ॥१३१॥
सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय मीढुषे। वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१३२॥
गिरिशाय नमोऽर्काय बलिने आज्यपाय च। सुतृप्ताय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च ॥१३३॥
निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च। ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१३४॥

शुक्राचार्यने कहा—प्रभो ! आप **शितिकण्ठ**—जगत्की रक्षाके लिये हालाहल विषका पान करके उसके नील चिह्नको कण्ठमें धारण करनेवाले (अथवा कर्पूर-गौरकण्ठवाले), **कनिष्ठ**—ब्रह्माके पुत्रोंमें सबसे छोटे रुद्र या अदितिके छोटे पुत्ररूप*, **सुवर्चा**—अध्ययन एवं तप आदिसे उत्पन्न हुए सुन्दर तेजवाले, **लेलिहान**—प्रलय-कालमें त्रिलोकीके संहारार्थ बारंबार जीभ लपलपानेवाले, **काव्य**—कवि या पण्डितके लक्षणोंसे सम्पन्न, **वत्सर**—संवत्सररूप, **अन्धस्पति**—सोमलताके अथवा सभी अन्नोंके स्वामी, **कपर्दी**—जटाजूटधारी, **कराल**—भीषण रूपधारी, **हर्यक्ष**—पीले नेत्रोंवाले, **वरद**—वरप्रदाता, **संस्तुत**—पूर्णरूपसे प्रशंसित, **सुतीर्थ**—महान् गुरुस्वरूप अथवा उत्तम तीर्थस्वरूप, **देवदेव**—देवताओंके अधीश्वर, **रंहस्**—वेगशाली, **उष्णीषी**—सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले **सुवक्त्र**—सुन्दर मुखवाले, **बहुरूप**—एकादश रुद्रोंमें एक, **वेधा**—विधानकर्ता, **वसुरेता**—अग्निरूप **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **तपः**—तपःस्वरूप, **चित्रवासा**—चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, **ह्रस्व**—बौना, **मुक्तकेश**—खुली हुई जटाओंवाले, **सेनानी**—सेनापति, **रोहित**—मृगरूपधारी, **कवि**—अतीन्द्रिय विषयोंके ज्ञाता, **राजवृक्ष**—रुद्राक्ष-वृक्षस्वरूप

* यहाँ प्रायः २५० नामोंद्वारा भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति है। ये नाम प्रसिद्ध 'वाजसनेयि-संहिता' (यजुर्वेद १६ आदि पर आधृत हैं। ये नाम विभिन्न शिवसहस्रनामोंमें भी आते हैं। यह स्तोत्र वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें भी प्राप्त है। पर अभीतक इसका अनुवाद कहींसे नहीं हो सका है।

एतान् दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः। प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ ॥१२६॥
एतांल्लब्ध्वा वरान् काव्यः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य दिव्यस्तोत्रं महेश्वरे। तथा तिर्यक् स्थितश्चैव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१२७॥

महादेवजीने कहा—भृगुनन्दन ! अबतक एकमात्र तुमने ही इस व्रतका अनुष्ठान किया है, किसी अन्यके द्वारा इस व्रतका पालन नहीं हो सका है; इसलिये तुम अकेले ही अपने तप, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, बल और तेजसे समस्त देवताओंको पराजित कर दोगे। ब्रह्मन् ! तुम्हारी जो कुछ भी अभिलाषा है, वह सारी-की-सारी तुम्हें प्राप्त हो जायगी, किंतु तुम यह मन्त्र किसी दूसरेको मत बतलाना। द्विजोत्तम ! इससे तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके दमनकर्ता हो जाओगे।' भृगुनन्दन शुक्राचार्यको इतना वरदान देनेके पश्चात् शंकरजीने पुनः उन्हें प्रजेशत्व (प्रजापति), धनेशत्व (धनाध्यक्ष) और अवध्यत्वका भी वर प्रदान किया। इन वरदानोंको पाकर शुक्राचार्यका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। उसी हर्षावेगके कारण उनके हृदयमें भगवान् शंकरके प्रति एक दिव्य स्तोत्र प्रादुर्भूत हो गया। तब वे उसी तिर्यक्-अवस्थामें पड़े-पड़े नीललोहित शंकरजीकी स्तुति करने लगे॥१२३—१२७॥

शुक्र उवाच

नमोऽस्तु शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे। लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसःपते* ॥१२८॥
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च। संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥१२९॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे। वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे ॥१३०॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च। कवये राजवृक्षाय तक्षकक्रीडनाय च ॥१३१॥
सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय मीढुषे। वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१३२॥
गिरिशाय नमोऽर्काय बलिने आज्यपाय च। सुतृप्ताय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च ॥१३३॥
निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च। ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१३४॥

शुक्राचार्यने कहा—प्रभो ! आप **शितिकण्ठ**—जगत्‌की रक्षाके लिये हालाहल विषका पान करके उसके नील चिह्नको कण्ठमें धारण करनेवाले (अथवा कर्पूर-गौरकण्ठवाले), **कनिष्ठ**—ब्रह्माके पुत्रोंमें सबसे छोटे रुद्र या अदितिके छोटे पुत्ररूप*, **सुवर्चा**—अध्ययन एवं तप आदिसे उत्पन्न हुए सुन्दर तेजवाले, **लेलिहान**—प्रलय-कालमें त्रिलोकीके संहारार्थ बारंबार जीभ लपलपानेवाले, **काव्य**—कवि या पण्डितके लक्षणोंसे सम्पन्न, **वत्सर**—संवत्सररूप, **अन्धस्पति**—सोमलताके अथवा सभी अन्नोंके स्वामी, **कपर्दी**—जटाजूटधारी, **कराल**—भीषण रूपधारी, **हर्यक्ष**—पीले नेत्रोंवाले, **वरद**—वरप्रदाता, **संस्तुत**—पूर्णरूपसे प्रशंसित, **सुतीर्थ**—महान् गुरुस्वरूप अथवा उत्तम तीर्थस्वरूप, **देवदेव**—देवताओंके अधीश्वर, **रंहस्**—वेगशाली, **उष्णीषी**—सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले, **सुवक्त्र**—सुन्दर मुखवाले, **बहुरूप**—एकादश रुद्रोंमेंसे एक, **वेधा**—विधानकर्ता, **वसुरेता**—अग्निरूप, **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **तपः**—तपःस्वरूप, **चित्रवासा**—चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, **ह्रस्व**—बौना, **मुक्तकेश**—खुली हुई जटाओंवाले, **सेनानी**—सेनापति, **रोहित**—मृगरूपधारी, **कवि**—अतीन्द्रिय विषयोंके ज्ञाता, **राजवृक्ष**—रुद्राक्ष-वृक्षस्वरूप,

* यहाँ प्रायः २५० नामोंद्वारा भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति है। ये नाम प्रसिद्ध 'वाजसनेयि-संहिता' (यजुर्वेद १६) आदि पर आधृत हैं। ये नाम विभिन्न शिवसहस्रनामोंमें भी आते हैं। यह स्तोत्र वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें भी प्राप्त है। पर अभीतक इसका अनुवाद कहींसे नहीं हो सका है।

पवित्रस्वरूप, रक्षी—रक्षक, शीघ्रग—शीघ्रगामी, शिखण्डी—जटाके ऊपर जटाग्र-गुच्छको धारण करनेवाले, कराल—भयानक, दंष्ट्री—दाढ़वाले, विश्ववेधा—विश्वके सृष्टिकर्ता, भास्वर—दीप्तिमान् स्वरूपवाले, प्रतीत—विख्यात, सुदीप्त—परम प्रकाशमान तथा सुमेधा—उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्नको नमस्कार है ॥ १३५—१४२ ॥

क्रूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च । सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभाय च ॥१४३॥
अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च । व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे ॥१४४॥
क्षेमाय सहमानाय सत्याय चामृताय च । कर्त्रे परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥१४५॥
सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च । शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे ॥१४६॥
पिशिताशाय शर्वाय मेघाय वैद्युताय च । व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरिताय तरक्षवे ॥१४७॥
त्रिपुरघ्नाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च । तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये ॥१४८॥
रोचमानाय चण्डाय स्फीताय ऋषभाय च । व्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे ॥१४९॥
असुरघ्नाय स्वाघ्नाय मृत्युघ्ने यज्ञियाय च । कृशानवे प्रचेताय वह्नये निर्मलाय च ॥१५०॥

क्रूर—निर्दयी, अविकृत—सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओंसे रहित, भीषण—भयंकर, शिव—धर्मचिन्ता-रहित, सौम्य—शान्तस्वरूप, मुख्य—सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक—धर्मका आचरण करनेवाले, शुभ—मङ्गलस्वरूप, अवध्य—वधके अयोग्य, अमृत—मृत्युरहित, नित्य—अविनाशी, शाश्वत—सनातन स्थायी, व्यापृत—कर्मसचिव, विशिष्ट—सर्वश्रेष्ठ, भरत—लोकोंका भरण-पोषण करनेवाले, साक्षी—जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षीरूप, क्षेम—मोक्षस्वरूप, सहमान—सहनशील, सत्य—सत्यस्वरूप, अमृत—धन्वन्तरिस्वरूप, कर्ता—सबके उत्पादक, परशु—परशुधारी, शूली—त्रिशूलधारी, दिव्यचक्षु—दिव्य नेत्रोंवाले, सोमप—सोमरसका पान करनेवाले, आज्यप—घृतयायी अथवा एक विशिष्ट पितरस्वरूप, धूमप—धूम-पान करनेवाले, ऊष्मप—एक विशिष्ट पितरस्वरूप, ऊष्माको पी जानेवाले, शुचि—सर्वथा शुद्ध, परिधान—ताण्डवके समय साज-सज्जासे विभूषित, सद्योजात—पञ्च मूर्तियोंमेंसे एक मूर्ति, तत्काल प्रकट होनेवाले, मृत्यु—कालस्वरूप, पिशिताश—फलका गूदा खानेवाले, सर्व—विश्वात्मा होनेके कारण सर्वस्वरूप, मेघ—बादलकी भाँति दाता, विद्युत्—बिजलीकी तरह दीप्तिमान्, व्यावृत्त—गजचर्म या व्याघ्रचर्मसे आवृत, सबसे अलग मुक्तस्वरूप, वरिष्ठ—सर्वश्रेष्ठ, भरित—परिपूर्ण, तरक्षु—व्याघ्रविशेष, त्रिपुरघ्न—त्रिपुरासुरके वधकर्ता, तीर्थ—महान् गुरुस्वरूप, अवक्र—सौम्य स्वभाववाले, रोमश—लम्बी जटाओंवाले, तिग्मायुध—तीखे हथियारोंवाले, व्याख्य—विशेषरूपसे व्याख्येय या प्रशंसित, सुसिद्ध—परम सिद्धिसम्पन्न, पुलस्ति—पुलस्त्यऋषिरूप, रोचमान—आनन्दप्रद, चण्ड—अत्यन्त क्रोधी, स्फीत—वृद्धिगत, ऋषभ—सर्वोत्कृष्ट, व्रती—व्रतपरायण, युञ्जमान—सर्वदा कार्यरत, शुचि—निर्मलचित्त, ऊर्ध्वरेता—अखण्डित ब्रह्मचर्यवाले, असुरघ्न—राक्षसोंके विनाशक, स्वाघ्न—निजजनोंके रक्षक, मृत्युघ्न—मृत्यु-संकटको टालनेवाले, यज्ञिय—यज्ञके लिये हितकारी, कृशानु—अपने तेजसे तृण-काष्ठादि वस्तुओंको सूक्ष्म कर देनेवाले, प्रचेता—उत्कृष्ट चेतनावाले, वह्नि—अग्निस्वरूप और निर्मल—जागतिक मलोंसे रहितको नमस्कार है ॥ १४३—१५० ॥

रक्षोघ्नाय पशुघ्नायाविघ्नाय श्वसिताय च । विभ्रान्ताय महान्ताय अत्यन्तं दुर्गमाय च ॥१५१॥
कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च । अनाश्रिताय वेध्याय समत्वाधिष्ठिताय च ॥१५२॥
हिरण्यबाहवे चैव व्याप्ताय च महाय च । सुकर्मणे प्रसह्याय चेशानाय सुचक्षुषे ॥१५३॥
क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च । कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते ॥१५४॥

पवित्रस्वरूप, **रक्षी**—रक्षक, **शीघ्रग**—शीघ्रगामी, **शिखण्डी**—जटाके ऊपर जटाग्र-गुच्छको धारण करनेवाले, **कराल**—भयानक, **दंष्ट्री**—दाढ़वाले, **विश्ववेधा**—विश्वके सृष्टिकर्ता, **भास्वर**—दीप्तिमान् स्वरूपवाले, **प्रतीत**—विख्यात, **सुदीप्त**—परम प्रकाशमान तथा **सुमेधा**—उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्नको नमस्कार है ॥ १३५–१४२ ॥

क्रूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च । सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभाय च ॥१४३॥
अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च । व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे ॥१४४॥
क्षेमाय सहमानाय सत्याय चामृताय च । कर्त्रे परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥१४५॥
सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च । शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे ॥१४६॥
पिशिताशाय शर्वाय मेघाय वैद्युताय च । व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरिताय तरक्षवे ॥१४७॥
त्रिपुरघ्नाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च । तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये ॥१४८॥
रोचमानाय चण्डाय स्फीताय ऋषभाय च । व्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे ॥१४९॥
असुरघ्नाय स्वाघ्नाय मृत्युघ्ने यज्ञियाय च । कृशानवे प्रचेताय वह्नये निर्मलाय च ॥१५०॥

क्रूर—निर्दयी, **अविकृत**—सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओंसे रहित, **भीषण**—भयंकर, **शिव**—धर्मचिन्ता-रहित, **सौम्य**—शान्तस्वरूप, **मुख्य**—सर्वश्रेष्ठ, **धार्मिक**—धर्मका आचरण करनेवाले, **शुभ**—मङ्गलस्वरूप, **अवध्य**—वधके अयोग्य, **अमृत**—मृत्युरहित, **नित्य**—अविनाशी, **शाश्वत**—सनातन स्थायी, **व्यापृत**—कर्मसचिव, **विशिष्ट**—सर्वश्रेष्ठ, **भरत**—लोकोंका भरण-पोषण करनेवाले, **साक्षी**—जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षीरूप, **क्षेम**—मोक्षस्वरूप, **सहमान**—सहनशील, **सत्य**—सत्यस्वरूप, **अमृत**—धन्वन्तरिस्वरूप, **कर्ता**—सबके उत्पादक, **परशु**—परशुधारी, **शूली**—त्रिशूलधारी, **दिव्यचक्षु**—दिव्य नेत्रोंवाले, **सोमप**—सोमरसका पान करनेवाले, **आज्यप**—घृतपायी अथवा एक विशिष्ट पितरस्वरूप, **धूमप**—धूम-पान करनेवाले, **ऊष्मप**—एक विशिष्ट पितरस्वरूप, ऊष्माको पी जानेवाले, **शुचि**—सर्वथा शुद्ध, **परिधान**—ताण्डवके समय साज-सज्जासे विभूषित, **सद्योजात**—पञ्च मूर्तियोंमेंसे एक मूर्ति, तत्काल प्रकट होनेवाले, **मृत्यु**—कालस्वरूप, **पिशिताश**—फलका गूदा खानेवाले, **सर्व**—विश्वात्मा होनेके कारण सर्वस्वरूप, **मेघ**—बादलकी भाँति दाता, **विद्युत्**—बिजलीकी तरह दीप्तिमान्, **व्यावृत्त**—गजचर्म या व्याघ्रचर्मसे आवृत, सबसे अलग मुक्तस्वरूप, **वरिष्ठ**—सर्वश्रेष्ठ, **भरित**—परिपूर्ण, **तरक्षु**—व्याघ्रविशेष, **त्रिपुरघ्न**—त्रिपुरासुरके वधकर्ता, **तीर्थ**—महान् गुरुस्वरूप, **अवक्र**—सौम्य स्वभाववाले, **रोमश**—लम्बी जटाओंवाले, **तिग्मायुध**—तीखे हथियारोंवाले, **व्याख्य**—विशेषरूपसे व्याख्येय या प्रशंसित, **सुसिद्ध**—परम सिद्धिसम्पन्न, **पुलस्ति**—पुलस्त्यऋषिरूप, **रोचमान**—आनन्दप्रद, **चण्ड**—अत्यन्त क्रोधी, **स्फीत**—वृद्धिगत, **ऋषभ**—सर्वोत्कृष्ट, **व्रती**—व्रतपरायण, **युञ्जमान**—सर्वदा कार्यरत, **शुचि**—निर्मलचित्त, **ऊर्ध्वरेता**—अखण्डित ब्रह्मचर्यवाले, **असुरघ्न**—राक्षसोंके विनाशक, **स्वाघ्न**—निजजनोंके रक्षक, **मृत्युघ्न**—मृत्यु-संकटको टालनेवाले, **यज्ञिय**—यज्ञके लिये हितकारी, **कृशानु**—अपने तेजसे तृण-काष्ठादि वस्तुओंको भस्म कर देनेवाले, **प्रचेता**—उत्कृष्ट चेतनावाले, **वह्नि**—अग्निस्वरूप और **निर्मल**—जागतिक मलोंसे रहितको नमस्कार है ॥ १४३–१५० ॥

रक्षोघ्नाय पशुघ्नायाविघ्नाय श्वसिताय च । विभ्रान्ताय महान्ताय अत्यन्तं दुर्गमाय च ॥१५१॥
कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च । अनाश्रिताय वेध्याय समत्वाधिष्ठिताय च ॥१५२॥
हिरण्यबाहवे चैव व्याप्ताय च महाय च । सुकर्मणे प्रसह्याय चेशानाय सुचक्षुषे ॥१५३॥
क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च । कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते ॥१५४॥

स्वामी और **ब्रह्मात्मा**—ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको अभिवादन है। आप **आत्मेश**—मनके स्वामी, आत्मवश्य—मनको वशमें रखनेवाले, **सर्वेशातिशय**—समस्त ईश्वरोंमें सबसे बढ़कर, **सर्वभूताङ्गभूत**—सम्पूर्ण जीवोंके अङ्ग तथा भूतात्मा—समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं, आप नमस्कार है ॥ १५८–१६२ ॥

निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च। निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं योगयात्मने नमः ॥१६३
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय महसे त्रिदिवाय च। जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः ॥१६४
अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च। आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्वात्मने नमः ॥१६५
नित्याय चात्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च। शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः ॥१६६
नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु। सत्यान्तेषु महाद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ॥१६७
नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद् व्याहृतं विभो। मद्भक्त इति ब्रह्मण्य तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१६८

आप **निर्गुण**—सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे परे, **गुणज्ञ**—तीनों गुणोंके रहस्यके ज्ञाता, **व्याकृत**—रूपान्तरित, **अमृत**—अमृतस्वरूप, **निरुपाख्य**—अदृश्य, **मित्र**—जीवोंके हितैषी और **योगात्मा**—योगस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप **पृथिवी**—मृत्युलोक, **अन्तरिक्ष**—अन्तरिक्षलोक, **मह**—महर्लोक, **त्रिदिव्य**—स्वर्गलोक, **जन**—जनलोक, **तपः**—तपोलोक, **सत्य**—सत्यलोक हैं, इस प्रकार **लोकात्मा**—सातों लोकस्वरूप आपको अभिवादन है। आप **अव्यक्त**—निराकाररूप, **महान्**—पूज्य, **भूतादि**—समस्त प्राणियोंके आदिभूत, **इन्द्रिय**—इन्द्रियस्वरूप, **आत्मज्ञ**—आत्मतत्त्वके ज्ञाता, **विशेष**—सर्वाधिक और **सर्वात्मा**—सम्पूर्ण जीवोंके आत्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप **नित्य**—सनातन, **आत्मलिङ्ग**—स्वप्रमाणस्वरूप, **सूक्ष्म**—अणुसे भी अणु, **इतर**—महान्‌से भी महान्, **शुद्ध**—शुद्धज्ञानसम्पन्न, **विभु**—स[र्व]व्यापक और **मोक्षात्मा**—मोक्षरूप हैं, आपको प्रण[ाम] है। यहाँ तीनों लोकोंमें आपके लिये मेरा नमस्कार तथा इनके अतिरिक्त (अन्य) तीन परलोकोंमें भी आपको प्रणाम करता हूँ। इसी प्रकार महर्लोकसे लेक[र] सत्यलोकपर्यन्त चारों लोकोंमें मैं आपको अभिवाद[न] करता हूँ। ब्राह्मणवत्सल विभो! इस स्तोत्रमें [मेरे] द्वारा जो कुछ उचित-अनुचित कहा गया, उ[से] 'यह मेरा भक्त है'—ऐसा जानकर आप क्ष[मा] कर दें ॥ १६३–१६८ ॥

सूत उवाच

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम्। प्रह्वोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाग्यतोऽभवत् ॥१६९॥
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः। निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१७०॥
ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशेऽनुचरीं तदा। तिष्ठन्तीं पार्श्वतो दृष्ट्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥१७१॥
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता। महता तपसा युक्ता किमर्थं मां निषेवसे ॥१७२॥
अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च। स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥१७३॥
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृद्ध्यताम्। तं ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुष्करः ॥१७४॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर शुक्राचार्य देवाधिदेव नीललोहित भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें लोट गये और पुनः विनम्र होकर उनके समक्ष चुपचाप खड़े हो गये। तब शिवजीने हर्षपूर्वक अपने हाथसे शुक्राचार्यके शरीरको सहलाते हुए उन्हें यथेष्ट दर्शन दिया और वे व[हीं] अन्तर्हित हो गये। उन देवेश्वरके अन्तर्हित हो जाने[पर] शुक्राचार्य अपने पार्श्व भागमें खड़ी हुई सेविका जयन्ती[को] देखकर उससे इस प्रकार बोले—'सुभगे! तुम कौन हो अथवा किसकी पुत्री हो, जो मेरे तपस्यामें निरत

स्वामी और **ब्रह्मात्मा**—ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको अभिवादन है। आप **आत्मेश**—मनके स्वामी, आत्मवश्य—मनको वशमें रखनेवाले, **सर्वेशातिशय**—समस्त ईश्वरोंमें सबसे बढ़कर, **सर्वभूताङ्गभूत**—सम्पूर्ण जीवोंके अङ्गभूत तथा भूतात्मा—समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं, आपको नमस्कार है ॥ १५८—१६२ ॥

निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च। निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं योगात्मने नमः ॥१६३॥
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय महसे त्रिदिवाय च। जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः ॥१६४॥
अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च। आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्वात्मने नमः ॥१६५॥
नित्याय चात्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च। शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः ॥१६६॥
नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु। सत्यान्तेषु महाद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ॥१६७॥
नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद् व्याहृतं विभो। मद्भक्त इति ब्रह्मण्य तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१६८॥

आप **निर्गुण**—सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे परे, **गुणज्ञ**—तीनों गुणोंके रहस्यके ज्ञाता, **व्याकृत**—रूपान्तरित, **अमृत**—अमृतस्वरूप, **निरुपाख्य**—अदृश्य, **मित्र**—जीवोंके हितैषी और **योगात्मा**—योगस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप **पृथिवी**—मृत्युलोक, **अन्तरिक्ष**—अन्तरिक्षलोक, **मह**—महर्लोक, **त्रिदिव**—स्वर्गलोक, **जन**—जनलोक, **तपः**—तपोलोक, **सत्य**—सत्यलोक हैं, इस प्रकार **लोकात्मा**—सातों लोकस्वरूप आपको अभिवादन है। आप **अव्यक्त**—निराकाररूप, **महान्**—पूज्य, **भूतादि**—समस्त प्राणियोंके आदिभूत, **इन्द्रिय**—इन्द्रियस्वरूप, **आत्मज्ञ**—आत्मतत्त्वके ज्ञाता, **विशेष**—सर्वाधिक और **सर्वात्मा**—सम्पूर्ण जीवोंके आत्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप **नित्य**—सनातन, **आत्मलिङ्ग**—स्वप्रमाणस्वरूप, **सूक्ष्म**—अणुसे भी अणु, **इतर**—महान्से भी महान्, **शुद्ध**—शुद्धज्ञानसम्पन्न, **विभु**—सर्वव्यापक और **मोक्षात्मा**—मोक्षरूप हैं, आपको प्रणाम है। यहाँ तीनों लोकोंमें आपके लिये मेरा नमस्कार है तथा इनके अतिरिक्त (अन्य) तीन परलोकोंमें भी मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इसी प्रकार महर्लोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त चारों लोकोंमें मैं आपको अभिवादन करता हूँ। ब्राह्मणवत्सल विभो! इस स्तोत्रमें मेरे द्वारा जो कुछ उचित-अनुचित कहा गया, उसे 'यह मेरा भक्त है'—ऐसा जानकर आप क्षमा कर दें ॥ १६३—१६८ ॥

सूत उवाच

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम्। प्रह्वोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाग्यतोऽभवत् ॥१६९॥
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः। निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१७०॥
ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशेऽनुचरीं तदा। तिष्ठन्तीं पार्श्वतो दृष्ट्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥१७१॥
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता। महता तपसा युक्ता किमर्थं मां निषेवसे ॥१७२॥
अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च। स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥१७३॥
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृद्ध्यताम्। तं ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुष्करः ॥१७४॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर शुक्राचार्य देवाधिदेव नीललोहित भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें लोट गये और पुनः विनम्र होकर उनके समक्ष चुपचाप खड़े हो गये। तब शिवजीने हर्षपूर्वक अपने हाथसे शुक्राचार्यके शरीरको सहलाते हुए उन्हें यथेष्ट दर्शन दिया और वे वहीं अन्तर्हित हो गये। उन देवेश्वरके अन्तर्हित हो जानेपर शुक्राचार्य अपने पार्श्व भागमें खड़ी हुई सेविका जयन्तीको देखकर उससे इस प्रकार बोले—'सुभगे! तुम कौन हो अथवा किसकी पुत्री हो, जो मेरे तपस्यामें लित

ानो ! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुमलोगोंके लिये तपोवनसे लौट आया हूँ। वहाँ मुझे प्राप्त हुई हैं, उन्हें मैं तुमलोगोंको पढ़ाऊँगा।' ् वे सभी प्रसन्नमनसे विद्या-प्राप्तिके लिये वहाँ गये। उधर जब वह दस वर्षका निश्चित हो गया, तब शुक्राचार्यने अपने यजमानोंकी लेनेका विचार किया। इसी समयकी समाप्तिपर गर्भसे) देवयानी उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। (तब वे जयन्तीसे बोले—) 'पावन मुसकानवाली देवि! तुम्हारे नेत्र तो विभ्रान्तसे एवं बड़े हैं तथा तुम्हारी दृष्टि चञ्चल है, साध्वि! अब मैं तुम्हारे यजमानोंकी देख-भाल करनेके लिये जा रहा हूँ।' यों कहे जानेपर जयन्तीने शुक्राचार्यसे कहा—'महाव्रत! आप अपने भक्तोंका अवश्य भला कीजिये; क्योंकि यही सत्पुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मन्! मैं आपके धर्मका लोप नहीं करना चाहती' ॥ १८२—१८८ ॥

गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता। वञ्चितान् काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान् ॥ १८९ ॥
मां वो विजानीध्वं तोषितो गिरिशो विभुः। वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः ॥ १९० ॥
तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्तास्ते तदाभवन्। प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः ॥ १९१ ॥
मूढास्ततः सर्वे न प्राबुध्यन्त किंचन। अब्रवीत् सम्प्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा ॥ १९२ ॥
र्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः। अनुगच्छत मां दैत्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥ १९३ ॥
ता ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्य च। यदासुरा विशेषं तु न जानन्त्युभयोस्तयोः ॥ १९४ ॥
तिरुवाचैनानसम्भ्रान्तस्तपोधनः। काव्यो वोऽहं गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ १९५ ॥
सम्मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः।

तर असुरोंके निकट पहुँचकर शुक्राचार्यने खा कि बुद्धिमान् देवाचार्य बृहस्पतिने मेरा कर असुरोंको ठग लिया है, तब वे असुरोंसे नवो! तुमलोग ध्यानपूर्वक सुन लो। अपनी भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेवाला शुक्राचार्य झे ही तुमलोग अपना गुरुदेव शुक्राचार्य हस्पतिद्वारा तुम सब लोग ठग लिये गये ाचार्यको वैसा कहते हुए सुनकर उस समय अत्यन्त भ्रममें पड़ गये और आश्चर्यचकित हो हुए उन दोनोंकी ओर निहारते ही रह गये। व्यविमूढ़ हो गये थे। उस समय उनकी छ भी नहीं आ रहा था। इस प्रकार उनके किंकर्तव्यविमूढ़ हो जानेपर शुक्राचार्यने उन असुरोंसे कहा—'असुरो! तुमलोगोंका आचार्य शुक्राचार्य मैं हूँ और ये देवताओंके आचार्य बृहस्पति हैं। इसलिये तुमलोग इन बृहस्पतिका त्याग कर दो और मेरा अनुगमन करो।' शुक्राचार्यके यों समझानेपर असुरगण उन दोनोंकी ओर ध्यानपूर्वक निहारने लगे, परंतु जब उन्हें उन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत हुई, तब तपस्वी बृहस्पति धैर्यपूर्वक उन असुरोंसे बोले—'दैत्यो! तुमलोगोंका गुरु शुक्राचार्य मैं हूँ और मेरा रूप धारण करनेवाले ये बृहस्पति हैं। असुरो! ये मेरा रूप धारणकर तुमलोगोंको मोहमें डाल रहे हैं' ॥ १८९—१९५½ ॥

श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समेत्य तु ततोऽब्रुवन् ॥ १९६ ॥
नो दशवर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः। एष वै गुरुरस्माकमन्तरे स्फुरयन् द्विजः ॥ १९७ ॥
ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च। वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ॥ १९८ ॥
तमसुराः सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः। अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ॥ १९९ ॥
ो वाङ्गिरा वापि भगवानेष नो गुरुः। स्थिता वयं निदेशेऽस्य साधु त्वं गच्छ मा चिरम् ॥ २०० ॥
ुक्त्वासुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम्। यदा न प्रत्यपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्धितम् ॥ २०१ ॥

'मेरे यजमानो! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुमलोगोंके कल्याणके लिये तपोवनसे लौट आया हूँ। वहाँ मुझे जो विद्याएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हें मैं तुमलोगोंको पढ़ाऊँगा।' यह सुनकर वे सभी प्रसन्नमनसे विद्या-प्राप्तिके लिये वहाँ एकत्र हो गये। उधर जब वह दस वर्षका निश्चित समय पूर्ण हो गया, तब शुक्राचार्यने अपने यजमानोंकी खोज-खबर लेनेका विचार किया। इसी समयकी समाप्तिपर (जयन्तीके गर्भसे) देवयानी उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। (तब वे जयन्तीसे बोले—) 'पावन मुसकानवाली देवि! तुम्हारे नेत्र तो विभ्रान्तसे एवं बड़े हैं तथा तुम्हारी दृष्टि चञ्चल है, साध्वि! अब मैं तुम्हारे यजमानोंकी देख-भाल करनेके लिये जा रहा हूँ।' यों कहे जानेपर जयन्तीने शुक्राचार्यसे कहा—'महाव्रत! आप अपने भक्तोंका अवश्य भला कीजिये; क्योंकि यही सत्पुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मन्! मैं आपके धर्मका लोप नहीं करना चाहती' ॥ १८२—१८८॥

ततो गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता। वञ्चितान् काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान् ॥१८९॥
काव्यं मां वो विजानीध्वं तोषितो गिरिशो विभुः। वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः ॥१९०॥
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्तास्ते तदाभवन्। प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः ॥१९१॥
सम्प्रमूढास्ततः सर्वे न प्राबुध्यन्त किंचन। अब्रवीत् सम्प्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा ॥१९२॥
आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः। अनुगच्छत मां दैत्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥१९३॥
इत्युक्ता ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्य च। यदासुरा विशेषं तु न जानन्त्युभयोस्तयोः ॥१९४॥
बृहस्पतिरुवाचैनानसम्भ्रान्तस्तपोधनः। काव्यो वोऽहं गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥१९५॥
सम्मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः।

तदनन्तर असुरोंके निकट पहुँचकर शुक्राचार्यने जब यह देखा कि बुद्धिमान् देवाचार्य बृहस्पतिने मेरा रूप धारणकर असुरोंको ठग लिया है, तब वे असुरोंसे बोले—'दानवो! तुमलोग ध्यानपूर्वक सुन लो। अपनी तपस्याद्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेवाला शुक्राचार्य मैं हूँ। मुझे ही तुमलोग अपना गुरुदेव शुक्राचार्य समझो। बृहस्पतिद्वारा तुम सब लोग ठग लिये गये हो।' शुक्राचार्यको वैसा कहते हुए सुनकर उस समय वे सभी अत्यन्त भ्रममें पड़ गये और आश्चर्यचकित हो वहाँ बैठे हुए उन दोनोंकी ओर निहारते ही रह गये। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। उस समय उनकी समझमें कुछ भी नहीं आ रहा था। इस प्रकार उनके किंकर्तव्यविमूढ़ हो जानेपर शुक्राचार्यने उन असुरोंसे कहा—'असुरो! तुमलोगोंका आचार्य शुक्राचार्य मैं हूँ और ये देवताओंके आचार्य बृहस्पति हैं। इसलिये तुमलोग इन बृहस्पतिका त्याग कर दो और मेरा अनुगमन करो।' शुक्राचार्यके यों समझानेपर असुरगण उन दोनोंकी ओर ध्यानपूर्वक निहारने लगे, परंतु जब उन्हें उन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत हुई, तब तपस्वी बृहस्पति धैर्यपूर्वक उन असुरोंसे बोले—'दैत्यो! तुमलोगोंका गुरु शुक्राचार्य मैं हूँ और मेरा रूप धारण करनेवाले ये बृहस्पति हैं। असुरो! ये मेरा रूप धारणकर तुमलोगोंको मोहमें डाल रहे हैं' ॥ १८९—१९५½ ॥

श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समेत्य तु ततोऽब्रुवन् ॥१९६॥
अयं नो दशवर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः। एष वै गुरुरस्माकमन्तरे स्फुरयन् द्विजः ॥१९७॥
ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च। वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ॥१९८॥
ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः। अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ॥१९९॥
भार्गवो वाङ्गिरा वापि भगवानेष नो गुरुः। स्थिता वयं निदेशेऽस्य साधु त्वं गच्छ मा चिरम् ॥२००॥
एवमुक्त्वासुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम्। यदा न प्रत्यपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्धितम् ॥२०१॥

गये। तब अपने यजमानोंको पुनः आया देखकर शुक्राचार्यने उनसे कहा—'दानवो ! चूँकि मेरेद्वारा भलीभाँति समझाये जानेपर भी तुम सब लोगोंने मेरा अभिनन्दन नहीं किया, इसलिये मेरे प्रति किये हुए उस अपमानके कारण तुमलोग पराभवको प्राप्त हुए हो।' शुक्राचार्यके यों कहनेपर प्रह्लादकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। तब वे गद्गद वाणीद्वारा उनसे प्रार्थना करते हुए बोले—'भृगुनन्दन ! आप हमलोगोंका परित्याग न करें। भार्गव ! हमलोग आपके आश्रित, सेवक और भक्त हैं, इसलिये आप हमें अपनाइये। आपके अदृष्ट हो जानेपर देवाचार्य बृहस्पतिने हमलोगोंको मोहमें डाल दिया था। आप अपनी दीर्घकालिक तपस्याद्वारा अर्जित दिव्यदृष्टि-द्वारा स्वयं अपने भक्तोंको जान सकते हैं। भृगुनन्दन ! यदि आप हमलोगोंपर कृपा नहीं करेंगे और हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन ही करते रहेंगे तो हमलोग आज ही रसातलमें प्रवेश कर जायँगे' ॥२०४–२१२॥

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया।
एवं प्रत्यनुनीतो वै ततः कोपं नियम्य सः। उवाचैतान् न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् ॥२१३॥
अवश्यं भाविनो ह्यर्थाः प्राप्तव्या मयि जाग्रति। न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम् ॥२१४॥
संज्ञा प्रणष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिपत्स्यथ। देवाञ्जित्वा सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥२१५॥
प्राप्ते पर्यायकाले च हीति ब्रह्माभ्यभाषत। मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरूर्जितम् ॥२१६॥
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि। एतावन्तं च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥२१७॥
राज्यं सावर्णिके तुभ्यं पुनः किल भविष्यति। लोकानामीश्वरो भाव्यस्तव पौत्रः पुनर्बलिः ॥२१८॥
एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम्। वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन् किल ॥२१९॥
यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसंधिताः। तस्माद् वृत्तेन प्रीतेन तुभ्यं दत्तं स्वयम्भुवा ॥२२०॥
देवराज्ये बलिर्भाव्य इति मामीश्वरोऽब्रवीत्। तस्माददृश्यो भूतानां कालापेक्षः स तिष्ठति ॥२२१॥
प्रीतेन चापरो दत्तो वरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा। तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहितोऽसुरैः ॥२२२॥
न हि शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद् विप्रभाषितुम्। ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यं जानता विभो ॥२२३॥
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पतेः। दैवतैः सह संसृष्टान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥२२४॥

इस प्रकार अनुनय-विनय किये जानेपर शुक्राचार्यने दिव्यदृष्टिद्वारा यथार्थ तत्त्वको समझ लिया, तब उनके हृदयमें करुणा एवं अनुकम्पा उमड़ आयी और वे उमड़े हुए क्रोधको रोककर उन असुरोंसे इस प्रकार बोले—'प्रह्लाद ! न तो तुमलोग डरो और न रसातलको ही जाओ। यों तो जो अवश्यम्भावी इष्ट-अनिष्ट कार्य हैं, वे तो मेरे जागरूक रहनेपर भी तुमलोगोंको प्राप्त होंगे ही, उन्हें अन्यथा नहीं किया जा सकता; क्योंकि दैवका विधान सबसे बलवान् होता है। मेरे शापानुसार तुमलोगोंकी जो चेतना नष्ट हो गयी है, उसे तो तुमलोग आज ही प्राप्त कर लोगे। साथ ही विपरीत समय आनेपर तुमलोगोंको देवताओंपर विजय पा लेनेपर भी एक बार पातालमें जाना पड़ेगा; क्योंकि ब्रह्माने पहले ही ऐसा बतलाया है। मेरी ही कृपासे तुमलोगोंने देवताओंके मस्तकपर पैर रखकर समूचे दस युगपर्यन्त त्रिलोकीके ऊर्जस्वी राज्यका उपभोग किया है। इतने ही दिनोंतक ब्रह्माने तुमलोगोंका राज्यकाल बतलाया था। सावर्णि-मन्वन्तरमें पुनः तुमलोगोंका राज्य होगा। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि त्रिलोकीका अधीश्वर होगा। ऐसा स्वयं भगवान् विष्णुने वाणीद्वारा त्रिलोकीके अपहरण कर लेनेपर तुम्हारे पौत्रसे परस्पर वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा था। वे सारी बातें अब उसके लिये घटित होंगी। चूँकि इसकी प्रवृत्तियाँ दस वर्षोंतक उत्तम बनी रहीं,

गये । तब अपने यजमानोंको पुनः आया देखकर शुक्राचार्यने उनसे कहा—'दानवो ! चूँकि मेरेद्वारा भलीभाँति समझाये जानेपर भी तुम सब लोगोंने मेरा अभिनन्दन नहीं किया, इसलिये मेरे प्रति किये हुए उस अपमानके कारण तुमलोग पराभवको प्राप्त हुए हो ।' शुक्राचार्यके यों कहनेपर प्रह्लादकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये । तब वे गद्गद वाणीद्वारा उनसे प्रार्थना करते हुए बोले—'भृगुनन्दन ! आप हमलोगोंका परित्याग न करें । भार्गव ! हमलोग आपके आश्रित, सेवक और भक्त हैं, इसलिये आप हमें अपनाइये । आपके अदृष्ट हो जानेपर देवाचार्य बृहस्पतिने हमलोगोंको मोहमें डाल दिया था। आप अपनी दीर्घकालिक तपस्याद्वारा अर्जित दिव्यदृष्टि-द्वारा स्वयं अपने भक्तोंको जान सकते हैं । भृगुनन्दन ! यदि आप हमलोगोंपर कृपा नहीं करेंगे और हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन ही करते रहेंगे तो हमलोग आज ही रसातलमें प्रवेश कर जायँगे' ॥२०४—२१२॥

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया ।
एवं प्रत्यनुनीतो वै ततः कोपं नियम्य सः । उवाचैतान् न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् ॥२१३॥
अवश्यं भाविनो ह्यर्थाः प्राप्तव्या मयि जाग्रति । न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम् ॥२१४॥
संज्ञा प्रणष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिपत्स्यथ । देवाञ्जित्वा सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥२१५॥
प्राप्ते पर्यायकाले च हीति ब्रह्माभ्यभाषत । मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरूर्जितम् ॥२१६॥
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि । एतावन्तं च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥२१७॥
राज्यं सावर्णिके तुभ्यं पुनः किल भविष्यति । लोकानामीश्वरो भाव्यस्तव पौत्रः पुनर्बलिः ॥२१८॥
एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम् । वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन् किल ॥२१९॥
यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसंधिताः । तस्माद् वृत्तेन प्रीतेन तुभ्यं दत्तं स्वयम्भुवा ॥२२०॥
देवराज्ये बलिर्भाव्य इति मामीश्वरोऽब्रवीत् । तस्माददृश्यो भूतानां कालापेक्षः स तिष्ठति ॥२२१॥
प्रीतेन चापरो दत्तो वरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा । तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहितोऽसुरैः ॥२२२॥
न हि शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद् विप्रभाषितुम् । ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यं जानता विभो ॥२२३॥
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पतेः । दैवतैः सह संसृष्टान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥२२४॥

इस प्रकार अनुनय-विनय किये जानेपर शुक्राचार्यने दिव्यदृष्टिद्वारा यथार्थ तत्त्वको समझ लिया, तब उनके हृदयमें करुणा एवं अनुकम्पा उमड़ आयी और वे उमड़े हुए क्रोधको रोककर उन असुरोंसे इस प्रकार बोले—'प्रह्लाद ! न तो तुमलोग डरो और न रसातलको ही जाओ । यों तो जो अवश्यम्भावी इष्ट-अनिष्ट कार्य हैं, वे तो मेरे जागरूक रहनेपर भी तुमलोगोंको प्राप्त होंगे ही, उन्हें अन्यथा नहीं किया जा सकता; क्योंकि दैवका विधान सबसे बलवान् होता है । मेरे शापानुसार तुमलोगोंकी जो चेतना नष्ट हो गयी है, उसे तो तुमलोग आज ही प्राप्त कर लोगे । साथ ही विपरीत समय आनेपर तुमलोगोंको देवताओंपर विजय पा लेनेपर भी एक बार पातालमें जाना पड़ेगा; क्योंकि ब्रह्माने पहले ही ऐसा बतलाया है । मेरी ही कृपासे तुमलोगोंने देवताओंके मस्तकपर पैर रखकर समूचे दस युगपर्यन्त त्रिलोकीके ऊर्जस्वी राज्यका उपभोग किया है । इतने ही दिनोंतक ब्रह्माने तुमलोगोंका राज्यकाल बतलाया था । सावर्णि-मन्वन्तरमें पुनः तुमलोगोंका राज्य होगा । उस समय तुम्हारा पौत्र बलि त्रिलोकीका अधीश्वर होगा । ऐसा स्वयं भगवान् विष्णुने वाणीद्वारा त्रिलोकीके अपहरण कर लेनेपर तुम्हारे पौत्रसे परस्पर वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा था । वे सारी बातें अब उसके लिये घटित होंगी । चूँकि इसकी प्रवृत्तियाँ दस वर्षोंतक उत्तम बनी रहीं,

उस समय दैत्यगण मारे गये । अवशिष्ट दैत्यगण शुक्राचार्यके शापसे अभिभूत होनेके कारण जब सब ओरसे निराधार हो गये, साथ ही देवताओंने उन्हें खदेड़ना आरम्भ किया, तब वे विवश होकर रसातलमें प्रविष्ट हो गये । इस प्रकार देवगण दानवोंको बड़ी कठिनाईसे उद्यमहीन अर्थात् युद्ध-विमुख कर पाये । तभीसे शुक्राचार्यके नैमित्तिक शापके कारण धर्मका विशेषरूपसे ह्रास हो जानेपर धर्मकी पुनः स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके लिये भगवान् विष्णु बारंबार अवतीर्ण होते रहे ॥ २२५–२३५ ॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु न स्थास्यन्त्यसुराश्च ये । मनुष्यवध्यास्ते सर्वे ब्रह्मेति व्याहरत् प्रभुः ॥२३६॥
धर्मान्नारायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे । यज्ञं प्रवर्तयामासदेवो वैवस्वतेऽन्तरे ॥२३७॥
प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्मा ह्यासीत् पुरोहितः । युगाख्यायां चतुर्थ्यां तु आपन्नेषु सुरेषु वै ॥२३८॥
सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे । द्वितीये नरसिंहाख्ये रुद्रो ह्यासीत् पुरोहितः ॥२३९॥
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमं प्रति । दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥२४०॥
एतास्तिस्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः । मानुषाः सप्त यान्यास्तु शापतस्ता निबोधत ॥२४१॥
त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह । नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरःसरः ॥२४२॥
पञ्चमः पञ्चदश्यां च त्रेतायां सम्बभूव ह । मान्धाता चक्रवर्ती तु तस्थौतथ्यपुरःसरः ॥२४३॥
एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद् विभुः । जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः ॥२४४॥
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा । सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥२४५॥
अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशो पराशरात् । वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥२४६॥

पूर्वकालमें सामर्थ्यशाली ब्रह्माने प्रसङ्गवश ऐसा कहा था कि जो असुर प्रह्लादकी आज्ञाके वशीभूत नहीं रहेंगे, वे सभी मनुष्योंके हाथों मारे जायँगे । चाक्षुष-मन्वन्तरमें धर्मके अंशसे साक्षात् भगवान् नारायणका अवतार हुआ था । अपने प्रादुर्भावके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरमें उन्होंने एक यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया था; उस यज्ञके पुरोहित ब्रह्मा थे । चौथे तामस-मन्वन्तरमें देवताओंके विपत्तिग्रस्त हो जानेपर हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये समुद्रतटपर नृसिंहका अवतार हुआ था । इस द्वितीय नृसिंहावतारमें रुद्र पुरोहित-पदपर आसीन थे । सातवें वैवस्वत-मन्वन्तरके त्रेतायुगमें, जब त्रिलोकीपर बलिका अधिकार था, उस समय तीसरा वामन-अवतार हुआ था । (उस कार्यकालमें धर्म पुरोहितका पद सँभाल रहे थे ।) द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी ये तीन दिव्य उत्पत्तियाँ बतलायी गयी हैं । अब अन्य सात सम्भूतियाँ, जो भृगुके शापवश मानव-योनिमें हुई हैं, उन्हें सुनिये । प्रथम त्रेतायुगमें, जब धर्मका चतुर्थांश नष्ट हो गया था, भगवान् मार्कण्डेयको पुरोहित बनाकर दत्तात्रेयके रूपमें अवतीर्ण हुए थे । पंद्रहवें त्रेतायुगमें चक्रवर्ती मान्धाताके रूपमें पाँचवाँ अवतार हुआ था । उस समय पुरोहितका पद महर्षि तथ्य (उतथ्य) को मिला था । उन्नीसवें त्रेतायुगमें छठा अवतार जमदग्निनन्दन महाबली परशुराम-के रूपमें हुआ था, जो सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशके संहारक थे । उस समय महर्षि विश्वामित्र आदि सहायक बने थे । चौबीसवें त्रेतायुगमें सातवें अवतारके रूपमें रावणका वध करनेके लिये भगवान् श्रीराम महाराज दशरथके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए थे । उस समय महर्षि वसिष्ठ पुरोहित थे । अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें आठवें अवतारमें भगवान् विष्णु महर्षि पराशरसे वेदव्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए । उस समय जातूकर्ण्यने पुरोहित-पदको सुशोभित किया ॥

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।
बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः । देवसुन्दररूपेण द्वैपायनपुरःसरः ॥२४७॥

उस समय दैत्यगण मारे गये। अवशिष्ट दैत्यगण शुक्राचार्यके शापसे अभिभूत होनेके कारण जब सब ओरसे निराधार हो गये, साथ ही देवताओंने उन्हें खदेड़ना आरम्भ किया, तब वे विवश होकर रसातलमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार देवगण दानवोंको बड़ी कठिनाईसे उद्यमहीन अर्थात् युद्ध-विमुख कर पा तभीसे शुक्राचार्यके नैमित्तिक शापके कारण धर्म विशेषरूपसे ह्रास हो जानेपर धर्मकी पुनः स्थापना असुरोंका विनाश करनेके लिये भगवान् विष्णु बार अवतीर्ण होते रहे ॥ २२५–२३५ ॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु न स्थास्यन्त्यसुराश्च ये। मनुष्यवध्यास्ते सर्वे ब्रह्मेति व्याहरत् प्रभुः ॥२३
धर्मान्नारायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे। यज्ञं प्रवर्तयामासदेवो वैवस्वतेऽन्तरे ॥२३
प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्मा ह्यासीत् पुरोहितः। युगाख्यायां चतुर्थ्यां तु आपन्नेषु सुरेषु वै ॥२३
सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे। द्वितीये नरसिंहाख्ये रुद्रो ह्यासीत् पुरोहितः ॥२३
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमं प्रति। दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥२४
एतास्तिस्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः। मानुषाः सप्त यान्यास्तु शापतस्ता निबोधत ॥२४
त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह। नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरःसरः ॥२४
पञ्चमः पञ्चदश्यां च त्रेतायां सम्बभूव ह। मान्धाता चक्रवर्ती तु तस्थौतथ्यपुरःसरः ॥२४
एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद् विभुः। जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः ॥२४
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा। सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥२४
अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्। वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥२४

पूर्वकालमें सामर्थ्यशाली ब्रह्माने प्रसङ्गवश ऐसा कहा था कि जो असुर प्रह्लादकी आज्ञाके वशीभूत नहीं रहेंगे, वे सभी मनुष्योंके हाथों मारे जायँगे। चाक्षुष-मन्वन्तरमें धर्मके अंशसे साक्षात् भगवान् नारायणका अवतार हुआ था। अपने प्रादुर्भावके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरमें उन्होंने एक यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया था; उस यज्ञके पुरोहित ब्रह्मा थे। चौथे तामस-मन्वन्तरमें देवताओंके विपत्तिग्रस्त हो जानेपर हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये समुद्रतटपर नृसिंहका अवतार हुआ था। इस द्वितीय नृसिंहावतारमें रुद्र पुरोहित-पदपर आसीन थे। सातवें वैवस्वत-मन्वन्तरके त्रेतायुगमें, जब त्रिलोकीपर बलिका अधिकार था, उस समय तीसरा वामन-अवतार हुआ था। (उस कार्यकालमें धर्म पुरोहितका पद सँभाल रहे थे।) द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी ये तीन दिव्य उत्पत्तियाँ बतलायी गयी हैं। अब अन्य सात सम्भूतियाँ, जो भृगुके शापवश मानव-योनिमें हुई हैं, उन्हें सुनिे प्रथम त्रेतायुगमें, जब धर्मका चतुर्थांश नष्ट हो ग था, भगवान् मार्कण्डेयको पुरोहित बनाकर दत्तात्रेय रूपमें अवतीर्ण हुए थे। पंद्रहवें त्रेतायुगमें चक्र मान्धाताके रूपमें पाँचवाँ अवतार हुआ था। उस स पुरोहितका पद महर्षि तथ्य (उत्तथ्य) को मिला था। उन्नी त्रेतायुगमें छठा अवतार जमदग्निनन्दन महाबली परशुरा के रूपमें हुआ था, जो सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशके संहार थे। उस समय महर्षि विश्वामित्र आदि सहायक बने थे चौबीसवें त्रेतायुगमें सातवें अवतारके रूपमें रावण बध करनेके लिये भगवान् श्रीराम महाराज दशरथके पु रूपमें उत्पन्न हुए थे। उस समय महर्षि वसिष्ठ पुरोहि थे। अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें आठवें अवतारमें भगवा विष्णु महर्षि पराशरसे वेदव्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए उस समय जातूकर्ण्यने पुरोहित-पदको सुशोभित किया

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः। देवसुन्दररूपेण द्वैपायनपुरःसरः ॥२४७

बेकने लगेंगी और स्त्रियाँ अपने शीलका विक्रय करेंगी अर्थात् वेश्या-कर्ममें प्रवृत्त हो जायँगी। लोगोंके कद छोटे होंगे। उनकी आयु स्वल्प होगी। वे वनमें तथा नदी-तट और पर्वतोंपर निवास करेंगे। कन्द-मूल, पत्तियाँ और फल ही उनके भोजन होंगे। वल्कल, पशु-चर्म और मृगचर्म ही उनके वस्त्र होंगे। वे सभी भयंकर वर्णसंकरत्वके आश्रित हो जायँगे। तरह-तरहके उपद्रवोंसे दुःखी रहेंगे। उनकी धन-सम्पत्ति घट जायगी और वे अनेकों बाधाओंसे घिरे रहेंगे। इस प्रकार कष्टका अनुभव करती हुई वे सारी प्रजाएँ उस संध्यांशके समय कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायँगी। इस कलियुगके व्यतीत हो जानेपर कृतयुगका प्रारम्भ होगा। इस प्रकार मैंने पूर्णरूपसे देवताओं और असुरोंकी चेष्टाका तथा यदुवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें संक्षेपरूपसे भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)के यशका वर्णन कर दिया। अब मैं तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु और अनुके वंशका क्रमशः वर्णन करूँगा॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें असुर-शाप-नामक सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

तुर्वसु और द्रुह्युके वंशका वर्णन, अनुके वंश-वर्णनमें बलिकी कथा और कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः॥ १॥
करंधमस्तु त्रैसारिर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः। दुष्यन्तं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत्॥ २॥
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा। तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल॥ ३॥
दुष्यन्तस्य तु दायादो वरूथो नाम पार्थिवः। वरूथात् तु तथाण्डीरः संधानस्तस्य चात्मजः॥ ४॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च। तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः॥ ५॥
द्रुह्योस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च। सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चात्मजः॥ ६॥
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गान्धारविषयो महान्। आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः॥ ७॥
गन्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्यात्मजोऽभवत्। धृताच्च विदुषो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः॥ ८॥
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते। म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः॥ ९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (ययातिके पञ्चम पुत्र) तुर्वसुका पुत्र गर्भ* और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानुका पुत्र अजेय शूरवीर त्रिसारि हुआ। त्रैसारिका† पुत्र करंधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। उसने (संतानरहित होनेके कारण) पुरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें वृद्धावस्थाके परिवर्तनके समय ययातिद्वारा दिये गये शापके कारण तुर्वसुका वंश पूरु-वंशमें प्रविष्ट हो गया था।‡ दुष्यन्तका पुत्र राजा वरूथ§ था। वरूथसे आण्डीर (भुवमन्यु)की उत्पत्ति हुई। आण्डीरके संधान, पाण्ड्य,

* ऋग्वेदमें यह तुर्वश है और ४। ३०। १६ से १०। ६२। १० तक निरन्तर अपने सभी उपर्युक्त भाइयोंके साथ वर्णित है। भागवत ९। २३। १६ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ३ आदिमें तुर्वसके पुत्रका नाम 'वह्नि' और उसके पुत्रका नाम 'गोभानु'की जगह 'भर्ग' बतलाया गया है। † अन्यत्र प्रायः सर्वत्र इसका 'त्रिसारि'की जगह 'त्रिभानु' नाम आया है। ‡ तुर्वसुके वंशके पौरव वंशमें प्रविष्ट होनेकी कथा सभी पुराणोंमें (विशेषकर वायु ९९। ५, ब्रह्माण्ड-३। ७५। ७ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ६में बहुत) स्पष्ट रूपसे आयी है।

§ इनके दूसरे नाम वितथ एवं भरद्वाज भी हैं।

कने लगेंगी और स्त्रियाँ अपने शीलका विक्रय करेंगी र्थात् वेश्या-कर्ममें प्रवृत्त हो जायँगी। लोगोंके कद टे होंगे। उनकी आयु स्वल्प होगी। वे वनमें तथा ी-तट और पर्वतोंपर निवास करेंगे। कन्द-मूल, पत्तियाँ र फल ही उनके भोजन होंगे। वल्कल, पशु-चर्म र मृगचर्म ही उनके वस्त्र होंगे। वे सभी भयंकर ंसंकरत्वके आश्रित हो जायँगे। तरह-तरहके उपद्रवोंसे खी रहेंगे। उनकी धन-सम्पत्ति घट जायगी और वे अनेकों बाधाओंसे घिरे रहेंगे। इस प्रकार कष्टका अनुभव करती हुई वे सारी प्रजाएँ उस संध्यांशके समय कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायँगी। इस कलियुगके व्यतीत हो जानेपर कृतयुगका प्रारम्भ होगा। इस प्रकार मैंने पूर्णरूपसे देवताओं और असुरोंकी चेष्टाका तथा यदुवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें संक्षेपरूपसे भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)के यशका वर्णन कर दिया। अब मैं तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु और अनुके वंशका क्रमशः वर्णन करूँगा॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें असुर-शाप-नामक सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

तुर्वसु और द्रुह्युके वंशका वर्णन, अनुके वंश-वर्णनमें बलिकी कथा और कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः॥ १॥
करंधमस्तु त्रैसारिर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः। दुष्यन्तं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत्॥ २॥
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा। तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल॥ ३॥
दुष्यन्तस्य तु दायादो वरूथो नाम पार्थिवः। वरूथात् तु तथाण्डीरः संधानस्तस्य चात्मजः॥ ४॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च। तेषां जनपदाः स्फीताः पाड्याश्चोलाः सकेरलाः॥ ५॥
द्रुह्योस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च। सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चात्मजः॥ ६॥
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गान्धारविषयो महान्। आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः॥ ७॥
गन्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्यात्मजोऽभवत्। धृताच्च विदुषो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः॥ ८॥
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते। म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः॥ ९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (ययातिके पञ्चम) तुर्वसुका पुत्र गर्भ* और उसका पुत्र गोभानु ा। गोभानुका पुत्र अजेय शूरवीर त्रिसारि हुआ। सारिका† पुत्र करंधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। ने (संतानरहित होनेके कारण) पुरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें वृद्धावस्थाके परिवर्तनके समय ययातिद्वारा दिये गये शापके कारण तुर्वसुका वंश पूरु-वंशमें प्रविष्ट हो गया था।‡ दुष्यन्तका पुत्र राजा वरूथ§ था। वरूथसे आण्डीर (भुवमन्यु)की उत्पत्ति हुई। आण्डीरके संधान, पाण्ड्य,

* ऋग्वेदमें यह तुर्वश है और ४। ३०। १६ से १०। ६२। १० तक निरन्तर अपने सभी उपर्युक्त भाइयोंके थ वर्णित है। भागवत ९। २३। १६ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ३ आदिमें तुर्वसुके पुत्रका नाम 'वह्नि' और उसके का नाम 'गोभानु'की जगह 'भर्ग' बतलाया गया है। † अन्यत्र प्रायः सर्वत्र इसका 'त्रिसारि'की जगह 'त्रिभानु' नाम या है। ‡ तुर्वसुके वंशके पौरव वंशमें प्रविष्ट होनेकी कथा सभी पुराणोंमें (विशेषकर वायु ९९। ५, ब्रह्माण्ड— । ७५। ७ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ६में बहुत) स्पष्ट रूपसे आयी है।

§ इनके दूसरे नाम वितथ एवं भरद्वाज भी हैं।

पश्चिमोत्तर भाग), मद्रक, सौवीर (सिंधका उत्तरी कुशकी राजधानी वृषलपुरी थी । नव नवराष्ट्रके भाग) और पौर नामसे विख्यात थे । नृगका जनपद अधीश्वर थे । अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनिये केकय और सुव्रतका अम्बष्ठ नामसे प्रसिद्ध था । ॥ १०—२१ ॥

तितिक्षुरभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः । वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत् सुतः ॥ २२ ॥
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः । जातो मानुषयोन्या तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ॥ २३ ॥
महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना । पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान् पञ्च पार्थिवान् ॥ २४ ॥
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च ।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते । बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ २५ ॥
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः । महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ॥ २६ ॥
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः । त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥ २७ ॥
जयं चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम् । चतुरो नियतान् वर्णान् स वै स्थापयिता प्रभुः ॥ २८ ॥
तेषां च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुह्मकास्तथा । पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्य तु निबोधत ॥ २९ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुता जाताः पञ्च तस्य महात्मनः । किं नाम्नी महिषी तस्य जनिता कतमो ऋषिः ॥ ३० ॥
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् । माहात्म्यं च प्रभावं च निखिलेन वदस्व तत् ॥ ३१ ॥

सूत उवाच

अथोशिज इति ख्यात आसीद् विद्वान् ऋषिः पुरा । पत्नी वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
उशिजस्य यवीयान् वै भ्रातृपत्नीमकामयत् । बृहस्पतिर्महातेजा ममतामेत्य कामतः ॥ ३३ ॥
उवाच ममता तं तु देवरं वरवर्णिनी । अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तु विरम्यताम् ॥ ३४ ॥
अयं तु मे महाभाग गर्भः कुक्ष्येद् बृहस्पते । औशिजो भ्रातृजन्यस्ते सोपाङ्गं वेदमुद्गिरन् ॥ ३५ ॥
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि । अस्मिन्नेवं गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो ॥ ३६ ॥
एवमुक्तस्तथा सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः । कामात्मा स महात्मापि न मनः सोऽभ्यवारयत् ॥ ३७ ॥
सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धमकामया । उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत ॥ ३८ ॥
भो तात वाचामधिप द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः । अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहागतः ॥ ३९ ॥
सोऽशपत् तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः । पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ॥ ४० ॥
यस्मात् त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपि निषेधसि । मामेवमुक्तवांस्तस्मात् तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ ४१ ॥
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत । अथौशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥ ४२ ॥
ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसते भ्रातुराश्रमे । स धर्मान् सौरभेयांस्तु वृषभाच्छ्रुतवांस्ततः ॥ ४३ ॥
तस्य भ्राता पितृव्यो यश्चकार भरणं तदा । तस्मिन् निवसतस्तस्य यदृच्छेवागतो वृषः ॥ ४४ ॥
यज्ञार्थमाहृतान् दर्भांश्चचार सुरभीसुतः । जग्राह तं दीर्घतमाः शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम् ॥ ४५ ॥
तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात् पदम् । ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर ॥ ४६ ॥
न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वत्समः क्वचित् ।
मम चान्यः समो वापि न हि मे बलसंख्यया । मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु ॥ ४७ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वं क्व यास्यसि । एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम् ॥ ४८ ॥

वृषभ उवाच

नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च । भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैव पेयापेयं तथैव च ॥ ४९ ॥
द्विपदां बहवो ह्येते धर्म एष गवां स्मृतः । कार्याकार्ये न वागम्यागमनं च तथैव च ॥ ५० ॥

पश्चिमोत्तर भाग), मद्रक, सौवीर (सिंधका उत्तरी कुशकी राजधानी वृषलापुरी थी । नव नवराष्ट्रके भाग) और पौर नामसे विख्यात थे । नृगका जनपद अधीश्वर थे । अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनिये केकय और सुव्रतका अम्बष्ठ नामसे प्रसिद्ध था । ॥ १०–२१ ॥

तितिक्षुरभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः । वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत् सुतः ॥ २२ ॥
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः । जातो मानुषयोन्या तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ॥ २३ ॥
महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना । पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान् पञ्च पार्थिवान् ॥ २४ ॥
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च ।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते । बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ २५ ॥
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः । महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ॥ २६ ॥
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः । त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥ २७ ॥
जयं चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम् । चतुरो नियतान् वर्णान् स वै स्थापयिता प्रभुः ॥ २८ ॥
तेषां च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुह्मकास्तथा । पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्य तु निबोधत ॥ २९ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुता जाताः पञ्च तस्य महात्मनः । किं नाम्नी महिषी तस्य जनिता कतमो ऋषिः ॥ ३० ॥
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् । माहात्म्यं च प्रभावं च निखिलेन वदस्व तत् ॥ ३१ ॥

सूत उवाच

अथोशिज इति ख्यात आसीद् विद्वान् ऋषिः पुरा । पत्नी वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
उशिजस्य यवीयान् वै भ्रातृपत्नीमकामयत् । बृहस्पतिर्महातेजा ममतामेत्य कामतः ॥ ३३ ॥
उवाच ममता तं तु देवरं वरवर्णिनी । अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तु विरम्यताम् ॥ ३४ ॥
अयं तु मे महाभाग गर्भः कुक्ष्येद् बृहस्पते । औशिजो भ्रातृजन्यस्ते सोपाङ्गं वेदमुद्गिरन् ॥ ३५ ॥
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि । अस्मिन्नेवं गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो ॥ ३६ ॥
एवमुक्तस्तथा सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः । कामात्मा स महात्मापि न मनः सोऽभ्यवारयत् ॥ ३७ ॥
सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धमकामया । उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत ॥ ३८ ॥
भो तात वाचामधिप द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः । अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहागतः ॥ ३९ ॥
सोऽशपत् तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः । पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ॥ ४० ॥
यस्मात् त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपि निषेधसि । मामेवमुक्तवांस्तस्मात् तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ ४१ ॥
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत । अथौशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥ ४२ ॥
ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसते भ्रातुराश्रमे । स धर्मान् सौरभेयांस्तु वृषभाच्छ्रुतवांस्ततः ॥ ४३ ॥
तस्य भ्राता पितृव्यो यश्चकार भरणं तदा । तस्मिन् निवसतस्तस्य यदृच्छैवागतो वृषः ॥ ४४ ॥
यज्ञार्थमाहृतान् दर्भांश्चचार सुरभीसुतः । जग्राह तं दीर्घतमाः शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम् ॥ ४५ ॥
तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात् पदम् । ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर ॥ ४६ ॥
न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वत्समः क्वचित् ।
मम चान्यः समो वापि न हि मे बलसंख्यया । मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु ॥ ४७ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वं क्व यास्यसि । एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम् ॥ ४८ ॥

वृषभ उवाच

नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च । भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैव पेयापेयं तथैव च ॥ ४९ ॥
द्विपदां बहवो ह्येते धर्म एष गवां स्मृतः । कार्याकार्ये न वागम्यागमनं च तथैव च ॥ ५० ॥

ततः प्रसादयामास बलिस्तमृषिसत्तमम् । बलिः सुदेष्णां तां भार्यां भर्त्सयामास दानवः ॥ ६७ ॥
पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् । तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा ॥ ६८ ॥
दध्ना लवणमिश्रेण त्वभ्यक्तं मधुकेन तु ।
लिह मामजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम् । ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रान् वै मनसेप्सितान् ॥ ६९ ॥
तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा । तस्य सापानमासाद्य देवी पर्यहरत् तदा ॥ ७० ॥
तामुवाच ततः सोऽथ यत् ते परिहृतं शुभे । विनापानं कुमारं तु जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७१ ॥

सुदेष्णोवाच

नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं मे दातुमीदृशम् । तोषितश्च यथाशक्ति प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ७२ ॥

दीर्घतमा उवाच

तवापचाराद् देव्येष नान्यथा भविता शुभे । नैव दास्यति पुत्रस्ते पौत्रो वै दास्यते फलम् ॥ ७३ ॥
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति । तस्माद् दीर्घतमाङ्गेषु कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥
प्राशितं यद्यदङ्गेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते । तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्णमास्यामिवोडुराट् ॥ ७५ ॥
भविष्यन्ति कुमारास्तु पञ्च देवसुतोपमाः । तेजस्विनः सुवृत्ताश्च यज्वानो धार्मिकाश्च ते ॥ ७६ ॥

सूत उवाच

तदंशस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत । अङ्गस्तथा कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मस्तथैव च ॥ ७७ ॥
वङ्गराजस्तु पञ्चैते बलेः पुत्राश्च क्षेत्रजाः । यस्यैते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुतास्तथा ॥ ७८ ॥
प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारयंस्ततः । ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः ॥ ७९ ॥
ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत् । विचार्य यस्माद् गोधर्मं प्रमाणं ते कृतं विभो ॥ ८० ॥
भक्त्या चानन्ययास्मासु तेन प्रीतास्मि तेऽनघ । तस्मात् तुभ्यं तमो दीर्घमाघ्रायापनुदामि वै ॥ ८१ ॥
बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि । जरां मृत्युं तमश्चैव आघ्रायापनुदामि ते ॥ ८२ ॥
सद्यः स घ्रातमात्रस्तु अभितो मुनिसत्तमः । आयुष्मांश्च वपुष्मांश्च चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत् ॥ ८३ ॥

ऋषियो ! दीर्घतमाके प्रभावसे सुदेष्णाका जो ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अङ्ग था । तत्पश्चात् कलिङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म और वङ्गराजका जन्म हुआ । ये पाँचों दैत्यराज बलिके क्षेत्रज पुत्र थे । ये सभी पुत्र महर्षि दीर्घतमाद्वारा बलिको प्रदान किये गये थे । तदनन्तर उन्होंने मानव-योनिमें कई संतानें उत्पन्न कीं । एक बार सुरभि (गौ) दीर्घतमाके पास आकर उनसे बोले—'विभो ! आपने हमलोगोंके प्रति अनन्य-भक्ति होनेके कारण भलीभाँति विचारकर पशु-धर्मको प्रमाणित कर दिया है, इसलिये मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ । अनघ ! आपके शरीरमें बृहस्पतिका अंशभूत जो यह पाप स्थित है, उस घोर अंधकारको सूँघकर मैं आपसे दूर किये देती हूँ । साथ ही आपके शरीरसे बुढ़ापा, मृत्यु और अंधकारको भी सूँघकर हटा दे रही हूँ ।' (ऐसा कहकर सुरभिने उनके शरीरको सूँघा ।) सुरभिके सूँघते ही वे मुनिश्रेष्ठ दीर्घतमा तुरंत दीर्घ आयु, सौन्दर्यशाली शरीर और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त हो गये ॥ ५१—८३ ॥

गोऽभ्याहते तमसि वै गौतमस्तु ततोऽभवत् । कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम् ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुर्वै स ह्युपविष्टश्चिरं तपः । ततः कालेन महता तपसा भावितस्तु सः ॥ ८५ ॥
विधूय मातृजं कायं ब्राह्मणं प्राप्तवान् विभुः । ततोऽब्रवीत् पिता तं वै पुत्रवानस्म्यहं त्वया ॥ ८६ ॥
सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञ कृतार्थोऽहं यशस्विना । मुक्त्वाऽऽत्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान् ब्रह्मणः क्षयम् ॥ ८७ ॥
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान् । कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवतः सुताः ॥ ८८ ॥
इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य च । समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा ॥ ८९ ॥

ततः प्रसादयामास वलिस्तमृषिसत्तमम् । वलिः सुदेष्णां तां भार्यां भर्त्सयामास दानवः ॥ ६७ ।
पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् । तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा ॥ ६८ ।
दध्ना लवणमिश्रेण त्वभ्यक्तं मधुकेन तु ।
लिह मामजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम् । ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रान् वै मनसेप्सितान् ॥ ६९ ॥
तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा । तस्य सापानमासाद्य देवी पर्यहरत् तदा ॥ ७० ॥
तामुवाच ततः सोऽथ यत् ते परिहृतं शुभे । विनापानं कुमारं तु जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७१ ॥

सुदेष्णोवाच

नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं मे दातुमीदृशम् । तोषितश्च यथाशक्ति प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ७२ ॥

दीर्घतमा उवाच

तवापचाराद् देव्येष नान्यथा भविता शुभे । नैव दास्यति पुत्रस्ते पौत्रो वै दास्यते फलम् ॥ ७३ ॥
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति । तस्माद् दीर्घतमाङ्गेषु कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥
प्राशितं यद्यदङ्गेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते । तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्णमास्यामिवोडुराट् ॥ ७५ ॥
भविष्यन्ति कुमारास्तु पञ्च देवसुतोपमाः । तेजस्विनः सुवृत्ताश्च यज्वानो धार्मिकाश्च ते ॥ ७६ ॥

सूत उवाच

तदंशस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत । अङ्गस्तथा कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मस्तथैव च ॥ ७७ ॥
वङ्गराजस्तु पञ्चैते वलेः पुत्राश्च क्षेत्रजाः । यस्यैते दीर्घतमसा वलेर्दत्ताः सुतास्तथा ॥ ७८ ॥
प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारयंस्ततः । ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः ॥ ७९ ॥
ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत् । विचार्य यस्माद् गोधर्मं प्रमाणं ते कृतं विभो ॥ ८० ॥
भक्त्या चानन्ययास्मासु तेन प्रीतास्मि तेऽनघ । तस्मात् तुभ्यं तमो दीर्घमाघ्रायापनुदामि वै ॥ ८१ ॥
बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि । जरां मृत्युं तमश्चैव आघ्रायापनुदामि ते ॥ ८२ ॥
सद्यः स घ्रातमात्रस्तु अभितो मुनिसत्तमः । आयुष्मांश्च वपुष्मांश्च चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत् ॥ ८३ ॥

ऋषियो ! दीर्घतमाके प्रभावसे सुदेष्णाका जो ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अङ्ग था। तत्पश्चात् कलिङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म और वङ्गराजका जन्म हुआ। ये पाँचों दैत्यराज बलिके क्षेत्रज पुत्र थे। ये सभी पुत्र महर्षि दीर्घतमाद्वारा बलिको प्रदान किये गये थे। तदनन्तर उन्होंने मानव-योनिमें कई संतानें उत्पन्न कीं। एक बार सुरभि (गौ) दीर्घतमाके पास आकर उनसे बोले—'विभो ! आपने हमलोगोंके प्रति अनन्य-भक्ति होनेके कारण भलीभाँति विचारकर पशु-धर्मको प्रमाणित कर दिया है, इसलिये मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ। अनघ ! आपके शरीरमें बृहस्पतिका अंशभूत जो यह पाप स्थित है, उस घोर अंधकारको सूँघकर मैं आपसे दूर किये देती हूँ। साथ ही आपके शरीरसे बुढ़ापा, मृत्यु और अंधकारको भी सूँघकर हटा दे रही हूँ।' (ऐसा कहकर सुरभिने उनके शरीरको सूँघा।) सुरभिके सूँघते ही वे मुनिश्रेष्ठ दीर्घतमा तुरंत दीर्घ आयु, सौन्दर्यशाली शरीर और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त हो गये ॥ ५१–८३ ॥

गोऽभ्याहते तमसि वै गौतमस्तु ततोऽभवत् । कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम् ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुर्वै स ह्युपविष्टश्चिरं तपः । ततः कालेन महता तपसा भावितस्तु सः ॥ ८५ ॥
विधूय मातृजं कायं ब्राह्मणं प्रातवान् विभुः । ततोऽब्रवीत् पिता तं वै पुत्रवानस्म्यहं त्वया ॥ ८६ ॥
सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञ कृतार्थोऽहं यशस्विना । मुक्त्वाऽऽत्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान् ब्रह्मणः क्षयम् ॥ ८७ ॥
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान् । कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवताः सुताः ॥ ८८ ॥
इत्येष दीर्घतमसो वलेर्वैरोचनस्य च । समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा ॥ ८९ ॥

मन्त्रोंद्वारा एक ऐसे हस्तीको भूतलपर अवतीर्ण किया था, जो शत्रुओंको विमुख कर देनेवाला एवं उत्तम वाहन था। हर्यङ्गका पुत्र भद्ररथ पैदा हुआ। भद्ररथका पुत्र राजा बृहत्कर्मा हुआ। उसका पुत्र बृहद्भानु हुआ। उससे महात्मवान्का जन्म हुआ। राजेन्द्र बृहद्भानुने एक अन्य पुत्रको भी उत्पन्न किया था, जिसका नाम जयद्रथ था। उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथसे विश्वविजयी जनमेजय पैदा हुआ था। उसका पुत्र अङ्ग था और उससे राजा कर्णकी उत्पत्ति हुई थी। कर्णका वृषसेन और उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। द्विजवरो! ये सभी राजा अङ्गके वंशमें उत्पन्न हुए थे, मैंने इनका आनुपूर्वी विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। अब आपलोग पूरुके वंशका वर्णन सुनिये ॥ ९०–१०३ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः। एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥१०४॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कर्ण अधिरथ सूतके पुत्र थे, पुनः किस प्रकार अङ्गके पुत्र कहलाये? इस रहस्यको सुननेकी हम-लोगोंकी उत्कट इच्छा है, इसका वर्णन कीजिये; क्योंकि आप कथा कहनेमें परम प्रवीण हैं ॥ १०४ ॥

सूत उवाच

बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैब्यस्य तनये ह्युभे। यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशं च मे शृणु ॥१०५॥
जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्। सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम् ॥१०६॥
विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः। बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः ॥१०७॥
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः। तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम् ॥१०८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बृहद्भानुका पुत्र बृहन्मना नामका राजा हुआ। उसके दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों शैब्यकी कन्याएँ थीं। उनका नाम यशोदेवी और सत्या था। अब मुझसे उन दोनोंका वंश-वर्णन सुनिये। बृहन्मनाके संयोगसे यशोदेवीने राजा जयद्रथको और सत्याने विश्वविख्यात विजयको जन्म दिया था। विजयका पुत्र बृहत्पुत्र और उसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथका पुत्र महामना सत्यकर्मा हुआ। सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ हुआ। यही अधिरथ सूत नामसे भी विख्यात था, जिसने (गङ्गामें बहते हुए) कर्णको पकड़ा था। इसी कारण कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते हैं। इस प्रकार कर्णके प्रति जो किंवदन्ती फैली है, उसे पूर्णतया मैंने आपलोगोंसे कह दिया ॥ १०५–१०८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४८ ॥

मन्त्रोंद्वारा एक ऐसे हस्तीको भूतलपर अवतीर्ण किया था, जो शत्रुओंको विमुख कर देनेवाला एवं उत्तम वाहन था। हर्यङ्गका पुत्र भद्ररथ पैदा हुआ। भद्ररथका पुत्र राजा बृहत्कर्मा हुआ। उसका पुत्र बृहद्भानु हुआ। उससे महात्मवान्का जन्म हुआ। राजेन्द्र बृहद्भानुने एक अन्य पुत्रको भी उत्पन्न किया था, जिसका नाम जयद्रथ था। उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथसे विश्वविजयी जनमेजय पैदा हुआ था। उसका पुत्र अङ्ग था और उससे राजा कर्णकी उत्पत्ति हुई थी। कर्णका वृषसेन और उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। द्विजवरो! ये सभी राजा अङ्गके वंशमें उत्पन्न हुए थे, मैंने इनका आनुपूर्वी विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। अब आपलोग पूरुके वंशका वर्णन सुनिये ॥ ९०–१०३ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः। एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥१०४॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कर्ण कैसे अधिरथ सूतके पुत्र थे, पुनः किस प्रकार अङ्गके पुत्र कहलाये? इस रहस्यको सुननेकी हम-लोगोंकी उत्कट इच्छा है, इसका वर्णन कीजिये; क्योंकि आप कथा कहनेमें परम प्रवीण हैं ॥ १०४ ॥

सूत उवाच

बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैब्यस्य तनये ह्युभे। यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशं च मे शृणु ॥१०५॥
जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्। सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम् ॥१०६॥
विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः। बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः ॥१०७॥
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः। तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम् ॥१०८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बृहद्भानुका पुत्र बृहन्मना नामका राजा हुआ। उसके दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों शैब्यकी कन्याएँ थीं। उनका नाम यशोदेवी और सत्या था। अब मुझसे उन दोनोंका वंश-वर्णन सुनिये। बृहन्मनाके संयोगसे यशोदेवीने राजा जयद्रथको और सत्याने विश्वविख्यात विजयको जन्म दिया था। विजयका पुत्र बृहत्पुत्र और उसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथका पुत्र महामना सत्यकर्मा हुआ। सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ हुआ। यही अधिरथ सूत नामसे भी विख्यात था, जिसने (गङ्गामें बहते हुए) कर्णको पकड़ा था। इसी कारण कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते हैं। इस प्रकार कर्णके प्रति जो किंवदन्ती फैली है, उसे पूर्णतया मैंने आपलोगोंसे कह दिया ॥ १०५–१०८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४८ ॥

भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल । पुत्राणां मातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः ॥ १४ ॥
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ॥ १५ ॥

ऋषय ऊचुः

भरतस्य भरद्वाजः पुत्रार्थं मारुतैः कथम् । संक्रामितो महातेजास्तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ १६ ॥

सूत उवाच

पत्न्यामापन्नसत्त्वायामुशिजः स स्थितो भुवि । भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वा तु बृहस्पतिरुवाच ह ॥ १७ ॥
उपतिष्ठ स्वलंकृत्य मैथुनाय च मां शुभे । एवमुक्ताब्रवीदेनं स्वयमेव बृहस्पतिम् ॥ १८ ॥
गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा । अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मं चैवं विगर्हितम् ॥ १९ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमेव बृहस्पतिः । नोपदेष्टव्यो विनयस्त्वया मे वरवर्णिनि ॥ २० ॥
धर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे । ततो बृहस्पतिं गर्भो धर्षमाणमुवाच ह ॥ २१ ॥
संनिविष्टो ह्यहं पूर्वमिह नाम बृहस्पते । अमोघरेताश्च भवान् नावकाश इह द्वयोः ॥ २२ ॥
एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह ।
यस्मात् त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति । अभिषेधसि तस्मात् त्वं तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ २३ ॥
ततः कामं संनिवर्त्य तस्यानन्दाद् बृहस्पतेः । तद्रेतस्त्वपतद् भूमौ निवृत्तं शिशुकोऽभवत् ॥ २४ ॥
सद्योजातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताब्रवीत् । गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वैनं बृहस्पते ॥ २५ ॥
एवमुक्त्वा गता सा तु गतायां सोऽपि तं त्यजत् ।

इसी दुष्यन्त-पुत्र भरतके विषयमें आकाश-वाणीने राजा दुष्यन्तसे कहा था—'दुष्यन्त ! माताका गर्भाशय तो एक चमड़ेके थैलेके समान है, उसमें गर्भाधान करनेके ... । पुत्र पिताका ही होता है; अतः जो जिससे पैदा होता है, वह उसका आत्मस्वरूप ही होता है । इसलिये तुम अपने पुत्रका भरण-पोषण करो और शकुन्तलाका अपमान मत करो । पुत्र अपने मरे हुए पिताको यमपुरीके कष्टोंसे छुटकारा दिलाता है । इस गर्भका आधान करनेवाले तुम्हीं हो, शकुन्तलाने यह बिल्कुल सच बात कही है ।' पूर्वकालमें भरतके सभी पुत्रोंका विनाश हो गया था । माताके कोपके कारण उनके पुत्रोंका यह महान् संहार हुआ था । यह देखकर मरुद्गणोंने बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजको लाकर भरतके हाथोंमें समर्पित किया था । बृहस्पति अपने इस पुत्रको वनमें छोड़कर चले गये थे ॥ १२—२५½ ॥

मातापितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम् । जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः ॥ २६ ॥
तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिर्क्रतुभिर्विभुः । पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत् पुत्रलिप्सया ॥ २७ ॥
यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत् प्रभुः । ततः कर्तुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत् ॥ २८ ॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः । उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै ॥ २९ ॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति ॥ ३० ॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत् । आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहं त्वया विभो ॥ ३१ ॥
पूर्वं तु वितथे तस्मिन् कृते वै पुत्रजन्मनि । ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत् ॥ ३२ ॥
तस्मादपि भरद्वाजाद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि । द्व्यामुष्यायणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च ॥ ३३ ॥

इस प्रकार माता-पिताद्वारा त्यागे गये उस शिशुको देखकर मरुद्गणोंका हृदय दयार्द्र हो गया, तब उन्होंने उस भरद्वाज नामक शिशुको उठा लिया । उसी समय राजा भरत पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे अनेकों ऋतुकालके अवसरोंपर पुत्रनिमित्तक यज्ञोंका अनुष्ठान करते आ रहे थे, परंतु जब उन सामर्थ्यशाली

भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल। पुत्राणां मातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः ॥ १४ ॥
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः। संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ॥ १५ ॥

ऋषय ऊचुः

भरतस्य भरद्वाजः पुत्रार्थं मारुतैः कथम्। संक्रामितो महातेजास्तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ १६ ॥

सूत उवाच

पत्न्यामापन्नसत्त्वायामुशिजः स स्थितो भुवि। भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वा तु बृहस्पतिरुवाच ह ॥ १७ ॥
उपतिष्ठ स्वलंकृत्य मैथुनाय च मां शुभे। एवमुक्ताब्रवीदेनं स्वयमेव बृहस्पतिम् ॥ १८ ॥
गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा। अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मं चैवं विगर्हितम् ॥ १९ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमेव बृहस्पतिः। नोपदेष्टव्यो विनयस्त्वया मे वरवर्णिनि ॥ २० ॥
धर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे। ततो बृहस्पतिं गर्भो धर्षमाणमुवाच ह ॥ २१ ॥
संनिविष्टो ह्यहं पूर्वमिह नाम्न बृहस्पते। अमोघरेताश्च भवान् नावकाश इह द्वयोः ॥ २२ ॥
एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह।
यस्मात् त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति। अभिषेधसि तस्मात् त्वं तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ २३ ॥
ततः कामं संनिवर्त्य तस्यानन्दाद् बृहस्पतेः। तद्रेतस्त्वपतद् भूमौ निवृत्तं शिशुकोऽभवत् ॥ २४ ॥
सद्योजातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताब्रवीत्। गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वैनं बृहस्पते ॥ २५ ॥
एवमुक्त्वा गता सा तु गतायां सोऽपि तं त्यजत्।

इसी दुष्यन्त-पुत्र भरतके विषयमें आकाश-वाणीने राजा दुष्यन्तसे कहा था—'दुष्यन्त! माताका गर्भाशय तो एक चमड़ेके थैलेके समान है, उसमें गर्भाधान करनेके …। पुत्र पिताका ही होता है; अतः जो जिससे पैदा होता है, वह उसका आत्मस्वरूप ही होता है। इसलिये तुम अपने पुत्रका भरण-पोषण करो और शकुन्तलाका अपमान मत करो। पुत्र अपने मरे हुए पिताको यमपुरीके कष्टोंसे छुटकारा दिलाता है। इस गर्भका आधान करनेवाले तुम्हीं हो, शकुन्तलाने यह बिल्कुल सच बात कही है।' पूर्वकालमें भरतके सभी पुत्रोंका विनाश हो गया था। माताके कोपके कारण उनके पुत्रोंका यह महान् संहार हुआ था। यह देखकर मरुद्गणोंने बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजको लाकर भरतके हाथोंमें समर्पित किया था। बृहस्पति अपने इस पुत्रको वनमें छोड़कर चले गये थे ॥ १२—२५½ ॥

मातापितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम्। जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः ॥ २६ ॥
तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिर्क्रतुभिर्विभुः। पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत् पुत्रलिप्सया ॥ २७ ॥
यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत् प्रभुः। ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत् ॥ २८ ॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः। उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै ॥ २९ ॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः। संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति ॥ ३० ॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत्। आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहं त्वया विभो ॥ ३१ ॥
पूर्वं तु वितथे तस्मिन् कृते वै पुत्रजन्मनि। ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत् ॥ ३२ ॥
तस्मादपि भरद्वाजाद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि। द्व्यामुष्यायणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च ॥ ३३ ॥

इस प्रकार माता-पिताद्वारा त्यागे गये उस शिशुको देखकर मरुद्गणोंका हृदय दयार्द्र हो गया, तब उन्होंने उस भरद्वाज नामक शिशुको उठा लिया। उसी समय राजा भरत पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे अनेकों ऋतुकालके अवसरोंपर पुत्रनिमित्तक यज्ञोंका अनुष्ठान करते आ रहे थे, परंतु जब उन सामर्थ्यशाली

*

देवताओंके समान वर्चस्वी, महान् तेजस्वी और धर्मात्मा थे। वे अपने वृद्ध पिताकी तपस्याके अन्तमें महर्षि भारद्वाजकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। उनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ ३४—४५½ ॥

अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत् किल ॥ ४६ ॥

मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात् काण्वायना द्विजाः । अजमीढस्य भूमिन्यां जज्ञे बृहदनुर्नृपः ॥ ४७ ॥
बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः । बृहन्मनःसुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः ॥ ४८ ॥
बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः । अश्वजित् तनयस्तस्य सेनजित् तस्य चात्मजः ॥ ४९ ॥
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः । रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा ॥ ५० ॥
वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः । रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः ॥ ५१ ॥
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान् । नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम् ॥ ५२ ॥
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते । तेषां वंशकरः श्रीमान्नीपानां कीर्तिवर्धनः ॥ ५३ ॥
काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत् । समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः ॥ ५४ ॥
पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि । पारपुत्रः पृथुर्जातः पृथोस्तु सुकृतोऽभवत् ॥ ५५ ॥
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः । विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान् ॥ ५६ ॥
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः । अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ ५७ ॥
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः । विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ५८ ॥

विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः । उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ ५९ ॥

अजमीढके केशिनीके गर्भसे कण्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि हुआ। उससे उत्पन्न ब्राह्मणोंकी* उत्पत्ति हुई। भूमिनी (धूमिनी) गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें राजा बृहदनुका जन्म हुआ। बृहदनुका पुत्र बृहन्त, बृहन्तका पुत्र बृहन्मना और बृहन्मनाका पुत्र बृहद्धनु नामसे विख्यात हुआ। बृहद्धनुका पुत्र बृहदिषु और उसका पुत्र जयद्रथ हुआ। उसका पुत्र अश्वजित् और उसका पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काव्य, राजा दृढरथ और राजा वत्सावर्तक—ये चार लोकविख्यात पुत्र हुए। इनमें वत्सावर्तकके वंशधर परिवत्सक नामसे कहे जाते हैं। रुचिराश्वका पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेनसे पौरका और पौरसे नीपका जन्म हुआ। नीपके अमित तेजस्वी पुत्रोंकी संख्या एक सौ थी। वे सभी राजा थे और नीप नामसे ही विख्यात थे। काव्यसे समर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो उन नीपवंशियोंका वंशप्रवर्तक, लक्ष्मीसे युक्त और कीर्तिवर्धक था। वह समरके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था। समरके पार, सम्पार और सदश्व—ये तीन पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न तथा भूतलपर विख्यात थे। पारका पुत्र पृथु हुआ और पृथुसे सुकृतकी उत्पत्ति हुई। उससे सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न विभ्राज नामक पुत्र पैदा हुआ। विभ्राजका पुत्र महायशस्वी एवं पराक्रमी अणुह हुआ, जो शुकदेवजीका जामाता एवं कृत्वीका पति था। अणुहका पुत्र राजा ब्रह्मदत्त हुआ। उसका पुत्र युगदत्त और युगदत्तका पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ। अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप राजा विभ्राजने ही पुनः विष्वक्सेनरूपसे जन्म धारण किया था। विष्वक्सेनका पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका पुत्र भल्लाट† और उसका पुत्र जनमेजय (द्वितीय) हुआ। इसी जनमेजयकी रक्षाके लिये उग्रायुधने सभी नीपवंशी नरेशोंको मौतके घाट उतारा था ॥ ४६—५९ ॥

* विशेष द्रष्टव्यः—ऋग्वेदसंहिता–८।५५।४, ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड, भागवत १२।१।४९ तथा पुनः मत्स्यपुराण १९।१।२६

† इसने भल्लाटनगर (कुल्मानपर्वतके पासका एक शहर) बसाया, जहाँका राजा शशिध्वज (कल्किपुराण, अ० २१-२२) प्रसिद्ध था।

देवताओंके समान वर्चस्वी, महान् तेजस्वी और धर्मात्मा थे। वे अपने वृद्ध पिताकी तपस्याके अन्तमें महर्षि भारद्वाजकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। उनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ ३४—४५½ ॥

अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत् किल ॥ ४६ ॥

मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात् काण्वायना द्विजाः । अजमीढस्य भूमिन्यां जज्ञे बृहदनुर्नृपः ॥ ४७ ॥
बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः । बृहन्मनःसुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः ॥ ४८ ॥
बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः । अश्वजित् तनयस्तस्य सेनजित् तस्य चात्मजः ॥ ४९ ॥
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः । रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा ॥ ५० ॥
वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः । रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः ॥ ५१ ॥
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान् । नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम् ॥ ५२ ॥
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते । तेषां वंशकरः श्रीमान्नीपानां कीर्तिवर्धनः ॥ ५३ ॥
काव्याच्च समरो नाम सदेप्सुसमरोऽभवत् । समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः ॥ ५४ ॥
पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि । पारपुत्रः पृथुर्जातः पृथोस्तु सुकृतोऽभवत् ॥ ५५ ॥
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः । विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान् ॥ ५६ ॥
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः । अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ ५७ ॥
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः । विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ५८ ॥
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः । उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ ५९ ॥

अजमीढके केशिनीके गर्भसे कण्व नामक पुत्र ...पन्न हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि हुआ। उससे ...यन ब्राह्मणोंकी* उत्पत्ति हुई। भूमिनी (धूमिनी) गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें राजा बृहदनुका जन्म हुआ। बृहदनुका पुत्र बृहन्त, बृहन्तका पुत्र बृहन्मना और बृहन्मनाका पुत्र बृहद्धनु नामसे विख्यात हुआ। बृहद्धनुका पुत्र बृहदिषु और उसका पुत्र जयद्रथ हुआ। उसका पुत्र अश्वजित् और उसका पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काव्य, राजा दृढरथ और राजा वत्सावर्तक—ये चार लोकविख्यात पुत्र हुए। इनमें वत्सावर्तकके वंशधर परिवत्सक नामसे कहे जाते हैं। रुचिराश्वका पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेनसे पौरका और पौरसे नीपका जन्म हुआ। नीपके अमित तेजस्वी पुत्रोंकी संख्या एक सौ थी। वे सभी राजा थे और नीप नामसे ही विख्यात थे। काव्यसे समर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो उन नीपवंशियोंका वंशप्रवर्तक, लक्ष्मीसे युक्त और कीर्तिवर्धक था। वह समरके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था। समरके पार, सम्पार और सदश्व—ये तीन पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न तथा भूतलपर विख्यात थे। पारका पुत्र पृथु हुआ और पृथुसे सुकृतकी उत्पत्ति हुई। उससे सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न विभ्राज नामक पुत्र पैदा हुआ। विभ्राजका पुत्र महायशस्वी एवं पराक्रमी अणुह हुआ, जो शुकदेवजीका जामाता एवं कृत्वीका पति था। अणुहका पुत्र राजा ब्रह्मदत्त हुआ। उसका पुत्र युगदत्त और युगदत्तका पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ। अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप राजा विभ्राजने ही पुनः विष्वक्सेनरूपसे जन्म धारण किया था। विष्वक्सेनका पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका पुत्र भल्लाट† और उसका पुत्र जनमेजय (द्वितीय) हुआ। इसी जनमेजयकी रक्षाके लिये उग्रायुधने सभी नीपवंशी नरेशोंको मौतके घाट उतारा था ॥ ४६—५९ ॥

* विशेष द्रष्टव्यः—ऋग्वेदसंहिता–८।५५।४, ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड, भागवत १२।१।४९ तथा पुनः मत्स्यपुराण १९।१।२६

† इसने भल्लाटनगर (शुक्तिमानपर्वतके पासका एक शहर) बसाया, जहाँका राजा शशिध्वज (कल्किपुराण, अ० २१-२२) प्रसिद्ध था।

दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः । आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥ ७१ ॥
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड् बभौ । तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः ॥ ७२ ॥
महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः । अथ रुक्मरथस्यासीत् सुपार्श्वो नाम पार्थिवः ॥ ७३ ॥
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः । सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमानपि ॥ ७४ ॥
तस्यासीत् संनतिमतः कृतो नाम सुतो महान् । हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौसल्यस्य* महात्मनः ॥ ७५ ॥
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः । स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः ॥ ७६ ॥
कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः । बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ॥ ७७ ॥
नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वशी । उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥ ७८ ॥
क्षेमात् सुनीथः संजज्ञे सुनीथस्य नृपंजयः । नृपंजयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥ ७९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पौरववंशकीर्तनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

धूमिनीके गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें विद्वान् यवीनरका जन्म हुआ । उसका पुत्र धृतिमान् हुआ और उसका पुत्र सत्यधृति कहा जाता है । सत्यधृतिका पुत्र प्रतापी दृढ़नेमि हुआ । दृढ़नेमिका पुत्र सुधर्मानामक भूपाल हुआ । सुधर्माका पुत्र प्रतापी सार्वभौम था, जो भूतलपर एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सुशोभित । उसके उस विशाल वंशमें एक महापौरव नामक : उत्पन्न हुआ । राजा रुक्मरथ महापौरवके पुत्र कहे गये हैं । रुक्मरथका पुत्र सुपार्श्व नामका राजा हुआ । सुपार्श्वका पुत्र धर्मात्मा सुमति हुआ । सुमतिका पुत्र धर्मात्मा राजा संनतिमान् था । उस संनतिमान्‌का कृत नामक महान् प्रतापी पुत्र था, जो महात्मा हिरण्यनाभ कौसल्य (कौथुम*)का शिष्य हुआ । इसी राजाने सामवेदकी संहिताओंको चौबीस भागोंमें विभक्त किया, जो प्राच्यसामके नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा उन साम-संहिताओंका गान करनेवाले कार्त नामसे कहे जाने लगे ।† ये उग्रायुध इसी कृतके पुत्र थे, जो पौरववंशकी विशेषरूपसे वृद्धि करनेवाले थे । इन्होंने ही पराक्रम प्रकट करके पृथुकके पिता पाञ्चाल-नरेश जितेन्द्रिय महाराज नीलका वध किया था । उग्रायुधका पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ । क्षेमसे सुनीथका और सुनीथसे नृपंजयका जन्म हुआ । नृपंजयसे विरथकी उत्पत्ति हुई । ये सभी नरेश पौरव-नामसे विख्यात हुए ॥ ७०–७९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पौरव-वंश-कीर्तन नामक उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४९ ॥

* वायुपुराण ९९ । १०० में यहाँ 'कौथुम' पाठ है । सामवेदियोंकी कौथुमी संहिता प्रसिद्ध है ।

† यहाँ सामवेद-संहिताके इतिहासकी एकसे चौबीस (तथा पुनः एक हजार शाखा होनेकी) बड़ी रहस्यात्मक बात कही गयी है । कार्त्त शाखाका उल्लेख सभी चरणव्यूहोंमें भी है । इसी प्रकार वायु ५९–६१ तथा ब्रह्माण्ड २ । ३८–४१में भी वेदोंका सच्चा एवं विस्तृत इतिहास है । २४ सामशाखाएँ चरणव्यूह आदिमें यों निर्दिष्ट हैं—१-वार्तान्तरेय, २–राणायनीय, ३–शाट्यायनीय, ४–आमुरायणीय, ५–वासुरायणीय, ६–प्राचीनयोग, ७–प्राञ्जल शृग, ८–साक्ष्यमुद्गल, ९–खल्वल, १०–महाखल्वल, ११–माङ्गल, १२–कौथुम, १३–गौतम, १४–जैमिनीय, १५–सुपर्ण, १६–वालखिल्य, १७–सांत्यमुग्र, १८–काल्येय, १९–महाकाल्येय, २०–लाङ्गलायन, २१- शार्दूल, २२–तातायन, २३–नैगमीय और २४–पावमान ।

दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः। आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥ ७१ ॥
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड् बभौ। तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः ॥ ७२ ॥
महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः। अथ रुक्मरथस्यासीत् सुपार्श्वो नाम पार्थिवः ॥ ७३ ॥
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः। सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमानपि ॥ ७४ ॥
तस्यासीत् संनतिमतः कृतो नाम सुतो महान्। हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौसल्यस्य* महात्मनः ॥ ७५ ॥
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः। स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः ॥ ७६ ॥
कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः। बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ॥ ७७ ॥
नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वशी। उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥ ७८ ॥
क्षेमात् सुनीथः संजज्ञे सुनीथस्य नृपंजयः। नृपंजयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥ ७९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पौरववंशकीर्तनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

धूमिनीके गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें विद्वान् यवीनरका जन्म हुआ। उसका पुत्र धृतिमान् हुआ और उसका पुत्र सत्यधृति कहा जाता है। सत्यधृतिका पुत्र प्रतापी दृढ़नेमि हुआ। दृढ़नेमिका पुत्र सुधर्मानामक भूपाल हुआ। सुधर्माका पुत्र प्रतापी सार्वभौम था, जो भूतलपर एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सुशोभित ... । उसके उस विशाल वंशमें एक महापौरव नामक ... उत्पन्न हुआ। राजा रुक्मरथ महापौरवके पुत्र कहे गये हैं। रुक्मरथका पुत्र सुपार्श्व नामका राजा हुआ। सुपार्श्वका पुत्र धर्मात्मा सुमति हुआ। सुमतिका पुत्र धर्मात्मा राजा संनतिमान् था। उस संनतिमान्का कृत नामक महान् प्रतापी पुत्र था, जो महात्मा हिरण्यनाभ कौसल्य (कौथुम*)का शिष्य हुआ। इसी राजाने सामवेदकी संहिताओंको चौबीस भागोंमें विभक्त किया, जो प्राच्यसामके नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा उन साम-संहिताओंका गान करनेवाले कार्त नामसे कहे जाने लगे।† ये उग्रायुध इसी कृतके पुत्र थे, जो पौरववंशकी विशेषरूपसे वृद्धि करनेवाले थे। इन्होंने ही पराक्रम प्रकट करके पृथुकके पिता पाञ्चाल-नरेश जितेन्द्रिय महाराज नीलका वध किया था। उग्रायुधका पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ। क्षेमसे सुनीथका और सुनीथसे नृपंजयका जन्म हुआ। नृपंजयसे विरथकी उत्पत्ति हुई। ये सभी नरेश पौरव-नामसे विख्यात हुए ॥ ७०—७९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पौरव-वंश-कीर्तन नामक उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४९ ॥

* वायुपुराण ९९। १०० में यहाँ 'कौथुम' पाठ है। सामवेदियोंकी कौथुमी संहिता प्रसिद्ध है।

† यहाँ सामवेद-संहिताके इतिहासकी एकसे चौबीस (तथा पुनः एक हजार शाखा होनेकी) बड़ी रहस्यात्मक बात कही गयी है। कार्त्त शाखाका उल्लेख सभी चरणव्यूहोंमें भी है। इसी प्रकार वायु ५९—६१ तथा ब्रह्माण्ड २। ३८—४१में भी वेदोंका सच्चा एवं विस्तृत इतिहास है। २४ सामशाखाएँ चरणव्यूह आदिमें यों निर्दिष्ट हैं—१-वार्तान्तरेय, २-राणायनीय, ३-शाट्यायनीय, ४-आसुरायणीय, ५-वासुरायणीय, ६-प्राचीनयोग, ७-प्राञ्जल ऋग्, ८-साक्ष्यमुद्गल, ९-खल्वल, १०-महाखल्वल, ११-माङ्गल, १२-कौथुम, १३-गौतम, १४-जैमिनीय, १५-सुपर्ण, १६-वालखिल्य, १७-सांत्यमुग्र, १८-कालेय, १९-महाकालेय, २०-लाङ्गलायन, २१-शार्दूल, २२-तातायन, २३-नैगमीय और २४-पावमान।

दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः। मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः ॥ १३ ॥
एते वंश्या यतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः। राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः ॥ १४ ॥
अथ चैद्यवराद् विद्वान् सुदासस्तस्य चात्मजः। अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः ॥ १५ ॥
सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्शतं बभौ। पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी। पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम् ॥ १७ ॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना। अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता ॥ १८ ॥
तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान्। ऋक्षं सा जनयामास धूमवर्णं शताग्रजम् ॥ १९ ॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् ततः। यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत् ॥ २० ॥
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ। कृष्यमाणस्ततः शक्रो भयात् तस्मै वरं ददौ ॥ २१ ॥
पुण्यं च रमणीयं च कुरुक्षेत्रं तु तत् स्मृतम्। तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्ना तु कौरवाः ॥ २२ ॥

दिवोदासका ज्येष्ठ पुत्र धर्मिष्ठ राजा मित्रयु हुआ। तत्पश्चात् उससे छोटे मैत्रायण और उसके बाद मैत्रेयकी उत्पत्ति हुई। ये सभी पुत्र (ययातिके भाई) यतिके पक्षके थे और क्षत्रियांशसे युक्त भार्गव (भृगुवंशी) कहलाते थे। राजा चैद्यवर मैत्रेयके पुत्र कहे जाते हैं। चैद्यवरसे विद्वान् सुदासका जन्म हुआ। वंशके नष्ट हो जानेपर पुनः अजमीढ सुदासके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। इन्हींका दूसरा नाम सोमक भी है। सोमकका पुत्र जन्तु हुआ। उसके मारे जानेपर महात्मा अजमीढ सोमकके सौ पुत्र हुए। अजमीढकी धूमिनी नामकी पत्नी थी, जो पुत्रोंकी वृद्धि करनेवाली थी। जन्तुके मारे जानेसे पुत्रका अभाव हो जानेपर वह सौ वर्षोंतक दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गयी। एक समय भलीभाँति पवित्र किये हुए पदार्थोंको ही भोजन करनेवाली महान् व्रतपरायणा धूमिनी अग्निहोत्रके क्रमसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके नींदके वशीभूत हो गयी। निरन्तर अग्निहोत्र करनेके कारण उसके शरीरका रंग धूमिल पड़ गया था। उसी समय अजमीढने उसमें गर्भाधान किया। उस गर्भसे धूमिनीने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था तथा जिसके शरीरका रंग धूम-वर्णका था। ऋक्षसे संवरणकी और संवरणसे कुरुकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रयागका अतिक्रमण कर कुरुक्षेत्रकी तीर्थरूपमें कल्पना की थी। महाराज कुरु अनेकों वर्षोंतक इस कुरुक्षेत्रको अपने हाथों जोतते रहे। उन्हें इस प्रकार जोतते देखकर इन्द्रने भयभीत हो उन्हें वर प्रदान किया। इसी कारण कुरुक्षेत्र पुण्यप्रद और रमणीय क्षेत्र कहा जाता है। उन महाराज कुरुका वंश अत्यन्त विशाल था, जो उन्हींके नामसे (आगे चलकर) कौरव कहलाया ॥ १३—२२ ॥

कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च। परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः ॥ २३ ॥
सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतां वरः। च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ २४ ॥
च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः। कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यातस्त्विन्द्रसमो विभुः॥ २५ ॥
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः। चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान् ॥ २६ ॥
महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः। प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः ॥ २७ ॥
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी। बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥ २८ ॥
कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान्। वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान् नाम पार्थिवः ॥ २९ ॥
पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः। दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्च जज्ञिवान् ॥ ३० ॥
सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद् राजा बृहद्रथः। द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः ॥ ३१ ॥

दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः। मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः॥ १३॥
एते वंश्या यतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः। राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः॥ १४॥
अथ चैद्यवराद् विद्वान् सुदासस्तस्य चात्मजः। अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः॥ १५॥
सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्शतं बभौ। पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः॥ १६॥
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी। पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम्॥ १७॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना। अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता॥ १८॥
तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान्। ऋक्षं सा जनयामास धूमवर्णं शताग्रजम्॥ १९॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् ततः। यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत्॥ २०॥
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ। कृष्यमाणस्ततः शक्रो भयात् तस्मै वरं ददौ॥ २१॥
पुण्यं च रमणीयं च कुरुक्षेत्रं तु तत् स्मृतम्। तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्ना तु कौरवाः॥ २२॥

दिवोदासका ज्येष्ठ पुत्र धर्मिष्ठ राजा मित्रयु हुआ। तत्पश्चात् उससे छोटे मैत्रायण और उसके बाद मैत्रेयकी उत्पत्ति हुई। ये सभी पुत्र (ययातिके भाई) यतिके पक्षके थे और क्षत्रियांशसे युक्त भार्गव (भृगुवंशी) कहलाते थे। राजा चैद्यवर मैत्रेयके पुत्र कहे जाते हैं। चैद्यवरसे विद्वान् सुदासका जन्म हुआ। वंशके नष्ट हो जानेपर पुनः अजमीढ सुदासके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। इन्हींका दूसरा नाम सोमक भी है। सोमकका पुत्र जन्तु हुआ। उसके मारे जानेपर महात्मा अजमीढ सोमकके सौ पुत्र हुए। अजमीढकी धूमिनी नामकी पत्नी थी, जो पुत्रोंकी वृद्धि करनेवाली थी। जन्तुके मारे जानेसे पुत्रका अभाव हो जानेपर वह सौ वर्षोंतक दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गयी। एक समय भलीभाँति पवित्र किये हुए पदार्थोंको ही भोजन करनेवाली महान् व्रतपरायणा धूमिनी अग्निहोत्रके क्रमसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके नींदके वशीभूत हो गयी। निरन्तर अग्निहोत्र करनेके कारण उसके शरीरका रंग धूमिल पड़ गया था। उसी समय अजमीढने उसमें गर्भाधान किया। उस गर्भसे धूमिनीने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था तथा जिसके शरीरका रंग धूम-वर्णका था। ऋक्षसे संवरणकी और संवरणसे कुरुकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रयागका अतिक्रमण कर कुरुक्षेत्रकी तीर्थरूपमें कल्पना की थी। महाराज कुरु अनेकों वर्षोंतक इस कुरुक्षेत्रको अपने हाथों जोतते रहे। उन्हें इस प्रकार जोतते देखकर इन्द्रने भयभीत हो उन्हें वर प्रदान किया। इसी कारण कुरुक्षेत्र पुण्यप्रद और रमणीय क्षेत्र कहा जाता है। उन महाराज कुरुका वंश अत्यन्त विशाल था, जो उन्हींके नामसे (आगे चलकर) कौरव कहलाया॥ १३–२२॥

कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च। परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः॥ २३॥
सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतां वरः। च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित्॥ २४॥
च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः। कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यातस्त्विन्द्रसमो विभुः॥ २५॥
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः। चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान्॥ २६॥
महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः। प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः॥ २७॥
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी। बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः॥ २८॥
कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान्। वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान् नाम पार्थिवः॥ २९॥
पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः। दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्च जज्ञिवान्॥ ३०॥
सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद् राजा बृहद्रथः। द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः॥ ३१॥

सूत उवाच

किलासीद् राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन् । भविष्यं कीर्तयिष्यामि शंतनोस्तु निबोधत ॥ ४१ ॥
शंतनुस्त्वभवद् राजा विद्वान् स वै महाभिषक् । इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम् ॥ ४२ ॥
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च । पुनर्युवा स भवति तस्मात् तं शंतनुं विदुः ॥ ४३ ॥
तत् तस्य शंतनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते । ततोऽवृणुत भार्यार्थे शंतनुर्जाह्नवीं नृपः ॥ ४४ ॥
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः । काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयत् सुतम् ॥ ४५ ॥
शंतनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम् । कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ ४६ ॥
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् । धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयच्छतम् ॥ ४७ ॥
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः । माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥ ४८ ॥
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे । धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ॥ ४९ ॥
इन्द्राद् धनंजयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः । नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत् ॥ ५० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! राजकुमार देवापि कुष्ठ-रोगी था, इसीलिये प्रजाओंने उसका आदर-सत्कार नहीं किया । अब मैं शंतनुके भविष्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये । (देवापिके वन चले जानेपर) शंतनु ज हुए । ये विद्वान् तो थे ही, साथ ही महान् वैद्य थे । इनकी महावैद्यताके प्रति लोग एक श्लोक करते हैं, जिसका आशय यह है कि 'महाराज जिस-जिस रोगी अथवा वृद्धको अपने हाथोंसे स्पर्श कर लेते थे, वह पुनः नौजवान हो जाता था । इसी कारण लोग उन्हें शंतनु कहते थे ।' उस समय प्रजागण उनके इस शंतनुत्व (रोगी और वृद्धको युवा बना देनेवाले) गुणका ही वर्णन करते थे । तदनन्तर प्रभावशाली राजा शंतनुने जह्नु-नन्दिनी गङ्गाको अपनी पत्नीके रूपमें वरण किया और उनके गर्भसे देवव्रत (भीष्म) नामक कुमारको पैदा किया । दाश-कन्या काली सत्यवतीने शंतनुके संयोगसे विचित्रवीर्य नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पिताके लिये परम प्रिय, शान्तात्मा और निष्पाप था । महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने विचित्र-वीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा (दासीसे) विदुरको उत्पन्न किया था । धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनमें दुर्योधन सबसे श्रेष्ठ था और वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशका स्वामी था । इसी प्रकार पाण्डुकी कुन्ती और माद्री नामकी दो पत्नियाँ हुईं । इन्हीं दोनोंके गर्भसे महाराज पाण्डुकी वंश-वृद्धिके लिये देवताओंद्वारा प्रदान किये गये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए । कुन्तीने धर्मके संयोगसे युधिष्ठिरको, वायुके संयोगसे वृकोदर (भीमसेन)को और इन्द्रके संयोगसे इन्द्र-सरीखे पराक्रमी धनंजय (अर्जुन) को जन्म दिया । इसी प्रकार माद्रीने अश्विनीकुमारोंके संयोगसे नकुल और सहदेवको पैदा किया ॥ ४१—५० ॥

पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः । द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात् ॥ ५१ ॥
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनंजयात् । चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत ॥ ५२ ॥
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः । तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः ॥ ५३ ॥
हैडम्बो भीमसेनात् तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः । काशी बलधराद् भीमाज्जज्ञे वै सर्वगं सुतम् ॥ ५४ ॥
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत । करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः ॥ ५५ ॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत । यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात् ॥ ५६ ॥
अभिमन्योः परीक्षित् तु पुत्रः परपुरंजयः । जनमेजयः परीक्षित्तः पुत्रः परमधार्मिकः ॥ ५७ ॥

सूत उवाच

किलासीद् राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन्। भविष्यं कीर्तयिष्यामि शंतनोस्तु निबोधत ॥ ४१ ॥
शंतनुस्त्वभवद् राजा विद्वान् स वै महाभिषक्। इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम् ॥ ४२ ॥
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च। पुनर्युवा स भवति तस्मात् तं शंतनुं विदुः ॥ ४३ ॥
तत् तस्य शंतनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते। ततोऽवृणुत भार्यार्थे शंतनुर्जाह्नवीं नृपः ॥ ४४ ॥
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः। काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयत् सुतम् ॥ ४५ ॥
शंतनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम्। कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ ४६ ॥
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्। धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयच्छतम् ॥ ४७ ॥
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः। माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥ ४८ ॥
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे। धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ॥ ४९ ॥
इन्द्राद् धनंजयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः। नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत् ॥ ५० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! राजकुमार देवापि कुष्ठ-रोगी था, इसीलिये प्रजाओंने उसका आदर-सत्कार नहीं किया। अब मैं शंतनुके भविष्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये। (देवापिके वन चले जानेपर) शंतनु ज हुए। ये विद्वान् तो थे ही, साथ ही महान् वैद्य थे। इनकी महावैद्यताके प्रति लोग एक श्लोक ह करते हैं, जिसका आशय यह है कि 'महाराज ु जिस-जिस रोगी अथवा वृद्धको अपने हाथोंसे स्पर्श कर लेते थे, वह पुनः नौजवान हो जाता था। इसी कारण लोग उन्हें शंतनु कहते थे।' उस समय प्रजागण उनके इस शंतनुत्व (रोगी और वृद्धको युवा बना देनेवाले) गुणका ही वर्णन करते थे। तदनन्तर प्रभावशाली राजा शंतनुने जह्नु-नन्दिनी गङ्गाको अपनी पत्नीके रूपमें वरण किया और उनके गर्भसे देवव्रत (भीष्म) नामक कुमारको पैदा किया। दाश-कन्या काली सत्यवतीने शंतनुके संयोगसे विचित्रवीर्य नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पिताके लिये परम प्रिय, शान्तात्मा और निष्पाप था। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने विचित्र-वीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा (दासीसे) विदुरको उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनमें दुर्योधन सबसे श्रेष्ठ था और वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशका स्वामी था। इसी प्रकार पाण्डुकी कुन्ती और माद्री नामकी दो पत्नियाँ हुईं। इन्हीं दोनोंके गर्भसे महाराज पाण्डुकी वंश-वृद्धिके लिये देवताओंद्वारा प्रदान किये गये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्तीने धर्मके संयोगसे युधिष्ठिरको, वायुके संयोगसे वृकोदर (भीमसेन)को और इन्द्रके संयोगसे इन्द्र-सरीखे पराक्रमी धनंजय (अर्जुन) को जन्म दिया। इसी प्रकार माद्रीने अश्विनीकुमारोंके संयोगसे नकुल और सहदेवको पैदा किया ॥ ४१—५० ॥

पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः। द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात् ॥ ५१ ॥
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनंजयात्। चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत ॥ ५२ ॥
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः। तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः ॥ ५३ ॥
हैडम्बो भीमसेनात् तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः। काशी बलधराद् भीमाज्जज्ञे वै सर्वगं सुतम् ॥ ५४ ॥
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत। करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः ॥ ५५ ॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात् ॥ ५६ ॥
अभिमन्योः परीक्षित् तु पुत्रः परपुरंजयः। जनमेजयः परीक्षित्तः पुत्रः परमधार्मिकः ॥ ५७ ॥

द्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किये जानेपर उसके फलस्वरूप शतानीकके एक महायशस्वी एवं पराक्रमी अधिसीमकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस (पुराण-प्रवचनके) समय सिंहासनासीन है। द्विजवरो! उसीके राज्य-शासन करते समय आपलोगोंने अभी-अभी पुष्करक्षेत्रमें तीन वर्षोंतक तथा कुरुक्षेत्रमें दृषद्वतीके तटपर दो वर्षोंतक इस दुर्लभ दीर्घ सत्रका अनुष्ठान सम्पन्न किया है॥ ५८—६७॥

ऋषय ऊचुः

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे। पुरा किल यदेतद् वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया॥ ६८॥
येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये। तेषामायुःप्रमाणं च नामतश्चैव तान् नृपान्॥ ६९॥
कृतयुगप्रमाणं च त्रेताद्वापरयोस्तथा। कलियुगप्रमाणं च युगदोषं युगक्षयम्॥ ७०॥
सुखदुःखप्रमाणं च प्रजादोषं युगस्य तु। एतत् सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो॥ ७१॥

ऋषियोंने पूछा—लोमहर्षणके पुत्र सूतजी! पूर्वकालमें जो बातें बीत चुकी हैं, उनका वर्णन तो आपने कर दिया। अब हमलोग प्रजाओंके भविष्यके विषयमें सुनना चाहते हैं। यह क्षत्रिय-जाति जिन-जिन वंशोंमें स्थित रहेगी और उनमें जो-जो नरेश उत्पन्न होंगे, उनके क्या नाम होंगे तथा उनकी आयुका प्रमाण कितना होगा? कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—इन चारों युगोंकी कितनी-कितनी अवधि होगी? प्रत्येक युगमें क्या-क्या दोष होंगे? तथा उन युगोंका विनाश कैसे होगा? सुख और दुःखका प्रमाण क्या होगा? तथा प्रत्येक युगकी प्रजाओंमें क्या-क्या दोष उत्पन्न होंगे? प्रभो! यह सब क्रमशः हमें बतलाइये; क्योंकि हमलोग इसे जानना चाहते हैं॥ ६८—७१॥

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा। भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च॥ ७२॥
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा॥ ७३॥
ऐडेक्ष्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वये तथा।
येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम्। तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्॥ ७४॥
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः। क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथान्ये ये बहिश्चराः॥ ७५॥
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः। पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान्॥ ७६॥
अधिसीमकृष्णश्चैतेषां प्रथमं वर्तते नृपः। तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्॥ ७७॥
अधिसीमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृपः। गङ्गया तु हृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये॥ ७८॥
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति। भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमाः॥ ७९॥
भूरिर्ज्येष्ठः सुतस्तस्य तस्य चित्ररथः स्मृतः। शुचिद्रवश्चित्ररथाद् वृष्णिमांश्च शुचिद्रवात्॥ ८०॥
वृष्णिमतः सुषेणश्च भविष्यति शुचिर्नृपः। तस्मात् सुषेणाद् भविता सुनीथो नाम पार्थिवः॥ ८१॥
नृपात् सुनीथाद् भविता नृचक्षुः सुमहायशाः। नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः॥ ८२॥
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः। परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः॥ ८३॥
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशयः। मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरंजयः॥ ८४॥
उर्वो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः। तिग्माद् बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात्॥ ८५॥
वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः। भविष्यते चोदयनाद् वीरो राजा वहीनरः॥ ८६॥
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति। दण्डपाणेर्निरमित्रो निरमित्रात्तु क्षेमकः॥ ८७॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः।

द्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किये जानेपर उसके फलस्वरूप शतानीकके एक महायशस्वी एवं पराक्रमी अधिसीमकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस (पुराण-प्रवचनके) समय सिंहासनासीन है। द्विजवरो! उसीके राज्य-शासन करते समय आपलोगोंने अभी-अभी पुष्करक्षेत्रमें तीन वर्षोंतक तथा कुरुक्षेत्रमें दृषद्वतीके तटपर दो वर्षोंतक इस दुर्लभ दीर्घ सत्रका अनुष्ठान सम्पन्न किया है ॥ ५८—६७ ॥

ऋषय ऊचुः

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे। पुरा किल यदेतद् वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया ॥ ६८ ॥
येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये। तेषामायुःप्रमाणं च नामतश्चैव तान् नृपान् ॥ ६९ ॥
कृतयुगप्रमाणं च त्रेताद्वापरयोस्तथा। कलियुगप्रमाणं च युगदोषं युगक्षयम् ॥ ७० ॥
सुखदुःखप्रमाणं च प्रजादोषं युगस्य तु। एतत् सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो ॥ ७१ ॥

ऋषियोंने पूछा—लोमहर्षणके पुत्र सूतजी! पूर्वकालमें जो बातें बीत चुकी हैं, उनका वर्णन तो आपने कर दिया। अब हमलोग प्रजाओंके भविष्यके विषयमें सुनना चाहते हैं। यह क्षत्रिय-जाति जिन-जिन वंशोंमें स्थित रहेगी और उनमें जो-जो नरेश उत्पन्न होंगे, उनके क्या नाम होंगे तथा उनकी आयुका प्रमाण कितना होगा? कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—इन चारों युगोंकी कितनी-कितनी अवधि होगी? प्रत्येक युगमें क्या-क्या दोष होंगे? तथा उन युगोंका विनाश कैसे होगा? सुख और दुःखका प्रमाण क्या होगा? तथा प्रत्येक युगकी प्रजाओंमें क्या-क्या दोष उत्पन्न होंगे! प्रभो! यह सब क्रमशः हमें बतलाइये; क्योंकि हमलोग इसे जानना चाहते हैं ॥ ६८—७१ ॥

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा। भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च ॥ ७२ ॥
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा ॥ ७३ ॥
ऐडेक्ष्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वये तथा।
येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम्। तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान् ॥ ७४ ॥
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः। क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथान्ये ये बहिश्चराः ॥ ७५ ॥
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा।
कैवर्ताभीरशवरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः। पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥ ७६ ॥
अधिसीमकृष्णश्चैतेषां प्रथमं वर्तते नृपः। तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान् ॥ ७७ ॥
अधिसीमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृपः। गङ्गया तु हृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये ॥ ७८ ॥
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति। भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमाः ॥ ७९ ॥
भूरिर्ज्येष्ठः सुतस्तस्य तस्य चित्ररथः स्मृतः। शुचिद्रवश्चित्ररथाद् वृष्णिमांश्च शुचिद्रवात् ॥ ८० ॥
वृष्णिमतः सुषेणश्च भविष्यति शुचिर्नृपः। तस्मात् सुषेणाद् भविता सुनीथो नाम पार्थिवः॥ ८१ ॥
नृपात् सुनीथाद् भविता नृचक्षुः सुमहायशाः। नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः ॥ ८२ ॥
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः। परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः ॥ ८३ ॥
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशयः। मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरंजयः ॥ ८४ ॥
उर्वो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः। तिग्माद् बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात् ॥ ८५ ॥
वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः। भविष्यते चोदयनाद् वीरो राजा वहीनरः ॥ ८६ ॥
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति। दण्डपाणेर्निरमित्रो निरमित्रात्तु क्षेमकः ॥ ८७ ॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः।

सूत उवाच

योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे। ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजायती॥ २
पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः। निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः*॥ ३
शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः। पवमानात्मजो ह्यग्निः कव्यवाहन उच्यते॥ ४
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः। देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितृणां कव्यवाहनः॥ ५
सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः। एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव च॥ ६
प्रवक्ष्ये नामतस्तान् वै प्रविभागेन तान् पृथक्। पावनो लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः॥ ७
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः। वैश्वानरः सुतस्तस्य वहन् हव्यं समाः शतम्॥ ८
सम्भृतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करादधि। सोऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दध्यङ्ङाथर्वणः सुतः॥ ९
भृगोः प्रजायताथर्वा दध्यङ्ङाथर्वणः स्मृतः। तस्य ह्यलौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स वै स्मृतः॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें जो ये अग्निके अभिमानी देवता कहे गये हैं, वे ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। स्वाहाने उनके संयोगसे पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जो अग्नि भी कहलाते हैं। उनमेंसे पावकको वैद्युत (जलबिजलीसे उत्पन्न), पवमानको निर्मथ्य (निर्मन्थन करनेपर उत्पन्न) और शुचिको सौर (सूर्यके सम्बन्धसे उत्पन्न) अग्नि कहा जाता है। ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाववाले) माने गये हैं। पवमानके पुत्र जो अग्नि हुए, उन्हें कव्यवाहन कहा जाता है। पावकके पुत्र सहरक्ष और शुचिके पुत्र हव्यवाहन हुए। देवताओंके अग्नि हव्यवाह हैं, जो ब्रह्माके प्रथम पुत्र हैं। सहरक्ष असुरोंके अग्नि हैं तथा पितरोंके अग्नि कव्यवाहन हैं। इस प्रकार ये तीनों देव-असुर-पितर—इ तीनोंके पृथक्-पृथक् अग्नि हैं। इनके पुत्र-पौत्रोंकी संख उनचास है। उनको मैं विभागपूर्वक पृथक्-पृथक् नामनिर्देशा तुसार बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम पावन नामक लौकि अग्निदेव हुए, जो ब्रह्माके पुत्र हैं। उनके पुत्र ब्रह्मौदनाग्नि हुए, जो भरत नामसे भी विख्यात हैं। वैश्वानर नामक अ सौ वर्षोंतक हव्यको वहन करते रहे। पुष्कर (या आकाश) क मन्थन करनेपर अथर्वाके पुत्ररूपमें जो अग्नि उत्पन्न हुए, वे दध्यङ्ङाथर्वणके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हींको दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है। भृगुसे अथर्वाकी और अथर्वासे अङ्गिराकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। उनसे अलौकिक अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिसे दक्षिणाग्नि भी कहते हैं॥ २-१०॥

अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते। स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः॥ ११॥
ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ।
ततः षोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः। यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः॥ १२॥
कावेरीं कृष्णवेणां च नर्मदां यमुनां तथा। गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम्॥ १३॥
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा। सीतां मनस्विनीं चैव ह्रादिनीं पावनां तथा॥ १४॥
तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक्। तदा तु विहरंस्तासु धिष्ण्येच्छः स बभूव ह॥ १५॥
स्वाभिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णवः। धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्णयः स्मृताः॥ १६॥
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु। विभुः प्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णवोऽपरे॥ १७॥
विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे। अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम्॥ १८॥
वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः। सम्राडग्निसुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः॥ १९॥

* 'अब्योनिर्वैद्युतः स्मृतः' इति पाठान्तरम्।

सूत उवाच

योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे। ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजायती
पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः। निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः*
शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः। पवमानात्मजो ह्यग्निः कव्यवाहन उच्यते
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः। देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः
सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः। एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव च
प्रवक्ष्ये नामतस्तान् वै प्रविभागेन तान् पृथक्। पावनो लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः।
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः। वैश्वानरः सुतस्तस्य वहन् हव्यं समाः शतम्॥
सम्भूतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करादधि। सोऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दध्यङ्ङाथर्वणः सुतः।
भृगोः प्रजायताथर्वा दध्यङ्ङाथर्वणः स्मृतः। तस्य ह्यलौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स वै स्मृतः॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें जो ये अग्निके अभिमानी देवता कहे गये हैं, वे ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। स्वाहाने उनके संयोगसे पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जो अग्नि भी कहलाते हैं। उनमेंसे पावकको वैद्युत (जलविजलीसे उत्पन्न), पवमानको निर्मथ्य (निर्मन्थन करनेपर उत्पन्न) और शुचिको सौर (सूर्यके सम्बन्धसे उत्पन्न) अग्नि कहा जाता है। ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाववाले) माने गये हैं। पवमानके पुत्र जो अग्नि हुए, उन्हें कव्यवाहन कहा जाता है। पावकके पुत्र सहरक्ष और शुचिके पुत्र हव्यवाहन हुए। देवताओंके अग्नि हव्यवाह हैं, जो ब्रह्माके प्रथम पुत्र हैं। सहरक्ष असुरोंके अग्नि हैं तथा पितरोंके अग्नि कव्यवाहन हैं। इस प्रकार ये तीनों देव-असुर-पितर तीनोंके पृथक्-पृथक् अग्नि हैं। इनके पुत्र-पौत्रोंकी उनचास है। उनको मैं विभागपूर्वक पृथक्-पृथक् नामा नुसार बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम पावन नामक [illegible] अग्निदेव हुए, जो ब्रह्माके पुत्र हैं। उनके पुत्र ब्रह्मौ[illegible] हुए, जो भरत नामसे भी विख्यात हैं। वैश्वानर नाम[illegible] सौ वर्षोंतक हव्यको वहन करते रहे। पुष्कर (या आकाश मन्थन करनेपर अथर्वाके पुत्ररूपमें जो अग्नि उत्पन्न हु[illegible] दध्यङ्ङाथर्वणके नामसे प्रसिद्ध हुए। उ[illegible] दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है। भृगुसे अथ[illegible] और अथर्वासे अङ्गिराकी उत्पत्ति बतलायी [illegible] है। उनसे अलौकिक अग्निकी उत्पत्ति हुई, [illegible] दक्षिणाग्नि भी कहते हैं॥ २—१०॥

अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते। स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः॥ ११
ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ।
ततः षोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः। यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः॥ १२
कावेरीं कृष्णवेणां च नर्मदां यमुनां तथा। गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम्॥ १३
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा। सीतां मनस्विनीं चैव ह्लादिनीं पावनां तथा॥ १४
तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक्। तदा तु विहरंस्तासु धिष्ण्येच्छः स बभूव ह॥ १५
स्वाभिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णवः। धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्णवः स्मृताः॥ १६
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु। विभुः प्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णवोऽपरे॥ १७
विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे। अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम्॥ १८
वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः। सम्राडग्निसुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः॥ १९

* 'अन्योनिर्वैद्युतः स्मृतः' इति पाठान्तरम्।

सहरक्षस्तु वै कामान् गृहे स वसते नृणाम् । क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान् योऽत्ति वै मृतान्।
इत्येते पावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः । ततः सुतास्तु सौवीर्याद् गन्धर्वैरसुरैर्हृताः ।
मथितो यस्त्वरण्यां तु सोऽग्निराप समिन्धनम् । आयुर्नाम्ना तु भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।
आयुषो महिमान् पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः । पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः ।
सर्वस्माद् देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः । पुत्रोऽस्य स हितो ह्यग्निरद्भुतः स महायशाः ।
प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः । अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान् स्मृतः ।
विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः । विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौ सुताः स्मृताः।

अब मैं उन आठ विहरणीय अग्नि-पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ । बर्हिष् नामक होत्रिय अग्निके पुत्र हव्यवाहन अग्नि हैं । इसके पश्चात् प्रचेता नामक प्रशंसनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिनका दूसरा नाम संसहायक है । पुनः अग्निपुत्र विश्ववेदा हुए, जिन्हें ब्राह्मणाच्छंसि* भी कहा जाता है । जलसे उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध स्वाम्भ अग्नि सेतु नामसे भी अभिहित होते हैं । इन धिष्ण्यसंज्ञक अग्नियोंका यज्ञमें यथास्थान आवाहन होता है और ब्राह्मणलोग सोम-रसद्वारा इनकी पूजा करते हैं । तत्पश्चात् जो पावक नामक अग्नि हैं, जिन्हें सत्पुरुषगण योग नामसे पुकारते हैं, उन्हींको अवभृथ अग्नि† समझना चाहिये । उनकी वरुणके साथ पूजा होती है । हृदय नामक अग्निके पुत्र मन्युमान् हैं, जिन्हें जठराग्नि भी कहते हैं । ये मनुष्योंके उदरमें स्थित रहकर भक्षित पदार्थोंको पचाते हैं । परस्परके संघर्षसे उत्पन्न हुए प्रभावशाली अग्निको, जो जगत्में निरन्तर प्राणियोंको जलाते रहते हैं, विद्धाग्नि कहते हैं । मन्युमान् अग्निके पुत्र संवर्तक हैं, जो अत्यन्त भयंकर बताये जाते हैं । वे समुद्रमें बडवामुखद्वारा निरन्तर जलपान करते हुए निवास करते हैं । समुद्रवासी संवर्तक अग्निके पुत्र सहरक्ष बतलाये जाते हैं । सहरक्ष मनुष्योंके घरोंमें निवास करते हैं और उनकी सभी कामनाओंको करते रहते हैं । सहरक्षके पुत्र क्रव्यादग्नि हैं, हुए पुरुषोंका भक्षण करते हैं । इस प्रकार ब्राह्मणोंद्वारा पावक नामक अग्निके पुत्र गये हैं । इनके अतिरिक्त जो अन्य पु उन्हें सौवीर्यसे गन्धर्वों और असुरोंने हरण क था । अरणीमें मन्थन करनेसे जो अग्नि उत्पन्न है, वह तो इन्धनके आश्रित रहता है । पृथु- लिये जिन अग्निकी नियुक्ति हुई है, उन ऐश्व अग्निका नाम आयु है । आयुके पुत्र महिमा उनके पुत्र दहन हैं, जो पाकयज्ञोंके अभिमानी हैं । वे ही उन यज्ञोंमें हवन किये गये हविके हैं । दहनके पुत्र अद्भुत नामक अग्नि हैं, जो देवलोकोंमें दिये गये हव्य एवं कव्यका भक्षण हैं । वे महान् यशस्वी और जनताके हितकारी है प्रायश्चित्तनिमित्तक यज्ञोंके अभिमानी देवता हैं, कारण उन यज्ञोंमें हवन किये गये हव्यको खाते अद्भुतके पुत्र वीर नामक अग्नि हैं, जो देवांशसे उ और महान् कहे जाते हैं । उनके पुत्र विविधाग्नि हैं विविधाग्निके पुत्र महाकवि हैं। विविधाग्निके दूसरे अर्कसे आठ अग्नि-पुत्रोंकी उत्पत्ति बतलायी जाती

काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहा यतिकृच्च यः । सुरभिर्वसुमान् नादो ह्यर्यश्वश्चैव रुक्मवान् ॥ ३
प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिताः । शुच्यग्नेस्तु प्रजा ह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश ॥ ३
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे । समतीते तु सर्गे ये यामैः सह सुरोत्तमैः ॥ ४

* यह अग्निष्टोमके १६ ऋत्विजोंमेंसे भी एक होता है, जिसका इस अग्निपरिचयसे विशेष सम्बन्ध होता है ।
† यज्ञान्तहवन एवं अवभृथ स्नानके समय इसका उपयोग होता है ।

सहरक्षस्तु वै कामान् गृहे स वसते नृणाम्। क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान् योऽत्ति वै मृतान्॥ ३
इत्येते पावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः। ततः सुतास्तु सौवीर्याद् गन्धर्वैरसुरैर्हृताः॥ ३
मथितो यस्त्वरण्यां तु सोऽग्निराप समिन्धनम्। आयुर्नाम्ना तु भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते॥ ३
आयुषो महिमान् पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः। पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः॥ ३
सर्वस्माद् देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः। पुत्रोऽस्य स हितो ह्यग्निरद्भुतः स महायशाः॥ ३
प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः। अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान् स्मृतः॥ ३
विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः। विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौ सुताः स्मृताः॥ ३

अब मैं उन आठ विहरणीय अग्नि-पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। बर्हिष् नामक होत्रिय अग्निके पुत्र हव्यवाहन अग्नि हैं। इसके पश्चात् प्रचेता नामक प्रशंसनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिनका दूसरा नाम संसहायक है। पुनः अग्निपुत्र विश्ववेदा हुए, जिन्हें ब्राह्मणाच्छंसि* भी कहा जाता है। जलसे उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध स्वाम्भ अग्नि सेतु नामसे भी अभिहित होते हैं। इन धिष्ण्यसंज्ञक अग्नियोंका यज्ञमें यथास्थान आवाहन होता है और ब्राह्मणलोग सोम-रसद्वारा इनकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् जो पावक नामक अग्नि हैं, जिन्हें सत्पुरुषगण योग नामसे पुकारते हैं, उन्हींको अवभृथ अग्नि† समझना चाहिये। उनकी वरुणके साथ पूजा होती है। हृदय नामक अग्निके पुत्र मन्युमान् हैं, जिन्हें जठराग्नि भी कहते हैं। ये मनुष्योंके उदरमें स्थित रहकर भक्षित पदार्थोंको पचाते हैं। परस्परके संघर्षसे उत्पन्न हुए प्रभावशाली अग्निको, जो जगत्में निरन्तर प्राणियोंको जलाते रहते हैं, विद्धाग्नि कहते हैं। मन्युमान् अग्निके पुत्र संवर्तक हैं, जो अत्यन्त भयंकर बताये जाते हैं। वे समुद्रमें बडवामुखद्वारा निरन्तर जलपान करते हुए निवास करते हैं। समुद्रवासी संवर्तक अग्निके पुत्र सहरक्ष बतलाये जाते हैं। सहरक्ष मनुष्योंके घरोंमें निवास करते हैं और उनकी सभी कामनाओंको स करते रहते हैं। सहरक्षके पुत्र क्रव्यादग्नि हैं, जो हुए पुरुषोंका भक्षण करते हैं। इस प्रकार ये ब्राह्मणोंद्वारा पावक नामक अग्निके पुत्र बत गये हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य पुत्र उन्हें सौवीर्यसे गन्धर्वों और असुरोंने हरण कर लि था। अरणीमें मन्थन करनेसे जो अग्नि उत्पन्न ह है, वह तो इन्धनके आश्रित रहता है। पृथु-यों लिये जिन अग्निकी नियुक्ति हुई है, उन ऐश्वर्यश अग्निका नाम आयु है। आयुके पुत्र महिमान् उनके पुत्र दहन हैं, जो पाकयज्ञोंके अभिमानी दे हैं। वे ही उन यज्ञोंमें हवन किये गये हविको ख हैं। दहनके पुत्र अद्भुत नामक अग्नि हैं, जो सम देवलोकोंमें दिये गये हव्य एवं कव्यका भक्षण क हैं। वे महान् यशस्वी और जनताके हितकारी हैं। प्रायश्चित्तनिमित्तक यज्ञोंके अभिमानी देवता हैं, इ कारण उन यज्ञोंमें हवन किये गये हव्यको खाते हैं अद्भुतके पुत्र वीर नामक अग्नि हैं, जो देवांशसे उद् और महान् कहे जाते हैं। उनके पुत्र विविधाग्नि हैं अ विविधाग्निके पुत्र महाकवि हैं। विविधाग्निके दूसरे पु अर्कसे आठ अग्नि-पुत्रोंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है

काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहा यतिकृच्च यः। सुरभिर्वसुमान् नादो ह्यर्यश्वश्चैव रुक्मवान्॥ ३८
प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिताः। शुच्यग्नेस्तु प्रजा ह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश॥ ३९
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे। समतीते तु सर्गे ये यामैः सह सुरोत्तमैः॥ ४०

* यह अग्निष्टोमके १६ ऋत्विजोंमेंसे भी एक होता है, जिसका इस अग्निपरिचर्यासे विशेष सम्बन्ध होता है।
† यज्ञान्तहवन एवं अवभृथ स्नानके समय इसका उपयोग होता है।

सूत उवाच

एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः। विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम् ॥ २ ॥
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे। कर्मयोगं च सांख्यं च यथावद् विस्तरान्वितम् ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्रलयकालके उस एकार्णवके जलमें मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने सूर्यपुत्र मनुके प्रति सर्गके विस्तारका पूर्णरूपसे वर्णन किया था। साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोगको भी उन्हें विस्तारपूर्वक यथार्थरूपसे बतलाया था (उसे ही मैं आपलोगोंको सुनाना चाहता हूँ) ॥ २-३ ॥

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत कर्मयोगस्य लक्षणम्। यस्मादविदितं लोके न किंचित् तव सुव्रत ॥ ४ ॥

ऋषियोंने पूछा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी ! आपके लिये लोकमें कोई वस्तु अज्ञात तो है नहीं, अतः हमलोग आपसे कर्मयोगका लक्षण सुनना चाहते हैं ॥ ४ ॥

सूत उवाच

कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम्। ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते ॥ ५ ॥
कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात् तत्परमं पदम्। कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः ॥ ६ ॥
तस्मात् कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम्। वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम् ॥ ७ ॥
अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः। दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य तु ॥ ८ ॥
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः। अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ॥ ९ ॥
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च। तथास्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ॥ १० ॥
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः। अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ॥ ११ ॥
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते। श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत् प्रयत्नतः ॥ १२ ॥
देवतानां पितॄणां च मनुष्याणां च सर्वदा। कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ॥ १३ ॥
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि। पितॄञ्श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः ॥ १४ ॥
पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये। कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी ॥ १५ ॥
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति। तत्पापनाशनायामी पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः* ॥ १६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! विष्णुभगवान्ने जिस कार कर्मयोगकी व्याख्या की थी, उसे मैं बतला रहा ! । कर्मयोग ज्ञानयोगसे हजारोंगुना अधिक प्रशस्त है; योंकि ज्ञान कर्मयोगसे ही प्रादुर्भूत होता है; अतः वह रमपद है । ब्रह्म भी कर्मज्ञानसे उद्भूत होता है । कर्मके ना तो ज्ञानकी सत्ता ही नहीं है । इसीलिये कर्मयोगके भ्यासमें संलग्न मनुष्य अविनाशी तत्त्वको प्राप्त कर ता है । सम्पूर्ण वेद और वेदज्ञोंके आचार-विचार र्मके मूल हैं । उनमें आठ प्रकारके आत्मगुण प्रधान-रूपसे विद्यमान रहते हैं; जैसे समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा दुःखसे पीडित प्राणीको आश्वासन प्रदान करना और उसकी रक्षा करना, जगत्में किसीसे ईर्ष्या-द्वेष न करना, बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, परिश्रमरहित अथवा अनायास प्राप्त हुए कार्योंके अवसरपर उन्हें माङ्गलिक आचार-व्यवहारके द्वारा सम्पन्न करना, अपनेद्वारा उपार्जित द्रव्योंसे दीन-दुखियोंकी सहायता करते समय कृपणता न करना तथा पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा निःस्पृह रहना—पुराणोंके ज्ञाता विद्वानोंद्वारा

* ये १३–१६ तकके ४ श्लोक मनुस्मृति ३ । ६८–७१ में भी प्राप्त होते हैं । और आठ गुणोंके निर्देशक श्लोक तिमधर्म सूत्र शुक स० २१ । १७१, चाणक्य० १२ । १५ आदिमें उपलब्ध भी हैं ।

सूत उवाच

एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः । विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम् ॥ २ ॥
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे । कर्मयोगं च सांख्यं च यथावद् विस्तरान्वितम् ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्रलयकालके उस
एकार्णवके जलमें मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान्
विष्णुने सूर्यपुत्र मनुके प्रति सर्गके विस्तारका पूर्णरूपसे
वर्णन किया था। साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोगको भी
उन्हें विस्तारपूर्वक यथार्थरूपसे बतलाया था (उसे ही मैं
आपलोगोंको सुनाना चाहता हूँ) ॥ २-३ ॥

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत कर्मयोगस्य लक्षणम् । यस्मादविदितं लोके न किंचित् तव सुव्रत ॥ ४ ॥

ऋषियोंने पूछा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले
सूतजी ! आपके लिये लोकमें कोई वस्तु अज्ञात तो है
नहीं, अतः हमलोग आपसे कर्मयोगका लक्षण सुनना
चाहते हैं ॥ ४ ॥

सूत उवाच

कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम् । ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते ॥ ५ ॥
कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात् तत्परमं पदम् । कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः ॥ ६ ॥
तस्मात् कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम् । वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम् ॥ ७ ॥
अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः । दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य तु ॥ ८ ॥
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः । अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ॥ ९ ॥
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च । तथास्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ॥ १० ॥
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः । अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ॥ ११ ॥
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते । श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत् प्रयत्नतः ॥ १२ ॥
देवतानां पितॄणां च मनुष्याणां च सर्वदा । कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ॥ १३ ॥
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि । पितॄञ्श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः ॥ १४ ॥
पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये । कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी ॥ १५ ॥
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति । तत्पापनाशनायामी पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः* ॥ १६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! विष्णुभगवान्ने जिस
कार कर्मयोगकी व्याख्या की थी, उसे मैं बतला रहा
। कर्मयोग ज्ञानयोगसे हजारोंगुना अधिक प्रशस्त है;
योंकि ज्ञान कर्मयोगसे ही प्रादुर्भूत होता है; अतः वह
मपद है। ब्रह्म भी कर्मज्ञानसे उद्भूत होता है। कर्मके
ना तो ज्ञानकी सत्ता ही नहीं है। इसीलिये कर्मयोगके
भ्यासमें संलग्न मनुष्य अविनाशी तत्त्वको प्राप्त कर
ता है। सम्पूर्ण वेद और वेदज्ञोंके आचार-विचार
के मूल हैं। उनमें आठ प्रकारके आत्मगुण प्रधान-
रूपसे विद्यमान रहते हैं; जैसे समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा
दुःखसे पीडित प्राणीको आश्वासन प्रदान करना और
उसकी रक्षा करना, जगत्में किसीसे ईर्ष्या-द्वेष न करना,
बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, परिश्रमरहित अथवा
अनायास प्राप्त हुए कार्योंके अवसरपर उन्हें माङ्गलिक
आचार-व्यवहारके द्वारा सम्पन्न करना, अपनेद्वारा
उपार्जित द्रव्योंसे दीन-दुखियोंकी सहायता करते समय
कृपणता न करना तथा पराये धन और परायी स्त्रीके
प्रति सदा निःस्पृह रहना—पुराणोंके ज्ञाता विद्वानोंद्वारा

---

* ये १३–१६ तकके ४ श्लोक मनुस्मृति ३। ६८–७१ में भी प्राप्त होते हैं। और आठ गुणोंके निर्देशक श्लोक
तमधर्म सूत्र शुक स० २१। १७१, चाणक्य० १२। १५ आदिमें उपलब्ध भी हैं।

जाते हैं। इसलिये ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु अथवा शिवकी अभेदभावसे पूजा करनेपर चराचर जगत्की पूजा सम्पन्न हो जाती है। सूर्य ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंके परम धाम हैं, जिनमें वे निवास करते हैं। सूर्य-देव वेदोंके मूर्तस्वरूप हैं, अतः इनकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अग्नि अथवा ब्राह्मणोंके मुखोंमें इनका आवाहन करके दान, व्रत, उपवास, जप, हवन आदिद्वारा इनकी पूजा करे। इस प्रकार जो मनुष्य कर्मयोगनिष्ठ, वेदान्तशास्त्र और स्मृतियोंका प्रेमी तथा अधर्मसे सदा भयभीत रहता है, उसके लिये इस लोक अथवा परलोकमें कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता, अर्थात् सभी पदार्थ उसके हस्तगत हो जाते हैं॥ १७–२६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कर्मयोगमाहात्म्यनामक बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

पुराणोंकी नामावलि और उनका संक्षिप्त परिचय

ऋषय ऊचुः

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्। दानधर्ममशेषं तु यथावदनुपूर्वशः॥ १॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमलोगोंसे पुराणोंकी संख्याका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। साथ ही उनके दान और धर्मकी सम्पूर्ण आनुपूर्वी विधि भी यथार्थरूपसे बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा। यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत॥ २॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसे ही प्रश्नके उत्तरमें उस समय पुराणपुरुष विश्वात्मा मत्स्यभगवान्ने मनुके प्रति पुराणोंके विषयमें जो कुछ कहा था, उसे सुनिये॥ २॥

मत्स्य उवाच

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥ ३॥
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ ४॥
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया। अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणं न्यायविस्तरम्॥ ५॥
मीमांसां धर्मशास्त्रं च परिगृह्य मया कृतम्। मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे॥ ६॥
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च। श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवांश्चतुर्मुखः॥ ७॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत् ततः। कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप॥ ८॥
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा॥ ९॥
तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते। अद्यापि देवलोकेऽस्मिञ् शतकोटिप्रविस्तरम्॥ १०॥
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्। पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते॥ ११॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजर्षे! ब्रह्माजीने (सृष्टि-निर्माणके समय) समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणका ही स्मरण किया था। उसके बाद उनके मुखोंसे वेद प्रादुर्भूत हुए हैं। अनघ! उस कल्पान्तरमें सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत, पुण्यप्रद और त्रिवर्ग—तीन पुरुषार्थोंके समुदाय (धर्म, अर्थ, काम)का साधनस्वरूप पुराण एक ही था। सभी लोकोंके जलकर नष्ट हो जानेपर मैंने ही अश्व (हयग्रीव) रूपसे व्याकरणादि छहों

जाते हैं। इसलिये ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु अथवा शिवकी अभेदभावसे पूजा करनेपर चराचर जगत्‌की पूजा सम्पन्न हो जाती है। सूर्य ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंके परम धाम हैं, जिनमें वे निवास करते हैं। सूर्य-देव वेदोंके मूर्तस्वरूप हैं, अतः इनकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अग्नि अथवा ब्राह्मणोंके मुखोंमें इनका आवाहन करके दान, व्रत, उपवास, जप, हवन आदिद्वारा इनकी पूजा करे। इस प्रकार जो मनुष्य कर्मयोगनिष्ठ, वेदान्तशास्त्र और स्मृतियोंका प्रेमी तथा अधर्मसे सदा भयभीत रहता है, उसके लिये इस लोक अथवा परलोकमें कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता, अर्थात् सभी पदार्थ उसके हस्तगत हो जाते हैं ॥ १७-२६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कर्मयोगमाहात्म्यनामक बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

पुराणोंकी नामावलि और उनका संक्षिप्त परिचय

ऋषय ऊचुः

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्। दानधर्ममशेषं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमलोगोंसे पुराणोंकी संख्याका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। साथ ही उनके दान और धर्मकी सम्पूर्ण आनुपूर्वी विधि भी यथार्थरूपसे बतलाइये ॥ १ ॥

सूत उवाच

इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा। यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसे ही प्रश्नके उत्तरमें उस समय पुराणपुरुष विश्वात्मा मत्स्यभगवान्‌ने मनुके प्रति पुराणोंके विषयमें जो कुछ कहा था, उसे सुनिये ॥ २ ॥

मत्स्य उवाच

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥ ३ ॥
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ४ ॥
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया। अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणं न्यायविस्तरम् ॥ ५ ॥
मीमांसां धर्मशास्त्रं च परिगृह्य मया कृतम्। मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ॥ ६ ॥
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च। श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवांश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत् ततः। कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ॥ ८ ॥
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥ ९ ॥
तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते। अद्यापि देवलोकेऽस्मिञ् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ १० ॥
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्। पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥ ११ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजर्षे! ब्रह्माजीने (सृष्टि-निर्माणके समय) समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणका ही स्मरण किया था। उसके बाद उनके मुखोंसे वेद प्रादुर्भूत हुए हैं। अनघ! उस कल्पान्तरमें सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत, पुण्यप्रद और त्रिवर्ग—तीन पुरुषार्थोंके समुदाय (धर्म, अर्थ, काम)का साधनस्वरूप पुराण एक ही था। सभी लोकोंके जलकर नष्ट हो जानेपर मैंने ही अश्व (हयग्रीव) रूपसे व्याकरणादि छहों

संख्या पचपन हजार बतायी जाती है। स्वर्णनिर्मित कमलसे युक्त उस पुराणका जो मनुष्य तिलके साथ ज्येष्ठ मासमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ*के फलकी प्राप्ति होती है। महर्षि पराशरने वाराह-कल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर जिन सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किया है, उनसे युक्त (तृतीय) पुराणको वैष्णव (विष्णुपुराण) कहा जाता है। विद्वान्‌लोग उसका प्रमाण तेईस† हजार श्लोकोंका बतलाते हैं। जो मानव आषाढ़ मासकी पूर्णिमाको घृतधेनुयुक्त इस पुराणका दान करता है, उसका आत्मा पवित्र हो जाता है और वह वरुण-लोकमें जाता है। श्वेतकल्पके प्रसङ्गवश वायुने इस मर्त्यलोकमें जिन धर्मोंका वर्णन किया था, उनका संकलन जिसमें हुआ है, उसे (चतुर्थ) वायवीय (वायुपुराण या शिवपुराण‡) कहते हैं। वह शंकरजीके माहात्म्यसे भी परिपूर्ण है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य श्रावण-मासमें श्रावणी पूर्णिमाको गुडधेनु और बैलके साथ इस पुराणका कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह पवित्रात्मा होकर शिव-लोकमें एक कल्पतक निवास करता है। जिसमें गायत्रीका आश्रय लेकर विस्तारपूर्वक धर्मका वर्णन किया गया है तथा जो वृत्रासुरवधके वृत्तान्तसे संयुक्त है, उसे (पञ्चम) भागवत-पुराण§ कहा जाता है। इसी प्रकार सारस्वत-कल्पमें जो श्रेष्ठ मनुष्य हो गये हैं, लोकमें उनके वृत्तान्तसे सम्बन्धित पुराणको 'भागवत-पुराण' कहा जाता है। यह पुराण अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया जाता है। जो मनुष्य इसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित सिंहके साथ भाद्रपद मासकी पूर्णिमा तिथिको दान कर देता है, वह परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है॥ १२—२२॥

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च। पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते॥ २३॥
आश्विने पञ्चदश्यां तु दद्याद् धेनुसमन्वितम्। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ २४॥
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा। व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः॥ २५॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत् सर्वं विस्तरेण तु। पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते॥ २६॥
प्रतिलिख्य च यो दद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम्। कार्तिक्यां पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग् भवेत्॥ २७॥
यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च। वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते॥ २८॥

* विष्णुपुराण (५। ५। १४) तथा मनुस्मृति (११। २६०) आदि स्मृतियोंके अनुसार यह क्रतुराट्—सभी यज्ञोंका राजा तथा सर्वपापापनोदक है। शतपथ ब्राह्मणके अश्वमेधकाण्डके पचासों पृष्ठों तथा ऐतरेय-तैत्तिरीय ब्राह्मणों, तैत्तिरीय संहिता-भाष्य पृ० ३१९७—४७६६, आश्वलायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, कात्यायनादि श्रौतसूत्रों तथा वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड पाद्म आदि कई स्थानों और रामाश्वमेध, महाभारतके आश्वमेधिकपर्व, जैमिनीयाश्वमेध आदि कई ग्रन्थोंमें इसकी विस्तृत महिमा एवं विधि निरूपित है। इसमें प्रति आठवें पूरे दिन 'पारिप्लव'में पुराण (विशेषकर मत्स्यपुराण) सुननेकी विधि है और इसमें पुराण-श्रवणकी ३६ बार पुनरावृत्ति होती है।

† यह संख्या विष्णुधर्मोत्तरको लेकर है। अन्यथा लिङ्गपुराणादिके वचनानुसार इसमें साढ़े पाँच सहस्र श्लोक ही हैं।

‡ पुराणगणनामें चौथी संख्यापर कहीं वायु और कहीं शिवपुराणका उल्लेख है। शिवपुराणमें भी एक वायवीय संहिता है तथा शूलपाणिके वचनानुसार वायुपुराण भी शैवपुराण ही है।

§ भागवतपुराण बहुत प्राचीन सर्वाधिक प्रसिद्ध है; क्योंकि इसपर ११ वीं शतीकी श्रीधरीसे १९ वीं शतीकी अन्वितार्थप्रकाशिका तक पचासों संस्कृत टीकाएँ हैं तथा सुरसागर आदि-जैसे सैकड़ों देशी-विदेशी भाषाओंमें इसके गद्य-पद्यानुवाद हैं। बर्नफका फ्रेंच अनुवाद भी श्रेष्ठरूप पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसपर प्रथम शतीसे लेकर मध्वादितकके 'भागवत'तात्पर्यनिर्णय, लघुभागवतामृत, बृहद्भागवतामृतादि अगणित प्रबन्ध निबद्ध हुए हैं और गोपाल भट्ट आदिके हरिभक्तिविलासादिमें इसके हजारों वचन उद्धृत हैं। कल्याणके १६ वें वर्षमें १-२ अङ्कोंमें यह अनुवाद तथा मूलसहित प्रकाशित है। गीताप्रेससे इसकी प्रायः पाँच लाख प्रतियाँ विभिन्न संस्करणोंमें बिक चुकी हैं।

संख्या पचपन हजार बतायी जाती है। स्वर्णनिर्मित कमलसे युक्त उस पुराणका जो मनुष्य तिलके साथ ज्येष्ठ मासमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ*के फलकी प्राप्ति होती है। महर्षि पराशरने वाराह-कल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर जिन सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किया है, उनसे युक्त (तृतीय) पुराणको वैष्णव (विष्णुपुराण) कहा जाता है। विद्वान्‌लोग उसका प्रमाण तेईस† हजार श्लोकोंका बतलाते हैं। जो मानव आषाढ़ मासकी पूर्णिमाको घृतधेनुयुक्त इस पुराणका दान करता है, उसका आत्मा पवित्र हो जाता है और वह वरुण-लोकमें जाता है। श्वेतकल्पके प्रसङ्गवश वायुने इस मर्त्यलोकमें जिन धर्मोंका वर्णन किया था, उनका संकलन जिसमें हुआ है, उसे (चतुर्थ) वायवीय (वायुपुराण या शिवपुराण‡) कहते हैं। वह शंकरजीके माहात्म्यसे भी परिपूर्ण है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य श्रावण-मासमें श्रावणी पूर्णिमाको गुड़धेनु और बैलके साथ इस पुराणका कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह पवित्रात्मा होकर शिव-लोकमें एक कल्पतक निवास करता है। जिसमें गायत्रीका आश्रय लेकर विस्तारपूर्वक धर्मका वर्णन किया गया है तथा जो वृत्रासुरवधके वृत्तान्तसे संयुक्त है, उसे (पञ्चम) भागवत-पुराण§ कहा जाता है। इसी प्रकार सारस्वत-कल्पमें जो श्रेष्ठ मनुष्य हो गये हैं, लोकमें उनके वृत्तान्तसे सम्बन्धित पुराणको 'भागवत-पुराण' कहा जाता है। यह पुराण अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया जाता है। जो मनुष्य इसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित सिंहके साथ भाद्रपद मासकी पूर्णिमा तिथिको दान कर देता है, वह परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है ॥१२–२२॥

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च। पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥ २३ ॥
आश्विने पञ्चदश्यां तु दद्याद् धेनुसमन्वितम्। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ २४ ॥
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा। व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ॥ २५ ॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत् सर्वं विस्तरेण तु। पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥ २६ ॥
प्रतिलिख्य च यो दद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम्। कार्तिक्यां पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग् भवेत् ॥ २७ ॥
यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च। वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते ॥ २८ ॥

* विष्णुपुराण (५ । ५ । १४) तथा मनुस्मृति (११ । २६०) आदि स्मृतियोंके अनुसार यह क्रतुराट्—सभी यज्ञोंका राजा तथा सर्वपापापनोदक है। शतपथ ब्राह्मणके अश्वमेधकाण्डके पचासों पृष्ठों तथा ऐतरेय-तैत्तिरीय ब्राह्मणों, तैत्तिरीय संहिता-भाष्य पृ० ३१९७–४७६६, आश्वलायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, कात्यायनादि श्रौतसूत्रों तथा वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड पाद्म आदि कई स्थानों और रामाश्वमेध, महाभारतके आश्वमेधिकपर्व, जैमिनीयाश्वमेध आदि कई ग्रन्थोंमें इसकी विस्तृत महिमा एवं विधि निरूपित है। इसमें प्रति आठवें पूरे दिन 'परिप्लव'में पुराण (विशेषकर मत्स्यपुराण) सुननेकी विधि है और इसमें पुराण-श्रवणकी ३६ बार पुनरावृत्ति होती है।

† यह संख्या विष्णुधर्मोत्तरको लेकर है। अन्यथा लिङ्गपुराणादिके वचनानुसार इसमें साढ़े पाँच सहस्र श्लोक ही हैं।

‡ पुराणगणनामें चौथी संख्यापर कहीं वायु और कहीं शिवपुराणका उल्लेख है। शिवपुराणमें भी एक वायवीय संहिता है तथा शूलपाणिके वचनानुसार वायुपुराण भी शैवपुराण ही है।

§ भागवतपुराण बहुत प्राचीन सर्वाधिक प्रसिद्ध है; क्योंकि इसपर ११ वीं शतीकी श्रीधरीसे १९ वीं शतीकी अन्वितार्थप्रकाशिका तक पचासों संस्कृत टीकाएँ हैं तथा सूरसागर आदि-जैसे सैकड़ों देशी-विदेशी भाषाओंमें इसके गद्य-पद्यानुवाद हैं। बर्नफका फ्रेंच अनुवाद भी श्रेष्ठतम पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसपर प्रथम शतीसे लेकर मध्वादितकके 'भागवत'तात्पर्यनिर्णय, लघुभागवतामृत, बृहद्भागवतामृतादि अगणित प्रबन्ध निबद्ध हुए हैं और गोपाल भट्ट आदिके हरिभक्तिविलासादिमें इसके हजारों वचन उद्धृत हैं। कल्याणके १६ वें वर्षमें १-२ अङ्कोंमें यह अनुवाद तथा मूलसहित प्रकाशित है। गीताप्रेससे इसकी प्रायः पाँच लाख प्रतियाँ विभिन्न संस्करणोंमें बिक चुकी हैं।

मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः। चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥ ३९ ॥
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम्।
पौर्णमास्यां मधौ दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम् ॥ ४० ॥
यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः। कल्पे तत्पुरुषं वृत्तं चरितैरुपबृंहितम् ॥ ४१ ॥
स्कान्दं नाम पुराणं च ह्येकाशीति निगद्यते। सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥ ४२ ॥
परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम्। शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ ॥ ४३ ॥
त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः। त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम् ॥ ४४ ॥
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्। यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौ पदम् ॥ ४५ ॥
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले। माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ॥ ४६ ॥
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसंनिधौ। अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥ ४७ ॥
यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम्। गोसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः ॥ ४८ ॥

जिसमें कल्पान्तके समय अग्निका आश्रय लेकर देवाधिदेव महेश्वरने अग्निलिङ्गके मध्यमें स्थित रहते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष——चारोंकी प्राप्तिके लिये उपदेश दिया है, उस पुराणको स्वयं ब्रह्माने (एकादश) लैङ्ग (लिङ्ग) पुराण नामसे अभिहित किया है। उसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। जो मानव फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिको [illegible]ित इस पुराणका दान करता है, वह शिवजीकी साम्यताको प्राप्त कर लेता है। मुनिवरो ! जिसमें मानव-[illegible]ल्पके प्रसङ्गवश पुनः महावराहके माहात्म्यका आश्रय लेकर भगवान् विष्णुने पृथ्वीके प्रति उपदेश दिया है, उसे भूतलपर (द्वादश) वराह-पुराण कहते हैं। उस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य गरुड़की सोनेकी मूर्ति बनवाकर उस मूर्ति तथा तिल-धेनुके साथ इस पुराणका चैत्र-मासकी पूर्णिमा तिथिको कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह वराह भगवान्की कृपासे विष्णु-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें कल्पान्तके समय स्वामिकार्तिकने माहेश्वर धर्मोंका आश्रय लेकर शिवजीके सुशोभन चरित्रोंसे युक्त वृत्तान्तका वर्णन किया है, उस (त्रयोदश पुराण)का नाम स्कन्दपुराण है। वह मृत्युलोकमें इक्यासी हजार एक सौ श्लोकोंका बतलाया जाता है।* जो मनुष्य उसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्ण-निर्मित त्रिशूलके साथ सूर्यके मीन राशिपर आनेपर (प्रायः चैत्रमासमें) दान करता है, वह शिव-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें ब्रह्माने त्रिविक्रमके माहात्म्यका आश्रय लेकर त्रिवर्गोंका वर्णन किया है, उसे (चतुर्दश) वामन-पुराण कहते हैं। इसमें दस हजार श्लोक हैं। यह कूर्म-कल्पका अनुगमन करनेवाला तथा मङ्गलप्रद है। जो मानव शरत्कालीन विषुव-योग (१८ सितम्बरके लगभग दिन-रातके बराबर होनेके काल——तुलासंक्रान्ति)में इसका दान करता है, वह विष्णु-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें कूर्मरूपी भगवान् जनार्दनने रसातलमें इन्द्रद्युम्नकी कथाके प्रसङ्गवश इन्द्रके निकट धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके माहात्म्यका ऋषियोंके प्रति वर्णन

* यहाँके अतिरिक्त विष्णुपुराण ३ । ६ । २१-२४; भागवत १२ । ७ तथा १३; मार्कण्डेय १३४; वाराह ११२ । ७९-७२; कूर्म १ । १३-१५; लिङ्ग १ । ३९ । ६१-४; पद्म १ । ६२ । २-७; नारद १ । ९२-१०९ आदिमें पुराण-क्रम एवं श्लोक-संख्यादिका वर्णन है। शोधकर्ताओंने इन क्रमोंको तीन भागोंमें क्रमबद्ध किया है। इनमें मत्स्य, भागवत, विष्णु आदि क्रमको मत्स्य या विष्णुपुराणक्रम कहा है। इनके अनुसार स्कन्दपुराण १३वीं संख्यापर तथा लिङ्गपुराणद्वारा निर्दिष्ट क्रममें १७वीं संख्यापर निर्दिष्ट है। इसके सूतसंहितादि छः संहिताओंका एक रूप तथा माहेश्वरादि सात खण्डोंका दूसरा रूप दोनों मिलकर पौने दो लाख श्लोक होते हैं। फिर शम्भल-माहात्म्य, सत्यनारायणव्रतकथा आदि इसके अनेक खिल ग्रंथ भी हैं।

मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः । चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥ ३९ ॥
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यां मधौ दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम् ॥ ४० ॥
यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः । कल्पे तत्पुरुषं वृत्तं चरितैरुपबृंहितम् ॥ ४१ ॥
स्कान्दं नाम पुराणं च ह्येकाशीति निगद्यते । सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥ ४२ ॥
परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम् । शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ ॥ ४३ ॥
त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः । त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम् ॥ ४४ ॥
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम् । यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौ पदम् ॥ ४५ ॥
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले । माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ॥ ४६ ॥
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसंनिधौ । अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥ ४७ ॥
यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम् । गोसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः ॥ ४८ ॥

जिसमें कल्पान्तके समय अग्निका आश्रय लेकर देवाधिदेव महेश्वरने अग्निलिङ्गके मध्यमें स्थित रहते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष——चारोंकी प्राप्तिके लिये उपदेश दिया है, उस पुराणको स्वयं ब्रह्माने (एकादश) लैङ्ग (लिङ्ग) पुराण नामसे अभिहित किया है । उसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं । जो मानव फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिको [illegible] इस पुराणका दान करता है, वह शिवजीकी साम्यताको प्राप्त कर लेता है । मुनिवरो ! जिसमें मानव-ल्पके प्रसङ्गवश पुनः महावराहके माहात्म्यका आश्रय लेकर भगवान् विष्णुने पृथ्वीके प्रति उपदेश दिया है, उसे भूतलपर (द्वादश) वराह-पुराण कहते हैं । उस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है । जो मनुष्य गरुड़की सोनेकी मूर्ति बनवाकर उस मूर्ति तथा तिल-धेनुके साथ इस पुराणका चैत्र-मासकी पूर्णिमा तिथिको कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह वराह भगवान्की कृपासे विष्णु-पदको प्राप्त कर लेता है । जिसमें कल्पान्तके समय स्वामिकार्तिकने माहेश्वर धर्मोंका आश्रय लेकर शिवजीके सुशोभन चरित्रोंसे युक्त वृत्तान्तका वर्णन किया है, उस (त्रयोदश पुराण)का नाम स्कन्दपुराण है । वह मृत्युलोकमें इक्यासी हजार एक सौ श्लोकोंका बतलाया जाता है ।* जो मनुष्य उसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्ण-निर्मित त्रिशूलके साथ सूर्यके मीन राशिपर आनेपर (प्रायः चैत्रमासमें) दान करता है, वह शिव-पदको प्राप्त कर लेता है । जिसमें ब्रह्माने त्रिविक्रमके माहात्म्यका आश्रय लेकर त्रिवर्गोंका वर्णन किया है, उसे (चतुर्दश) वामन-पुराण कहते हैं । इसमें दस हजार श्लोक हैं । यह कूर्म-कल्पका अनुगमन करनेवाला तथा मङ्गलप्रद है । जो मानव शरत्कालीन विषुव-योग (१८ सितम्बरके लगभग दिन-रातके बराबर होनेके काल——तुलासंक्रान्ति)में इसका दान करता है, वह विष्णु-पदको प्राप्त कर लेता है । जिसमें कूर्मरूपी भगवान् जनार्दनने रसातलमें इन्द्रद्युम्नकी कथाके प्रसङ्गवश इन्द्रके निकट धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके माहात्म्यका ऋषियोंके प्रति वर्णन

* यहाँके अतिरिक्त विष्णुपुराण ३ । ६ । २१-२४; भागवत १२ । ७ तथा १३; मार्कण्डेय १३४; वाराह ११२ । ७१-७२; कूर्म १ । १३-१५; लिङ्ग १ । ३९ । ६१-४; पद्म १ । ६२ । २-७; नारद १ । ९२-१०९ आदिमें पुराण-क्रम एवं श्लोक-संख्यादिका वर्णन है । शोधकर्ताओंने इन क्रमोंको तीन भागोंमें क्रमबद्ध किया है । इनमें मत्स्य, भागवत, विष्णु आदि क्रमको मत्स्य या विष्णुपुराणक्रम कहा है । इनके अनुसार स्कन्दपुराण १३वीं संख्यापर तथा लिङ्गपुराणद्वारा निर्दिष्ट क्रममें १७वीं संख्यापर निर्दिष्ट है । इसके सूतसंहितादि छः संहिताओंका एक रूप तथा माहेश्वरादि सात खण्डोंका दूसरा रूप दोनों मिलकर पौने दो लाख श्लोक होते हैं । फिर शम्भल-माहात्म्य, सत्यनारायणव्रतकथा आदि इसके अनेक खिल ग्रंथ भी हैं ।

प्रति इन चार लाख श्लोकोंका वर्णन किया था। उसीको मेरे पिताने मुझे बतलाया और मैंने आपलोगोंके प्रति निवेदन कर दिया। परमर्षि व्यासजीने मृत्युलोकमें लोकहितके लिये इसका संक्षेप कर दिया है, किंतु देवलोकमें तो यह आज भी सौ करोड़ श्लोकोंसे युक्त ही है ॥ ४९—५८ ॥

उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।
पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम् । तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥ ५९ ॥
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते । नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते ॥ ६० ॥
यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम् । प्रोच्यते तत् पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः ॥ ६१ ॥
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगण्यते । अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदिश्यते ॥ ६२ ॥
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम् । पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमतः स्मृतम् ॥ ६३ ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ६४ ॥
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च । ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके ॥ ६५ ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते । सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत् फलम् ॥ ६६ ॥

ऋषियो! अब मैं उन उपपुराणोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो लोकमें प्रचलित हैं। पद्मपुराणमें जहाँ नृसिंहावतारके वृत्तान्तका वर्णन किया गया है, उसे नारसिंह (नरसिंह) पुराण† कहते हैं। उसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जिसमें स्वामिकार्तिकने नन्दाके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे लोग नन्दीपुराणके नामसे पुकारते हैं। मुनिवरो! जहाँ भविष्यकी चर्चा सहित साम्बका प्रसङ्ग लेकर कथानकका वर्णन किया गया है, उसे लोकमें साम्बपुराण कहते हैं।* इस प्रकार सूर्य-महिमाके प्रसङ्गमें होनेसे उसे आदित्यपुराण भी कहा जाता है। द्विजवरो! उपर्युक्त अठारह पुराणोंसे पृथक् जो पुराण बतलाये गये हैं, उन्हें इन्हींसे निकला हुआ समझना चाहिये। पुराणोंमें बतलाये गये सर्गादि पाँच अङ्ग तथा आख्यान भी कहे गये हैं। उनमें—सर्ग (ब्रह्माद्वारा की गयी सृष्टिरचना), प्रतिसर्ग (ब्रह्माके मानस पुत्रोंद्वारा की गयी सृष्टि-रचना†), वंश (सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि), मन्वन्तर (स्वायम्भुव आदि मनुओंका कार्यकाल) और वंश्यानुचरित (पूर्वोक्त वंशोंमें उत्पन्न हुए न[illegible]-चरित्र)—ये पाँच पुराणोंके लक्षण बतलाये गये हैं। इन पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है ॥

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः । राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥ ६७ ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च । संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते ॥ ६८ ॥
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम् । लक्षेणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥ ६९ ॥
वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् । ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७० ॥
आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः ।
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम् । एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः ॥ ७१ ॥

* कल्याण वर्ष ४५ में यह मूलसहित और सानुवाद प्रकाशित है।

† पुराणोंमें प्रायः 'प्रतिसर्ग'का दूसरा अर्थ प्रतिसंचर या प्रलय भी आया है। यहाँ केवल तीन ही उपपुराणोंका वर्णन [illegible] है। पर कूर्मपुराणके आरम्भमें अठारह उपपुराणोंका रूप कथन है।

प्रति इन चार लाख श्लोकोंका वर्णन किया था। उसीको मेरे पिताने मुझे बतलाया और मैंने आपलोगोंके प्रति निवेदन कर दिया। परमर्षि व्यासजीने मृत्युलोकमें लोकहितके लिये इसका संक्षेप कर दिया है, किंतु देवलोकमें तो यह आज भी सौ करोड़ श्लोकोंसे युक्त ही है ॥ ४९—५८ ॥

उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।
पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्। तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥ ५९ ॥
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते। नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते ॥ ६० ॥
यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम्। प्रोच्यते तत् पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः ॥ ६१ ॥
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगण्यते। अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदिश्यते ॥ ६२ ॥
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्। पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमतः स्मृतम् ॥ ६३ ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ६४ ॥
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च। ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके ॥ ६५ ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते। सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत् फलम् ॥ ६६ ॥

ऋषियो! अब मैं उन उपपुराणोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो लोकमें प्रचलित हैं। पद्मपुराणमें जहाँ नृसिंहावतारके वृत्तान्तका वर्णन किया गया है, उसे नारसिंह (नरसिंह) पुराण† कहते हैं। उसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जिसमें स्वामिकार्तिकने नन्दाके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे लोग नन्दीपुराणके नामसे पुकारते हैं। मुनिवरो! जहाँ भविष्यकी चर्चा सहित साम्बका प्रसङ्ग लेकर कथानकका वर्णन किया गया है, उसे लोकमें साम्बपुराण कहते हैं।* इस प्रकार सूर्य-महिमाके प्रसङ्गमें होनेसे उसे आदित्यपुराण भी कहा जाता है। द्विजवरो! उपर्युक्त अठारह पुराणोंसे पृथक् जो पुराण बतलाये गये हैं, उन्हें इन्हींसे निकला हुआ समझना चाहिये। पुराणोंमें बतलाये गये सर्गादि पाँच अङ्ग तथा आख्यान भी कहे गये हैं। उनमें—सर्ग (ब्रह्माद्वारा की गयी सृष्टिरचना), प्रतिसर्ग (ब्रह्माके मानस पुत्रोंद्वारा की गयी सृष्टि-रचना†), वंश (सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि), मन्वन्तर (स्वायम्भुव आदि मनुओंका कार्यकाल) और वंश्यानुचरित (पूर्वोक्त वंशोंमें उत्पन्न हुए न[illegible]-चरित्र)—ये पाँच पुराणोंके लक्षण बतलाये गये हैं। इन पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है ॥

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः। राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥ ६७ ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च। संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते ॥ ६८ ॥
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्। लक्षेणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥ ६९ ॥
वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्। ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७० ॥
आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः।
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्। एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः ॥ ७१ ॥

* कल्याण वर्ष ४५ में यह मूलसहित और सानुवाद प्रकाशित है।

† पुराणोंमें प्रायः 'प्रतिसर्ग'का दूसरा अर्थ प्रतिसंचर या प्रलय भी आया है। यहाँ केवल तीन ही उपपुराणोंका वर्णन है। पर कूर्मपुराणके आरम्भमें अठारह उपपुराणोंका रूप कथन है।

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायक ।
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा । संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत् ॥ ४ ॥
नारी वा विधवा सर्वगुणसौभाग्यसंयुता । क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किंचिद् व्रतमिहोच्यताम् ॥ ५ ॥

नारदजीने पूछा—भगवन् ! आप तो देवेश्वरोंके देव तथा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रके अधीश्वर हैं, ऐसे यह बताइये कि आपका अथवा भगवान् का भक्त पुरुष किस प्रकार धन-सम्पत्ति, ता, सौन्दर्य, आयु, भाग्य और सौभाग्यरूपी सम्पत्तिसे सम्पन्न हो सकता है ? अथवा विधवा स्त्री (जन्मान्तरमें) किस प्रकार समस्त गुणों एवं सौभाग्यसे संयुक्त हो सकती है ? तथा देव ! इस लोकमें कोई अन्य मुक्तिदायक व्रत हो तो क्रमशः उसे भी बतलाइये ॥ ४–५ ॥

ईश्वर उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया ब्रह्मन् सर्वलोकहितावहम् । श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद् व्रतं शृणु नारद ॥ ६ ॥
नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतं नारायणात्मकम् । पादादि कुर्याद् शीर्षान्तं विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥ ७ ॥
प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्क्षादिषु चार्चयेत् । चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ८ ॥
मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।
जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव द्वे जानुनी चाश्विकुमारऋक्षे ॥ ९ ॥
पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।
पूर्वोत्तराफल्गुनियुग्मके च मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्यम् ॥ १० ॥
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः सम्पूजयेन्नारद कृत्तिकासु ।
तथार्चयेद् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नमः केशिनिषूदनाय ॥ ११ ॥
कुक्षिद्वयं नारद रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरःस्थलमेव पूज्यम् ॥ १२ ॥
पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तद्व ।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ॥ १३ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन् ! आपने तो बड़ा उत्तम किया, यह तो समस्त लोकोंके लिये हितकारी नारद ! जो सुननेमात्रसे शान्ति प्रदान करनेवाला ह व्रत मैं बतला रहा हूँ, सुनो । नक्षत्रपुरुष* नामक व्रत है, जो भगवान् नारायणका स्वरूप ही है । व्रतमें चैत्रमास आनेपर भगवान् विष्णुके नामोंका न करते हुए विधिपूर्वक चरणसे लेकर मस्तक-की एक विष्णुकी मूर्ति बनावे । फिर ब्राह्मणद्वारा [illegible]-वाचन कराकर मूल आदि नक्षत्रोंमें क्रमशः [illegible]न् विष्णुकी उस प्रतिमाका पूजन करे । मूल-में 'विश्वधराय नमः'—'विश्वके धारकको नमस्कार है'—यों कहकर दोनों चरणोंकी, रोहिणी नक्षत्रमें 'अनन्ताय नमः'—'अनन्तको प्रणाम है'—कहकर दोनों गुल्फोंकी तथा अश्विनीनक्षत्रमें 'वरदाय नमः'—'वर-दाताको अभिवादन है'—कहकर दोनों जानुओं और दोनों जङ्घाओंकी पूजा करे । पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंमें 'शिवाय नमः'—'शिवजीको नमस्कार है'—कहकर दोनों ऊरुओंकी पूजा करे । पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रोंमें 'पञ्चशराय नमः'—'पाँच बाण धारण करनेवालेको प्रणाम है'—कहकर जननेन्द्रियकी पूजा करे । नारद ! कृत्तिका नक्षत्रमें 'शार्ङ्गधराय नमः'—'शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवालेको अभिवादन है'—कह-

* वामनपुराण अध्याय ८० के 'नक्षत्रपुरुष' व्रतमें भी प्रायः ये ही बातें स्थलान्तरसे आयी हैं । वहाँ पूजाके मन्त्र पर दोहदपदार्थ—अभिलषित पदार्थ उपदिष्ट हैं । इस अर्चामें नक्षत्रक्रमसे नहीं, अङ्गक्रमसे निर्दिष्ट है । यह अद्भुत बात है ।

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायक ।
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा । संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत् ॥ ४ ॥
नारी वा विधवा सर्वगुणसौभाग्यसंयुता । क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किंचिद् व्रतमिहोच्यताम् ॥ ५ ॥

नारदजीने पूछा—भगवन् ! आप तो देवेश्वरोंके भी देव तथा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रके अधीश्वर हैं, इसलिये यह बताइये कि आपका अथवा भगवान् विष्णुका भक्त पुरुष किस प्रकार धन-सम्पत्ति, नीरोगता, सौन्दर्य, आयु, भाग्य और सौभाग्यरूपी सम्पत्तिसे सम्पन्न हो सकता है ? अथवा विधवा स्त्री (जन्मान्तरमें) किस प्रकार समस्त गुणों एवं सौभाग्यसे संयुक्त हो सकती है ? तथा देव ! इस लोकमें कोई अन्य मुक्तिदायक व्रत हो तो क्रमशः उसे भी बतलाइये ॥ ४–५ ॥

ईश्वर उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया ब्रह्मन् सर्वलोकहितावहम् । श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद् व्रतं शृणु नारद ॥ ६ ॥
नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतं नारायणात्मकम् । पादादि कुर्याद् शीर्षान्तं विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥ ७ ॥
प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्क्षादिषु चार्चयेत् । चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ८ ॥
मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।
जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव द्वे जानुनी चाश्विकुमारऋक्षे ॥ ९ ॥
पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।
पूर्वोत्तराफल्गुनियुग्मके च मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्यम् ॥ १० ॥
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः सम्पूजयेन्नारद कृत्तिकासु ।
तथार्चयेद् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नमः केशिनिषूदनाय ॥ ११ ॥
कुक्षिद्वयं नारद रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरःस्थलमेव पूज्यम् ॥ १२ ॥
पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तच्च ।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ॥ १३ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन् ! आपने तो बड़ा उत्तम प्रश्न किया, यह तो समस्त लोकोंके लिये हितकारी है । नारद ! जो सुननेमात्रसे शान्ति प्रदान करनेवाला है, वह व्रत मैं बतला रहा हूँ, सुनो । नक्षत्रपुरुष* नामक एक व्रत है, जो भगवान् नारायणका स्वरूप ही है । इस व्रतमें चैत्रमास आनेपर भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करते हुए विधिपूर्वक चरणसे लेकर मस्तक-पर्यन्तकी एक विष्णुकी मूर्ति बनावे । फिर ब्राह्मणद्वारा स्वस्ति-वाचन कराकर मूल आदि नक्षत्रोंमें क्रमशः भगवान् विष्णुकी उस प्रतिमाका पूजन करे । मूल-नक्षत्रमें 'विश्वधराय नमः'—'विश्वके धारकको नमस्कार है'—यों कहकर दोनों चरणोंकी, रोहिणी नक्षत्रमें 'अनन्ताय नमः'—'अनन्तको प्रणाम है'—कहकर दोनों गुल्फोंकी तथा अश्विनीनक्षत्रमें 'वरदाय नमः'—'वर-दाताको अभिवादन है'—कहकर दोनों जानुओं और दोनों जङ्घाओंकी पूजा करे । पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंमें 'शिवाय नमः'—'शिवजीको नमस्कार है'—कहकर दोनों ऊरुओंकी पूजा करे । पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रोंमें 'पञ्चशराय नमः'—'पाँच बाण धारण करनेवालेको प्रणाम है'—कहकर जननेन्द्रियकी पूजा करे । नारद ! कृत्तिका नक्षत्रमें 'शार्ङ्गधराय नमः'—'शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवालेको अभिवादन है'—कह-

* वामनपुराण अध्याय ८० के 'नक्षत्रपुरुष' व्रतमें भी प्रायः ये ही बातें स्थलान्तरसे आयी हैं । वहाँ पूजाके मन्त्र नहीं, पर दोहदपदार्थ—अभिलषित पदार्थ उपदिष्ट हैं । इस अर्चामें नक्षत्रक्रमसे नहीं, अङ्गक्रमसे निर्दिष्ट है । यह अद्भुत बात है ।

चिन्तनसे युक्त राम! आपको नमस्कार है'—कहकर उत्तमाङ्गरूप नेत्रोंकी पूजा करे। चित्रा नक्षत्रमें 'शान्ताय बुद्धाय नमः'—'परम शान्त बुद्ध भगवान्‌को प्रणाम है'—कहकर भगवान् मुरारिके ललाटका पूजन करना चाहिये। भरणी नक्षत्रमें 'विश्वेश्वर कल्किरूपिणे नमोऽस्तु'—विश्वेश्वर! कल्किरूपधारी आपको अभिवादन है'—कहकर भगवान् विष्णुके सिरका पूजन करे। आर्द्रा नक्षत्रमें 'हरये नमस्ते'—'श्रीहरिको नमस्कार है'—कहकर पुरुषोत्तम भगवान्‌के बालोंकी पूजा करनी चाहिये। व्रती मनुष्यद्वारा उपर्युक्त नक्षत्र-दिनोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे पूजन करते रहना चाहिये ॥ १४-२० ॥

पूर्णे व्रते सर्वगुणान्विताय वाग्रूपशीलाय च सामगाय।
हैमीं विशालायतबाहुदण्डां मुक्ताफलेन्दूपलवज्रयुक्ताम् ॥ २१ ॥
जलस्य पूर्णे कलशे निविष्टामर्चां हरेर्वस्त्रगवा सहैव।
शय्यां तथोपस्करभाजनादियुक्तां प्रदद्याद् द्विजपुंगवाय ॥ २२ ॥
यद्यस्ति यत्किंचिदिहास्ति देयं दद्याद् द्विजायात्महिताय सर्वम्।
मनोरथं नः सफलीकुरुष्व हिरण्यगर्भाच्युतरुद्ररूपिन् ॥ २३ ॥
सलक्ष्मीकं सभार्याय काञ्चनं पुरुषोत्तमम्। शय्यां च दद्यान्मन्त्रेण ग्रन्थिभेदविवर्जिताम् ॥ २४ ॥
यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित्। तथा सुरूपताऽऽरोग्यं केशवे भक्तिमुत्तमाम् ॥ २५ ॥
यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन। शय्या ममाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि ॥ २६ ॥
एवं निवेद्य तत् सर्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनम्। नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत् ॥ २७ ॥
भुञ्जीतातैललवणं सर्वर्क्षेष्वप्युपोषितः। भोजनं च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ २८ ॥
इति नक्षत्रपुरुषमुपोष्य विधिवत् स्वयम्। सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ २९ ॥
ब्रह्महत्यादिकं किंचिदिह वामुत्र वा कृतम्। आत्मना वाथ पितृभिस्तत् सर्वं क्षयमाप्नुयात् ॥ ३० ॥
इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या पुरुषवरो व्रतमङ्गलाय कुर्यात्।
कलिकलुषविदारणं मुरारेः सकलविभूतिफलप्रदं च पुंसाम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नक्षत्रपुरुषव्रतं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार व्रतके समाप्त होनेपर जो सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न, वक्ता, सौन्दर्यशाली, सुशील और सामवेदका ज्ञाता हो, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको उस स्वर्ण-निर्मित एवं मुक्ताफल, चन्द्रकान्त मणि और हीरेसे खचित जलपूर्ण कलशमें रखी हुई विशाल एवं लम्बी भुजाओंवाली श्रीहरिकी अर्चा-मूर्तिका वस्त्र और गौके साथ दान कर देना चाहिये। साथ ही पात्र आदि सभी सामग्रियोंसे युक्त शय्याका भी दान करना चाहिये। इस प्रकार उस समय अपने पास जो कुछ भी दान देनेयोग्य वस्तु हो, वह सब अपने कल्याणके लिये उस ब्राह्मणको दान कर दे और उससे यों प्रार्थना करे—'ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप द्विजवर! आप हमारे मनोरथको सफल कीजिये।' स्वर्णनिर्मित लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तम भगवान्‌की मूर्तिका तथा ग्रन्थिभेदरहित शय्याका मन्त्रोच्चारणपूर्वक सपत्नीक ब्राह्मणको दान करनेका विधान है। उस समय ऐसी प्रार्थना करे—'भगवन्! जैसे विष्णु-भक्तोंको कहीं भी कष्ट नहीं प्राप्त होता, वैसे ही मुझे भी (आपकी कृपासे) सुन्दर रूप, नीरोगता और आप-भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो। जनार्दन! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, श्रीकृष्ण! वैसे ही मेरी भी शय्या प्रत्येक जन्ममें अशून्य बनी रहे।' इस प्रकार निवेदन कर वस्त्र, माला, चन्दन आदि सभी वस्तुएँ नक्षत्रपुरुष-व्रतके ज्ञाता ब्राह्मणको देकर व्रतका विसर्जन करना चाहिये।

चिन्तनसे युक्त राम ! आपको नमस्कार है'—कहकर उत्तमाङ्गरूप नेत्रोंकी पूजा करे । चित्रा नक्षत्रमें 'शान्ताय बुद्धाय नमः'—'परम शान्त बुद्ध भगवान्‌को प्रणाम है'—कहकर भगवान् मुरारिके ललाटका पूजन करना चाहिये । भरणी नक्षत्रमें 'विश्वेश्वर कल्किरूपिणे नमोऽस्तु'—विश्वेश्वर ! कल्किरूपधारी आपको अभिवादन है'—कहकर भगवान् विष्णुके सिरका पूजन करे । आर्द्रा नक्षत्रमें 'हरये नमस्ते'—'श्रीहरिको नमस्कार है'—कहकर पुरुषोत्तम भगवान्‌के बालोंकी पूजा करनी चाहिये । व्रती मनुष्यद्वारा उपर्युक्त नक्षत्र-दिनोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे पूजन करते रहना चाहिये ॥ १९-२० ॥

पूर्णे व्रते सर्वगुणान्विताय वाग्रूपशीलाय च सामगाय ।
हैमीं विशालायतबाहुदण्डां मुक्ताफलेन्दूपलवज्रयुक्ताम् ॥ २१ ॥
जलस्य पूर्णे कलशे निविष्टामर्चां हरेर्वस्त्रगवा सहैव ।
शय्यां तथोपस्करभाजनादियुक्तां प्रदद्याद् द्विजपुंगवाय ॥ २२ ॥
यदस्ति यत्किंचिदिहास्ति देयं दद्याद् द्विजायात्महिताय सर्वम् ।
मनोरथं नः सफलीकुरुष्व हिरण्यगर्भाच्युतरुद्ररूपिन् ॥ २३ ॥
सलक्ष्मीकं सभार्याय काञ्चनं पुरुषोत्तमम् । शय्यां च दद्यान्मन्त्रेण ग्रन्थिभेदविवर्जिताम् ॥ २४
यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित् । तथा सुरूपताऽऽरोग्यं केशवे भक्तिमुत्तमाम् ॥ २५
यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन । शय्या ममाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि ॥ २६ ।
एवं निवेद्य तत् सर्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनम् । नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत् ॥ २७ ।
भुञ्जीतातैललवणं सर्वर्क्षेष्वप्युपोषितः । भोजनं च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ २८ ।
इति नक्षत्रपुरुषमुपोष्य विधिवत् स्वयम् । सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ २९ ।
ब्रह्महत्यादिकं किंचिदिह वामुत्र वा कृतम् । आत्मना वाथ पितृभिस्तत् सर्वं क्षयमाप्नुयात् ॥ ३० ।
इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या पुरुषवरो व्रतमप्यनाथ कुर्यात् ।
कलिकलुषविदारणं मुरारेः सकलविभूतिफलप्रदं च पुंसाम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नक्षत्रपुरुषव्रतं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार व्रतके समाप्त होनेपर जो सम्पूर्ण सद्‌गुणोंसे सम्पन्न, वक्ता, सौन्दर्यशाली, सुशील और सामवेदका ज्ञाता हो, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको उस स्वर्ण-निर्मित एवं मुक्ताफल, चन्द्रकान्त मणि और हीरेसे खचित जलपूर्ण कलशमें रखी हुई विशाल एवं लम्बी भुजाओंवाली श्रीहरिकी अर्चा-मूर्तिको वस्त्र और गौके साथ दान कर देना चाहिये । साथ ही पात्र आदि सभी सामग्रियोंसे युक्त शय्याका भी दान करना चाहिये । इस प्रकार उस समय अपने पास जो कुछ भी दान देनेयोग्य वस्तु हो, वह सब अपने कल्याणके लिये उस ब्राह्मणको दान कर दे और उससे यों प्रार्थना करे—'ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप द्विजवर ! आप हमारे मनोरथको सफल कीजिये ।' स्वर्णनिर्मित लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तम भगवान्‌की मूर्तिका तथा ग्रन्थिभेदरहित शय्याका मन्त्रोच्चारणपूर्वक सपत्नीक ब्राह्मणको दान करनेका विधान है । उस समय ऐसी प्रार्थना करे—'भगवन् ! जैसे विष्णु-भक्तोंको कहीं भी कष्ट नहीं प्राप्त होता, वैसे ही मुझे भी (आपकी कृपासे) सुन्दर रूप, नीरोगता और आप-भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो । जनार्दन ! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, श्रीकृष्ण ! वैसे ही मेरी भी शय्या प्रत्येक जन्ममें अशून्य बनी रहे ।' इस प्रकार निवेदन कर वस्त्र, माला, चन्दन आदि सभी वस्तुएँ नक्षत्रपुरुष-व्रतके ज्ञाता ब्राह्मणको देकर व्रतका विसर्जन करना चाहिये ।

पूजन करना उचित है; क्योंकि मुनिश्रेष्ठ ! उमापति शङ्कर अथवा सूर्यमें कहीं भेद नहीं देखा जाता; इसलिये अपने घरमें शङ्करजीकी अर्चना करनी चाहिये। हस्त नक्षत्रमें 'सूर्याय नमः' का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रा नक्षत्रमें 'अर्काय नमः' कहकर उनके गुल्फों (घुट्टियों)-की, स्वाती नक्षत्रमें 'पुरुषोत्तमाय नमः' से पिंडी विशाखामें 'धात्रे नमः'से घुटनोंकी तथा अ 'सहस्रभानवे नमः' से दोनों जाँघोंकी पूजा करनी च ज्येष्ठा नक्षत्रमें 'अनङ्गाय नमः'से गुह्य प्रदेशकी 'इन्द्राय नमः' और 'भीमाय नमः'से कटि पूजा करे ॥ २—८ ॥

पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय ॥ ९ ॥
वक्षःस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षे परिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ ॥ १० ॥
साम्नामधीशाय करद्वयं च सम्पूजनीयं द्विज रेवतीषु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरंधराय ॥ ११ ॥
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीया ।
ग्रीवाग्निपर्क्षेऽधरमम्बुजेशे सम्पूजयेन्नारद रोहिणीषु ॥ १२ ॥
मृगेऽर्चनीया रसना पुरारेः रौद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते ।
नमः सवित्रे इति शंकरस्य नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्येऽलकान् वेदशरीरधारिणे ।
सार्पेऽथ मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति गोगणेशे ॥ १४ ॥
पूर्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः ।
अथोत्तराफल्गुनिभे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥
इत्यादि चास्त्राणि च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिवोऽभिपूज्यः ।
भोक्तव्यमत्रैवमतैलशाकममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ॥ १७ ॥

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढमें 'त्वष्ट्रे नमः' और 'सप्ततुरङ्गाय नमः'से नाभिकी, श्रवणमें 'तीक्ष्णांशवे नमः'से दोनों कुक्षियोंकी, धनिष्ठामें 'विकर्तनाय नमः'से पृष्ठभागकी और शतभिष नक्षत्रमें 'ध्वान्तविनाशनाय नमः'से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। द्विजवर ! पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदमें 'चण्डकराय नमः'से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें 'साम्नामधीशाय नमः'-से दोनों हाथोंका पूजन करना चाहिये। अश्विनीमें 'सप्ताश्वधुरंधराय नमः'से नखोंका और भरणीमें 'कठोरधाम्ने नमः'से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन करे। नारदजी ! कृत्तिकामें 'दिवाकराय नमः'से ग्रीवाकी, रोहिणीमें 'अम्बुजेशाय नमः'से सूर्यदेवके ओ मृगशिरामें 'हरये नमस्ते'से त्रिपुर-दाहक शिवकी जि और आर्द्रानक्षत्रमें 'रुद्राय नमः' से उनके दाँतोंकी करनी चाहिये। पुनर्वसुमें 'सवित्रे नमः'से शङ्कर नासिकाका, पुष्यमें 'अम्भोरुहवल्लभाय नमः'से लल तथा 'वेदशरीरधारिणे नमः'से शिवके बालोंका, करना चाहिये। आश्लेषामें 'विबुधप्रियाय नमः'से मस्तकका, मघामें 'गो-गणेशाय नमः'से शङ्करजीके कानोंका, पूर्वाफाल्गुनीमें 'गोब्राह्मणनन्दनाय न शम्भुके नेत्रोंका तथा उत्तराफाल्गुनी में 'विश्वेश्वराय नमः' से उनकी दोनों भौंहोंका पूजन

पूजन करना उचित है; क्योंकि मुनिश्रेष्ठ ! उमापति शङ्कर अथवा सूर्यमें कहीं भेद नहीं देखा जाता; इसलिये अपने घरमें शङ्करजीकी अर्चना करनी चाहिये । हस्त नक्षत्रमें **'सूर्याय नमः'** का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रा नक्षत्रमें **'अर्काय नमः'** कहकर उनके गुल्फों (घुट्टियों)-की, स्वाती नक्षत्रमें **'पुरुषोत्तमाय नमः'** से पिंडलियोंकी, विशाखामें **'धात्र नमः'**से घुटनोंकी तथा अनुराधामें **'सहस्रभानवे नमः'** से दोनों जाँघोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठा नक्षत्रमें **'अनङ्गाय नमः'**से गुह्य प्रदेशकी, मूलमें **'इन्द्राय नमः'** और **'भीमाय नमः**से कटिभागकी पूजा करे ॥ २—८ ॥

पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय ॥ ९ ॥
वक्षःस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षेः परिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ ॥ १० ॥
साम्नामधीशाय करद्वयं च सम्पूजनीयं द्विज रेवतीषु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरंधराय ॥ ११ ॥
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीया ।
ग्रीवाग्निपर्क्षेऽधरमम्बुजेशे सम्पूजयेन्नारद रोहिणीषु ॥ १२ ॥
मृगेऽर्चनीया रसना पुरारेः रौद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते ।
नमः सवित्रे इति शंकरस्य नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्येऽलकान् वेदशरीरधारिणे ।
सार्पेऽथ मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति गोगणेशे ॥ १४ ॥
पूर्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः ।
अथोत्तराफल्गुनिभे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥
इत्यादि चास्त्राणि च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिवोऽभिपूज्यः ।
भोक्तव्यमन्नैवमतैलशाकममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ॥ १७ ॥

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढमें **'त्वष्ट्रे नमः'** और **'सप्ततुरङ्गाय नमः'**से नाभिकी, श्रवणमें **'तीक्ष्णांशवे नमः'**से दोनों कुक्षियोंकी, धनिष्ठामें **'विकर्तनाय नमः'**से पृष्ठभागकी और शतभिष नक्षत्रमें **'ध्वान्तविनाशनाय नमः'**से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये । द्विजवर ! पूर्वभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदमें **'चण्डकराय नमः'**से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें **'साम्नामधीशाय नमः'**से दोनों हाथोंका पूजन करना चाहिये । अश्विनीमें **'सप्ताश्वधुरंधराय नमः'**से नखोंका और भरणीमें **'कठोरधाम्ने नमः'**से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन करे। नारदजी ! कृत्तिकामें **'दिवाकराय नमः'**से ग्रीवाकी, रोहिणीमें **'अम्बुजेशाय नमः'**से सूर्यदेवके ओठोंकी, मृगशिरामें **'हरये नमस्ते'**से त्रिपुर-दाहक शिवकी जिह्वाकी और आर्द्रानक्षत्रमें **'रुद्राय नमः'** से उनके दाँतोंकी पूजा करनी चाहिये । पुनर्वसुमें **'सवित्रे नमः'**से शङ्करजीकी नासिकाका, पुष्यमें **'अम्भोरुहवल्लभाय नमः'**से ललाटका तथा **'वेदशरीरधारिणे नमः'**से शिवके बालोंका, पूजन करना चाहिये । आश्लेषामें **'विबुधप्रियाय नमः'**से उनके मस्तकका, मघामें **'गो-गणेशाय नमः'**से शङ्करजीके दोनों कानोंका, पूर्वाफाल्गुनीमें **'गोब्राह्मणनन्दनाय नमः'**से शम्भुके नेत्रोंका तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें **'विश्वेश्वराय नमः'** से उनकी दोनों भौंहोंका पूजन करे ।

नैतद् विशीलाय न दाम्भिकाय कुतर्कदुष्टाय विनिन्दकाय।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेर्यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते ॥ २९ ॥
भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेतदाख्येयमानन्दकरं शिवस्य।
इदं महापातकभिन्नराणामप्यक्षरं वेदविदो वदन्ति ॥ ३० ॥
न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम्।
नाभ्येति रोगं न च शोकदुःखं या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या ॥ ३१ ॥
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन कृतं कुवेरेण पुरन्दरेण।
यत्कीर्तनेनाप्यखिलानि नाशमायान्ति पापानि न संशयोऽस्ति ॥ ३२ ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात्।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषानपि दिवमानयतीह यः करोति ॥ ३३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यशयनव्रतं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने भगवान् शंकरके इस व्रतकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे। भगवान्‌के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही शिवजीका यह आनन्ददायी एवं गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह व्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे कभी रोग, दुःख और शोकका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीनकालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक व्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है ॥ २९—३३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यशयनव्रत नामक पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ अध्याय

श्रीकृष्णाष्टमी-*व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

कृष्णाष्टमीमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम्। शान्तिर्मुक्तिश्च भवति जयः पुंसां विशेषतः ॥ १ ॥
शङ्करं मार्गशिरसि शम्भुं पौषेऽभिपूजयेत्। माघे महेश्वरं देवं महादेवं च फाल्गुने ॥ २ ॥
स्थाणुं चैत्रे शिवं तद्वद् वैशाखे त्वर्चयेन्नरः। ज्येष्ठे पशुपतिं चार्चेदाषाढे उग्रमर्चयेत् ॥ ३ ॥
पूजयेच्छ्रावणे शर्वं नभस्ये त्र्यम्बकं तथा। हरमाश्वयुजे मासि तथेशानं च कार्त्तिके ॥ ४ ॥
कृष्णाष्टमीषु सर्वासु शक्तः सम्पूजयेद् द्विजान्। गोभूहिरण्यवासोभिः शिवभक्तांश्च शक्तितः ॥ ५ ॥

* यह श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठानविधिका वर्णन भविष्य, नारद, सौरपुराण १४। १–२६, व्रतकल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये।

*

नैतद् विशीलाय न दाम्भिकाय कुतर्कदुष्टाय विनिन्दकाय।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेर्यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते॥ २९॥
भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेतदाख्येयमानन्दकरं शिवस्य।
इदं महापातकिभिन्नराणामप्यक्षरं वेदविदो वदन्ति॥ ३०॥
न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम्।
नाभ्येति रोगं न च शोकदुःखं या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या॥ ३१॥
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण।
यत्कीर्तनेनाप्यखिलानि नाशमायान्ति पापानि न संशयोऽस्ति॥ ३२॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात्।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषानपि दिवमानयतीह यः करोति॥ ३३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यशयनव्रतं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५५॥

दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने भगवान् शंकरके इस व्रतकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे। भगवान्‌के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही शिवजीका यह आनन्ददायी एवं गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह व्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे कभी रोग, दुःख और शोकका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीनकालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक व्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है॥ २९—३३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यशयनव्रत नामक पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

श्रीकृष्णाष्टमी-*व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

कृष्णाष्टमीमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम्। शान्तिर्मुक्तिश्च भवति जयः पुंसां विशेषतः॥ १॥
शङ्करं मार्गशिरसि शम्भुं पौषेऽभिपूजयेत्। माघे महेश्वरं देवं महादेवं च फाल्गुने॥ २॥
स्थाणुं चैत्रे शिवं तद्वद् वैशाखे त्वर्चयेन्नरः। ज्येष्ठे पशुपतिं चार्चेदाषाढे उग्रमर्चयेत्॥ ३॥
पूजयेच्छ्रावणे शर्वं नभस्ये त्र्यम्बकं तथा। हरमाश्वयुजे मासि तथेशानं च कार्तिके॥ ४॥
कृष्णाष्टमीषु सर्वासु शक्तः सम्पूजयेद् द्विजान्। गोभूहिरण्यवासोभिः शिवभक्तांश्च शक्तितः॥ ५॥

* यह श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठानविधिका वर्णन भविष्य, नारद, सौरपुराण १४। १–३६, व्रतकल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये।

*

सत्तावनवाँ अध्याय

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्तः पुमान् भूपकुलान्वितः स्यात् ।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यग् व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ॥ १ ॥

नारदजीने पूछा—चन्द्रभाल ! जिस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य प्रत्येक जन्ममें दीर्घायु, नीरोगता, कुलीनता और अभ्युदयसे युक्त हो राजाके कुलमें जन्म पाता है, उस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगुक्तं चाक्षय्यकारकम् । रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥ २ ॥
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम् । तस्मिन् नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ॥ ३ ॥
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् । अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ॥ ४ ॥
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः । आप्यायस्वेति च जपेद् विद्वानष्ट शतं पुनः ॥ ५ ॥
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमो नमः ॥ ६ ॥
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम् । पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥ ७ ॥

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे ।
ऊरुद्वयं चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहोः ॥ ८ ॥
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया ।
अथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या ॥ ९ ॥
नमोऽस्तु चन्द्राय प्रपूज्य कण्ठं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।
आस्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय ॥ १० ॥
नासा च नाथाय वनौषधीनामानन्दबीजाय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दोरिन्दीवरव्यासकराय शौरेः ॥ ११ ॥
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥ १२ ॥
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने ।
नमः श्रियै रोहिणिनामलक्ष्म्यै सौभाग्यसौख्यामृतसागरायै ॥ १३ ॥
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीम् ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—नारद ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है । अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ, जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं । इस लोकमें 'रोहिणीचन्द्रशयन' नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है । इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये । जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणी नक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सवेरे पञ्चगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष 'आप्यायस्व०' इत्यादि मन्त्रको एक सौ आठ बार जपे । यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक 'सोमाय नमः,' 'वरदाय नमः,' 'विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियों—विधर्मियोंसे बातचीत न करे । जप करनेके पश्चात् अपने घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे । साथ ही चन्द्रमाके

सत्तावनवाँ अध्याय

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्तः पुमान् भूपकुलान्वितः स्यात् ।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यग् व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ॥ १ ॥

नारदजीने पूछा—चन्द्रभाल ! जिस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य प्रत्येक जन्ममें दीर्घायु, नीरोगता, कुलीनता और अभ्युदयसे युक्त हो राजाके कुलमें जन्म पाता है, उस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगुक्तं चाक्षय्यकारकम् । रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥ २ ॥
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम् । तस्मिन् नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ॥ ३ ॥
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् । अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ॥ ४ ॥
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः । आप्यायस्वेति च जपेद् विद्वानष्ट शतं पुनः ॥ ५ ॥
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमो नमः ॥ ६ ॥
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम् । पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥ ७ ॥

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे ।
ऊरुद्वयं चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहोः ॥ ८ ॥
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया ।
अथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या ॥ ९ ॥
नमोऽस्तु चन्द्राय प्रपूज्य कण्ठं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।
आस्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय ॥ १० ॥
नासा च नाथाय वनौषधीनामानन्दबीजाय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दोरिन्दीवरव्यासकराय शौरेः ॥ ११ ॥
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥ १२ ॥
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने ।
नमः श्रियै रोहिणिनामलक्ष्म्यै सौभाग्यसौख्यामृतसागरायै ॥ १३ ॥
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीम् ।

श्रीभगवान्ने कहा—नारद ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है । अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ, जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं । इस लोकमें 'रोहिणीचन्द्रशयन' नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है । इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये । जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणी नक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सवेरे पञ्चगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष **'आप्यायस्व०'** इत्यादि मन्त्रको एक सौ आठ बार जपे । यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक **'सोमाय नमः,' 'वरदाय नमः,' 'विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियों—विधर्मियोंसे बातचीत न करे । जप करनेके पश्चात् अपने घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे । साथ ही चन्द्रमाके

क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम्। दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे शालीक्षुफलसंयुतम्॥ २०॥
श्वेतामथ सुवर्णास्यां खुरै रौप्यैः समन्विताम्। सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च शोभनम्॥ २१॥
भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलंकृत्य गुणान्वितम्। चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्॥ २२॥
यथा न रोहिणी कृष्ण शय्यां सन्त्यज्य गच्छति। सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु भूतिभिः॥ २३॥
यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः। भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मे सदा॥ २४॥

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय व्रतीको चाहिये कि वह दर्पण तथा शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शय्या-दान करे। रोहिणी और चन्द्रमा—दोनोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। आठ मोतियोंसे युक्त तथा दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसेके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे और पूर्वाह्णके समय अगहनी चावल, ईख और फलके साथ उसे मन्त्रोच्चारण-पूर्वक दान कर दे। फिर जिसका मुख (थूथुन) सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, ऐसी वस्त्र और दोहिनीके साथ दूध देनेवाली श्वेत रंगकी गौ तथा सुन्दर शङ्ख प्रस्तुत करे। फिर उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतिको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलङ्कृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पत्तिके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'श्रीकृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी देवी चन्द्रस्वरूप आपकी शय्याको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती हैं, उसी तरह मेरा भी इन विभूतियोंसे कभी बिछोह न हो। चन्द्रदेव! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त हों तथा आपमें मेरी सदा अनन्य भक्ति बनी रहे।' (इस प्रकार विनय कर शय्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।) ॥ १८—२४॥

इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ। रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम्॥ २५॥
इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं मुने।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम्। चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा विमुच्यते॥ २६॥
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत्। सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ २७॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तने नित्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥ २८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५७॥

निष्पाप नारद! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप, आरोग्य और आयु प्रदान करनेवाला है। मुने! यही पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो पुरुष इसका अनुष्ठान करता है, वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इक्कीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है। अथवा जो स्त्री इस रोहिणीचन्द्रशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी उसी पूर्वोक्त फलको प्राप्त होती है। साथ ही वह आवागमनसे मुक्त हो जाती है। चन्द्रमाके नामकीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है॥ २५—२८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रोहिणीचन्द्रशयन-व्रत नामक सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५७॥

क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम्। दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे शालीक्षुफलसंयुतम्॥ २०॥
श्वेतामथ सुवर्णास्यां खुरै रौप्यैः समन्विताम्। सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च शोभनम्॥ २१॥
भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलंकृत्य गुणान्वितम्। चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्॥ २२॥
यथा न रोहिणी कृष्ण शय्यां सन्त्यज्य गच्छति। सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु भूतिभिः॥ २३॥
यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः। भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मे सदा॥ २४॥

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय व्रतीको चाहिये कि वह दर्पण तथा शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शय्या-दान करे। रोहिणी और चन्द्रमा—दोनोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। आठ मोतियोंसे युक्त तथा दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसेके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे और पूर्वाह्णके समय *अगहनी चावल, ईख और फलके साथ उसे मन्त्रोच्चारण*-पूर्वक दान कर दे। फिर जिसका मुख (थूथुन) सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, ऐसी वस्त्र और दोहिनीके साथ दूध देनेवाली श्वेत रंगकी गौ तथा सुन्दर शङ्ख प्रस्तुत करे। फिर उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतिको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलङ्कृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पत्तिके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'श्रीकृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी देवी चन्द्रस्वरूप आपकी शय्याको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती हैं, उसी तरह मेरा भी इन विभूतियोंसे कभी विछोह न हो। चन्द्रदेव! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे *मुझे भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त हों तथा आपमें मेरी* सदा अनन्य भक्ति बनी रहे।' (इस प्रकार विनय कर शय्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।) ॥ १८—२४ ॥

इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ। रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम्॥ २५॥
इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं मुने।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम्। चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा विमुच्यते॥ २६॥
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत्। सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ २७॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तने नित्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥ २८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५७॥

निष्पाप नारद! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप, आरोग्य और आयु प्रदान करनेवाला है। मुने! यही पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो पुरुष इसका अनुष्ठान करता है, वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इक्कीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है। अथवा जो स्त्री इस रोहिणीचन्द्रशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी उसी पूर्वोक्त फलको प्राप्त होती है। साथ ही वह आवागमनसे मुक्त हो जाती है। चन्द्रमाके नामकीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है ॥ २५—२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रोहिणीचन्द्रशयन-व्रत नामक सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५७ ॥

सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये। योनिकी लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अङ्गुलकी हो तथा कुण्डकी गहराई एक हाथ, मेखलाएँ तीन पर्व* ऊँची होनी चाहिये। ये चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायँ। मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायँ। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही इस कार्यमें पुरोहित-पदपर नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, पंखा, दो चँवर और दो दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें॥ ४-१३॥

ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम्। आचार्यः प्रक्षिपेद् भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः॥ १४॥
त्र्यरत्निमात्रो यूपः स्यात् क्षीरवृक्षविनिर्मितः। यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता॥ १५॥
हेमालंकारिणः कार्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः। कुण्डलानि च हैमानि केयूरकटकानि च॥ १६॥
तथाङ्गुल्यः पवित्राणि वासांसि विविधानि च।
पूजयेत् तु समं सर्वानाचार्यो द्विगुणं पुनः। दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत् प्रियम्॥ १७॥
सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुण्डुभौ।
ताम्रौ कुलीरमण्डूका वायसः शिशुमारकः। एवमासाद्य तत् सर्वमादावेव विशाम्पते॥ १८॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः॥ १९॥
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः। पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् यागमण्डपम्॥ २०॥
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च।

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी चरू (पुरोडास, खीर, दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंको पृथ्वीपर सब देवताओंको समर्पित करे। तीन अरत्निके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले वृक्ष (वट, पाकड़ आदि)की शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पचीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अङ्गूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषणादि प्रत्येक ऋत्विजको बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुण्डुभ (गिरगिट), ताँबेके केंकड़ा और मेढक तथा लोहेके दो सूँस बनवाये (और सबको सोनेके पात्रमें रखे)। राजन्! इन सभी वस्तुओंको पहलेसे ही बनवाकर ठीक रखना चाहिये। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वौषधि-मिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिम द्वारसे यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे। उस समय माङ्गलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये॥ १४-२०½॥

चूर्णेन मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित्॥ २१॥
षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्। चतुरस्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्॥ २२॥
वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहाँल्लोकपतींस्ततः। संन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः॥ २३॥

* अङ्गुलियोंके पोरको भी 'पर्व' कहते हैं।

सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये। योनिकी लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अङ्गुलकी हो तथा कुण्डकी गहराई एक हाथ, मेखलाएँ तीन पर्व* ऊँची होनी चाहिये। ये चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायँ। मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायँ। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही इस कार्यमें पुरोहित-पदपर नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, पंखा, दो चँवर और दो दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें ॥ ४—१३ ॥

ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम्। आचार्यः प्रक्षिपेद् भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः ॥ १४ ॥
त्र्यरत्निमात्रो यूपः स्यात् क्षीरवृक्षविनिर्मितः। यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥ १५ ॥
हेमालंकारिणः कार्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः। कुण्डलानि च हैमानि केयूरकटकानि च ॥ १६ ॥
तथाङ्गुल्यः पवित्राणि वासांसि विविधानि च।
पूजयेत् तु समं सर्वानाचार्यो द्विगुणं पुनः। दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत् प्रियम् ॥ १७ ॥
सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुण्डुभौ।
ताम्रौ कुलीरमण्डूका वायसः शिशुमारकः। एवमासाद्य तत् सर्वमादावेव विशाम्पते ॥ १८ ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः ॥ १९ ॥
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः। पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् यागमण्डपम् ॥ २० ॥
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च।

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी चरू (पुरोडास, खीर, दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंको पृथ्वीपर सब देवताओंको समर्पित करे। तीन अरत्निके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले वृक्ष (वट, पाकड़ आदि)की शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पचीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अङ्गूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषणादि प्रत्येक ऋत्विजको बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुण्डुभ (गिरगिट), ताँबेके केंकड़ा और मेढक तथा लोहेके दो सूँस बनवाये (और सबको सोनेके पात्रमें रखे)। राजन्! इन सभी वस्तुओंको पहलेसे ही बनवाकर ठीक रखना चाहिये। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वौषधि-मिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिम द्वारसे यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे। उस समय माङ्गलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये ॥ १४—२०½ ॥

चूर्णेन मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ॥ २१ ॥
षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्। चतुरस्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् ॥ २२ ॥
वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहाँल्लोकपतींस्ततः। संन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः ॥ २३ ॥

* अङ्गुलियोंके पोरको भी 'पर्व' कहते हैं।

पूर्वद्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्तिसूक्त,* रुद्र-सूक्त, पवमानसूक्त (ऋग्वेद ३।४।५ आदि), सुमङ्गल-सूक्त (ऋ० २ । ४ । २१) तथा पुरुषसूक्त (१० । ९०) का पृथक्-पृथक् जप करें । दक्षिणद्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र (अ० १६), रुद्र, सोम, कूष्माण्ड (२० । १४-१६), अग्नि (अ० २) तथा सूर्य-सम्बन्धी (अ० ३५) सूक्तोंका जप करें । राजन् ! पश्चिमद्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम (२ । २९ । ८०), पुरुषसूक्त (६।१३-३१), सुपर्णसूक्त (साम० ३ । २ । १-३), रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम (१ । २ । २९), वामदेव्यसाम (५ । ६ । २५), बृहत्साम (१ । २२ । ३४), रौरवसाम, रथन्तरसाम (१ । २२३), गोव्रत, काण्व, सूक्तसाम, रक्षोघ्न (३ । १२ । ३९) और यमसम्बन्धी सूक्तोंका गान करें । उत्तरद्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें । इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी, साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी तथा चौराहेकी मिट्टी (सप्तमृत्तिका) लेकर कलशोंमें छोड़ दे । उसके बाद सर्वौषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़े । फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे । इस प्रकार प्रत्येक कार्य महामन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिसहित करना चाहिये ॥ २३—३९½ ॥

एवं क्षपातिवाह्याथ विधियुक्तेन कर्मणा ॥ ४० ॥
ततः प्रभाते विमले संजातेऽथ शतं गवाम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिश्च वा पुनः । पञ्चाशद् वाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरप्यथ ॥ ४१ ॥
ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने । वेदशब्दैश्च गान्धर्ववाद्यैश्च विविधैः पुनः ॥ ४२ ॥
कनकालंकृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् । सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाम्पते ॥ ४३ ॥
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ।
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः । धृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४४ ॥
महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम् । उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत् ॥ ४५ ॥
आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामित्यथेति च । आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम् ॥ ४६ ॥
पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात् समंततः । पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ॥ ४७ ॥
चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः । दक्षिणा राजशार्दूल वरुणक्ष्मापणं ततः ॥ ४८ ॥
कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च ।
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत् पुनः । हेमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत् ॥ ४९ ॥
ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा ।
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद् वाथ विंशतिः । एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते ॥ ५० ॥
कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च । एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥ ५१ ॥
मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रासादोद्यानभूमिषु ।
अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा । अल्पे त्वेकाग्निवत् कृत्वा वित्तशाठ्यादृते नृणाम् ॥ ५२ ॥

* यहाँ वेद-निर्देश महत्त्वपूर्ण है । किंतु अन्यत्र पद्म, भविष्यादि पुराणोंमें ऋग्वेदीय ७ । ३५के मत्स्य-पाठ रात्रिसूक्त-की जगह 'शान्तिसूक्त'के सर्वप्रथम पाठका ही निर्देश है, जिसका सर्वारम्भमें होना विशेष उचित जँचता है । तीनों वेदके शान्तिसूक्त तो प्रसिद्ध हैं । अथर्ववेदके शान्तिसूक्तका नाम शंतातीयसूक्त है । पवमानसूक्तके त्रहिर्, माध्यंदिन, तृतीय और अर्यव—ये चार भेद हैं । यजुर्वेदमें कूष्माण्डसूक्त भी उपरिनिर्दिष्टके अतिरिक्त ४ हैं जो तै० ब्रा० २ । ४ । ४; ६ । ६ । १; ३ । ७ । २ और तै० आरण्यक २ । ३ । ६ में प्राप्त होते हैं ।

पूर्वद्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्तिसूक्त,* रुद्र-सूक्त, पवमानसूक्त (ऋग्वेद ३।४।५ आदि), सुमङ्गल-सूक्त (ऋ० २ । ४ । २१) तथा पुरुषसूक्त (१० । ९०) का पृथक्-पृथक् जप करें । दक्षिणद्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र (अ० १६), रुद्र, सोम, कूष्माण्ड (२० । १४-१६), अग्नि (अ० २) तथा सूर्य-सम्बन्धी (अ० ३५) सूक्तोंका जप करें । राजन् ! पश्चिमद्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम (२ । २९ । ८०), पुरुषसूक्त (६१३-३१), सुपर्णसूक्त (साम० ३ । २ । १-३), रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम (१ । २ । २९), वामदेव्यसाम (५ । ६ । २५), बृहत्साम (१ । २२ । ३४), रौरवसाम, रथन्तरसाम (१ । २२३), गोव्रत, काण्व, सूक्तसाम, रक्षोघ्न (३ । १२ । ३९) और यमसम्बन्धी सूक्तोंका गान करें । उत्तरद्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें । इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी, साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी तथा चौराहेकी मिट्टी (सप्तमृत्तिका) लेकर कलशोंमें छोड़ दे । उसके बाद सर्वौषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़े । फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे । इस प्रकार प्रत्येक कार्य महामन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिसहित करना चाहिये ॥ ३३—३९½ ॥

एवं क्षपातिवाह्याथ विधियुक्तेन कर्मणा ॥ ४० ॥
ततः प्रभाते विमले संजातेऽथ शतं गवाम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिश्च वा पुनः । पञ्चाशद् वाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरप्यथ ॥ ४१ ॥
ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने । वेदशब्दैश्च गान्धर्ववाद्यैश्च विविधैः पुनः ॥ ४२ ॥
कनकालंकृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् । सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाम्पते ॥ ४३ ॥
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ।
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः । धृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४४ ॥
महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम् । उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत् ॥ ४५ ॥
आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामेत्यथेति च । आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम् ॥ ४६ ॥
पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात् समंततः । पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ॥ ४७ ॥
चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः । दक्षिणा राजशार्दूल वरुणक्षमापणं ततः ॥ ४८ ॥
कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च ।
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत् पुनः । हेमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत् ॥ ४९ ॥
ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा ।
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद् वाथ विंशतिः । एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते ॥ ५० ॥
कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च । एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥ ५१ ॥
मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रासादोद्यानभूमिषु ।
अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा । अल्पे त्वेकाग्निवत् कृत्वा वित्तशाठ्याद‍ृते नृणाम् ॥ ५२ ॥

* यहाँ वेद-निर्देश महत्त्वपूर्ण है । किंतु अन्यत्र पद्म, भविष्यादि पुराणोंमें ऋग्वेदीय ७ । ३५के मत्स्य-पाठ रात्रिसूक्त-की जगह 'शान्तिसूक्त'के सर्वप्रथम पाठका ही निर्देश है, जिसका सर्वारम्भमें होना विशेष उचित जँचता है । तीनों वेदके शान्तिसूक्त तो प्रसिद्ध हैं । अथर्ववेदके शान्तिसूक्तका नाम शंतातीयसूक्त है । पवमानसूक्तके बहिष्, माध्यंदिन, तृतीय और अर्यव-ये चार भेद हैं । यजुर्वेदमें कूष्माण्डसूक्त भी उपरिनिर्दिष्टके अतिरिक्त ४ हैं जो तै० ब्रा० २ । ४ । ४; ६ । ६ । १; ३ । ७ । २ और तै० आरण्यक २ । ३ । ६ में प्राप्त होते हैं ।

महाराज ! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है, वह शुद्धचित्त होकर शिवजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेक कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है। वह पुनः परार्ध (ब्रह्माजीकी पिछली आधी आयु) तक देवाङ्गनाओंके साथ उ महत्तम लोकोंका सुख भोगनेके पश्चात् ब्रह्मा साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त है ॥ ५५-५६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तडागविधि नामक अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

वृक्ष लगानेकी विधि

ऋषय ऊचुः

पादपानां विधिं सूत यथावद् विस्तराद् वद ।
विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः । ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः ॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! अब आप हमें विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये । विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये तथा वृक्षारोपण करनेवालोंके लिये जिन लोकोंकी प्राप्ति बतलाई गयी है, उन्हें भी आप इस समय हमलोगोंको बतलाइये ॥ १ ॥

सूत उवाच

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु । तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर ॥ २ ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारमाचार्यं चैव तद्विधम् । पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः ॥ ३ ॥
सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् दध्यक्षतविभूषितान् । वृक्षान् माल्यैरलंकृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् ॥ ४ ॥
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् । अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया ॥ ५ ॥
फलानि सप्त चाष्टौ वा कलधौतानि कारयेत् । प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत् ॥ ६ ॥
धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान् । सर्वान् धान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः ॥ ७ ॥
कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर । सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनम् ॥ ८ ॥
यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः । वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः ॥ ९ ॥
ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम् ।
सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम् । पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गामुदङ्मुखीम् ॥ १० ॥
ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा । तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः ॥ ११ ॥
स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद् यजमानोऽभिपूजयेत् । गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजस्तान् समाहितः ॥ १२ ॥
हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः ।
वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः । क्षीरेण भोजनं दद्याद् यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ १३ ॥
होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा ।
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः । दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रापि शक्तितः ॥ १४ ॥
यद् यदिष्टतमं किंचित् तत्तद् दद्यादमत्सरी । आचार्यं द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ १५ ॥

सूतजी कहते हैं—[यही प्रश्न जब मनुने मत्स्य भगवान्‌से किया था तो इसे उनसे मत्स्य (भगवान्)ने कहा था।] जगदीश्वर ! मैं बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि तुम्हें बतलाता हूँ । तडागकी प्रतिष्ठाके लिये जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि समझनी चाहिये । इसमें भी ऋत्विज, मण्डप, सामग्री

महाराज ! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है, वह शुद्धचित्त होकर शिवजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेक कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है । वह पुनः परार्ध (ब्रह्माजीकी पिछली आधी आयु) तक देवाङ्गनाओंके साथ महत्तम लोकोंका सुख भोगनेके पश्चात् अः साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त है ॥ ५५-५६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तडागविधि नामक अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

वृक्ष लगानेकी विधि

ऋषय ऊचुः

पादपानां विधिं सूत यथावद् विस्तराद् वद ।
विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः । ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः ॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! अब आप हमें विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये । विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये तथा वृक्षारोपण करनेवालोंके लिये जिन लोकोंकी प्राप्ति बतलायी गयी है, उन्हें भी आप इस समय हमलोगों बतलाइये ॥ १ ॥

सूत उवाच

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु । तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर ॥ २
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारमाचार्यं चैव तद्विधम् । पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः ॥ ३
सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् दध्यक्षतविभूषितान् । वृक्षान् माल्यैरलंकृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् ॥ ४
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् । अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया ॥ ५
फलानि सप्त चाष्टौ वा कलधौतानि कारयेत् । प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत् ॥ ६
धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान् । सर्वान् धान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः ॥ ७
कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर । सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनम् ॥ ८
यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः । वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः ॥ ९
ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम् ।
सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम् । पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गामुदङ्मुखीम् ॥ १० ॥
ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा । तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः ॥ ११ ॥
स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद् यजमानोऽभिपूजयेत् । गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजस्तान् समाहितः ॥ १२ ॥
हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः ।
वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः । क्षीरेण भोजनं दद्याद् यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ १३ ॥
होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा ।
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः । दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रापि शक्तितः ॥ १४ ॥
यद् यदिष्टतमं किंचित् तत्तद् दद्यादमत्सरी । आचार्ये द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ १५ ॥

सूतजी कहते हैं—[यही प्रश्न जब मनुने मत्स्य भगवान्‌से किया था तो इसे उनसे मत्स्य (भगवान्)ने कहा था ।] जगदीश्वर ! मैं बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि तुम्हें बतलाता हूँ । तडागकी प्रतिष्ठाके विषयमें जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि समझनी चाहिये । इसमें भी ऋत्विज, मण्डप, सामग्री

साठवाँ अध्याय

सौभाग्यशयन-व्रत तथा जगद्धात्री सतीकी आराधना

मत्स्य उवाच

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम्। सौभाग्यशयनं नाम यत् पुराणविदो विदुः ॥ १ ॥
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु।
सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत् तदा। वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षःस्थलस्थितम् ॥ २ ॥
ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप। अहंकारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते ॥ ३ ॥
स्पर्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः।
*पिङ्गाकारा समुद्भूता वह्नेर्ज्वालातिभीषणा। तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद् विनिःसृतम् ॥ ४ ॥
वक्षःस्थलं समाश्रित्य विष्णौ सौभाग्यमास्थितम्। रसं रूपं न तद् यावत् प्राप्नोति वसुधातले ॥ ५ ॥
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद् ब्रह्मपुत्रेण धीमता। दक्षेण पीतमात्रं तद् रूपलावण्यकारकम् ॥ ६ ॥
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः। शेषं यदपतद् भूमावष्टधा तद् व्यजायत ॥ ७ ॥
ततस्त्वोषधयो जाताः सप्त सौभाग्यदायिकाः। इक्षवो रसराजश्च निष्पावा राजधान्यकम् ॥ ८ ॥
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा। लवणं चाष्टमं तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥ ९ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन् ! इसी प्रकार एक त्रा व्रत बतलाता हूँ, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंको वाला है। उसका नाम है—'सौभाग्यशयन'। इसे ाणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब र्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक आदि सम्पूर्ण , दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य कत्रित हो गया। वह वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर र्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, । प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे वृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें र्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी (अथवा वलिङ्गके आकारकी) अत्यन्त भयंकर अग्निज्वाला प्रकट ई। उससे भगवान्का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय लेकर स्थित वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने भी न पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। ब्रह्म-पुत्र दक्षका बल और तेज बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, रसराज (पारा), निष्पाव (सेम), राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ (कुसुम नामक) पुष्प, कुङ्कुम (केसर) तथा आठवाँ पदार्थ नमक है। इन आठोंको सौभाग्याष्टक कहते हैं ॥ १—९ ॥

पीतं यद ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुनः। दुहिता साभवत् तस्य या सतीत्यभिधीयते ॥ १० ॥

साठवाँ अध्याय

सौभाग्यशयन-व्रत तथा जगद्धात्री सतीकी आराधना

मत्स्य उवाच

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत् पुराणविदो विदुः ॥ १ ॥
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु ।
सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत् तदा । वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षःस्थलस्थितम् ॥ २ ॥
ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप । अहंकारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते ॥ ३ ॥
स्पर्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः ।
*पिङ्गाकारा समुद्भूता वह्नेर्ज्वालातिभीषणा । तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद् विनिःसृतम् ॥ ४ ॥
वक्षःस्थलं समाश्रित्य विष्णौ सौभाग्यमास्थितम् । रसं रूपं न तद् यावत् प्राप्नोति वसुधातले ॥ ५ ॥
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद् ब्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तद् रूपलावण्यकारकम् ॥ ६ ॥
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद् भूमावष्टधा तद् व्यजायत ॥ ७ ॥
ततस्त्वोषधयो जाताः सप्त सौभाग्यदायिकाः । इक्षवो रसराजश्च निष्पावा राजधान्यकम् ॥ ८ ॥
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा । लवणं चाष्टमं तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥ ९ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! इसी प्रकार एक दूसरा व्रत बतलाता हूँ, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। उसका नाम है—'सौभाग्यशयन'। इसे पुराणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक आदि सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्रित हो गया। वह वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी (अथवा शिवलिङ्गके आकारकी) अत्यन्त भयंकर अग्निज्वाला प्रकट सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय लेकर स्थित वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने भी न पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। ब्रह्म-पुत्र दक्षका बल और तेज बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, रसराज (पारा), निष्पाव (सेम), राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ (कुसुम नामक) पुष्प, कुङ्कुम (केसर) तथा आठवाँ पदार्थ नमक है। इन

त्रिलोचनाय च हरं बाहू कालानलप्रिये ।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् । स्वाहास्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ॥
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ । स्थाणवे तु हरं तद्वदास्यं चन्द्रमुखप्रिये ॥
नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम् । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यै तु तथालकान् ।
नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत् । भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः ॥
शिवमभ्यर्च्य विधिवत् सौभाग्याष्टकमग्रतः । स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान् ॥
रसराजं च लवणं कुस्तुम्बुरुं तथाष्टकम् । दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः॥
एवं निवेद्य तत् सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः । रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम ॥ २
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ ३
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् । प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ३

फिर 'त्रिलोचनाय नमः', 'कालानलप्रियायै नमः' से बाँहोंका, 'सौभाग्यभवनाय नमः' से आभूषणोंका नित्य पूजन करे। 'स्वाहास्वधायै नमः', 'ईश्वराय नमः' से दोनोंके मुखमण्डलका, 'अशोकमधुवासिन्यै नमः'— इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका, 'स्थाणवे नमः', 'चन्द्रमुखप्रियायै नमः' से मुँहका, 'अर्धनारीश्वराय नमः', 'असिताङ्ग्यै नमः' से नसिकाका, 'उग्राय नमः', 'ललितायै नमः' से दोनों भौंहोंका, 'शर्वाय नमः', 'वासव्यै नमः' से केशोंका, 'श्रीकण्ठनाथाय नमः' से केवल शिवके बालोंका पूजन करे तथा 'भीमोग्रसमरूपिण्यै नमः', 'सर्वात्मने नमः' से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे। इस प्रकार शिव और पार्वतीकी विधिवत् पूजा कर उनके आगे सौभाग्याष्टक निष्पाव (सेम), कुसुम्भ, क्षीरजीरक, रसराज, लवण, कुङ्कुम तथा राजधान्य—इन आठ वस्तुओं देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, इसलिये इन 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है। शत्रुदमन ! इस प्रकार शि पार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके रातमें सिंघा खाकर अथवा शृङ्गोदक पान करके भूमिपर शयन करे फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पति पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव अ पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललितादेवीकी प्रसन्नता लिये ब्राह्मणको निवेदन करे ॥ २३—३१ ॥

एवं संवत्सरं यावत् तृतीयायां सदा मनो । कर्तव्यं विधिवद् भक्त्या सर्वसौभाग्यमीप्सुभिः॥ ३२ ॥
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे । शृङ्गोदकं चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः ॥ ३३ ॥
ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् । श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम्॥ ३४ ॥
क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्तिके पृषदाज्यकम् । मार्गे मासे तु गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम् ॥ ३५ ॥
माघे कृष्णतिलं तद्वत् पञ्चगव्यं च फाल्गुने । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥ ३६ ॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती । उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥ ३७ ॥
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालतीः । कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम् ॥ ३८ ॥
सिन्धुवारं च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् । जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ॥ ३९ ॥
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा । एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ॥ ४० ॥
स्त्री भक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः । व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ४१ ॥
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह । स्थापयित्वाथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ४२ ॥

त्रिलोचनाय च हरं बाहू कालानलप्रिये ।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् । स्वाहास्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ॥ २३ ॥
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ । स्थाणवे तु हरं तद्वदास्यं चन्द्रमुखप्रिये ॥ २४ ॥
नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम् । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥ २५ ॥
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यै तु तथालकान् ।
नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत् । भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः ॥ २६ ॥
शिवमभ्यर्च्य विधिवत् सौभाग्याष्टकमग्रतः । स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान् ॥ २७ ॥
रसराजं च लवणं कुस्तुम्बुरुं तथाष्टकम् । दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः ॥ २८ ॥
एवं निवेद्य तत् सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः । रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम ॥ २९ ॥
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ ३० ॥
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् । प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ३१ ॥

फिर 'त्रिलोचनाय नमः', 'कालानलप्रियायै नमः' से बाँहोंका, 'सौभाग्यभवनाय नमः' से आभूषणोंका नित्य पूजन करे। 'स्वाहास्वधायै नमः', 'ईश्वराय नमः' से दोनोंके मुखमण्डलका, 'अशोकमधुवासिन्यै नमः'—इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका, 'स्थाणवे नमः', 'चन्द्रमुखप्रियायै नमः' से मुँहका, 'अर्धनारीश्वराय नमः', 'असिताङ्ग्यै नमः' से नसिकाका, 'उग्राय नमः', 'ललितायै नमः' से दोनों भौंहोंका, 'शर्वाय नमः', 'वासव्यै नमः' से केशोंका, 'श्रीकण्ठनाथाय नमः' से केवल शिवके बालोंका पूजन करे तथा 'भीमोग्रसमरूपिण्यै नमः', 'सर्वात्मने नमः' से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे । इस प्रकार शिव और पार्वतीकी विधिवत् पूजा कर उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे । निष्पाव (सेम), कुसुम्भ, क्षीरजीरक, रसराज, इक्षु, लवण, कुङ्कुम तथा राजधान्य—इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, इसलिये इनकी 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है । शत्रुदमन ! इस प्रकार शिव-पार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके रातमें सिंघाड़ा खाकर अथवा शृङ्गोदक पान करके भूमिपर शयन करे । फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र हो माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे । इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललितादेवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे ॥ २३—३१ ॥

एवं संवत्सरं यावत् तृतीयायां सदा मनो । कर्तव्यं विधिवद् भक्त्या सर्वसौभाग्यमीप्सुभिः ॥ ३२ ॥
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे । शृङ्गोदकं चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः ॥ ३३ ॥
ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् । श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम् ॥ ३४ ॥
क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्तिके पृषदाज्यकम् । मार्गे मासे तु गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम् ॥ ३५ ॥
माघे कृष्णतिलं तद्वत् पञ्चगव्यं च फाल्गुने । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥ ३६ ॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती । उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥ ३७ ॥
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालतीः । कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम् ॥ ३८ ॥
सिन्धुवारं च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् । जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ॥ ३९ ॥
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा । एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ॥ ४० ॥
स्त्री भक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः । व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ४१ ॥
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह । स्थापयित्वाथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ४२ ॥

है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे लालित होकर फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाको करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह है, वह भी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गलोकमें करता है। जननाथ! पूर्वकालमें कामदेवने, राजा शतधन्वाने, कार्तवीर्य अर्जुनने, वरुणदेवने तथा नन्दीने भी इस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान किया था। इस प्रकार इस व्रतके अनुष्ठानसे जैसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है, उसके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय ॥ ४३—४९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सौभाग्यशयनव्रत नामक साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय

अगस्त्य और वसिष्ठकी दिव्य उत्पत्ति, उर्वशी अप्सराका प्राकट्य और अगस्त्यके लिये अर्घ्य-प्रदान करनेकी विधि एवं माहात्म्य

नारद उवाच

ूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः। तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत्।
ह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च। लक्ष्मीश्च विपुला नाथ कथं स्यात् पुरसूदन ॥ २ ॥

ारदजीने पूछा—त्रिपुरविनाशक महेश्वर! भूर्लोक, ह, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और क—ये सात देवलोक बतलाये गये हैं। इन क्रमशः आधिपत्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है? तथा नाथ! इस लोकमें सुन्दर रूप, दीर्घायु, सौभाग्य और विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? (कृपया इसे बतलाइये) ॥ १—२ ॥

महेश्वर उवाच

ुरा हुताशनः सार्धं मारुतेन महीतले। आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम् ॥ ३ ॥
निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः।
ारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः। विरोचनश्च संग्रामादपलायंस्तपोधन ॥ ४ ॥
ाम्भः सामुद्रमाविश्य संनिवेशमकुर्वत। अशक्या इति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः ॥ ५ ॥
ातः प्रभृति ते देवान् मनुष्यान् सभुजङ्गमान्। सम्पीड्य च मुनीन् सर्वान् प्रविशन्ति पुनर्जलम् ॥ ६ ॥
ेवं वर्षसहस्राणि वीराः पञ्च च सप्त च। जलदुर्गबलाद् ब्रह्मन् पीडयन्ति जगत्त्रयम् ॥ ७ ॥
ातः परमथो वह्निमारुतावमराधिपः। आदिदेश चिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम् ॥ ८ ॥
ास्मादस्मद्द्विषामेष शरणं वरुणालयः। तस्माद् भवद्भ्यामद्यैव क्षयमेष प्रणीयताम् ॥ ९ ॥
ावूचतुस्ततः शक्रमुभौ शम्बरसूदनम्। अधर्म एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम् ॥ १० ॥
ास्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत्। तस्मान्न पापमद्यावां करवावः पुरंदर ॥ ११ ॥
ास्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानि च। निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति ॥ १२ ॥

ागवान् महेश्वरने कहा—तपोधन! पूर्वकालकी है, एक बार इन्द्रने भूतलपर देवद्रोही असुरोंका करनेके लिये वायुके साथ अग्निको आज्ञा दी। ग्निद्वारा हजारों दानवोंको जलाकर भस्म कर दिये (तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु और विरोचन आदि प्रधान दानव रणभूमिसे भाग खड़े हुए और समुद्रके जलमें प्रविष्ट होकर (वहाँ छिपकर) निवासस्थान बनाकर रहने लगे। उस समय अग्नि और वायुने भी 'अब ये सर्वथा अशक्त, निर्जीव हो गये हैं'—ऐसा समझकर उनकी उपेक्षा कर दी।

*

करती है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे लालित होकर पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाको श्रवण करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह देता है, वह भी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जननाथ! पूर्वकालमें कामदेवने, राजा शतधन्वाने, कार्तवीर्य अर्जुनने, वरुणदेवने तथा नन्दीने भी इस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान किया था। इस प्रकार इस व्रतके अनुष्ठानसे जैसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है, उसके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय ॥ ४३—४९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सौभाग्यशयनव्रत नामक साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय

अगस्त्य और वसिष्ठकी दिव्य उत्पत्ति, उर्वशी अप्सराका प्राकट्य और अगस्त्यके लिये अर्घ्य-प्रदान करनेकी विधि एवं माहात्म्य

नारद उवाच

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः । तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत् ।
इह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च । लक्ष्मीश्च विपुला नाथ कथं स्यात् पुरसूदन ॥ २ ॥

नारदजीने पूछा—त्रिपुरविनाशक महेश्वर! भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात देवलोक बतलाये गये हैं। इन सबपर क्रमशः आधिपत्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है? तथा नाथ! इस लोकमें सुन्दर रूप, दीर्घायु, सौभाग्य और विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? (कृपया इसे बतलाइये) ॥ १—२ ॥

महेश्वर उवाच

पुरा हुताशनः सार्धं मारुतेन महीतले । आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम् ॥ ३ ॥
निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः ।
तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः । विरोचनश्च संग्रामादपलायंस्तपोधन ॥ ४ ॥
अम्भः सामुद्रमाविश्य संनिवेशमकुर्वत । अशक्या इति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः ॥ ५ ॥
ततः प्रभृति ते देवान् मनुष्यान् सभुजङ्गमान् । सम्पीड्य च मुनीन् सर्वान् प्रविशन्ति पुनर्जलम् ॥ ६ ॥
एवं वर्षसहस्राणि वीराः पञ्च च सप्त च । जलदुर्गबलाद् ब्रह्मन् पीडयन्ति जगत्त्रयम् ॥ ७ ॥
ततः परमथो वह्निमारुतावमराधिपः । आदिदेश चिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम् ॥ ८ ॥
यस्मादस्मद्द्विषामेष शरणं वरुणालयः । तस्माद् भवद्भ्यामद्यैव क्षयमेष प्रणीयताम् ॥ ९ ॥
तावूचतुस्ततः शक्रमुभौ शम्बरसूदनम् । अधर्म एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम् ॥ १० ॥
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत् । तस्मान्न पापमद्यावां करवावः पुरंदर ॥ ११ ॥
अस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानि च । निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति ॥ १२ ॥

भगवान् महेश्वरने कहा—तपोधन! पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्रने भूतलपर देवद्रोही असुरोंका विनाश करनेके लिये वायुके साथ अग्निको आज्ञा दी। तब अग्निद्वारा हजारों दानवोंको जलाकर भस्म कर दिये जानेपर तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु और विरोचन आदि प्रधान दानव रणभूमिसे भाग खड़े हुए और समुद्रके जलमें प्रविष्ट होकर (वहाँ छिपकर) निवासस्थान बनाकर रहने लगे। उस समय अग्नि और वायुने भी 'अब ये सर्वथा अशक्त, निर्जीव हो गये हैं'—ऐसा समझकर उनकी उपेक्षा कर दी।

तदा तद्गीतवाद्येन नाङ्गरागादिना हरिः। न काममाधवाभ्यां च विषयान् प्रति चुक्षुभे ॥ २३ ॥
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमगमद् गणः।
संक्षोभाय ततस्तेषां स्वोरुदेशान्नराग्रजः। नारीमुद् गेपादयामास त्रैलोक्यजनमोहिनीम् ॥ २४ ॥
संक्षुब्धास्तु तया देवास्तौ तु देववरावुभौ। अप्सरोभिः समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः ॥ २५ ॥
अप्सरा इति सामान्या देवानामब्रवीद्धरिः। उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ २६ ॥
ततः कामयमानेन मित्रेणाहूय सोर्वशी। उक्ता मां रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीत् तु सा ॥ २७ ॥
गच्छन्ती चाम्बरं तद्वत् स्तोकमिन्दीवरेक्षणा। वरुणेन धृता पश्चाद् वरुणं नाभ्यनन्दत ॥ २८ ॥
मित्रेणाहं वृता पूर्वमद्य भार्या न ते विभो। उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम् ॥ २९ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! पूर्वकालमें पुराणपुरुष भगवान् विष्णु किसी समय धर्मके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर गन्धमादन पर्वतपर महान् तपस्यामें संलग्न थे। उनकी तपस्यासे भयभीत हुए इन्द्रने उसमें विघ्न डालनेके लिये अप्सराओंके साथ वसन्त ऋतु और कामदेव—दोनोंको भेजा। उस समय श्रीहरि न तो उनके गाने, बजाने अथवा अङ्गराग आदिसे ही प्रभावित हुए, न वसन्त और कामदेवद्वारा उपस्थित किये गये विषय-भोगोंके प्रति ही उनका मन क्षुब्ध हुआ। यह देखकर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंका समूह विषादमें डूब गया। तत्पश्चात् नरके अग्रज नारायणने उन्हें विशेषरूपसे क्षुब्ध करनेके हेतु अपने ऊरुप्रदेशसे एक ऐसी नारीको उत्पन्न किया, जो त्रिलोकीके मनुष्योंको मोहित करनेवाली थी। उस स्त्रीने समस्त देवताओं तथा उन दोनों देवश्रेष्ठोंको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया। उस समय श्रीहरिने अप्सराओंके सामने ही देवताओंसे कहा—'देवगण ! यह एक अप्सरा है। यह लोकमें उर्वशी नामसे प्रसिद्ध होगी।' ॥ २१–२९ ॥

गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदात्तदा। तस्यै मानुषलोके त्वं गच्छ सोमसुतात्मजम् ॥ ३० ॥
भजस्वेति यतो वेश्याधर्म एष त्वया कृतः।
जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च। प्रक्षिप्तमथ संजातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ ॥ ३१ ॥
निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत। तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः ॥ ३२ ॥
तस्य पूजामकुर्वन्तं शशाप स मुनिर्नृपम्। विदेहस्त्वं भवस्वेति ततस्तेनाप्यसौ मुनिः ॥ ३३ ॥
अन्योन्यशापाच्च तयोर्विगते इव चेतसी। जग्मतुः शापनाशाय ब्रह्माणं जगतः पतिम् ॥ ३४ ॥
अथ ब्रह्मण आदेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः। निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय नारद ॥ ३५ ॥
वसिष्ठोऽप्यभवत् तस्मिन् जलकुम्भे च पूर्ववत्।
ततः श्वेतश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः। अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः ॥ ३६ ॥
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः। सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुश्चरम् ॥ ३७ ॥
ततः कालेन महता तारकादतिपीडितम्। जगद् वीक्ष्य स कोपेन पीतवान् वरुणालयम् ॥ ३८ ॥
ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शंकरादयः।
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः। वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं च वै मुने ॥ ३९ ॥

तदनन्तर एक घड़ेसे मित्र और वरुणके अंशसे दो मुनिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए। प्राचीनकालकी बात है, एक बार जब महाराजनिमि स्त्रियोंके साथ जुआ खेल रहे थे, उसी समय ब्रह्मपुत्र महर्षि वसिष्ठ उनके पास आये; किंतु राजाने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया। तब वसिष्ठ मुनिने राजाको शाप दे दिया—'तुम विदेह—देहरहित हो जाओ।' तब राजाने भी मुनिको वही शाप दे दिया। इस प्रकार एक-दूसरेके शापवश दोनोंकी चेतना लुप्त-सी

तदा तद्गीतवाद्येन नाङ्गरागादिना हरिः। न काममाधवाभ्यां च विषयान् प्रति चुक्षुभे ॥ २३ ॥
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमगमद् गणः।
संक्षोभाय ततस्तेषां स्वोरुदेशान्नराग्रजः। नारीमुद् गेपादयामास त्रैलोक्यजनमोहिनीम् ॥ २४ ॥
संक्षुब्धास्तु तया देवास्तौ तु देववरावुभौ। अप्सरोभिः समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः ॥ २५ ॥
अप्सरा इति सामान्या देवानामब्रवीद्धरिः। उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ २६ ॥
ततः कामयमानेन मित्रेणाहूय सोर्वशी। उक्ता मां रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीत् तु सा ॥ २७ ॥
गच्छन्ती चाम्बरं तद्वत् स्तोकमिन्दीवरेक्षणा। वरुणेन धृता पश्चाद् वरुणं नाभ्यनन्दत ॥ २८ ॥
मित्रेणाहं वृता पूर्वमद्य भार्या न ते विभो। उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम् ॥ २९ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! पूर्वकालमें पुराणपुरुष भगवान् विष्णु किसी समय धर्मके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर गन्धमादन पर्वतपर महान् तपस्यामें संलग्न थे। उनकी तपस्यासे भयभीत हुए इन्द्रने उसमें विघ्न डालनेके लिये अप्सराओंके साथ वसन्त ऋतु और कामदेव—दोनोंको भेजा। उस समय श्रीहरि न तो उनके गाने, बजाने अथवा अङ्गराग आदिसे ही प्रभावित हुए, न वसन्त और कामदेवद्वारा उपस्थित किये गये विषय-भोगोंके प्रति ही उनका मन क्षुब्ध हुआ। यह देखकर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंका समूह विषादमें डूब गया। तत्पश्चात् नरके अग्रज नारायणने उन्हें विशेषरूपसे क्षुब्ध करनेके हेतु अपने ऊरुप्रदेशसे एक ऐसी नारीको उत्पन्न किया, जो त्रिलोकीके मनुष्योंको मोहित करनेवाली थी। उस स्त्रीने समस्त देवताओं तथा उन दोनों देवश्रेष्ठोंको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया। उस समय श्रीहरिने अप्सराओंके सामने ही देवताओंसे कहा—'देवगण ! यह एक अप्सरा है। यह लोकमें उर्वशी नामसे प्रसिद्ध होगी।' ॥ २१—२९ ॥

गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदात्तदा। तस्यै मानुषलोके त्वं गच्छ सोमसुतात्मजम् ॥ ३० ॥
भजस्वेति यतो वेश्याधर्म एष त्वया कृतः।
जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च। प्रक्षिप्तमथ संजातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ ॥ ३१ ॥
निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत। तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः ॥ ३२ ॥
तस्य पूजामकुर्वन्तं शशाप स मुनिर्नृपम्। विदेहस्त्वं भवस्वेति ततस्तेनाप्यसौ मुनिः ॥ ३३ ॥
अन्योन्यशापाच्च तयोर्विगते इव चेतसी। जग्मतुः शापनाशाय ब्रह्माणं जगतः पतिम् ॥ ३४ ॥
अथ ब्रह्मण आदेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः। निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय नारद ॥ ३५ ॥
वसिष्ठोऽप्यभवत् तस्मिन् जलकुम्भे च पूर्ववत्।
ततः श्वेतश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः। अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः ॥ ३६ ॥
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः। सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुश्चरम् ॥ ३७ ॥
ततः कालेन महता तारकादतिपीडितम्। जगद् वीक्ष्य स कोपेन पीतवान् वरुणालयम् ॥ ३८ ॥
ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शंकरादयः।
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः। वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं च वै मुने ॥ ३९ ॥

तदनन्तर एक घड़ेसे मित्र और वरुणके अंशसे दो मुनिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए। प्राचीनकालकी बात है, एक बार जब महाराजनिमि स्त्रियोंके साथ जुआ खेल रहे थे, उसी समय ब्रह्मपुत्र महर्षि वसिष्ठ उनके पास आये; किंतु राजाने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया। तब वसिष्ठ मुनिने राजाको शाप दे दिया—'तुम विदेह—देहरहित हो जाओ।' तब राजाने भी मुनिको वही शाप दे दिया। इस प्रकार एक-दूसरेके शापवश दोनोंकी चेतना दूसरी

श्वेतां च दद्याद् यदि शक्तिरस्ति रौप्यैः खुरैर्हेममुखीं सवत्साम् ।
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य स्रग्वस्त्रघण्टाभरणां द्विजाय ॥ ४८ ॥
आसप्तरात्रोदयमेतदस्य दातव्यमेतत् सकलं नरेण ।
यावत्समाः सप्त दशाथ वा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ॥ ४९ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! विद्वान् गृहस्थको चाहिये कि वह अगस्त्यके उदयसे संयुक्त रात्रिमें प्रातःकाल श्वेत तिलमिश्रित जलसे स्नान करे । उसी प्रकार श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे । तत्पश्चात् एक छिद्ररहित कलश स्थापित करे और उसे पुष्पमाला तथा वस्त्रसे विभूषित कर दे । उसके भीतर पञ्चरत्न डाल दे और पार्श्वभागमें घीसे भरा हुआ एक पात्र रख दे । साथ ही काँसेका पात्र चावल भरकर उसके ऊपर सीप अथवा शङ्ख रखकर प्रस्तुत करे । फिर अँगूठेके बराबर लम्बी सोनेकी एक ऐसी पुरुषाकार प्रतिमा बनवाये, जिसमें चार मुख दीख पड़ते हों और जिसकी भुजाएँ लम्बी हों, उसे कलशके मुखमें स्थापित कर दे । उसके निकट पृथक्-पृथक् सात वस्त्रोंमें बँधी हुई धान्य-राशि भी रखे । तदनन्तर अनन्य चित्तसे दक्षिणाभिमुख हो लम्बे उदर और लम्बी भुजाओंवाली अगस्त्यमुनिकी उस प्रतिमाको (घड़ेसे) निकालकर हाथमें लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारी सामग्रियोंसहित सुपात्र ब्राह्मणको दान कर दे । साथ ही यदि धन-सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो गृहस्थ पुरुष एक श्वेत वर्णकी बछड़ेवाली दुधारू गौको सोनेके मुख और चाँदीके खुरोंसे संयुक्त करे तथा उसे माला, वस्त्र और घंटीसे विभूषित करके नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान कर दे । इस प्रकार गृहस्थ पुरुषको अगस्त्योदयसे सात रात्रियोंतक इन सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये । इस विधानको सात अथवा दस वर्षोंतक करना चाहिये । कुछ लोग इससे आगे भी इसकी अवधि बतलाते हैं ॥ ४४–४९ ॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते । प्रत्यब्दं तु फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति* ॥ ५० ॥
होमं कृत्वा ततः पश्चाद् वर्जयेन्मानवः फलम् । अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५१ ॥
इमं लोकं स चाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः । द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकं च ततः परम् ॥ ५२ ॥
सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घ्यान् यः प्रयच्छति । यावदायुश्च यः कुर्यात् परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५३ ॥

तदनन्तर यों प्रार्थना करते हुए अर्घ्य प्रदान करे—'कुम्भसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्यजी ! आपके शरीरका रंग कासके पुष्पके सदृश उज्ज्वल है, आपकी उत्पत्ति अग्नि और वायुसे हुई है और आप मित्रावरुणके पुत्र हैं, आपको नमस्कार है ।' इस प्रकार फलत्यागपूर्वक प्रतिवर्ष अर्घ्य प्रदान करनेवाला पुरुष कष्टभागी नहीं होता । तत्पश्चात् हवन करके कार्य समाप्त करे । उस समय मनुष्यको फलकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये । जो पुरुष इस विधिके अनुसार अगस्त्यको अर्घ्य निवेदित करता है, वह सुन्दर रूप और नीरोगतासे युक्त होकर इस मृत्युलोकमें पुनः जन्म धारण करता है । इसी प्रकार वह दूसरे अर्घ्यसे भुवर्लोकको और तीसरेसे उससे भी श्रेष्ठ स्वर्लोकको जाता है । इसी तरह जो मनुष्य उन (सात) दिनोंमें अर्घ्य देता है, वह क्रमशः सातों लोकोंको प्राप्त होता है तथा जो आयुपर्यन्त इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ ५०–५३ ॥

* यहाँ पूनावाली प्रतिमें तीन श्लोक अधिक हैं ।

श्वेतां च दद्याद् यदि शक्तिरस्ति रौप्यैः खुरैर्हेममुखीं सवत्साम् ।
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य स्रग्वस्त्रघण्टाभरणां द्विजाय ॥ ४८ ॥
आसप्तरात्रोदयमेतदस्य दातव्यमेतत् सकलं नरेण ।
यावत्समाः सप्त दशाथ वा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ॥ ४९ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! विद्वान् गृहस्थको चाहिये कि वह अगस्त्यके उदयसे संयुक्त रात्रिमें प्रातःकाल श्वेत तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उसी प्रकार श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। तत्पश्चात् एक छिद्ररहित कलश स्थापित करे और उसे पुष्पमाला तथा वस्त्रसे विभूषित कर दे। उसके भीतर पञ्चरत्न डाल दे और पार्श्वभागमें घीसे भरा हुआ एक पात्र रख दे। साथ ही काँसेका पात्र चावल भरकर उसके ऊपर सीप अथवा शङ्ख रखकर प्रस्तुत करे। फिर अँगूठेके बराबर लम्बी सोनेकी एक ऐसी पुरुषाकार प्रतिमा बनवाये, जिसमें चार मुख दीख पड़ते हों और जिसकी भुजाएँ लम्बी हों, उसे कलशके मुखमें स्थापित कर दे। उसके निकट पृथक्-पृथक् सात वस्त्रोंमें बँधी हुई धान्य-राशि भी रखे। तदनन्तर अनन्य चित्तसे दक्षिणाभिमुख हो लम्बे उदर और लम्बी भुजाओंवाली अगस्त्यमुनिकी उस प्रतिमाको (घड़ेसे) निकालकर हाथमें लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारी सामग्रियोंसहित सुपात्र ब्राह्मणको दान कर दे। साथ ही यदि धन-सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो गृहस्थ पुरुष एक श्वेत वर्णकी बछड़ेवाली दुधारू गौको सोनेके मुख और चाँदीके खुरोंसे संयुक्त करे तथा उसे माला, वस्त्र और घंटीसे विभूषित करके नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुषको अगस्त्योदयसे सात रात्रियोंतक इन सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये। इस विधानको सात अथवा दस वर्षोंतक करना चाहिये। कुछ लोग इससे आगे भी इसकी अवधि बतलाते हैं ॥ ४४—४९ ॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते । प्रत्यब्दं तु फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति* ॥ ५० ॥
होमं कृत्वा ततः पश्चाद् वर्जयेन्मानवः फलम् । अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५१ ॥
इमं लोकं स चाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः । द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकं च ततः परम् ॥ ५२ ॥
सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घ्यान् यः प्रयच्छति । यावदायुश्च यः कुर्यात् परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५३ ॥

तदनन्तर यों प्रार्थना करते हुए अर्घ्य प्रदान करे—'कुम्भसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्यजी ! आपके शरीरका रंग कासके पुष्पके सदृश उज्ज्वल है, आपकी उत्पत्ति अग्नि और वायुसे हुई है और आप मित्रावरुण-के पुत्र हैं, आपको नमस्कार है।' इस प्रकार फलत्यागपूर्वक प्रतिवर्ष अर्घ्य प्रदान करनेवाला पुरुष कष्टभागी नहीं होता। तत्पश्चात् हवन करके कार्य समाप्त करे। उस समय मनुष्यको फलकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। जो पुरुष इस विधिके अनुसार अगस्त्यको अर्घ्य निवेदित करता है, वह सुन्दर रूप और नीरोगतासे युक्त होकर इस मृत्युलोकमें पुनः जन्म धारण करता है। इसी प्रकार वह दूसरे अर्घ्यसे भुवर्लोकको और तीसरेसे उससे भी श्रेष्ठ स्वर्लोकको जाता है। इसी तरह जो मनुष्य उन (सात) दिनोंमें अर्घ्य देता है, वह क्रमशः सातों लोकोंको प्राप्त होता है तथा जो आयुपर्यन्त इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ ५०—५३ ॥

* यहाँ पूनावाली प्रतिमें तीन श्लोक अधिक हैं।

करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहूदरमुखं श्रियै। दन्तान् दर्पणवासिन्यै स्मरदायै स्मितं नमः ॥ १३ ॥
गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने। तुष्ट्यै ललाटमलकान् कात्यायन्यै शिरस्तथा ॥ १४ ॥
नमो गौर्यै नमो धिष्ण्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै। रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

ईश्वरने कहा—देवि ! मैं पुरुषों तथा स्त्रियोंके लिये एक सर्वश्रेष्ठ व्रत बतला रहा हूँ, जो अनन्त पुण्य-दायक है। तुम सावधानीपूर्वक उसे सुनो। इस व्रतका व्रती भाद्रपद, वैशाख, पौष अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको पीली सरसोंसे युक्त जलसे भलीभाँति स्नान करे। फिर गोरोचन, गोमूत्र, मुस्ता गोबर, दही और चन्दनको मिलाकर ललाटमें तिलक लगावे; क्योंकि यह तिलक सौभाग्य और आरोग्यका प्रदायक तथा ललितादेवीको परम प्रिय* है। प्रत्येक शुक्ल-पक्षकी तृतीया तिथिको पुरुषको पीला वस्त्र, यदि सधवा स्त्री व्रतनिष्ठ होती है तो उसे लाल वस्त्र, विधवाको गेरू आदि धातुओंसे रँगा हुआ वस्त्र और कुमारी कन्याको श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये। उस समय देवीकी मूर्तिको पञ्चगव्यसे स्नान करानेके पश्चात् केवल दूधसे नहलाना चाहिये। उसी प्रकार मधु और पुष्प-चन्दन-मिश्रित जलसे भी स्नान करावे। फिर श्वेत पुष्प, [illegible] प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड, दूध और घृतसे देवीकी पूजा करे। श्वेत अक्षत और तिलसे तो ललिता देवीकी सदा पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त संक्षेपसे पूजनका विधान है। 'वरदायै नमः' से दोनों चरणोंका, 'श्रियै नमः'से दोनों गुल्फोंका, 'अशोकायै नमः'से दोनों जाँघोंका, 'पार्वत्यै नमः' से दोनों जानुओंका, 'मङ्गलकारिण्यै नमः' से दोनों ऊरुओंका, 'वामदेव्यै नमः' से कटिप्रदेशका, 'पद्मोदरायै नमः' से उदरका तथा 'कामश्रियै नमः' से वक्षःस्थलका अर्चन करे; फिर 'सौभाग्यदायिन्यै नमः' से दोनों हाथोंका, 'श्रियै नमः'से बाहु, उदर और मुखका, 'दर्पण-वासिन्यै नमः'से दाँतोंका, 'स्मरदायै नमः' से मुसकानका, 'गौर्यै नमः' से नासिकाका, 'उत्पलायै नमः' से नेत्रोंका, 'तुष्ट्यै नमः'से ललाटका, 'कात्यायन्यै नमः' से सिर और बालोंका पूजन करना चाहिये। तदुपरान्त 'गौर्यै नमः,' 'धिष्ण्यै नमः,' 'कान्त्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'रम्भायै नमः'' 'ललितायै नमः' और 'वासुदेव्यै नमः' कहकर देवीके चरणोंमें प्रणि-पात करना चाहिये ॥ ४—१५ ॥

एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत्। पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं कुङ्कुमेन सकर्णिकम् ॥ १६ ॥
पूर्वेण विन्यसेद् गौरीमपर्णां च ततः परम्। भवानीं दक्षिणे तद्वद् रुद्राणीं च ततः परम् ॥ १७ ॥
विन्यसेत् पश्चिमे सौम्यां सदा मदनवासिनीम्। वायव्ये पाटलावासामुत्तरेण ततोऽप्युमाम् ॥ १८ ॥
लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टिं मङ्गलां कुमुदां सतीम्।
रुद्रं च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि। कुसुमैरक्षतैर्वाभिर्नमस्कारेण विन्यसेत् ॥ १९ ॥
गीतमङ्गलनिर्घोषान् कारयित्वा सुवासिनीः।
पूजयेद् रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः। सिन्दूरं गन्धचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् ॥ २० ॥
सिन्दूरकुङ्कुमस्नानमिष्टं सत्याः सदा यतः।
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद् यत्नतो गुरुम्। न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ २१ ॥
नभस्ये पूजयेद् गौरीमुत्पलैरसितैः सदा। बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिके शतपत्रकैः ॥ २२ ॥

* सौर, पाद्मसृष्टि भविष्योत्तर पुराण अ० २६में यह व्रत सविस्तर निरूपित है। सौभाग्य एवं ललितादेवीके विषयमें ६० वें अध्यायकी टिप्पणी द्रष्टव्य है। मत्स्यपुराणके इस अध्यायमें अशुद्धियाँ बहुत हैं। उन्हें यथाशक्ति भविष्योत्तर अ० २६ आदिसे मिलाकर शुद्ध किया गया है।

करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहूदरमुखं श्रियै । दन्तान् दर्पणवासिन्यै स्मरदायै स्मितं नमः ॥ १३ ॥
गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटमलकान् कात्यायन्यै शिरस्तथा ॥ १४ ॥
नमो गौर्यै नमो धिष्ण्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै । रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

ईश्वरने कहा—देवि ! मैं पुरुषों तथा स्त्रियोंके लिये एक सर्वश्रेष्ठ व्रत बतला रहा हूँ, जो अनन्त पुण्य-दायक है । तुम सावधानीपूर्वक उसे सुनो । इस व्रतका व्रती भाद्रपद, वैशाख, पौष अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको पीली सरसोंसे युक्त जलसे भलीभाँति स्नान करे । फिर गोरोचन, गोमूत्र, मुस्ता गोबर, दही और चन्दनको मिलाकर ललाटमें तिलक लगावे; क्योंकि यह तिलक सौभाग्य और आरोग्यका प्रदायक तथा ललितादेवीको परम प्रिय* है । प्रत्येक शुक्ल-पक्षकी तृतीया तिथिको पुरुषको पीला वस्त्र, यदि सधवा स्त्री व्रतनिष्ठ होती है तो उसे लाल वस्त्र, विधवाको गेरू आदि धातुओंसे रँगा हुआ वस्त्र और कुमारी कन्याको श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये । उस समय देवीकी मूर्तिको पञ्चगव्यसे स्नान करानेके पश्चात् केवल दूधसे नहलाना चाहिये । उसी प्रकार मधु और पुष्प-चन्दन-मिश्रित जलसे भी स्नान करावे । फिर श्वेत पुष्प, [illegible] प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड, दूध और घृतसे देवीकी पूजा करे । श्वेत अक्षत और तिलसे तो ललिता देवीकी सदा पूजा करनी चाहिये । प्रत्येक शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त संक्षेपसे पूजनका विधान है । 'वरदायै नमः' से दोनों चरणोंका, 'श्रियै नमः'से दोनों गुल्फोंका, 'अशोकायै नमः'से दोनों जाँघोंका, 'पार्वत्यै नमः' से दोनों जानुओंका, 'मङ्गलकारिण्यै नमः' से दोनों ऊरुओंका, 'वामदेव्यै नमः' से कटिप्रदेशका, 'पद्मोदरायै नमः' से उदरका तथा 'कामश्रियै नमः' से वक्षःस्थलका अर्चन करे; फिर 'सौभाग्यदायिन्यै नमः' से दोनों हाथोंका, 'श्रियै नमः'से बाहु, उदर और मुखका, 'दर्पण-वासिन्यै नमः'से दाँतोंका, 'स्मरदायै नमः' से मुसकानका, 'गौर्यै नमः' से नासिकाका, 'उत्पलायै नमः' से नेत्रोंका, 'तुष्ट्यै नमः'से ललाटका, 'कात्यायन्यै नमः' से सिर और बालोंका पूजन करना चाहिये । तदुपरान्त 'गौर्यै नमः,' 'धिष्ण्यै नमः,' 'कान्त्यै नमः', 'श्रियै नमः' 'रम्भायै नमः' 'ललितायै नमः' और 'वासुदेव्यै नमः' कहकर देवीके चरणोंमें प्रणि-पात करना चाहिये ॥ ४—१५ ॥

एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत् । पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं कुङ्कुमेन सकर्णिकम् ॥ १६ ॥
पूर्वेण विन्यसेद् गौरीमपर्णां च ततः परम् । भवानीं दक्षिणे तद्वद् रुद्राणीं च ततः परम् ॥ १७ ॥
विन्यसेत् पश्चिमे सौम्यां सदा मदनवासिनीम् । वायव्ये पाटलावासामुत्तरेण ततोऽप्युमाम् ॥ १८ ॥
लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टिं मङ्गलां कुमुदां सतीम् ।
रुद्रं च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि । कुसुमैरक्षतैर्वाभिर्नमस्कारेण विन्यसेत् ॥ १९ ॥
गीतमङ्गलनिर्घोषान् कारयित्वा सुवासिनीः ।
पूजयेद् रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः । सिन्दूरं गन्धचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् ॥ २० ॥
सिन्दूरकुङ्कुमस्नानमिष्टं सत्याः सदा यतः ।
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद् यत्नतो गुरुम् । न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ २१ ॥
नभस्ये पूजयेद् गौरीमुत्पलैरसितैः सदा । बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिके शतपत्रकैः ॥ २२ ॥

* सौर, पाद्मसृष्टि भविष्योत्तर पुराण अ० २६में यह व्रत सविस्तर निरूपित है । सौभाग्य एवं ललितादेवीके [illegible] ६० वें अध्यायकी टिप्पणी द्रष्टव्य है । मत्स्यपुराणके इस अध्यायमें अशुद्धियाँ बहुत हैं । इन्हें यथाशक्ति भविष्योत्तर अ० २६ आदिसे मिलाकर शुद्ध किया गया है ।

साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी-स्त्रीको निष्पाव (बड़ी मटर या सेम), जीरा, नमक, ईख, गुड़, फल और फूल आदि सौभाग्याष्टक देकर और पुरुषको सुवर्णनिर्मित कमल देकर यों प्रार्थना करे—'देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर अन्यत्र न जायँ।' पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वतीदेवीके इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों। व्रतकी समाप्तिमें सुवर्ण-निर्मित कमलसहित शय्या दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। पुनः प्रतिमास आठ या छः दम्पतियोंका पूजन करते रहनेका विधान है। विद्वान् व्रती सर्वप्रथम गुरुको दान देकर तत्पश्चात् दूसरे ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। देवि! इस प्रकार मैंने इस अनन्त-तृतीयाका वर्णन कर दिया, जो सदा अनन्त फलकी प्रदायिका है ॥ २७–३४ ॥

सर्वपापहरां देवि सौभाग्यारोग्यवर्धिनीम्।
न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत्। नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात् पतत्यधः ॥ ३५ ॥
गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी वाथ रोगिणी। यदाशुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् ॥ ३६ ॥
इमामनन्तफलदां यस्तृतीयां समाचरेत्। कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥ ३७ ॥
वित्तहीनोऽपि कुरुते वर्षत्रयमुपोषणैः। पुष्पमन्त्रविधानेन सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवाथवा। सापि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहलालिता ॥ ३९ ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्द्रलोकसंस्थः।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः ॥ ४० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनन्ततृतीयाव्रतं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

देवि! यह अनन्ततृतीया समस्त पापोंकी विनाशिका सौभाग्य और नीरोगताकी वृद्धि करनेवाली है, कृपणतावश कभी भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये; क्योंकि चाहे पुरुष हो या स्त्री—कोई भी कृपणताके वशीभूत होकर यदि इसका उल्लङ्घन करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है। गर्भिणी एवं सूतिका (सौरीमें पड़ी हुई) स्त्री नक्तव्रत (रातमें भोजन) करे। कुमारी और रोगिणी अथवा अशुद्ध स्त्री स्वयं नियमपूर्वक रहकर दूसरेके द्वारा व्रतका अनुष्ठान कराये। जो मानव अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस तृतीयाके व्रतका अनुष्ठान करता है, वह सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास करके पुष्प और मन्त्र आदिके द्वारा इस व्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी उस फलकी प्राप्ति होती है। सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा—जो कोई भी इस व्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे लालित होकर उस फलको प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार जो मनुष्य गिरीश-नन्दिनी पार्वतीके इस व्रतको पढ़ता अथवा सुनता है, वह इन्द्र-लोकमें वास करता है तथा जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवताओं, देवाङ्गनाओं और किन्नरोंद्वारा पूजनीय हो जाता है ॥ ३५–४० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनन्ततृतीया-व्रत नामक बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६२ ॥

साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी-स्त्रीको निष्पाव (बड़ी मटर या सेम), जीरा, नमक, ईख, गुड़, फल और फूल आदि सौभाग्याष्टक देकर और पुरुषको सुवर्णनिर्मित कमल देकर यों प्रार्थना करे—'देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर अन्यत्र न जायँ।' पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वतीदेवीके इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों। व्रतकी समाप्तिमें सुवर्ण-निर्मित कमलसहित शय्या दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। पुनः प्रतिमास आठ या छः दम्पतियोंका पूजन करते रहनेका विधान है। विद्वान् व्रती सर्वप्रथम गुरुको दान देकर तत्पश्चात् दूसरे ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। देवि! इस प्रकार मैंने इस अनन्त-तृतीयाका वर्णन कर दिया, जो सदा अनन्त फलकी प्रदायिका है ॥ २७—३४ ॥

सर्वपापहरां देवि सौभाग्यारोग्यवर्धिनीम्।
न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत्। नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात् पतत्यधः ॥ ३५ ॥
गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी वाथ रोगिणी। यद्यशुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् ॥ ३६ ॥
इमामनन्तफलदां यस्तृतीयां समाचरेत्। कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥ ३७ ॥
वित्तहीनोऽपि कुरुते वर्षत्रयमुपोषणैः। पुष्पमन्त्रविधानेन सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवाथवा। सापि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहलालिता ॥ ३९ ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्द्रलोकसंस्थः।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः ॥ ४० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनन्ततृतीयाव्रतं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

देवि! यह अनन्ततृतीया समस्त पापोंकी विनाशिका सौभाग्य और नीरोगताकी वृद्धि करनेवाली है, कृपणतावश कभी भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये; क्योंकि चाहे पुरुष हो या स्त्री—कोई भी कृपणताके वशीभूत होकर यदि इसका उल्लङ्घन करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है। गर्भिणी एवं सूतिका (सौरीमें पड़ी हुई) स्त्री नक्तव्रत (रातमें भोजन) करे। कुमारी और रोगिणी अथवा अशुद्ध स्त्री स्वयं नियमपूर्वक रहकर दूसरेके द्वारा व्रतका अनुष्ठान कराये। जो मानव अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस तृतीयाके व्रतका अनुष्ठान करता है, वह सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास करके पुष्प और मन्त्र आदिके द्वारा इस व्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी उस फलकी प्राप्ति होती है। सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा—जो कोई भी इस व्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे लालित होकर उस फलको प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार जो मनुष्य गिरीश-नन्दिनी पार्वतीके इस व्रतको पढ़ता अथवा सुनता है, वह इन्द्र-लोकमें वास करता है तथा जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवताओं, देवाङ्गनाओं और किन्नरोंद्वारा पूजनीय हो जाता है ॥ ३५—४० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनन्ततृतीया-व्रत नामक बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६२ ॥

एवं सम्पूज्य विधिवद् द्विजदाम्पत्यमर्चयेत्। भोजयित्वान्नपानेन मधुरेण विमत्सरः॥ १२॥
जलपूरितं तथा कुम्भं शुक्लाम्बरयुगद्वयम्। दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैः समर्चयेत्॥ १३॥
प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम्। अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदार्चयेत्॥ १४॥
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः। तैलं राजिं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे॥ १५॥
पानकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे चाथ जीरकम्। श्रावणे वर्जयेत् क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा॥ १६॥
घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जे वर्ज्यं च माक्षिकम्। धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा॥ १७॥
व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च। दद्याद् द्विकालवेलायां पूर्णपात्रेण संयुतम्॥ १८॥
लड्डुकाञ् श्वेतवर्णांश्च संयावमथ पूरिकाः। घारिकानप्यपूपांश्च पिष्टापूपांश्च मण्डकान्॥ १९॥
क्षीरं शाकं च दध्यन्नमिण्डर्योऽशोकवर्तिकाः। माघादिक्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि॥ २०॥
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा। उमा रतिः सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा॥ २१॥
क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत्।

इस प्रकार विधि-विधानके साथ देवीकी पूजा करके एक द्विज-दम्पतिका भी पूजन करना चाहिये। उस समय व्रती अहंकाररहित हो अर्थात् विनम्रतापूर्वक उन्हें मधुर अन्न और जलका भोजन कराकर दो श्वेत वस्त्रोंसे परिवेष्टित एवं स्वर्णनिर्मित कमलसहित जलसे भरा हुआ घड़ा प्रदान करे, फिर चन्दन और पुष्पमाला आदिसे उनकी अर्चना करे तथा इस प्रकार कहे—'इस व्रतसे कुमुदा देवी प्रसन्न हों।' ऐसा कहकर उस दिन लवण-व्रत ग्रहण करे अर्थात् नमक न। छोड़ दे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सदा देवीकी अर्चना करनी चाहिये। व्रतीको माघमें नमक और फाल्गुनमें गुड़ नहीं खाना चाहिये। चैत्रमें तेल और पीली सरसों (या राई) तथा वैशाखमें मधु वर्जित है। ज्येष्ठमासमें पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), आषाढ़में जीरा, श्रावणमें दूध और भाद्रपदमें दही निषिद्ध है। इसी प्रकार आश्विनमें घी और कार्तिकमें मधुका निषेध किया गया है। मार्गशीर्षमें धनिया और पौषमें शक्कर वर्जित है। इस प्रकार इन महीनोंके क्रमसे प्रत्येक मासमें व्रतकी समाप्तिके समय सायंकालकी वेलामें उपर्युक्त पदार्थोंसे भरा हुआ एक करवा पूर्णपात्रसहित ब्राह्मणको दान करे। इसी तरह श्वेत रंगके लड्डू, गोझिया, पूरी, घेवर, पूआ, आटेका बना हुआ पूआ, मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक), दूध, शाक, दही-मिश्रित अन्न, इण्डरी (एक प्रकारकी रोटी) और अशोकवर्तिका (सेंवई)—इन पदार्थोंको माघ आदि मासक्रमसे करवाके ऊपर रखकर दान करनेका विधान है। फिर कुमुदा, माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, रति, सती, मङ्गला, रतिलालसा प्रसन्न हों—ऐसा कहकर माघ आदि सभी मासोंमें क्रमशः कीर्तन करना चाहिये ॥ १२—२१½ ॥

सर्वत्र पञ्चगव्येन प्राशनं समुदाहृतम्। उपवासी भवेन्नित्यमशक्तो नक्तमिष्यते॥ २२॥
पुनर्माघे तु सम्प्राप्ते शर्करां करकोपरि। कृत्वा तु काञ्चनीं गौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम्॥ २३॥
हैमीमङ्गुष्ठमात्रां च साक्षसूत्रकमण्डलुम्। चतुर्भुजामिन्दुयुतां सितनेत्रपटावृताम्॥ २४॥
तद्वद् गोमिथुनं शुक्लं सुवर्णास्यं सिताम्बरम्। सवस्त्रभाजनं दद्याद् भवानी प्रीयतामिति॥ २५॥
अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम्। कुर्यात् स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते॥ २६॥
नवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते नरः।
सुवर्णकमलं गौरि मासि मासि ददन्नरः। अग्निष्टोमसहस्रस्य यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ २७॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने।

एवं सम्पूज्य विधिवद् द्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयित्वान्नपानेन मधुरेण विमत्सरः ॥ १२ ॥
जलपूरितं तथा कुम्भं शुक्लाम्बरयुगद्वयम् । दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैः समर्चयेत् ॥ १३ ॥
प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम् । अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदार्चयेत् ॥ १४ ॥
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः । तैलं राजिं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे ॥ १५ ॥
पानकं ज्येष्ठमासे तु आषाढ़े चाथ जीरकम् । श्रावणे वर्जयेत् क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा ॥ १६ ॥
घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जे वर्ज्यं च माक्षिकम् । धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा ॥ १७ ॥
व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च । दद्याद् द्विकालवेलायां पूर्णपात्रेण संयुतम् ॥ १८ ॥
लड्डुकाञ् श्वेतवर्णांश्च संयावमथ पूरिकाः । घारिकानप्यपूपांश्च पिष्टापूपांश्च मण्डकान् ॥ १९ ॥
क्षीरं शाकं च दध्यन्नमिण्डर्योऽशोकवर्तिकाः । माघादिक्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि ॥ २० ॥
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा । उमा रतिः सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा ॥ २१ ॥
क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् ।

इस प्रकार विधि-विधानके साथ देवीकी पूजा करके एक द्विज-दम्पतिका भी पूजन करना चाहिये । उस समय व्रती अहंकाररहित हो अर्थात् विनम्रतापूर्वक उन्हें मधुर अन्न और जलका भोजन कराकर दो श्वेत वस्त्रोंसे परिवेष्टित एवं स्वर्णनिर्मित कमलसहित जलसे भरा हुआ घड़ा प्रदान करे, फिर चन्दन और पुष्पमाला आदिसे उनकी अर्चना करे तथा इस प्रकार कहे—'इस व्रतसे कुमुदा देवी प्रसन्न हों ।' ऐसा कहकर उस दिन लवण-व्रत ग्रहण करे अर्थात् नमक न। छोड़ दे । इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सदा देवीकी अर्चना करनी चाहिये । व्रतीको माघमें नमक और फाल्गुनमें गुड़ नहीं खाना चाहिये । चैत्रमें तेल और पीली सरसों (या राई) तथा वैशाखमें मधु वर्जित है । ज्येष्ठमासमें पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), आषाढ़में जीरा, श्रावणमें दूध और भाद्रपदमें दही निषिद्ध है । इसी प्रकार आश्विनमें घी और कार्तिकमें मधुका निषेध किया गया है । मार्गशीर्षमें धनिया और पौषमें शक्कर वर्जित है । इस प्रकार इन महीनोंके क्रमसे प्रत्येक मासमें व्रतकी समाप्तिके समय सायंकालकी वेलामें उपर्युक्त पदार्थोंसे भरा हुआ एक करवा पूर्णपात्रसहित ब्राह्मणको दान करे । इसी तरह श्वेत रंगके लड्डू, गोझिया, पूरी, घेवर, पूआ, आटेका बना हुआ पूआ, मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक), दूध, शाक, दही-मिश्रित अन्न, इण्डरी (एक प्रकारकी रोटी) और अशोकवर्तिका (सेंवई)—इन पदार्थोंको माघ आदि मासक्रमसे करवाके ऊपर रखकर दान करनेका विधान है । फिर कुमुदा, माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, रति, सती, मङ्गला, रतिलालसा प्रसन्न हों—ऐसा कहकर माघ आदि सभी मासोंमें क्रमशः कीर्तन करना चाहिये ॥ १२–२१½ ॥

सर्वत्र पञ्चगव्येन प्राशनं समुदाहृतम् । उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते ॥ २२ ॥
पुनर्माघे तु सम्प्राप्ते शर्करां करकोपरि । कृत्वा तु काञ्चनीं गौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥ २३ ॥
हैमीमङ्गुष्ठमात्रां च साक्षसूत्रकमण्डलुम् । चतुर्भुजामिन्दुयुतां सितनेत्रपटावृताम् ॥ २४ ॥
तद्वद् गोमिथुनं शुक्लं सुवर्णास्यं सिताम्बरम् । सवस्त्रभाजनं दद्याद् भवानी प्रीयतामिति ॥ २५ ॥
अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनोव्रतम् । कुर्यात् स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ २६ ॥
नवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते नरः ।
सुवर्णकमलं गौरि मासि मासि ददन्नरः । अग्निष्टोमसहस्रस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ २७ ॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने ।

सुनाता है, वह तीन युगोंतक इन्द्रलोकमें गन्धर्वोंद्वारा पूजित होता है। जो स्त्री, चाहे वह सधवा हो अथवा विधवा, इस सम्पूर्ण दुःखोंको हरण करनेवाली एवं आनन्ददायिनी तृतीयाका अनुष्ठान करती है, वह नारी पतिसहित अपने घरमें सैकड़ों प्रकारके सुखोंका अनुभव करके पुनः गौरी-लोकमें चली जाती है ॥ २३—२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आर्द्रानन्दकरी तृतीया-व्रत नामक चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

अक्षयतृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम्। यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ १ ॥
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता। अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ॥ २ ॥
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता। तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते ॥ ३ ॥
अक्षया संततिस्तस्य तस्यां सुकृतमक्षयम्। अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साक्षया स्मृता ॥
अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षताम् ॥ ४ ॥
विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान्। यथान्नभुङ् महाभाग फलमक्षय्यमश्नुते ॥ ५ ॥
एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः। एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत् ॥ ६ ॥
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम्। राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्र्यां च विन्दति ॥ ७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽक्षयतृतीयाव्रतं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

भगवान् शंकरने कहा—नारद ! अब मैं सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली एक अन्य तृतीयाका [illegible] कर रहा हूँ, जिसमें दान देना, हवन करना और जप करना सभी अक्षय हो जाता है। जो लोग वैशाख-[illegible] शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन व्रतोपवास करते हैं, वे अपने समस्त सत्कर्मोंका अक्षय फल प्राप्त करते हैं। वह तृतीया यदि कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त हो तो विशेषरूपसे पूज्य मानी गयी है। उस दिन दिया गया दान, किया हुआ हवन और जप सभी अक्षय बतलाये गये हैं। इस व्रतका अनुष्ठान करनेवालेकी संतान अक्षय हो जाती है और उस दिनका किया हुआ पुण्य अक्षय हो जाता है। इस दिन अक्षतके द्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, इसीलिये इसे अक्षय-तृतीया कहते हैं।* मनुष्यको चाहिये कि इस दिन स्वयं अक्षतयुक्त जलसे स्नान करके भगवान् विष्णुकी मूर्तिपर अक्षत चढ़ावे और अक्षतके साथ ही शुद्ध सत्तू ब्राह्मणोंको दान दे; तत्पश्चात् स्वयं भी उसी अन्नका भोजन करे। महाभाग ! ऐसा करनेसे वह अक्षय फलका भागी हो जाता है। उपर्युक्त विधिके अनुसार एक भी तृतीयाका व्रत करनेवाला मनुष्य इन सभी तृतीया-व्रतोंके फलको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस तृतीया तिथिको उपवास करके भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करता है, वह राजसूय-यज्ञका फल पाकर अन्तमें श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है ॥ १—७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अक्षयतृतीया-व्रत नामक पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६५ ॥

* ध्यान रहे, सामान्यतया अक्षतके द्वारा विष्णुका पूजन निषिद्ध है—'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुम्' (पद्म० ६। ९६। २०)। पर केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजाका विधान है। अन्यत्र अक्षतके स्थानपर सफेद तिलका विधान है। इस व्रतकी विस्तृतविधि भविष्यपुराण एवं 'व्रत-कल्पद्रुम'में है। इसी तिथिको सत्ययुगका प्रारम्भ तथा परशुरामजीका जन्म भी हुआ था।

सुनाता है, वह तीन युगोंतक इन्द्रलोकमें गन्धर्वोंद्वारा पूजित होता है। जो स्त्री, चाहे वह सधवा हो अथवा विधवा, इस सम्पूर्ण दुःखोंको हरण करनेवाली एवं आनन्ददायिनी तृतीयाका अनुष्ठान करती है, वह नारी पतिसहित अपने घरमें सैकड़ों प्रकारके सुखोंका अनुभव करके पुनः गौरी-लोकमें चली जाती है ॥ २३—२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आर्द्रानन्दकरी तृतीया-व्रत नामक चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

अक्षयतृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम्। यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम्॥ १ ॥
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता। अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च॥ २ ॥
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता। तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते॥ ३ ॥
अक्षया संततिस्तस्य तस्यां सुकृतमक्षयम्। अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साक्षया स्मृता॥
अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षताम्॥ ४ ॥
विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान्। यथान्नभुङ् महाभाग फलमक्षय्यमश्नुते॥ ५ ॥
एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः। एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत्॥ ६ ॥
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम्। राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्र्यां च विन्दति॥ ७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽक्षयतृतीयाव्रतं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

भगवान् शंकरने कहा—नारद ! अब मैं सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली एक अन्य तृतीयाका [illegible] कर रहा हूँ, जिसमें दान देना, हवन करना और जप करना सभी अक्षय हो जाता है। जो लोग वैशाख-[illegible] शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन व्रतोपवास करते हैं, वे अपने समस्त सत्कर्मोंका अक्षय फल प्राप्त करते हैं। वह तृतीया यदि कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त हो तो विशेषरूपसे पूज्य मानी गयी है। उस दिन दिया गया दान, किया हुआ हवन और जप सभी अक्षय बतलाये गये हैं। इस व्रतका अनुष्ठान करनेवालेकी संतान अक्षय हो जाती है और उस दिनका किया हुआ पुण्य अक्षय हो जाता है। इस दिन अक्षतके द्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, इसीलिये इसे अक्षय-तृतीया कहते हैं।* मनुष्यको चाहिये कि इस दिन स्वयं अक्षतयुक्त जलसे स्नान करके भगवान् विष्णुकी मूर्तिपर अक्षत चढ़ावे और अक्षतके साथ ही शुद्ध सत्तू ब्राह्मणोंको दान दे; तत्पश्चात् स्वयं भी उसी अन्नका भोजन करे। महाभाग ! ऐसा करनेसे वह अक्षय फलका भागी हो जाता है। उपर्युक्त विधिके अनुसार एक भी तृतीयाका व्रत करनेवाला मनुष्य इन सभी तृतीया-व्रतोंके फलको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस तृतीया तिथिको उपवास करके भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करता है, वह राजसूय-यज्ञका फल पाकर अन्तमें श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है ॥ १—७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अक्षयतृतीया-व्रत नामक पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६५ ॥

* ध्यान रहे, सामान्यतया अक्षतके द्वारा विष्णुका पूजन निषिद्ध है—'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुम्' (पद्म० ६। ९६। २०)। पर केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजाका विधान है। अन्यत्र अक्षतके स्थानपर सफेद तिलका विधान है। इस व्रतकी विस्तृतविधि भविष्यपुराण एवं 'व्रत-कल्पद्रुम'में है। इसी तिथिको सत्ययुगका प्रारम्भ तथा परशुरामजीका जन्म भी हुआ था।

पुरुष वीणा, रुद्राक्ष-माला, कमण्डलु और पुस्तक धारण करनेवाली गायत्रीकी श्वेत पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा कर प्रातः एवं सायंकाल मौन धारण करके भोजन करे तथा प्रत्येक पक्षकी पञ्चमी तिथिको ब्रह्मवासिनी (वेद-विद्याकी अधिष्ठात्री) का पूजन कर घृतपूर्ण पात्रसहित एक सेर चावल, दूध और सुवर्णका दान करे और कहे— 'गायत्रीदेवी मुझपर प्रसन्न हों।' यह कर्म सायंकालमें मौन धारण करके करना चाहिये। तेरह महीनेतक प्रातः और सायंकालके बीच भोजन न करनेका विधान है। व्रत समाप्त हो जानेपर पहले ब्राह्मणको दो वस्त्रोंसहित भोजन-पदार्थका दान करके तत्पश्चात् स्वयं श्वेत चावलोंका भोजन करे। पुनः देवीके निमित्त वितान (चँदोवा या चाँदनी), घण्टा, दो श्वेत (चाँदीके बने हुए) नेत्र, दुधारू गौ, चन्दन, दो वस्त्र और सिरका कोई आभूषण दान करना चाहिये। तदनन्तर उपदेश करनेवाले अर्थात् कर्म करानेवाले गुरुका भी कृपणता-रहित होकर वस्त्र, पुष्पमाला, चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजन करे ॥ ३—१५ ॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् सारस्वतं व्रतम्। विद्यावानर्थसंयुक्तो रक्तकण्ठश्च जायते ॥ १६ ॥
सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते।
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलगामिनी। ब्रह्मलोके वसेद् राजन् यावत् कल्पायुतत्रयम् ॥ १७ ॥
सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत्। विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत् कल्पायुतत्रयम् ॥ १८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सारस्वतव्रतं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य इस (उपर्युक्त) विधिके अनुसार सारस्वत-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह विद्या-सम्पन्न, धनवान् और मधुरभाषी हो जाता है; साथ ही सरस्वतीकी ...से ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा राजन्! यदि कोई स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी उस फलको प्राप्त करती है और तीस कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें निवास करती है। जो मनुष्य इस सारस्वत-व्रतका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी विद्याधर-लोकमें तीस कल्पोंतक निवास करता है ॥ १६—१८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सारस्वत-व्रत नामक छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

सूर्य-चन्द्र-ग्रहणके समय स्नानकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

चन्द्रादित्योपरागे तु यत् स्नानमभिधीयते। तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ॥ १ ॥

मनुने पूछा—द्रव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्ण वेदविद्) भगवन्! सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जैसी विधि बतलायी गयी है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्प्लवः। तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिविधानतः ॥ २ ॥
चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ ३ ॥
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम्। स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति ॥ ४ ॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत् ॥ ५ ॥
पञ्चगव्यं च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च। रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥ ६ ॥

※

पुरुष वीणा, रुद्राक्ष-माला, कमण्डलु और पुस्तक धारण करनेवाली गायत्रीकी श्वेत पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा कर प्रातः एवं सायंकाल मौन धारण करके भोजन करे तथा प्रत्येक पक्षकी पञ्चमी तिथिको ब्रह्मवासिनी (वेद-विद्याकी अधिष्ठात्री) का पूजन कर घृतपूर्ण पात्रसहित एक सेर चावल, दूध और सुवर्णका दान करे और कहे— 'गायत्रीदेवी मुझपर प्रसन्न हों।' यह कर्म सायंकालमें मौन धारण करके करना चाहिये। तेरह महीनेतक प्रातः और सायंकालके बीच भोजन न करनेका विधान है। व्रत समाप्त हो जानेपर पहले ब्राह्मणको दो वस्त्रोंसहित भोजन-पदार्थका दान करके तत्पश्चात् स्वयं श्वेत चावलोंका भोजन करे। पुनः देवीके निमित्त वितान (चँदोवा या चाँदनी), घण्टा, दो श्वेत (चाँदीके बने हुए) नेत्र, दुधारू गौ, चन्दन, दो वस्त्र और सिरका कोई आभूषण दान करना चाहिये। तदनन्तर उपदेश करनेवाले अर्थात् कर्म करानेवाले गुरुका भी कृपणता-रहित होकर वस्त्र, पुष्पमाला, चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजन करे ॥ ३—१५ ॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् सारस्वतं व्रतम्। विद्यावानर्थसंयुक्तो रक्तकण्ठश्च जायते ॥ १६ ॥
सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते।
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलगामिनी। ब्रह्मलोके वसेद् राजन् यावत् कल्पायुतत्रयम् ॥ १७ ॥
सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत्। विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत् कल्पायुतत्रयम् ॥ १८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सारस्वतव्रतं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य इस (उपर्युक्त) विधिके अनुसार सारस्वत-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह विद्या-सम्पन्न, धनवान् और मधुरभाषी हो जाता है; साथ ही सरस्वतीकी कृपासे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा राजन्! यदि कोई स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी उस फलको प्राप्त करती है और तीस कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें निवास करती है। जो मनुष्य इस सारस्वत-व्रतका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी विद्याधर-लोकमें तीस कल्पोंतक निवास करता है ॥ १६—१८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सारस्वत-व्रत नामक छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

सूर्य-चन्द्र-ग्रहणके समय स्नानकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

चन्द्रादित्योपरागे तु यत् स्नानमभिधीयते। तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ॥ १ ॥

मनुने पूछा—द्रव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्ण वेदविद्) भगवन्! सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जैसी विधि बतलायी गयी है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्प्लवः। तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः ॥ २ ॥
चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ ३ ॥
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम्। स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति ॥ ४ ॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चादितः ॥ ५ ॥
पञ्चगव्यं च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च। रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥ ६ ॥

*

'जो (नव) निधियों*के स्वामी तथा खड्ग, त्रिशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या त्रिशूलको) धारण करनेवाले हैं, वे देवाधिदेव शंकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीडाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, वे सभी मेरे (चन्द्र-ग्रहणजन्य) पापको भस्म कर दें।' इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर व्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करे। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमल-दलपर अङ्कित करें, फिर पञ्चरत्नसे युक्त करवाको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माङ्गलिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा अङ्कित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे॥ १५–२१॥

अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत्। न तस्य ग्रहजा पीडा न च बन्धुजनक्षयः॥ २२॥
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्। सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत्॥ २३॥
अधिकाः पद्मरागाः स्युः कपिलां च सुशोभनाम्। प्रयच्छेच्च निशाम्पत्ये चन्द्रसूर्योपरागयोः॥ २४॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते॥ २५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे चन्द्रादित्योपरागस्नानविधिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पद्मराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहण-स्नानकी विधि)को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २२–२५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें चन्द्रादित्योपरागस्नान-विधि नामक सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

सप्तमीस्नपन-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

किमुद्वेगाद्भुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते। मृतवत्साभिषेकादिकार्येषु च किमिष्यते॥ १॥

नारदजीने पूछा—प्रभो! किसी आकस्मिक एवं वेगशाली* कष्टके प्राप्त होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये तथा अद्भुत शान्तिके† लिये कौन-सा व्रत करना चाहिये? किस व्रतके अनुष्ठानसे दरिद्रताका विनाश

---

* पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ ही प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च ये—नौ निधियाँ हैं।

† सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (ताण्ड्य २६) तथा अथर्वपरिशिष्ट ७२ में अद्भुत शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

'जो (नव) निधियों*के स्वामी तथा खड्ग, त्रिशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या त्रिशूलको) धारण करनेवाले हैं, वे देवाधिदेव शंकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीडाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, वे सभी मेरे (चन्द्र-ग्रहणजन्य) पापको भस्म कर दें।' इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर व्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करे। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमल-दलपर अङ्कित करें, फिर पञ्चरत्नसे युक्त करवाको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माङ्गलिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा अङ्कित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे ॥ १५–२१ ॥

अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत्। न तस्य ग्रहजा पीडा न च बन्धुजनक्षयः ॥ २२ ॥
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्। सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ॥ २३ ॥
अधिकाः पद्मरागाः स्युः कपिलां च सुशोभनाम्। प्रयच्छेच्च निशाम्पत्ये चन्द्रसूर्योपरागयोः ॥ २४ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते ॥ २५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे चन्द्रादित्योपरागस्नानविधिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण— दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पद्मराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहण-स्नानकी विधि)को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २२–२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें चन्द्रादित्योपरागस्नान-विधि नामक सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६७ ॥

अड़सठवाँ अध्याय

सप्तमीस्नपन-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

किमुद्वेगाद्भुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते। मृतवत्साभिषेकादिकार्येषु च किमिष्यते ॥ १ ॥

नारदजीने पूछा—प्रभो ! किसी आकस्मिक एवं वेगशाली* कष्टके प्राप्त होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये तथा अद्भुत शान्तिके† लिये कौन-सा व्रत करना चाहिये ? किस व्रतके अनुष्ठानसे दरिद्रताका विनाश

* पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ ही प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च्च ये—नौ निधियाँ हैं।

† सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (ताण्ड्य २६) तथा अथर्वपरिशिष्ट ७२ में अद्भुत शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत् तदा।
तण्डुलै रक्तशालीयैश्चरुं गोक्षीरसंयुतम्। निर्वपेत् सूर्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः॥ १६॥
कीर्तयेत् सूर्यदैवत्यं सप्तार्चिं च घृताहुतीः। जुहुयाद् रुद्रसूक्तेन तद्वद् रुद्राय नारद॥ १७॥
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः। यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्योऽष्टशतं पुनः॥ १८॥
व्याहृतिभिस्तथाऽऽज्येन तथैवाष्टशतं पुनः। हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मङ्गलं येन धीमता॥ १९॥
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद् दर्भपाणिना। स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान् कोणेषु शोभनान्॥ २०॥
पञ्चमं च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम्। स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम्॥ २१॥
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम्।
सर्वान् सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्वितान्। पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत्॥ २२॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमाद्ध्रदगोकुलात्। संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत्॥ २३॥

भगवान् सूर्य कहेंगे—नरेश्वर! अब तुम अधिक कष्ट मत सहन करो, तुम्हारा पुत्र चिरंजीवी होगा, किंतु सम्पूर्ण लोकोंके हितके हेतु मैं जिस पापनाशक सप्तमीस्नपन-व्रतका वर्णन करूँगा, उसका अनुष्ठान तुम्हें भी करना चाहिये। नारद! मृतवत्सा स्त्रीके नवजात शिशुके लिये सातवें महीनेमें अथवा शुक्लपक्षकी किसी भी सप्तमी तिथिको यह सारा कार्य प्रशस्त माना गया है। यदि उस तिथिको बालकका जन्म-नक्षत्र पड़ता हो तो बुद्धिमान् कर्ताको उस तिथिका त्याग कर देना चाहिये। उसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये भी किये जानेवाले कार्यमें इसका विचार करना आवश्यक है। व्रतारम्भमें व्रती ग्रहबल एवं ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्ति-वाचन कराये और गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर एकाग्निक उपासककी भाँति गो-दुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाये, फिर सूर्य और रुद्रको पृथक्-पृथक् उनके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक वह हव्यान्न प्रदान करे। उस समय सूर्यसूक्तकी सात ऋचाओंका पाठ करे और अग्निमें घीकी सात आहुतियोंसे हवन करे। नारद! रुद्रके लिये भी उसी प्रकार रुद्रसूक्तकी ऋचाओंका पाठ एवं उनके द्वारा हवन करना चाहिये। इस व्रतमें हवनके लिये मन्दार और पलाशकी समिधा होनी चाहिये। पुनः जौ और काले तिलद्वारा एक सौ आठ बार हवन करनेका विधान है। उसी प्रकार व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्) के उच्चारणपूर्वक एक सौ आठ बार घीकी आहुति देनी चाहिये। इस प्रकार हवन करके बुद्धिमान् व्रती पुनः स्नान करे; क्योंकि इससे मङ्गलकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा वेदीके चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धिनी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वौषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर हाथीसार, घुड़साल, बिमवट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वारसे शुद्ध मिट्टी लाकर उन सभी कलशोंमें छोड़ दे॥

चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम्। गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान् मन्त्रानुदीरयेत्॥ २४॥
नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च।
पूजिताभिर्यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः। सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम्॥ २५॥
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्रा च भामिनी। आदित्यश्चन्द्रमाः सार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः॥ २६॥
सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। ते ते चान्ये च देवौघाः सदा पान्तु कुमारकम्॥ २७॥

गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत् तदा ।
तण्डुलै रक्तशालीयैश्चरुं गोक्षीरसंयुतम् । निर्वपेत् सूर्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः ॥ १६ ॥
कीर्तयेत् सूर्यदैवत्यं सप्तार्चिं च घृताहुतीः । जुहुयाद् रुद्रसूक्तेन तद्वद् रुद्राय नारद ॥ १७ ॥
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः । यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्योऽष्टशतं पुनः ॥ १८ ॥
व्याहृतिभिस्तथाऽऽज्येन तथैवाष्टशतं पुनः । हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मङ्गलं येन धीमता ॥ १९ ॥
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद् दर्भपाणिना । स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान् कोणेषु शोभनान् ॥ २० ॥
पञ्चमं च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम् । स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम् ॥ २१ ॥
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम् ।
सर्वान् सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्वितान् । पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥ २२ ॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमाद्ध्रदगोकुलात् । संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् ॥ २३ ॥

भगवान् सूर्य कहेंगे—नरेश्वर ! अब तुम अधिक कष्ट मत सहन करो, तुम्हारा पुत्र चिरंजीवी होगा, किंतु सम्पूर्ण लोकोंके हितके हेतु मैं जिस पापनाशक सप्तमीस्नपन-व्रतका वर्णन करूँगा, उसका अनुष्ठान तुम्हें भी करना चाहिये । नारद ! मृतवत्सा स्त्रीके नवजात शिशुके लिये सातवें महीनेमें अथवा शुक्लपक्षकी किसी भी सप्तमी तिथिको यह सारा कार्य प्रशस्त माना गया है । यदि उस तिथिको बालकका जन्म-नक्षत्र पड़ता हो तो बुद्धिमान् कर्ताको उस तिथिका त्याग कर देना चाहिये । उसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये भी किये जानेवाले कार्यमें इसका विचार करना आवश्यक है । व्रतारम्भमें व्रती ग्रहबल एवं ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्ति-वाचन कराये और गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर एकाग्निक उपासककी भाँति गो-दुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाये, फिर सूर्य और रुद्रको पृथक्-पृथक् उनके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक वह हव्यान्न प्रदान करे । उस समय सूर्यसूक्तकी सात ऋचाओंका पाठ करे और अग्निमें घीकी सात आहुतियोंसे हवन करे । नारद ! रुद्रके लिये भी उसी प्रकार रुद्रसूक्तकी ऋचाओंका पाठ एवं उनके द्वारा हवन करना चाहिये । इस व्रतमें हवनके लिये मन्दार और पलाशकी समिधा होनी चाहिये । पुनः जौ और काले तिलद्वारा एक सौ आठ बार हवन करनेका विधान है । उसी प्रकार व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्) के उच्चारणपूर्वक एक सौ आठ बार घीकी आहुति देनी चाहिये । इस प्रकार हवन करके बुद्धिमान् व्रती पुनः स्नान करे; क्योंकि इससे मङ्गलकी प्राप्ति होती है । तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा वेदीके चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये । पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे । उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धिनी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे । फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे । इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वौषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे । फिर हाथीसार, घुड़शाल, विमवट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वारसे शुद्ध मिट्टी लाकर उन सभी कलशोंमें छोड़ दे ॥

चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् । गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान् मन्त्रानुदीरयेत् ॥ २४ ॥
नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च ।
पूजिताभिर्यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः । सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥ २५ ॥
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्रा च भामिनी । आदित्यश्चन्द्रमाः सार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः ॥ २६ ॥
सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ते ते चान्ये च देवौघाः सदा पान्तु कुमारकम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये; क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सदा इस विधानके अनुसार इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कृतवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्नपन-व्रतका विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार मैंने इस सप्तमीस्नपन-व्रतका, जो सर्वश्रेष्ठ, समस्त दोषोंको शान्त करनेवाला और बालकोंके लिये परम हितकारक है, समग्ररूपसे वर्णन कर दिया। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी)से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बड़े-से-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको श्रवण करता है उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा मुनियोंका कथन है ॥ ३७—४२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सप्तमीस्नपन-व्रत नामक अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

भीमद्वादशी-व्रतका विधान

मत्स्य उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना। मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम् ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन् ! प्राचीन रथन्तर-कल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शंकर मन्दराचल-पर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर प्रश्न किया— ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर। स्वल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम् ॥ २ ॥
किमज्ञातं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज। स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम् ॥ ३ ॥

ब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर ! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको नीरोगता, अनन्त ऐश्वर्य और मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? महादेव ! आपके लिये कुछ अज्ञात तो है नहीं, अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये अधोक्षज ! आपकी कृपासे थोड़ी-सी तपस्याद्वारा इस लोकमें महान् फलकी प्राप्तिका क्या उपाय है ? यह बतलाइये ॥ २-३ ॥

मत्स्य उवाच

एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः। उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम् ॥ ४ ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

अस्माद् रथन्तरात् कल्पात् त्रयोविंशात् पुनर्यदा। वाराहो भविता कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे ॥ ५ ॥
वैवस्वताख्ये संजाते सप्तमे सप्तलोककृत्। द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमं जगुः ॥ ६ ॥
तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः। भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥ ७ ॥
द्वैपायनऋषिस्तद्वद् रौहिणेयोऽथ केशवः। कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ८ ॥

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये; क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सदा इस विधानके अनुसार इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कृतवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्नपन-व्रतका विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार मैंने इस सप्तमीस्नपन-व्रतका, जो सर्वश्रेष्ठ, समस्त दोषोंको शान्त करनेवाला और बालकोंके लिये परम हितकारक है, समग्ररूपसे वर्णन कर दिया। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी) से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बड़े-से-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको श्रवण करता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा मुनियोंका कथन है॥ ३७—४२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सप्तमीस्नपन-व्रत नामक अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

भीमद्वादशी-व्रतका विधान

मत्स्य उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना। मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम्॥ १॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! प्राचीन रथन्तर-कल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शंकर मन्दराचल-पर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर प्रश्न किया—॥ १॥

ब्रह्मोवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर। स्वल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम्॥ २॥
किमज्ञातं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज। स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम्॥ ३॥

ब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको नीरोगता, अनन्त ऐश्वर्य और मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? महादेव! आपके लिये कुछ अज्ञात तो है नहीं, अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये अधोक्षज! आपकी कृपासे थोड़ी-सी तपस्याद्वारा इस लोकमें महान् फलकी प्राप्तिका क्या उपाय है? यह बतलाइये॥ २-३॥

मत्स्य उवाच

एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः। उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम्॥ ४॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्‌की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले॥ ४॥

ईश्वर उवाच

अस्माद् रथन्तरात् कल्पात् त्रयोविंशात् पुनर्यदा। वाराहो भविता कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे॥ ५॥
वैवस्वताख्ये संजाते सप्तमे सप्तलोककृत्। द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमं जगुः॥ ६॥
तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः। भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति॥ ७॥
द्वैपायनऋषिस्तद्वद् रौहिणेयोऽथ केशवः। कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः॥ ८॥

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणाय च। कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः ॥ २२ ॥
वैकुण्ठायेति वै कण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे ।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय वै। सर्वं नारायणस्यैवं सम्पूज्या बाहवः क्रमात् ॥ २३ ॥

भगवान् वासुदेव कहेंगे—भारत ! यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी तिथियोंमें तथा अन्यान्य दिनों और नक्षत्रोंमें उपवास करनेमें असमर्थ हो तो मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ। उस दिन निम्नाङ्कित विधिसे उपवास कर तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो। जिस दिन माघ मासके शुक्लपक्षकी दशमी* तिथि आये, उस दिन (व्रतीको चाहिये कि) समस्त शरीरमें घी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। 'श्रीकृष्णाय नमः' कहकर दोनों चरणोंकी और 'सर्वात्मने नमः' कहकर मस्तककी पूजा करे। 'वैकुण्ठाय नमः' इस मन्त्रसे कण्ठकी और 'श्रीवत्सधारिणे नमः', इससे वक्षःस्थलकी अर्चा करे। फिर 'शङ्खिने नमः', 'चक्रिणे नमः', 'गदिने नमः', 'वरदाय नमः' तथा 'सर्वं नारायणस्य' (सब कुछ नारायणका ही है)—ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्की बाहुओंकी पूजा करे ॥ १९-२३ ॥

दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै। ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ॥ २४ ॥
नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः। नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ॥ २५ ॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे। विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत् ॥ २६ ॥
एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ। गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥ २७ ॥
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः। सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः ॥ २८ ॥
न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः। गृहीत्वा धावयेद् दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः ॥ २९ ॥
ब्रूयात् सायंतनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ। नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ॥ ३० ॥

'इसके बाद 'दामोदराय नमः' कहकर उदरका, 'पञ्चशराय नमः' इस मन्त्रसे जननेन्द्रियका, 'सौभाग्यनाथाय नमः' इससे दोनों जंघोंका, 'भूतधारिणे नमः' से दोनों घुटनोंका, 'नीलाय नमः' इस मन्त्रसे पिंडलियों (घुटनेसे नीचेके भाग) का और 'विश्वसृजे नमः' इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् 'देव्यै नमः', 'शान्त्यै नमः', 'लक्ष्म्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'पुष्ट्यै नमः', 'तुष्ट्यै नमः', धृष्ट्यै नमः', 'हृष्ट्यै नमः'—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे। इसके बाद 'विहङ्गनाथाय नमः', 'वायुवेगाय नमः', 'पक्षिणे नमः', 'विषप्रमाथिने नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा सदा गरुडकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे। फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे। भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरकी दाँतुन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे, फिर मुँह धोकर आचमन करे। सूर्यास्त होनेके बाद पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर सायंकालीन संध्या करे। उसके अन्तमें यह कहे—'भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है। भगवन् ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।' (इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे।) ॥ २४-३० ॥

* अन्य पुराणोंमें तथा एकादशीमाहात्म्य आदिमें ज्येष्ठ शुक्ल ११को निर्जला या भीमसेनी एकादशी अथवा द्वादशी कहा गया है।

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणाय च। कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः ॥ २२ ॥
वैकुण्ठायेति वै कण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय वै। सर्वं नारायणस्यैवं सम्पूज्या बाहवः क्रमात् ॥ २३ ॥

भगवान् वासुदेव कहेंगे—भारत! यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी तिथियोंमें तथा अन्यान्य दिनों और नक्षत्रोंमें उपवास करनेमें असमर्थ हो तो मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ। उस दिन निम्नाङ्कित विधिसे उपवास कर तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो। जिस दिन माघ मासके शुक्लपक्षकी दशमी* तिथि आये, उस दिन (व्रतीको चाहिये कि) समस्त शरीरमें घी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा **'ॐ नमो नारायणाय'** इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। **'श्रीकृष्णाय नमः'** कहकर दोनों चरणोंकी और **'सर्वात्मने नमः'** कहकर मस्तककी पूजा करे। **'वैकुण्ठाय नमः'** इस मन्त्रसे कण्ठकी और **'श्रीवत्सधारिणे नमः'**, इससे वक्षःस्थलकी अर्चा करे। फिर **'शङ्खिने नमः'**, **'चक्रिणे नमः'**, **'गदिने नमः'**, **'वरदाय नमः'** तथा **'सर्वं नारायणस्य'** (सब कुछ नारायणका ही है)—ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्की बाहुओंकी पूजा करे ॥ १९–२३ ॥

दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै। ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ॥ २४ ॥
नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः। नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ॥ २५ ॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे। विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत् ॥ २६ ॥
एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ। गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥ २७ ॥
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः। सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः ॥ २८ ॥
न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः। गृहीत्वा धावयेद् दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः ॥ २९ ॥
ब्रूयात् सायंतनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ। नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ॥ ३० ॥

इसके बाद **'दामोदराय नमः'** कहकर उदरका, **'पञ्चशराय नमः'** इस मन्त्रसे जननेन्द्रियका, **'सौभाग्यनाथाय नमः'** इससे दोनों जंघोंका, **'भूतधारिणे नमः'** से दोनों घुटनोंका, **'नीलाय नमः'** इस मन्त्रसे पिंडलियों (घुटनेसे नीचेके भाग) का और **'विश्वसृजे नमः'** इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् **'देव्यै नमः'**, **'शान्त्यै नमः'**, **'लक्ष्म्यै नमः'**, **'श्रियै नमः'**, **'पुष्ट्यै नमः'**, **'तुष्ट्यै नमः'**, **'धृष्ट्यै नमः'**, **'हृष्ट्यै नमः'**—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे। इसके बाद **'विहङ्गनाथाय नमः'**, **'वायुवेगाय नमः'**, **'पक्षिणे नमः'**, **'विषप्रमाथिने नमः'**—इन मन्त्रोंके द्वारा सदा गरुडकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे। फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे। भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरकी दाँतुन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे, फिर मुँह धोकर आचमन करे। सूर्यास्त होनेके बाद पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर सायंकालीन संध्या करे। उसके अन्तमें यह कहे—'भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है। भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।' (इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे।) ॥ २४–३० ॥

* अन्य पुराणोंमें तथा एकादशीमाहात्म्य आदिमें ज्येष्ठ शुक्ल ११को निर्जला या भीमसेनी एकादशी अथवा द्वादशी कहा गया है।

उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु । ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश ॥ ४७ ॥
गा वै दद्यात् कुरुश्रेष्ठ सौवर्णमुखसंयुताः । पयस्विनीः शीलवतीः कांस्यदोहसमन्विताः ॥ ४८ ॥
रौप्यखुराः सवस्त्राश्च चन्दनेनाभिषेचिताः । तास्तु तेषां ततो भक्त्या भक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान् ॥ ४९ ॥
कृत्वा वै ब्राह्मणान् सर्वानन्नैर्नानाविधैस्तथा । भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

महावीर्य ! फिर जलसे भरे हुए तेरह कलशोंकी स्थापना करे । वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत होने चाहिये । उनके साथ उदुम्बर-पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है । वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण चारों ओरसे अरिष्टवर्गसहित वैष्णवसामका गान करते रहें । इस प्रकार उपर्युक्त बारहों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अँगूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शय्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे । इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे । इस प्रकार गीत और माङ्गलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे । उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित) को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे । कुरुश्रेष्ठ ! रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर (नित्यकर्मके पश्चात्) मुखपर सोनेके पत्रसे विभूषित की हुई तेरह गौएँ दान करनी चाहिये । वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सीधी हों । उनके खुर चाँदीसे मँढ़े हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो । गौओंके साथ काँसेका दोहनपात्र भी होना चाहिये । गोदानके पश्चात् उन सभी ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे तृप्त करके स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे ॥ ४२—५० ॥

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः । प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ५१ ॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः । यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः ॥ ५२ ॥
एवमुच्चार्य तान् कुम्भान् गाश्चैव शयनानि च । वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद् बुधः ॥ ५३ ॥
अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् । शय्यां दद्याद् द्विजातेश्च सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ५४ ॥
इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत् । तद्दिनं नरशार्दूल य इच्छेद् विपुलां श्रियम् ॥ ५५ ॥
तस्मात् त्वं सत्त्वमालम्ब्य भीमसेन विमत्सरः । कुरु व्रतमिदं सम्यक् स्नेहात् तव मयेरितम् ॥ ५६ ॥
त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नामाख्यं भविष्यति ।
सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा । या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥ ५७ ॥
त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन् कल्पे महावीरवरप्रधान ।
यस्याः स्मरन् कीर्तनमप्यशेषं विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः स्यात् ॥ ५८ ॥

पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों । श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं । मैं यदि इन दोनोंमें अन्तर न देखता होऊँ तो इस धारणासे मेरी आयु बढ़े तथा कल्याण हो ।' यह कहकर बुद्धिमान् व्रती उन कलशों, गौओं, शय्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणोंके घर पहुँचवा दे । अधिक शय्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही सुसज्जित एवं सभी उपकरणोंसे सम्पन्न शय्या ब्राह्मणको दान करे । नरसिंह ! जिसे विपुल लक्ष्मीकी अभिलाषा हो, उसे वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये । अतः भीमसेन ! तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्याग कर इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करो । (यह बहुत गुप्त व्रत है, किंतु) स्नेहवश मैंने तुम्हें

उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु । ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश ॥ ४७ ॥
गा वै दद्यात् कुरुश्रेष्ठ सौवर्णमुखसंयुताः । पयस्विनीः शीलवतीः कांस्यदोहसमन्विताः ॥ ४८ ॥
रौप्यखुराः सवस्त्राश्च चन्दनेनाभिषेचिताः । तास्तु तेषां ततो भक्त्या भक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान् ॥ ४९ ॥
कृत्वा वै ब्राह्मणान् सर्वानन्नैर्नानाविधैस्तथा । भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

महावीर्य ! फिर जलसे भरे हुए तेरह कलशोंकी स्थापना करे । वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत होने चाहिये । उनके साथ उदुम्बर-पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है । वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण चारों ओरसे अरिष्टवर्गसहित वैष्णवसामका गान करते रहें । इस प्रकार उपर्युक्त बारहों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अँगूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शय्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे । इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे । इस प्रकार गीत और माङ्गलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे । उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित) को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे । कुरुश्रेष्ठ ! रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर (नित्यकर्मके पश्चात्) मुखपर सोनेके पत्रसे विभूषित की हुई तेरह गौएँ दान करनी चाहिये । वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सीधी हों । उनके खुर चाँदीसे मँढ़े हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो । गौओंके साथ काँसेका दोहनपात्र भी होना चाहिये । गोदानके पश्चात् उन सभी ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे तृप्त करके स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे ॥ ४२—५० ॥

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः । प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ५१ ॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः । यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः ॥ ५२ ॥
एवमुच्चार्य तान् कुम्भान् गाश्चैव शयनानि च । वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद् बुधः ॥ ५३ ॥
अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् । शय्यां दद्याद् द्विजातेश्च सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ५४ ॥
इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत् । तद्दिनं नरशार्दूल य इच्छेद् विपुलां श्रियम् ॥ ५५ ॥
तस्मात् त्वं सत्त्वमालम्ब्य भीमसेन विमत्सरः । कुरु व्रतमिदं सम्यक् स्नेहात् तव मयेरितम् ॥ ५६ ॥
त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नामाख्यं भविष्यति ।
सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा । या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥ ५७ ॥
त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन् कल्पे महावीरवरप्रधान ।
यस्याः स्मरन् कीर्तनमप्यशेषं विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः स्यात् ॥ ५८ ॥

पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों । श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं । मैं यदि इन दोनोंमें अन्तर न देखता होऊँ तो इस धारणासे मेरी आयु बढ़े तथा कल्याण हो ।' यह कहकर बुद्धिमान् व्रती उन कलशों, गौओं, शय्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणोंके घर पहुँचवा दे । अधिक शय्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही सुसज्जित एवं सभी उपकरणोंसे सम्पन्न शय्या ब्राह्मणको दान करे । नरसिंह ! जिसे विपुल लक्ष्मीकी अभिलाषा हो, उसे वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये । अतः भीमसेन ! तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्याग कर इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करो । (यह बहुत गुप्त व्रत है, किंतु) स्नेहवश मैंने तुम्हें

कल्पमें जो माघ मासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी 'भीमद्वादशी'के नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ६३—६५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भीमद्वादशी-व्रत नामक उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६९ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

पण्यस्त्री-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः।
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः। पण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन् ! मैं पुराणोंमें सभी वर्णों और आश्रमोंके सदाचारकी उत्पत्ति तथा धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंको तो सुन चुका, अब मैं पण्यस्त्रियों (मूल्यद्वारा खरीदी जानेवाली स्त्रियों) के समुचित आचारको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ* ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश। वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले। पुष्पितोपवने फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ३ ॥
निर्भरं सह पत्नीभिः प्रसक्ताभिरलंकृतः।
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्वहः। कुरङ्गनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण साम्बः परपुरंजयः। साक्षात् कंदर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः। प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा।
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः। मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥ ७ ॥
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत्। ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः ॥ ८ ॥
उत्तारभूतं दाशत्वं समुद्राद् ब्राह्मणप्रियः। उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद् व्रतं कथयिष्यति।
तदेवोत्तारणायालं दासीत्वेऽपि भविष्यति। इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते। निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने। हृतासु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुख। आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥ १३ ॥
तास्तमर्घ्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः। लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम्। भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५ ॥
दिव्यभावां तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च।
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान्। प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥ १६ ॥

---

* इस अध्यायमें कृपालु भगवान् द्वारा—'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो··· शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥(गीता ९। ३२) के भाव, पापयोनिकी व्याख्या तथा उनके कल्याणकी पद्धति निर्दिष्ट हुई है। यह अध्याय पद्म० सृष्टि अध्याय, स्कन्द तथा समाधानात्मक अंश वराह, साम्ब, आदित्यादि अन्य अनेक पुराणोंमें भी प्राप्त हैं। ख० २३। ७४—१४६ तथा भविष्य ४। १२०। १—७३ तक में तो ज्योंका-त्यों आता ही है। इसमें मिलते-जुलते

कल्पमें जो माघ मासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी 'भीमद्वादशी'के नामसे तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके प्रसिद्ध होगी ॥ ६३—६५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भीमद्वादशी-व्रत नामक उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६९ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

पण्यस्त्री-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ।
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः । पण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन् ! मैं पुराणोंमें सभी पण्यस्त्रियों (मूल्यद्वारा खरीदी जानेवाली स्त्रियों) के वर्णों और आश्रमोंके सदाचारकी उत्पत्ति तथा समुचित आचारको यथार्थरूपसे सुनना चाहता धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंको तो सुन चुका, अब मैं हूँ* ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश । वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले । पुष्पितोपवने फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ३ ॥
निर्भरं सह पत्नीभिः प्रसकाभिरलंकृतः ।
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्वहः । कुरङ्गनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण साम्बः परपुरंजयः । साक्षात् कंदर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः । प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ।
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः । मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥ ७ ॥
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् । ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः ॥ ८ ॥
उत्तारभूतं दाशत्वं समुद्राद् ब्राह्मणप्रियः । उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद् व्रतं कथयिष्यति ।
तदेवोत्तारणायालं दासीत्वेऽपि भविष्यति । इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते । निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने । हृतासु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यासु चाम्बुजे ॥ १२ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुख । आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥ १३ ॥
तास्तमर्घ्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः । लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् । भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५ ॥
दिव्यभावां तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ।
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् । प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥ १६ ॥

* इस अध्यायमें कृपालु भगवान् द्वारा—'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो··· शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥'(गीता ९ । ३२) के भाव, पापयोनिकी व्याख्या तथा उनके कल्याणकी पद्धति निर्दिष्ट हुई है। यह अध्याय पद्म० खं० २३ । ७४—१४६ तथा भविष्य ४ । १२० । १—७३ तक में तो ज्यों-का-त्यों आता ही है। इससे मिलते-जुलते सृष्टि अध्याय, स्कन्द तथा समाधानात्मक अंश वराह, साम्ब, आदित्यादि अन्य अनेक पुराणोंमें भी प्राप्त हैं।

दाल्भ्य उवाच

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे। भवतीनां च सर्वासां नारदोऽभ्याशमागतः॥ २०॥
हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा।
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित्। कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश॥ २१॥
तस्माद् वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत् पुरा। शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः॥ २२॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद् द्वादश्यां शुक्लपक्षतः। भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि॥ २३॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्।
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति। चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ॥ २४॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः।
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः। इदानीमपि यद् वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः॥ २५॥
पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः। दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः॥ २६॥
तेषां व्रातसहस्राणि शतान्यपि च योषिताम्।
परिणीतानि यानि स्युर्बलाद् भुक्तानि यानि वै। तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः॥ २७॥

दाल्भ्य कहते हैं—नारियो! पूर्वकालमें तुमलोग अप्सराएँ थीं और सब-की-सब अग्निकी कन्याएँ थीं। एक बार जब तुमलोग मानस-सरोवरमें जलक्रीडाद्वारा मनोरञ्जन कर रही थीं, उसी समय तुमलोगोंके निकट नारदजी आ पहुँचे। उस समय तुमलोग गर्ववश उन्हें प्रणाम न कर उन योगवेत्तासे इस प्रकार प्रश्न कर बैठीं—'देवर्षे! भगवान् नारायण किस प्रकार हमलोगोंके पति हो सकते हैं, इसका उपाय बतलाइये।' उस समय तुमलोगोंको नारदजीसे वरदान और शाप दोनों प्राप्त हुए थे। (उन्होंने कहा था—) 'यदि तुमलोग चैत्र और वैशाख मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन स्वर्णनिर्मित उपकरणोंसहित दो शय्याएँ प्रदान करोगी तो निश्चय ही दूसरे जन्ममें भगवान् नारायण तुमलोगोंके पति होंगे। साथ ही सुन्दरता और सौभाग्यके अभिमान-वश जो तुमलोगोंने मुझे बिना प्रणाम किये ही मुझसे प्रश्न किया है, इस कारण तुमलोगोंका उनसे शीघ्र ही वियोग भी हो जायगा तथा डाकू तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे और तुम सभी कुधर्मको प्राप्त हो जाओगी।' इस प्रकार नारदजी एवं बुद्धिमान् भगवान् केशवके शापसे तुम सभी कामसे मोहित होकर कुधर्मको प्राप्त हो गयी हो। सुन्दरियो! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे भी तुमलोग ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें घटित हुए सैकड़ों देवासुर-संग्रामोंमें देवताओंने समय-समयपर बहुत-से दानवों, असुरों, दैत्यों और राक्षसोंको मार डाला था, उनकी जो सैकड़ों-हजारों यूथ-की-यूथ पत्नियाँ थीं, जिन्हें अन्य राक्षसोंने बलपूर्वक (इसी प्रकार) ब्याह लिया था, उन सबसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवराज इन्द्रने कहा॥ २०—२७॥

इन्द्र उवाच

वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे। भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च॥ २८॥
राजानः स्वामिनस्तुल्याः सुता वापि च तत्समाः। भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः॥ २९॥
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा। निर्धनेनोपचार्यो वः स तदान्यत्र दाम्भिकात्॥ ३०॥
देवतानां पितॄणां च पुण्याहे समुपस्थिते।
गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि स्वशक्तितः। ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च॥ ३१॥
यच्चाप्यन्यद् व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः। अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत् पुनः॥ ३२॥
संसारोत्तारणायालमेतद् वेदविदो विदुः।

दाल्भ्य उवाच

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे। भवतीनां च सर्वासां नारदोऽभ्याशमागतः ॥ २० ॥
हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा।
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित्। कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१ ॥
तस्माद् वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत् पुरा। शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२ ॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद् द्वादश्यां शुक्लपक्षतः। भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ २३ ॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्।
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति। चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥ २४ ॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः।
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः। इदानीमपि यद् वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः ॥ २५ ॥
पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः। दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः ॥ २६ ॥
तेषां शतसहस्राणि शतान्यपि च योषिताम्।
परिणीतानि यानि स्युर्बलाद् भुक्तानि यानि वै। तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः ॥ २७ ॥

दाल्भ्य कहते हैं—नारियो ! पूर्वकालमें तुमलोग अप्सराएँ थीं और सब-की-सब अग्निकी कन्याएँ थीं। एक बार जब तुमलोग मानस-सरोवरमें जलक्रीडाद्वारा मनोरञ्जन कर रही थीं, उसी समय तुमलोगोंके निकट नारदजी आ पहुँचे। उस समय तुमलोग गर्ववश उन्हें प्रणाम न कर उन योगवेत्तासे इस प्रकार प्रश्न कर बैठीं—'देवर्षे ! भगवान् नारायण किस प्रकार हमलोगोंके पति हो सकते हैं, इसका उपाय बतलाइये।' उस समय तुमलोगोंको नारदजीसे वरदान और शाप दोनों प्राप्त हुए थे। (उन्होंने कहा था—) 'यदि तुमलोग चैत्र और वैशाख मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन स्वर्णनिर्मित उपकरणोंसहित दो शय्याएँ प्रदान करोगी तो निश्चय ही दूसरे जन्ममें भगवान् नारायण तुमलोगोंके पति होंगे। साथ ही सुन्दरता और सौभाग्यके अभिमान-वश जो तुमलोगोंने मुझे बिना प्रणाम किये ही मुझसे प्रश्न किया है, इस कारण तुमलोगोंका उनसे शीघ्र ही वियोग भी हो जायगा तथा डाकू तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे और तुम सभी कुधर्मको प्राप्त हो जाओगी।' इस प्रकार नारदजी एवं बुद्धिमान् भगवान् केशवके शापसे तुम सभी कामसे मोहित होकर कुधर्मको प्राप्त हो गयी हो। सुन्दरियो ! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे भी तुमलोग ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें घटित हुए सैकड़ों देवासुर-संग्रामोंमें देवताओंने समय-समयपर बहुत-से दानवों, असुरों, दैत्यों और राक्षसोंको मार डाला था, उनकी जो सैकड़ों-हजारों यूथ-की-यूथ पत्नियाँ थीं, जिन्हें अन्य राक्षसोंने बलपूर्वक (इसी प्रकार) ब्याह लिया था, उन सबसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवराज इन्द्रने कहा ॥ २०–२७ ॥

इन्द्र उवाच

वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे। भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च ॥ २८ ॥
राजानः स्वामिनस्तुल्याः सुता वापि च तत्समाः। भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः ॥ २९ ॥
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा। निर्धनेनोपचार्यो वः स तदान्यत्र दाम्भिकात् ॥ ३० ॥
देवतानां पितॄणां च पुण्याहे समुपस्थिते।
गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि स्वशक्तितः। ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च ॥ ३१ ॥
यच्चाप्यन्यद् व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः। अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत् पुनः ॥ ३२ ॥
संसारोत्तारणायालमेतद् वेदविदो विदुः।

पूजा करे और घीसे भरे हुए पात्रके साथ एक सेर अगहनी चावल उस ब्राह्मणको दान करे और कहे— 'माधव मुझपर प्रसन्न हों।' फिर वह विलासिनी नारी उन द्विजवरको यथेष्ट भोजन करावे ॥ ३३—४५ ॥

एवमादित्यवारेण सर्वमेतत् समाचरेत् । तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रयोदश ॥ ४६ ॥
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भामिनी । विप्रायोपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम् ॥ ४७ ॥
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम् । प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥ ४८ ॥
सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः । सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्भूरिमाल्यानुलेपनैः ॥ ४९ ॥
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् । ताम्रपात्रासनगतं हेमनेत्रपटावृतम् ॥ ५० ॥
सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् । दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् ॥ ५१ ॥
यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम ॥ ५२ ॥
यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव । तथा ममापि देवेश शरीरं स्वीकुरु प्रभो ॥ ५३ ॥
तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्णन् द्विजोत्तमः । क इदं कस्मादादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत् ॥ ५४ ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुंगवम् । शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥ ५५ ॥
ततः प्रभृति यो विप्रो रत्यर्थं गृहमागतः । स मान्यः सूर्यवारे च स मन्तव्यो भवेत् तदा ॥ ५६ ॥
एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान् । तर्पयेत यथाकामं प्रोषितेऽन्यं समाचरेत् ॥ ५७ ॥
तदनुज्ञया रूपवान् यावदभ्यागतो भवेत् । आत्मनोऽपि यथाविघ्नं गर्भभूतिकरं प्रियम् ॥ ५८ ॥
दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः । साचारानष्टपञ्चाशद् यथाशक्त्या समाचरेत् ॥ ५९ ॥
एतद्धि कथितं सम्यग् भवतीनां विशेषतः । अधर्मोऽयं ततो न स्याद् वेश्यानामिह सर्वदा ॥ ६० ॥

इस प्रकार रविवारसे प्रारम्भ करके यह सब कार्य करते रहना चाहिये। एक सेर चावलका दान तो तेरह मासतक करनेका विधान है। तेरहवाँ महीना आनेपर उस स्त्रीको चाहिये कि उपर्युक्त ब्राह्मणको समस्त उपकरणोंसे युक्त एक ऐसी विलक्षण शय्या प्रदान करे, जो गद्दा, चादर और विश्रामहेतु बने हुए तकियेसे युक्त एवं सुन्दर हो तथा उसके साथ दीपक, जूता, छाता, खड़ाऊँ और आसनी भी हो। उस समय उस सपत्नीक ब्राह्मणको महीन वस्त्र, सोनेकी जंजीर, अँगूठी, कड़ा, अधिकाधिक पुष्पमाला और चन्दनसे अलंकृत करके गुड़से भरे हुए कलशके ऊपर स्थापित ताम्रपात्रके आसनपर सपत्नीक कामदेवकी मूर्तिको रख दे, उसे स्वर्णनिर्मित नेत्राच्छादनसे ढक दे। उसके निकट कांसेका पात्र और गन्ना भी रख दे। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करके समग्र उपकरणोंसहित उस मूर्तिका तथा एक दुधारू गौका उस ब्राह्मणको दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—) 'केशव! जिस प्रकार लक्ष्मी आपके शरीरसे विलग होकर कहीं अन्यत्र नहीं जातीं, देवेश्वर प्रभो! उसी प्रकार आप मेरे शरीरको भी स्वीकार कर लें।' स्वर्णमय कामदेवकी मूर्तिको ग्रहण करते समय वे द्विजवर—'कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्' इत्यादि—(वाजस० सं० ७।४८) इस वैदिक मन्त्रका उच्चारण करें। तदनन्तर वह स्त्री उन द्विजवरकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे और शय्या, आसन आदि दानकी सभी वस्तुएँ उनके घर भिजवा दे। इस प्रकार इस दैवकर्मको अनुरागपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक अट्ठावन बार करना चाहिये। विशेषतः तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन किया है। ऐसा करनेसे पण्यस्त्रियोंको इस लोकमें कभी अधर्मका भागी नहीं होना पड़ेगा ॥ ४६—६० ॥

पूजा करे और घीसे भरे हुए पात्रके साथ एक सेर अगहनी चावल उस ब्राह्मणको दान करे और कहे— 'माधव मुझपर प्रसन्न हों।' फिर वह विलासिनी नारी उन द्विजवरको यथेष्ट भोजन करावे ॥ ३३—४५ ॥

एवमादित्यवारेण सर्वमेतत् समाचरेत्। तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रयोदश ॥ ४६ ॥
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भामिनी। विप्रायोपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम् ॥ ४७ ॥
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम्। प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥ ४८ ॥
सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः। सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्भूरिमाल्यानुलेपनैः ॥ ४९ ॥
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम्। ताम्रपात्रासनगतं हेमनेत्रपटावृतम् ॥ ५० ॥
सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम्। दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् ॥ ५१ ॥
यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा। तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम ॥ ५२ ॥
यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव। तथा ममापि देवेश शरीरं स्वीकुरु प्रभो ॥ ५३ ॥
तथा च काञ्चनं दे प्रतिगृह्णन् द्विजोत्तमः। क इदं कस्मादादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत् ॥ ५४ ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुंगवम्। शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥ ५५ ॥
ततः प्रभृति यो विप्रो रत्यर्थं गृहमागतः। स मान्यः सूर्यवारे च स मन्तव्यो भवेत् तदा ॥ ५६ ॥
एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान्। तर्पयेत यथाकामं प्रोषितेऽन्यं समाचरेत् ॥ ५७ ॥
तदनुज्ञया रूपवान् यावदभ्यागतो भवेत्। आत्मनोऽपि यथाविघ्नं गर्भभूतिकरं प्रियम् ॥ ५८ ॥
दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः। साचारानष्टपञ्चाशद् यथाशक्त्या समाचरेत् ॥ ५९ ॥
एतद्धि कथितं सम्यग् भवतीनां विशेषतः। अधर्मोऽयं ततो न स्याद् वेश्यानामिह सर्वदा ॥ ६० ॥

इस प्रकार रविवारसे प्रारम्भ करके यह सब कार्य करते रहना चाहिये। एक सेर चावलका दान तो तेरह मासतक करनेका विधान है। तेरहवाँ महीना आनेपर उस स्त्रीको चाहिये कि उपर्युक्त ब्राह्मणको समस्त उपकरणोंसे युक्त एक ऐसी विलक्षण शय्या प्रदान करे, जो गद्दा, चादर और विश्रामहेतु बने हुए तकियेसे युक्त एवं सुन्दर हो तथा उसके साथ दीपक, जूता, छाता, खड़ाऊँ और आसनी भी हो। उस समय उस सपत्नीक ब्राह्मणको महीन वस्त्र, सोनेकी जंजीर, अँगूठी, कड़ा, अधिकाधिक पुष्पमाला और चन्दनसे अलंकृत करके गुड़से भरे हुए कलशके ऊपर स्थापित ताम्रपात्रके आसनपर सपत्नीक कामदेवकी मूर्तिको रख दे, उसे स्वर्णनिर्मित नेत्राच्छादनसे ढक दे। उसके निकट काँसेका पात्र और गन्ना भी रख दे। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करके समग्र उपकरणोंसहित उस मूर्तिका तथा एक दुधारू गौका उस ब्राह्मणको दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—) 'केशव! जिस प्रकार लक्ष्मी आपके शरीरसे विलग होकर कहीं अन्यत्र नहीं जातीं, देवेश्वर प्रभो! उसी प्रकार आप मेरे शरीरको भी स्वीकार कर लें।' स्वर्णमय कामदेवकी मूर्तिको ग्रहण करते समय वे द्विजवर—'कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्' इत्यादि—(वाजस० सं० ७।४८) इस वैदिक मन्त्रका उच्चारण करें। तदनन्तर वह स्त्री उन द्विजवरकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे और शय्या, आसन आदि दानकी सभी वस्तुएँ उनके घर भिजवा दे। इस प्रकार इस दैवकर्मको अनुरागपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक अट्ठावन बार करना चाहिये। विशेषतः तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन किया है। ऐसा करनेसे पण्यस्त्रियोंको इस लोकमें कभी अधर्मका भागी नहीं होना पड़ेगा ॥ ४६—६० ॥

* ।

सात सौ कल्पोंतक फल देनेवाले गौ, पृथ्वी और सुवर्णका दान करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह द्वितीया अशून्यशयना* नामसे प्रसिद्ध है; इस दिन विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन कर इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये—'लक्ष्मीकान्त! आप श्रीवत्सको धारण करनेवाले, धन-सम्पत्तिके निधि और सौन्दर्यके अधीश्वर हैं। अविनाशी भगवन्! मेरा धर्म, अर्थ और कामको सिद्ध करनेवाला गृहस्थ-आश्रम कभी विनाशको न प्राप्त हो। पुरुषोत्तम! मेरे गृहमें अग्नियों और इष्ट देवताओंका कभी अभाव न हो, मेरे पितरोंका विनाश न हो और दाम्पत्य—पति-पत्नी (रूप व्यवहार)में कभी भेद-भाव न उत्पन्न हो। देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी स्त्री-सम्बन्ध कभी खण्डित न हो। वरदाता मधुसूदन! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, उसी तरह मेरी भी शय्या स्त्रीसे शून्य न हो।' इस प्रकार प्रार्थना कर गाने-बजानेके माङ्गलिक शब्दोंके साथ-साथ देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो गीत-वाद्यके आयोजनमें असमर्थ हो, उसे घण्टाका शब्द कराना चाहिये; क्योंकि घण्टा समस्त बाजोंके समान माना गया है॥ २—९॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात् तैलवर्जितम्। नक्तमक्षारलवणं यावत् तत् स्याच्चतुष्टयम्॥ १०॥
ततः प्रभाते संजाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम्। दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम्॥ ११॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम्। अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम्॥ १२॥
सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम्। तथाऽऽभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम्॥ १३॥
अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने। दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च॥ १४॥
तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः। पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद् भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्॥ १५॥
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम्। प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत्॥ १६॥

इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी पूजा करके रातमें एक बार तेल और क्षार नमकसे रहित अन्नका भोजन करे। ऐसा भोजन तबतक करे, जबतक इस व्रतकी चार आवृत्ति न हो जाय (चार मासतक ऐसा ही भोजन करना चाहिये)। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर एक विलक्षण शय्याका भी दान करनेका विधान है। वह शय्या गद्दा, श्वेत चादर और विश्रामोपयोगी तकियेसे सुशोभित हो; उसपर भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित हो; उसके निकट दीपक, अन्नके पात्र, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर और आसन रखे गये हों, वह अभीष्ट सामग्रियोंसे युक्त हो, उसपर श्वेत पुष्प बिखेरे गये हों, वह नाना प्रकारके ऋतु-फलोंसे सम्पन्न हो तथा अपनी शक्तिके अनुसार आभूषण और अन्न आदिसे समन्वित हो। इस प्रकार वह शय्या ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जिसका कोई अङ्ग विकृत न हो तथा जो विष्णु-भक्त, परिवारवाला, वेदज्ञ और आचरणसे पतित न हो। फिर उस शय्यापर द्विज-दंपतिको बैठाकर विधानके अनुसार उन्हें अलंकृत करे। उस समय पत्नीको भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंसे युक्त बर्तन दान करे और ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त देवाधिदेव विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमा जलपूर्ण घटके साथ निवेदित करे। (तत्पश्चात् ब्राह्मणको विदा कर व्रत समाप्त करे)॥ १०—१६॥

* इस व्रतकी विस्तृत विधि वामनपुराणके १५वें अध्यायमें है। पर यह वहाँ तथा पद्म, भविष्यादिमें कुछ अन्तरसे प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है।

सात सौ कल्पोंतक फल देनेवाले गौ, पृथ्वी और सुवर्णका दान करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह द्वितीया अशून्यशयना* नामसे प्रसिद्ध है; इस दिन विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन कर इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये—'लक्ष्मीकान्त! आप श्रीवत्सको धारण करनेवाले, धन-सम्पत्तिके निधि और सौन्दर्यके अधीश्वर हैं। अविनाशी भगवन्! मेरा धर्म, अर्थ और कामको सिद्ध करनेवाला गृहस्थ-आश्रम कभी विनाशको न प्राप्त हो। पुरुषोत्तम! मेरे गृहमें अग्नियों और इष्ट देवताओंका कभी अभाव न हो, मेरे पितरोंका विनाश न हो और दाम्पत्य—पति-पत्नी (रूप व्यवहार)में कभी भेद-भाव न उत्पन्न हो। देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी स्त्री-सम्बन्ध कभी खण्डित न हो। वरदाता मधुसूदन! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, उसी तरह मेरी भी शय्या स्त्रीसे शून्य न हो।' इस प्रकार प्रार्थना कर गाने-बजानेके माङ्गलिक शब्दोंके साथ-साथ देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो गीत-वाद्यके आयोजनमें असमर्थ हो, उसे घण्टाका शब्द कराना चाहिये; क्योंकि घण्टा समस्त बाजोंके समान माना गया है ॥ २—९ ॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात् तैलवर्जितम्। नक्तमक्षारलवणं यावत् तत् स्याच्चतुष्टयम् ॥ १० ॥
ततः प्रभाते संजाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम्। दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम् ॥ ११ ॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम्। अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम् ॥ १२ ॥
सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम्। तथाऽऽभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम् ॥ १३ ॥
अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने। दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च ॥ १४ ॥
तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः। पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद् भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ॥ १५ ॥
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम्। प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत् ॥ १६ ॥

इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी पूजा करके रातमें एक बार तेल और क्षार नमकसे रहित अन्नका भोजन करे। ऐसा भोजन तबतक करे, जबतक इस व्रतकी चार आवृत्ति न हो जाय (चार मासतक ऐसा ही भोजन करना चाहिये)। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर एक विलक्षण शय्याका भी दान करनेका विधान है। वह शय्या गद्दा, श्वेत चादर और विश्रामोपयोगी तकियेसे सुशोभित हो; उसपर भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित हो; उसके निकट दीपक, अन्नके पात्र, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर और आसन रखे गये हों, वह अभीष्ट सामग्रियोंसे युक्त हो, उसपर श्वेत पुष्प बिखेरे गये हों, वह नाना प्रकारके ऋतु-फलोंसे सम्पन्न हो तथा अपनी शक्तिके अनुसार आभूषण और अन्न आदिसे समन्वित हो। इस प्रकार वह शय्या ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जिसका कोई अङ्ग विकृत न हो तथा जो विष्णु-भक्त, परिवारवाला, वेदज्ञ और आचरणसे पतित न हो। फिर उस शय्यापर द्विज-दंम्पतिको बैठाकर विधानके अनुसार उन्हें अलंकृत करे। उस समय पत्नीको भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंसे युक्त बर्तन दान करे और ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त देवाधिदेव विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमा जलपूर्ण घटके साथ निवेदित करे। (तत्पश्चात् ब्राह्मणको विदा कर व्रत समाप्त करे) ॥ १०—१६ ॥

* इस व्रतकी विस्तृत विधि वामनपुराणके १९वें अध्यायमें है। पर यह वहाँ तथा पद्म, भविष्यादिमें कुछ अन्तरसे प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है।

पिप्पलाद उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र इदानीं कथयामि ते। अङ्गारव्रतमित्येतत् स वक्ष्यति महीपतेः ॥ ५ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः ॥ ६ ॥
प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्। रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद् भृगुनन्दनः ॥ ७ ॥
साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव। तत् तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः ॥ ८ ॥
ब्रह्मन् किमर्थमेतत् ते हास्यमाकस्मिकं कृतम्। साधु साध्विति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥
तमेवंवादिनं शुक्र उवाच वदतां वरः। विस्मयाद् व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत् कृतं मया ॥ १० ॥
पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः। अथ तद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः ॥ ११ ॥
भित्त्वा स सप्त पातालानदहत् सप्त सागरान्। अनेकवक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलनभीषणः ॥ १२ ॥
वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः।
कृत्वासौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः। त्रिजगन्निर्दहन् भूयः शिवेन विनिवारितः ॥ १३ ॥

पिप्पलाद कहेंगे—भद्र ! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है, अब मैं आपको इस अङ्गारक-व्रतको बतला रहा हूँ। यों कहकर वे मुनि राजा युधिष्ठिरसे इस व्रतका (इस प्रकार) वर्णन करेंगे । महाराज युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, जो विरोचन और बुद्धिमान् शुक्राचार्यके संवाद (रूप)में है । एक बार प्रह्लादके षोडशवर्षीय पुत्र विरोचनको देखकर, जो अनुपम सौन्दर्यशाली और कान्तिमान् था, भृगुनन्दन [illegible] हँस पड़े और उससे बोले—'महाबाहु विरोचन ! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।' उन्हें उस प्रकार हँसते देखकर देवशत्रु विरोचनने उनसे पूछा—'ब्रह्मन् ! आपने किस प्रयोजनसे यह आकस्मिक हास्य किया है और मुझे 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है ? इसका कारण मुझे बतलाइये।' इस प्रकार पूछनेवाले विरोचनसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने कहा—'व्रतके माहात्म्यसे आश्चर्य-चकित होकर मैंने यह हास्य किया है। (उस प्रसङ्गको सुनो—) पूर्वकालमें दक्ष-यज्ञका विनाश करनेके लिये जब भयंकर मुखवाले त्रिशूलधारी भगवान् शंकर कुपित हो उठे, तब उनके ललाटसे पसीनेकी एक बूँद टपक पड़ी। वह स्वेदबिन्दु अनेकों मुखों, नेत्रों और दस सहस्र हाथ-पैरोंसे युक्त एक पुरुषाकारमें परिणत हो गया । वह प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर पुरुष वीरभद्रके नामसे विख्यात हुआ। उसने सातों पातालोंका भेदन कर सातों सागरोंको भस्म कर दिया । पुनः दक्ष-यज्ञका विध्वंस कर वह भूतलपर आ धमका और त्रिलोकीको जला डालनेके लिये उद्यत हुआ । यह देखकर शिवजीने उसे रोक दिया ॥ ५–१३ ॥

कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम्। इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा ॥ १४ ॥
शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव। प्रेक्षिष्यन्ते जनाः पूजां करिष्यन्ति वरान्मम ॥ १५ ॥
अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज। देवलोकेऽद्वितीयं च तव रूपं भविष्यति ॥ १६ ॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्दिने नराः। रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति ॥ १७ ॥
एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत् कामरूपधृक्। संजातस्तत्क्षणाद् राजन् ग्रहत्वमगमत् पुनः ॥ १८ ॥
स कदाचिद् भवांस्तस्य पूजार्घ्यादिकमुत्तमम्। दृष्टवान् क्रियमाणं च शूद्रेण च व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
तेन त्वं रूपवाञ्जातः सुरशत्रुकुलोद्वह। विविधा च रुचिर्जाता यस्मात् तव विदूरगा ॥ २० ॥
विरोचन इति प्राहुस्तस्मात् त्वां देवदानवाः।

पिप्पलाद उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र इदानीं कथयामि ते। अङ्गारव्रतमित्येतत् स वक्ष्यति महीपतेः॥ ५॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः॥ ६॥
प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्। रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद् भृगुनन्दनः॥ ७॥
साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव। तत् तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः॥ ८॥
ब्रह्मन् किमर्थमेतत् ते हास्यमाकस्मिकं कृतम्। साधु साध्विति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे॥ ९॥
तमेवंवादिनं शुक्र उवाच वदतां वरः। विस्मयाद् व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत् कृतं मया॥ १०॥
पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः। अथ तद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः॥ ११॥
भित्त्वा स सप्त पातालानदहत् सप्त सागरान्। अनेकवक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलनभीषणः॥ १२॥
वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः।
कृत्वासौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः। त्रिजगन्निर्दहन् भूयः शिवेन विनिवारितः॥ १३॥

पिप्पलाद कहेंगे—भद्र ! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है, अब मैं आपको इस अङ्गारक-व्रतको बतला रहा हूँ। यों कहकर वे मुनि राजा युधिष्ठिरसे इस व्रतका (इस प्रकार) वर्णन करेंगे। महाराज युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, जो विरोचन और बुद्धिमान् शुक्राचार्यके संवाद (रूप)में है। एक बार प्रह्लादके षोडशवर्षीय पुत्र विरोचनको देखकर, जो अनुपम सौन्दर्यशाली और कान्तिमान् था, भृगुनन्दन [illegible] हँस पड़े और उससे बोले—'महाबाहु विरोचन ! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।' उन्हें उस प्रकार हँसते देखकर देवशत्रु विरोचनने उनसे पूछा—'ब्रह्मन् ! आपने किस प्रयोजनसे यह आकस्मिक हास्य किया है और मुझे 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है ? इसका कारण मुझे बतलाइये।' इस प्रकार पूछनेवाले विरोचनसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने कहा—'व्रतके माहात्म्यसे आश्चर्यचकित होकर मैंने यह हास्य किया है। (उस प्रसङ्गको सुनो—) पूर्वकालमें दक्ष-यज्ञका विनाश करनेके लिये जब भयंकर मुखवाले त्रिशूलधारी भगवान् शंकर कुपित हो उठे, तब उनके ललाटसे पसीनेकी एक बूँद टपक पड़ी। वह स्वेदबिन्दु अनेकों मुखों, नेत्रों और दस सहस्र हाथ-पैरोंसे युक्त एक पुरुषाकारमें परिणत हो गया। वह प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर पुरुष वीरभद्रके नामसे विख्यात हुआ। उसने सातों पातालोंका भेदन कर सातों सागरोंको भस्म कर दिया। पुनः दक्ष-यज्ञका विध्वंस कर वह भूतलपर आ धमका और त्रिलोकीको जला डालनेके लिये उद्यत हुआ। यह देखकर शिवजीने उसे रोक दिया॥ ५—१३॥

कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम्। इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा॥ १४॥
शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव। प्रेक्षिष्यन्ते जनाः पूजां करिष्यन्ति वरान्मम॥ १५॥
अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज। देवलोकेऽद्वितीयं च तव रूपं भविष्यति॥ १६॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्दिने नराः। रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति॥ १७॥
एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत् कामरूपधृक्। संजातस्तत्क्षणाद् राजन् ग्रहत्वमगमत् पुनः॥ १८॥
स कदाचिद् भवांस्तस्य पूजार्घ्यादिकमुत्तमम्। दृष्टवान् क्रियमाणं च शूद्रेण च व्यवस्थितः॥ १९॥
तेन त्वं रूपवाञ्जातः सुरशत्रुकुलोद्वह। विविधा च रुचिर्जाता यस्मात् तव विदूरगा॥ २०॥
विरोचन इति प्राहुस्तस्मात् त्वां देवदानवाः।

अभ्यर्च्याभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम् । कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते ॥ ३० ॥
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः । तण्डुलै रक्तशालीयैः पद्मरागैश्च संयुताः ॥ ३१ ॥
चतुष्कोणेषु तान् कृत्वा फलानि विविधानि च । गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत् ॥ ३२ ॥
सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथार्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदुहां सवत्साम् ।
धुरंधरं रक्तखुरं च सौम्यं धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥ ३३ ॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् ।
चतुर्भुजं हेममये निविष्टं पात्रे गुडस्योपरि सर्पिषा युतम् ॥ ३४ ॥
सामस्वरज्ञाय जितेन्द्रियाय पात्राय शीलान्वयसंयुताय ।
दातव्यमेतत् सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय ।
समर्पयेद् विप्रवराय भक्त्या कृताञ्जलिः पूर्वमुदीर्य मन्त्रम् ॥ ३५ ॥
भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः । रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ३६ ॥
मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा । ततोऽर्चयेद् विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः ॥ ३७ ॥
दद्यात् तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम् । शय्यां च शक्तितो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ३८ ॥
यद् यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥ ३९ ॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुंगवम् । नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद् घृतसंयुतम् ॥ ४० ॥
भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम् । चतुरो वाथवा तस्य यत् पुण्यं तद् वदामि ते ॥ ४१ ॥
रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनि जन्मनि । विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ४२ ॥
सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । तस्मात् त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत् समाचर ॥ ४३ ॥

शुक्र बोले—दानव ! जब मंगलवारको चतुर्थी तिथि पड़ जाय तो उस दिन शरीरमें मिट्टी लगाकर [illegible] करे और पद्मरागमणिकी अँगूठी आदि धारण [illegible] उत्तराभिमुख बैठकर 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्—' इस मन्त्रका जप करता रहे। यदि व्रती शूद्र हो तो उसे भोगसे दूर रहकर चुपचाप मंगलका स्मरण करते हुए दिन बिताना चाहिये। फिर सूर्यास्त हो जानेपर आँगनको गोबरसे लीपकर सर्वाङ्गसुन्दर पुष्पमाला आदिसे चारों ओर पूजा कर दे। आँगनके मध्यमें कुङ्कुमसे अष्टदल कमलकी रचना करे। कुङ्कुमका अभाव हो तो लाल चन्दनसे काम चलाना चाहिये। फिर आँगनके चारों कोनोंमें चार करवा स्थापित करे, जिन्हें लाल अगहनीके चावलसे भरकर उनके ऊपर पद्मराग मणि रख दे। वे भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे भी संयुक्त रहें। उनके निकट नाना प्रकारके ऋतुफल, चन्दन, पुष्पमाला आदि सभी पूजन-सामग्री भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् बछड़ेसहित एक कपिला गौका पूजन करे, जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो। इसी प्रकार लाल खुरोंसे युक्त सौम्य स्वभाववाले हृष्ट-पुष्ट एक वृषभकी भी पूजा करे और उसके निकट सात वस्त्रोंसे युक्त धान्यराशि भी प्रस्तुत कर दे। फिर अँगूठेके बराबर लम्बाई-चौड़ाईवाली एक पुरुषाकार मूर्ति बनवाये, जो चार बड़ी भुजाओंसे संयुक्त हो। उसे गुड़के ऊपर रखे हुए स्वर्णमय पात्रमें स्थापित कर दे और उसके निकट घी भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित ये सारी वस्तुएँ ऐसे सुपात्र ब्राह्मणको दान करनी चाहिये, जो सामवेदके स्वर एवं अर्थका ज्ञाता, जितेन्द्रिय, सुशील, कुलीन और विशाल कुटुम्बवाला हो। दाम्भिकको कभी दान नहीं देना चाहिये। उस समय भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण करते हुए ऐसे द्विजवरको सारा सामान समर्पित कर दे। (उस मन्त्रका भाव

अभ्यर्च्याभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम्। कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते ॥ ३० ॥
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः। तण्डुलै रक्तशालीयैः पद्मरागैश्च संयुताः ॥ ३१ ॥
चतुष्कोणेषु तान् कृत्वा फलानि विविधानि च। गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत् ॥ ३२ ॥
सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथार्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदुहां सवत्साम्।
धुरंधरं रक्तखुरं च सौम्यं धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥ ३३ ॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम्।
चतुर्भुजं हेममये निविष्टं पात्रे गुडस्योपरि सर्पिषा युतम् ॥ ३४ ॥
सामस्वरज्ञाय जितेन्द्रियाय पात्राय शीलान्वयसंयुताय।
दातव्यमेतत् सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय।
समर्पयेद् विप्रवराय भक्त्या कृताञ्जलिः पूर्वमुदीर्य मन्त्रम् ॥ ३५ ॥
भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः। रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ३६ ॥
मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा। ततोऽर्चयेद् विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः ॥ ३७ ॥
दद्यात् तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम्। शय्यां च शक्तितो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ३८ ॥
यद् यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥ ३९ ॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुंगवम्। नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद् घृतसंयुतम् ॥ ४० ॥
भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम्। चतुरो वाथवा तस्य यत् पुण्यं तद् वदामि ते ॥ ४१ ॥
रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनि जन्मनि। विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ४२ ॥
सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। तस्मात् त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत् समाचर ॥ ४३ ॥

शुक्र बोले—दानव ! जब मंगलवारको चतुर्थी तिथि पड़ जाय तो उस दिन शरीरमें मिट्टी लगाकर [illegible] करे और पद्मरागमणिकी अँगूठी आदि धारण [illegible] उत्तराभिमुख बैठकर '**अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्**—' इस मन्त्रका जप करता रहे। यदि व्रती शूद्र हो तो उसे भोगसे दूर रहकर चुपचाप मंगलका स्मरण करते हुए दिन बिताना चाहिये। फिर सूर्यास्त हो जानेपर आँगनको गोबरसे लीपकर सर्वाङ्गसुन्दर पुष्पमाला आदिसे चारों ओर पूजा कर दे। आँगनके मध्यमें कुङ्कुमसे अष्टदल कमलकी रचना करे। कुङ्कुमका अभाव हो तो लाल चन्दनसे काम चलाना चाहिये। फिर आँगनके चारों कोनोंमें चार करवा स्थापित करे, जिन्हें लाल अगहनीके चावलसे भरकर उनके ऊपर पद्मराग मणि रख दे। वे भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे भी संयुक्त रहें। उनके निकट नाना प्रकारके ऋतुफल, चन्दन, पुष्पमाला आदि सभी पूजन-सामग्री भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् बछड़ेसहित एक कपिला गौका पूजन करे, जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो। इसी प्रकार लाल खुरोंसे युक्त सौम्य स्वभाववाले हृष्ट-पुष्ट एक वृषभकी भी पूजा करे और उसके निकट सात वस्त्रोंसे युक्त धान्यराशि भी प्रस्तुत कर दे। फिर अँगूठेके बराबर लम्बाई-चौड़ाईवाली एक पुरुषाकार मूर्ति बनवाये, जो चार बड़ी भुजाओंसे संयुक्त हो। उसे गुड़के ऊपर रखे हुए स्वर्णमय पात्रमें स्थापित कर दे और उसके निकट घी भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित ये सारी वस्तुएँ ऐसे सुपात्र ब्राह्मणको दान करनी चाहिये, जो सामवेदके स्वर एवं अर्थका ज्ञाता, जितेन्द्रिय, सुशील, कुलीन और विशाल कुटुम्बवाला हो। दाम्भिकको कभी दान नहीं देना चाहिये। उस समय भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण करते हुए ऐसे द्विजवरको सारा सामान समर्पित कर दे। (उस मन्त्रका भाव

विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् । मन्त्रेणानेन तत् सर्वं सामगाय निवेदयेत् ॥ ३ ॥
नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन । कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
एवमस्योदये कुर्वन् यात्रादिषु च भारत । सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥
यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा समाल्यकैः शुभैः ।
वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि । तावदन्नं न चाश्नीयात् त्रिभिः कामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

पिप्पलादने कहा—भूपाल ! अब मैं विपरीत शुक्र*की शान्तिके लिये विधान बतला रहा हूँ, सुनिये । इस लोकमें शुक्रके उदयकालमें यात्राके आरम्भ अथवा समाप्तिके अवसरपर शुक्रकी एक चाँदीकी मूर्ति बनवाये, उसे श्वेत मुक्ताफल (मोती)के साथ श्वेत चावलसे परिपूर्ण सुवर्ण, चाँदी अथवा काँसेके पात्रके ऊपर स्थापित करके श्वेत पुष्प और श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर दे । फिर इस वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण कर वह सारा सामान सामवेदके ज्ञाता (सस्वर गान करनेवाले) ब्राह्मणको निवेदित कर दे । (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर ! आपको नमस्कार है । भृगुनन्दन ! आपको प्रणाम है । कवे ! मैं आपको अभिवादन करता हूँ । आप मेरी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करें ।' भारत ! जो मनुष्य शुक्रके विपरीत रहनेपर यात्रा आदि कार्योंमें इस प्रकार विधान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । शुक्रकी वह पूजा जबतक माङ्गलिक पुष्पमाला, बड़ा, पूरी, गेहूँ और चनाद्वारा सम्पन्न न कर ली जाय, तबतक धर्म, अर्थ और कामकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १–६ ॥

तद्वद् वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर । सुवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ॥ ७ ॥
पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः । पलाशाश्वत्थयोगेन पञ्चगव्यजलेन च ॥ ८ ॥
पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत् । प्रणम्य च गवा सार्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ९ ॥
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पते च बृहस्पते । क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ॥ १० ॥
संक्रान्तावस्य कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च । कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते॥ ११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुरुशुक्रपूजाविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर ! इसी प्रकार मैं बृहस्पतिकी भी पूजा-विधि बतला रहा हूँ । व्रतीको चाहिये कि वह सरसों, पलाश, पीपल और पञ्चगव्यसे युक्त जलसे स्नान करे, पीला वस्त्र पहनकर शरीरमें पीला अङ्गराग, चन्दन आदिका अनुलेप करे और ब्राह्मणद्वारा घीका हवन करावे । तत्पश्चात् मूर्तिको प्रणाम करके गौसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे । (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'वाणीके अधीश्वर ! आप अङ्गिरा-वंशियोंके स्वामी हैं । बृहस्पते ! क्रूर ग्रहोंसे पीड़ित प्राणियोंके लिये आप अमृत-तुल्य फलदाता हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ।' कुन्तीनन्दन ! सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, यात्राओंमें तथा अन्यान्य आभ्युदयिक कार्योंके अवसरपर बृहस्पतिकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ७–११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुक्र-गुरु-पूजाविधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७३ ॥

---

* ज्योतिष्प्रकाश, रत्नमाला, गर्गसंहिता आदिमें शुक्रके सामनेकी यात्रा अत्यन्त हानिकर कही गयी है । ज्योति-निबन्ध (पृ०१९६-९७) आदिमें प्रतिकूल शुक्र-शान्तिके लिये कई श्रेष्ठ स्तोत्र तथा 'रवतीते कृत्तिका तके उन्हें अन्या

विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् । मन्त्रेणानेन तत् सर्वं सामगाय निवेदयेत् ॥ ३ ॥
नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन । कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
एवमस्योदये कुर्वन् यात्रादिषु च भारत । सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥
यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा समाल्यकैः शुभैः ।
वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि । तावदन्नं न चाश्नीयात् त्रिभिः कामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

पिप्पलादने कहा—भूपाल ! अब मैं विपरीत शुक्र*की शान्तिके लिये विधान बतला रहा हूँ, सुनिये । इस लोकमें शुक्रके उदयकालमें यात्राके आरम्भ अथवा समाप्तिके अवसरपर शुक्रकी एक चाँदीकी मूर्ति बनवाये, उसे श्वेत मुक्ताफल (मोती)के साथ श्वेत चावलसे परिपूर्ण सुवर्ण, चाँदी अथवा काँसेके पात्रके ऊपर स्थापित करके श्वेत पुष्प और श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर दे । फिर इस वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण कर वह सारा सामान सामवेदके ज्ञाता (सस्वर गान करनेवाले) ब्राह्मणको निवेदित कर दे । (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर ! आपको नमस्कार है । भृगुनन्दन ! आपको प्रणाम है । कवे ! मैं आपको अभिवादन करता हूँ । आप मेरी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करें ।' भारत ! जो मनुष्य शुक्रके विपरीत रहनेपर यात्रा आदि कार्योंमें इस प्रकार विधान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । शुक्रकी वह पूजा जबतक माङ्गलिक पुष्पमाला, बड़ा, पूरी, गेहूँ और चनाद्वारा सम्पन्न न कर ली जाय, तबतक धर्म, अर्थ और कामकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १—६ ॥

तद्वद् वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर । सुवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ॥ ७ ॥
पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः । पलाशाश्वत्थयोगेन पञ्चगव्यजलेन च ॥ ८ ॥
पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत् । प्रणम्य च गवा सार्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ९ ॥
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पते च बृहस्पते । क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ॥ १० ॥
संक्रान्तावस्य कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च । कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते॥ ११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुरुशुक्रपूजाविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर ! इसी प्रकार मैं बृहस्पतिकी भी पूजा-विधि बतला रहा हूँ । व्रतीको चाहिये कि वह सरसों, पलाश, पीपल और पञ्चगव्यसे युक्त जलसे स्नान करे, पीला वस्त्र पहनकर शरीरमें पीला अङ्गराग, चन्दन आदिका अनुलेप करे और ब्राह्मणद्वारा घीका हवन करावे । तत्पश्चात् मूर्तिको प्रणाम करके गौसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे । (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'वाणीके अधीश्वर ! आप अङ्गिरा-वंशियोंके स्वामी हैं । बृहस्पते ! क्रूर ग्रहोंसे पीड़ित प्राणियोंके लिये आप अमृत-तुल्य फलदाता हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ।' कुन्तीनन्दन ! सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, यात्राओंमें तथा अन्यान्य आभ्युदयिक कार्योंके अवसरपर बृहस्पतिकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ७—११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुक्र-गुरु-पूजाविधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७३ ॥

---

* ज्योतिष्प्रकाश, रत्नमाला, गर्गसंहिता आदिमें शुक्रके सामनेकी यात्रा अत्यन्त हानिकर कही गयी है । ज्योति-र्निबन्ध (पृ०१९६-९७) आदिमें प्रतिकूल शुक्र-शान्तिके लिये कई श्रेष्ठ स्तोत्र तथा 'रवतीते कृचित्ता त[illegible] उन्हें [illegible]

स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर पूर्वाभिमुख हो चावलोंद्वारा अष्टदल कमल बनावे। उसके मध्यभागमें उसी आकारवाली कर्णिकाकी भी रचना करे। तत्पश्चात् पुष्प और अक्षतद्वारा क्रमशः सब ओर देवेश्वर सूर्यकी स्थापना करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'तपनाय नमः' से पूर्व-दलपर, 'मार्तण्डाय नमः' से अग्निकोणस्थित दलपर, 'दिवाकराय नमः' से दक्षिणदलपर, 'विधात्रे नमः' से नैर्ऋत्यकोणके दलपर, 'वरुणाय नमः' से पश्चिम-दलपर, 'भास्कराय नमः' से वायव्यकोणवाले दलपर, 'विकर्तनाय नमः' से उत्तरदलपर, 'रवये नमः' से ईशानकोणस्थित आठवें दलपर और 'परमात्मने नमः' से आदि, मध्य और अन्तमें सूर्यका आवाहन करके स्थापित कर दे। फिर नमस्कारान्तसे सुशोभित इन मन्त्रोंका उच्चारण कर श्वेत वस्त्र, फल, नैवेद्य, धूप, पुष्पमाला और चन्दनसे भलीभाँति पूजन करे। वेदीपर भी व्याहृति-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक गुड़ और नमकसे भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। फिर अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक गुड़, दूध और घी आदिके द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और तिलसे भरा हुआ पात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार विधानको पूरा करके व्रती मानव रात्रिमें शयन करे और प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्म पूरा करे। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंके साथ ही घी और दूधसे बने हुए पदार्थों-का भोजन करे। अन्तमें विडालव्रत (छल-कपट) से रहित वेदज्ञ ब्राह्मणको सुवर्णसहित घृतपूर्ण पात्र और जलसे भरा हुआ घट दान कर दे और उस समय इस प्रकार कहे—'मेरे इस व्रतसे परमात्मा भगवान् सूर्य प्रसन्न हों।' इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सभी व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर तेरहवाँ महीना आनेपर तेरह गौ दान करनेका विधान है, जो सभी दुधारू हों, वस्त्र और अलंकार आदिसे सुसज्जित हों और जिनके मुखपर सोनेका पत्र लगा हुआ हो। यदि व्रती निर्धन हो तो वह अहंकाररहित होकर एक ही गौका दान करे, किंतु कृपणता न करे; क्योंकि मोहवश कंजूसी करनेसे अधःपतन हो जाता है ॥ ५—१७ ॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कल्याणसप्तमीम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते। आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते ॥ १८ ॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता। सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी ॥ १९ ॥
इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम्। शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्याणसप्तमीव्रतं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार इस कल्याण-सप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस लोकमें भी उसे अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि यह कल्याणसप्तमी सदा समस्त पापों-को हरनेवाली और सम्पूर्ण दुष्ट ग्रहोंका शमन करनेवाली है। सभी देवता नित्य इसकी पूजा करते हैं। जो मानव इस लोकमें इस अनन्त फलप्रदायिनी कल्याणसप्तमीकी चर्चा—कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १८—२० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्याणसप्तमी-व्रत नामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७४ ॥

स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर पूर्वाभिमुख हो चावलोंद्वारा अष्टदल कमल बनावे। उसके मध्यभागमें उसी आकारवाली कर्णिकाकी भी रचना करे। तत्पश्चात् पुष्प और अक्षतद्वारा क्रमशः सब ओर देवेश्वर सूर्यकी स्थापना करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'तपनाय नमः' से पूर्व-दलपर, 'मार्तण्डाय नमः' से अग्निकोणस्थित दलपर, 'दिवाकराय नमः' से दक्षिणदलपर, 'विधात्रे नमः' से नैर्ऋत्यकोणके दलपर, 'वरुणाय नमः' से पश्चिम-दलपर, 'भास्कराय नमः' से वायव्यकोणवाले दलपर, 'विकर्तनाय नमः' से उत्तरदलपर, 'रवये नमः' से ईशानकोणस्थित आठवें दलपर और 'परमात्मने नमः' से आदि, मध्य और अन्तमें सूर्यका आवाहन करके स्थापित कर दे। फिर नमस्कारान्तसे सुशोभित इन मन्त्रोंका उच्चारण कर श्वेत वस्त्र, फल, नैवेद्य, धूप, पुष्पमाला और चन्दनसे भलीभाँति पूजन करे। वेदीपर भी व्याहृति-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक गुड़ और नमकसे भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। फिर अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक गुड़, दूध और घी आदिके द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और तिलसे भरा हुआ पात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार विधानको पूरा करके व्रती मानव रात्रिमें शयन करे और प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्म पूरा करे। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंके साथ ही घी और दूधसे बने हुए पदार्थों-का भोजन करे। अन्तमें विडालव्रत (छल-कपट) से रहित वेदज्ञ ब्राह्मणको सुवर्णसहित घृतपूर्ण पात्र और जलसे भरा हुआ घट दान कर दे और उस समय इस प्रकार कहे—'मेरे इस व्रतसे परमात्मा भगवान् सूर्य प्रसन्न हों।' इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सभी व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर तेरहवाँ महीना आनेपर तेरह गौ दान करनेका विधान है, जो सभी दुधारू हों, वस्त्र और अलंकार आदिसे सुसज्जित हों और जिनके मुखपर सोनेका पत्र लगा हुआ हो। यदि व्रती निर्धन हो तो वह अहंकाररहित होकर एक ही गौका दान करे, किंतु कृपणता न करे; क्योंकि मोहवश कंजूसी करनेसे अधःपतन हो जाता है ॥ ५—१७ ॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कल्याणसप्तमीम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते। आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते ॥ १८ ॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता। सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी ॥ १९ ॥
इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम्। शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्याणसप्तमीव्रतं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार इस कल्याण-सप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस लोकमें भी उसे अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि यह कल्याणसप्तमी सदा समस्त पापों-को हरनेवाली और सम्पूर्ण दुष्ट ग्रहोंका शमन करनेवाली है। सभी देवता नित्य इसकी पूजा करते हैं। जो मानव इस लोकमें इस अनन्त फलप्रदायिनी कल्याणसप्तमीकी चर्चा—कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १८—२० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्याणसप्तमी-व्रत नामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७४ ॥

व्रतके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसमेत कलश, समस्त उपकरणोंसहित शय्या और दुधारू कपिला गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य कृपणता छोड़कर उपर्युक्त विधिके अनुसार विशोकसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है तथा करोड़ों जन्मतक उसे शोककी प्राप्ति नहीं होती। वह रोग और दुर्गतिसे रहित हो जाता है तथा जिस-जिस मनोरथकी प्रार्थना करता है, उसे-उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त करता है। जो व्रती निष्काम-भावसे अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस विशोक-सप्तमी-व्रतकी कथा या विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी इस लोकमें कभी दुःखी नहीं होता और अन्तमें इन्द्रलोकको प्राप्त होता है॥ ९—१३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकसप्तमी-व्रत नामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

फलसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम्। यामुपोष्य नरः पापाद् विमुक्तः स्वर्गभाग् भवेत्॥ १॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि सप्तम्यां नियतव्रतः। तामुपोष्याथ कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम्॥ २॥
शर्करासंयुतं दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
रविं काञ्चनकं कृत्वा पलस्यैकस्य धर्मवित्। दद्याद् द्विकालवेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति॥ ३॥
भक्त्या तु विप्रान् सम्पूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम्। दत्त्वा कुर्यात् फलयुतं यावत् स्यात् कृष्णसप्तमी॥ ४॥
तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु। तद्वद्धेमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥ ५॥
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमाल्यसमन्वितम्। संवत्सरं च तेनैव विधिनोभयसप्तमीम्॥ ६॥
उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्।
भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शक्रो हरिः शिवः। श्रीमान् विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति॥ ७॥
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्। प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत् कुर्वन् समाचरेत्॥ ८॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं फलसप्तमी नामक एक अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गभागी हो जाता है। व्रतनिष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह मार्गशीर्ष नामक शुभ मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सोनेका एक कमल बनवाये और उस दिन उपवास कर उसे शक्करसमेत कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर दे। इसी प्रकार धर्मवेत्ता व्रती एक पल सोनेकी सूर्यकी मूर्ति बनवाकर उसे सायंकालके समय 'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—यों कहकर ब्राह्मणको दान करे। फिर अष्टमीके दिन ब्राह्मणोंको फलसहित दूधसे बने हुए अन्नका भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। ऐसा तबतक करते रहना चाहिये, जबतक पुनः कृष्णपक्षकी सप्तमी न आ जाय। उस दिन भी उसी क्रमसे विधिपूर्वक उपवास करके स्वर्णमय कमलके साथ स्वर्णनिर्मित फलका दान करना चाहिये। उसके साथ शक्करसे भरा हुआ पात्र, वस्त्र और पुष्पमाला भी होना आवश्यक है। इस प्रकार एक वर्षतक दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन उपवास और दान कर क्रमशः सूर्य-मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा और वरुण—ये मुझपर प्रसन्न हों। मार्गशीर्षसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी सप्तमी

व्रतके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसमेत कलश, समस्त उपकरणोंसहित शय्या और दुधारू कपिला गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य कृपणता छोड़कर उपर्युक्त विधिके अनुसार विशोकसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है तथा करोड़ों जन्मतक उसे शोककी प्राप्ति नहीं होती। वह रोग और दुर्गतिसे रहित हो जाता है तथा जिस-जिस मनोरथकी प्रार्थना करता है, उसे-उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त करता है। जो व्रती निष्काम-भावसे अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस विशोक-सप्तमी-व्रतकी कथा या विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी इस लोकमें कभी दुःखी नहीं होता और अन्तमें इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥ ९—१३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकसप्तमी-व्रत नामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

फलसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम्। यामुपोष्य नरः पापाद् विमुक्तः स्वर्गभाग् भवेत्॥ १ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि सप्तम्यां नियतव्रतः। तामुपोष्याथ कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम्॥ २ ॥
शर्करासंयुतं दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
रविं काञ्चनकं कृत्वा पलस्यैकस्य धर्मवित्। दद्याद् द्विकालवेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति॥ ३ ॥
भक्त्या तु विप्रान् सम्पूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम्। दत्त्वा कुर्यात् फलयुतं यावत् स्यात् कृष्णसप्तमी॥ ४ ॥
तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु। तद्वद्धेमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥ ५ ॥
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमाल्यसमन्वितम्। संवत्सरं च तेनैव विधिनोभयसप्तमीम्॥ ६ ॥
उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्।
भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शक्रो हरिः शिवः। श्रीमान् विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति॥ ७ ॥
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्। प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत् कुर्वन् समाचरेत्॥ ८ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं फलसप्तमी नामक एक अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गभागी हो जाता है। व्रतनिष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह मार्गशीर्ष नामक शुभ मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सोनेका एक कमल बनवाये और उस दिन उपवास कर उसे शक्करसमेत कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर दे। इसी प्रकार धर्मवेत्ता व्रती एक पल सोनेकी सूर्यकी मूर्ति बनवाकर उसे सायंकालके समय 'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—यों कहकर ब्राह्मणको दान करे। फिर अष्टमीके दिन ब्राह्मणोंको फलसहित दूधसे बने हुए अन्नका भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। ऐसा तबतक करते रहना चाहिये, जबतक पुनः कृष्णपक्षकी सप्तमी न आ जाय। उस दिन भी उसी क्रमसे विधिपूर्वक उपवास करके स्वर्णमय कमलके साथ स्वर्णनिर्मित फलका दान करना चाहिये। उसके साथ शक्करसे भरा हुआ पात्र, वस्त्र और पुष्पमाला भी होना आवश्यक है। इस प्रकार एक वर्षतक दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन उपवास और दान कर क्रमशः सूर्य-मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा और वरुण—ये मुझपर प्रसन्न हों। मार्गशीर्षसे प्रारम्भ कर प्रत्येक मासकी सप्तमी

सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम्। गृहं च शक्तिमान् दद्यात् समस्तोपस्करान्वितम्।
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा। दशभिर्वाथ निष्केण तदर्धेनापि शक्तितः।
सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम्। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषं समश्नुते ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं उसी प्रकार पाप-नाशिनी शर्करासप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। व्रतनिष्ठ पुरुष वैशाख मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नान करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण कर ले। फिर वेदीपर कुङ्कुमसे कर्णिका-सहित कमलका चित्र बनावे। उसपर **'सवित्रे नमः'** कहकर गन्ध और धूप निवेदित करे। फिर उसपर शक्करसे परिपूर्ण पात्रसहित जलपूर्ण कलश स्थापित करे, उसपर स्वर्णमयी मूर्ति रख दे और उसे श्वेत वस्त्रसे सुशोभित करके श्वेत पुष्पमाला और चन्दनद्वारा वक्ष्यमाण मन्त्रके उच्चारणपूर्वक पूजन करे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सूर्यदेव! विश्व और वेद आपके स्वरूप हैं, आप वेदवादी कहे जाते हैं और सभी प्राणियोंके लिये अमृत-तुल्य फलदायक हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।' तत्पश्चात् पञ्चगव्य पान कर उसी कलशके पार्श्वभागमें भूमिपर शयन करे। उस समय सूर्यसूक्तका जप* अथवा पुराणका श्रवण करते रहना चाहिये। इस प्रकार दिन-रात बीत अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त पहलेकी तरह वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणक कर दे। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको घी और दूधसे बने हुए पदार्थ भोजन करावे अ भी मौन रहकर तेल और नमकसे रहित पद भोजन करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सार करना चाहिये। एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर पूर्ण कलशसमेत समग्र उपकरणोंसे युक्त शय्या त दुधारू गौ दान करनेका विधान है। व्रती यदि सम्पत्तिसे युक्त हो तो उसे समस्त उपकरणोंसे गृहका भी दान करना चाहिये। तदनन्तर सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक अथवा पाँच निष्क (सोलह माशेका एक होता है जिसे दीनार भी कहते हैं।) सोनेक घोड़ा बनवाकर पहलेकी ही भाँति मन्त्रोच पूर्वक दान करना चाहिये। इसमें कृपणता करे, यदि करता है तो दोष-भागी होना है ॥ १-१२ ॥

अमृतं पिबतो वक्त्रात् सूर्यस्यामृतबिन्दवः। निष्पेतुर्ये धरण्यां ते शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः ॥ १
शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान्। इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः ॥ १
शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा। सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥ १
यः कुर्यात् परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात्। कल्पमेकं वसेत् स्वर्गे ततो याति परं पदम् ॥ १
इदमनघं शृणोति यः स्मरेद् वा परिपठतीह दिवाकरस्य लोके।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनमालयाभिपूज्यः ॥ १७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शर्कराव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अमृत-पान करते समय सूर्यके मुखसे जो अमृत-बिन्दु भूतलपर गिर पड़े थे, वे ही शालि (अगहनी धान), मूँग और ईख नामसे कहे जाते हैं। इनमें ईखका सारभूत शक्कर अमृत-तुल्य पुष्टिद इसलिये यह तीनोंमें श्रेष्ठ है। इसी कारण यह पुण्य शर्करा सूर्यके हव्य एवं कव्य—दोनों दर्शनीय पदा

* ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५०वाँ सूक्त सूर्यसूक्त है।

सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् । गृहं च शक्तिमान् दद्यात् समस्तोपस्करान्वितम् ॥ १० ॥
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा । दशभिर्वाथ निष्केण तदर्धेनापि शक्तितः ॥ ११ ॥
सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम् । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषं समश्नुते ॥ १२ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन् ! अब मैं उसी प्रकार पाप-नाशिनी शर्करासप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है । व्रतनिष्ठ पुरुष वैशाख मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नान करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण कर ले । फिर वेदीपर कुङ्कुमसे कर्णिका-सहित कमलका चित्र बनावे । उसपर 'सवित्रे नमः' कहकर गन्ध और धूप निवेदित करे । फिर उसपर शक्करसे परिपूर्ण पात्रसहित जलपूर्ण कलश स्थापित करे, उसपर स्वर्णमयी मूर्ति रख दे और उसे श्वेत वस्त्रसे सुशोभित करके श्वेत पुष्पमाला और चन्दनद्वारा वक्ष्यमाण मन्त्रके उच्चारणपूर्वक पूजन करे । (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सूर्यदेव ! विश्व और वेद आपके स्वरूप हैं, आप वेदवादी कहे जाते हैं और सभी प्राणियोंके लिये अमृत-तुल्य फलदायक हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये ।' तत्पश्चात् पञ्चगव्य पान कर उसी कलशके पार्श्वभागमें भूमिपर शयन करे । उस समय सूर्यसूक्तका जप* अथवा पुराणका श्रवण करते रहना चाहिये । इस प्रकार दिन-रात बीत जानेपर अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पहलेकी तरह वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे । पुनः अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको शक्कर, घी और दूधसे बने हुए पदार्थ भोजन करावे और स्वयं भी मौन रहकर तेल और नमकसे रहित पदार्थोंका भोजन करे । इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सारा कार्य करना चाहिये । एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर शक्करसे पूर्ण कलशसमेत समग्र उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा एक दुधारू गौ दान करनेका विधान है । व्रती यदि धन-सम्पत्तिसे युक्त हो तो उसे समस्त उपकरणोंसे युक्त गृहका भी दान करना चाहिये । तदनन्तर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्क (सोलह माशेका एक निष्क होता है जिसे दीनार भी कहते हैं ।) सोनेका एक घोड़ा बनवाकर पहलेकी ही भाँति मन्त्रोच्चारण-पूर्वक दान करना चाहिये । इसमें कृपणता न करे, यदि करता है तो दोष-भागी होना पड़ता है ॥ १–१२ ॥

अमृतं पिबतो वक्त्रात् सूर्यस्यामृतविन्दवः । निष्पेतुर्ये धरण्यां ते शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः ॥ १३ ॥
शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान् । इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः ॥ १४ ॥
शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा । सर्वदुःखप्रशमनी पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥ १५ ॥
यः कुर्यात् परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात् । कल्पमेकं वसेत् स्वर्गे ततो याति परं पदम् ॥ १६ ॥
इदमनघं शृणोति यः स्मरेद् वा परिपठतीह दिवाकरस्य लोके ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनमालयाभिपूज्यः ॥ १७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शर्कराव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अमृत-पान करते समय सूर्यके मुखसे जो अमृत-विन्दु भूतलपर गिर पड़े थे, वे ही शालि (अगहनी धान), मूँग और ईख नामसे कहे जाते हैं । इनमें ईखका सारभूत शक्कर अमृत-तुल्य सुस्वादु है, इसलिये यह तीनोंमें श्रेष्ठ है । इसी कारण यह पुण्यमयी शर्करा सूर्यके हव्य एवं कव्य—दोनों दर्शनीय पदार्थोंमें

* ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५०वाँ सूक्त सूर्यसूक्त है ।

शुक्लपक्षकी सप्तमीको इसी विधिके अनुसार कंजूसी छोड़कर भक्तिपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये। (एक वर्ष पूर्ण होनेपर) व्रतकी समाप्तिके समय स्वर्णमय कमलके साथ एक शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुसज्जित एक दूधारू गौ तथा भोजन, आसन, दीप आदि अभीष्ट सामग्रियोंके भी दान करनेका विधान है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार कमलसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह प्रत्येक कल्पमें अप्सराओंसे घिरा हुआ पृथक्-पृथक् सातों लोकोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रतको देखता, सुनता, पढ़ता और इसे करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी इस लोकमें अचल लक्ष्मीका उपभोग कर अन्तमें गन्धर्व-विद्याधरलोकका भागी होता है ॥ १—११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कमलसप्तमी-व्रत नामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७८ ॥

उन्यासीवाँ अध्याय

शुक्लपक्षकी सप्तमीको इसी विधिके अनुसार कंजूसी छोड़कर भक्तिपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये। (एक वर्ष पूर्ण होनेपर) व्रतकी समाप्तिके समय स्वर्णमय कमलके साथ एक शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुसज्जित एक दूधारू गौ तथा भोजन, आसन, दीप आदि अभीष्ट सामग्रियोंके भी दान करनेका विधान है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार कमलसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह प्रत्येक कल्पमें अप्सराओंसे घिरा हुआ पृथक्-पृथक् सातों लोकों-में भ्रमण करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रतको देखता, सुनता, पढ़ता और इसे करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी इस लोकमें अचल लक्ष्मीका उपभोग कर अन्तमें गन्धर्व-विद्याधरलोकका भागी होता है ॥ १–११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कमलसप्तमी-व्रत नामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७८ ॥

उन्यासीवाँ अध्याय

मन्दारसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य स्वपेद् भूमावसंस्तरे। ततः प्रभाते संजाते भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्॥ ६ ॥
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः। वाससी वृषभं हैमं तद्वद् गां काञ्चनोद्भवाम्॥ ७ ॥
संवत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम्। सोपधानकविश्रामं भाजनासनसंयुतम्॥ ८ ॥
ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा। दद्याद् वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥ ९ ॥

श्रीभगवानने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं एक अन्य सुन्दर शुभसप्तमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य रोग, शोक और दुःखसे मुक्त हो जाता है। पुण्यप्रद आश्विन मासमें (शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको) व्रती स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो जाय, तब ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर शुभसप्तमी-व्रत आरम्भ करे। उस समय सुगन्धित पदार्थ, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौकी पूजा करके यों प्रार्थना करे—'देवि! आप चन्दन, माला, गुड़, फल, घी एवं दूधसे बने हुए नाना प्रकारके नैवेद्य आदिसे पूजा करे। फिर सायंकाल 'अर्यमा प्रसन्न हों' यों कहकर उसे दान कर दे। रातमें पञ्चगव्य खाकर बिना बिछावनके ही भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल होनेपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करे। व्रती मनुष्यको प्रत्येक मासमें सदा इसी विधिसे दो वस्त्र, स्वर्णमय बैल और स्वर्णनिर्मित गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार वर्षकी समाप्तिमें विश्राम-हेतु गद्दा, तकिया आदिसे युक्त एवं ईख, गुड़, बर्तन,

द्वारा पूजा करे। (पूजनकी विधि इस प्रकार है—) 'विशोकाय नमः' से दोनों चरणोंका, 'वरदाय नमः' से दोनों जङ्घाओंका, 'श्रीशाय नमः' से दोनों जानुओंका, 'जलशायिने नमः' से दोनों ऊरुओंका, 'कंदर्पाय नमः' से गुह्यप्रदेशका, 'माधवाय नमः'से कटिप्रदेशका, 'दामोदराय नमः'से उदरका, 'विपुलाय नमः' से दोनों पार्श्वभागोंका, 'पद्मनाभाय नमः' से नाभिका, 'मन्मथाय नमः' से हृदयका, 'श्रीधराय नमः' से विष्णुके वक्षःस्थलका, 'मधुजिते नमः' से दोनों हाथोंका, 'चक्रिणे नमः' से बायीं भुजाका, 'गदिने नमः' से दाहिनी भुजाका, 'वैकुण्ठाय नमः' से कण्ठका, 'यज्ञमुखाय नमः' से मुखका, 'अशोकनिधये नमः' से नासिकाका, 'वासुदेवाय नमः' से दोनों नेत्रोंका, 'वामनाय नमः' से ललाटका, 'हरये नमः' से दोनों भौंहोंका, 'माधवाय नमः' से बालोंका, 'विश्वरूपिणे नमः' से किरीटका और 'सर्वात्मने नमः' से सिरका पूजन करना चाहिये ॥ २-११ ॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः। ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मुदा ॥ १२ ॥
चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्। श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम् ॥ १३ ॥
त्र्यङ्गुलेनोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः। स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत् ॥ १४ ॥
नदीवालुकया शूर्पं लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत्। स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः ॥ १५ ॥
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै। नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे। विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये ॥ १७ ॥
ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पं वेष्ट्य सम्पूजयेत् फलैः। वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् सुवर्णकमलेन च ॥ १८ ॥
रजनीषु च सर्वासु पिबेद् दर्भोदकं बुधः। ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत् सकलां निशाम् ॥ १९ ॥
यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वाप्युत्थाय मानवः। अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि तदार्चयेत् ॥ २० ॥
शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥ २१ ॥
ततस्तु गीतवाद्येन रात्रौ जागरणे कृते। प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥ २२ ॥

द्वारा पूजा करे। (पूजनकी विधि इस प्रकार है—) 'विशोकाय नमः' से दोनों चरणोंका, 'वरदाय नमः' से दोनों जङ्घाओंका, 'श्रीशाय नमः' से दोनों जानुओंका, 'जलशायिने नमः' से दोनों ऊरुओंका, 'कंदर्पाय नमः' से गुह्यप्रदेशका, 'माधवाय नमः' से कटिप्रदेशका, 'दामोदराय नमः' से उदरका, 'विपुलाय नमः' से दोनों पार्श्वभागोंका, 'पद्मनाभाय नमः' से नाभिका, 'मन्मथाय नमः' से हृदयका, 'श्रीधराय नमः' से विष्णुके वक्षःस्थलका, 'मधुजिते नमः' से दोनों हाथोंका, 'चक्रिणे नमः' से बायीं भुजाका, 'गदिने नमः' से दाहिनी भुजाका, 'वैकुण्ठाय नमः' से कण्ठका, 'यज्ञमुखाय नमः' से मुखका, 'अशोकनिधये नमः' से नासिकाका, 'वासुदेवाय नमः' से दोनों नेत्रोंका, 'वामनाय नमः' से ललाटका, 'हरये नमः' से दोनों भौंहोंका, 'माधवाय नमः' से बालोंका, 'विश्वरूपिणे नमः' से किरीटका और 'सर्वात्मने नमः' से सिरका पूजन करना चाहिये ॥ २–११ ॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः। ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मुदा ॥ १२ ॥
चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्। श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम् ॥ १३ ॥
त्र्यङ्गुलेनोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः। स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत् ॥ १४ ॥
नदीवालुकया शूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत्। स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः ॥ १५ ॥
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै। नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे। विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये ॥ १७ ॥
ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पं वेष्ट्य सम्पूजयेत् फलैः। वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् सुवर्णकमलेन च ॥ १८ ॥
रजनीषु च सर्वासु पिबेद् दर्भोदकं बुधः। ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत् सकलां निशाम् ॥ १९ ॥
यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वाप्युत्थाय मानवः। अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि तदार्चयेत् ॥ २० ॥
शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥ २१ ॥
ततस्तु गीतवाद्येन रात्रौ जागरणे कृते। प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥ २२ ॥
भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। भुक्त्वा श्रुत्वा पुराणानि तद् दिनं चातिवाहयेत् ॥ २३ ॥
अनेन विधिना सर्व मासि मासि समाचरेत्।

अर्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु । चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः ॥ ६ ॥
धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥ ७ ॥
सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ । ताम्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥ ८ ॥
विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥ ९ ॥
सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतैः खुरसंयुतौ ।

अर्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु । चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः ॥ ६ ॥
धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥ ७ ॥
सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ । ताम्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥ ८ ॥
विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥ ९ ॥

उपभोग करके मरनेपर श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोकको चला जाता है। धर्मज्ञ नरेश! उसे नौ अरब अठारह हजार वर्षोंतक शोक, दुःख और दुर्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अथवा जो स्त्री नित्य नाच-गानमें तत्पर रहकर इस विशोकद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करती है, उसे भी वही पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। राजन्! इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उत्कृष्ट भक्तिके साथ श्रीहरिके समक्ष नित्य-निरन्तर गायन-वादनका आयोजन करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस व्रत-विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है एवं मधु, मुर और नरक नामक राक्षसोंके शत्रु श्रीहरिके पूजनको भलीभाँति देखता है तथा वैसा करनेके लिये लोगोंको सम्मति देता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है और एक कल्पतक देवगणोंद्वारा पूजित होता है॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशीव्रत नामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

पर्वतदानके दस भेद, धान्यशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवञ् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम्। यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम्॥ १॥

नारदजीने पूछा—भगवन्! अब मैं विविध दानोंके उत्तम माहात्म्यको श्रवण करना चाहता हूँ, जो देवगणों एवं ऋषिसमूहोंद्वारा पूजित और परलोकमें अक्षय फल देनेवाला है॥ १॥

उमापतिरुवाच

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिपुङ्गव। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान्॥ २॥
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च। न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते॥ ३॥
तस्माद् विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात्। प्रथमो धान्यशैलः स्याद् द्वितीयो लवणाचलः॥ ४॥
गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः। पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः॥ ५॥
सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः। राजतो नवमस्तद्वद् दशमः शर्कराचलः॥ ६॥
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥ ७॥
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये। विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथ वा पुनः॥ ८॥
शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः। धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता॥ ९॥
तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे।
मण्डपं कारयेद् भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम्। प्रागुदक्प्रवणं तद्वत् प्राङ्मुखं च विधानतः॥ १०॥
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान्। तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद् विष्कम्भपर्वतान्वितम्॥ ११॥
धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद् गिरिरिहोत्तमः। मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात् त्रिभिः शतैः॥ १२॥

उपभोग करके मरनेपर श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोकको चला जाता है। धर्मज्ञ नरेश! उसे नौ अरब अठारह हजार वर्षोंतक शोक, दुःख और दुर्गति-की प्राप्ति नहीं होती। अथवा जो स्त्री नित्य नाच-गानमें तत्पर रहकर इस विशोकद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करती है, उसे भी वही पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। राजन्! इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उत्कृष्ट भक्तिके साथ श्रीहरिके समक्ष नित्य-निरन्तर गायन-वादनका आयोजन करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस व्रत-विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है एवं मधु, मुर और नरक नामक राक्षसोंके शत्रु श्रीहरिके पूजनको भलीभाँति देखता है तथा वैसा करनेके लिये लोगोंको सम्मति देता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है और एक कल्पतक देवगणोंद्वारा पूजित होता है॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशीव्रत नामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

पर्वतदानके दस भेद, धान्यशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवञ् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम्। यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम्॥ १॥

नारदजीने पूछा—भगवन्! अब मैं विविध दानोंके उत्तम माहात्म्यको श्रवण करना चाहता हूँ, जो देवगणों एवं ऋषिसमूहोंद्वारा पूजित और परलोकमें अक्षय फल देनेवाला है॥ १॥

उमापतिरुवाच

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिपुङ्गव। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान्॥ २॥
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च। न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते॥ ३॥
तस्माद् विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात्। प्रथमो धान्यशैलः स्याद् द्वितीयो लवणाचलः॥ ४॥
गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः। पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः॥ ५॥
सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः। राजतो नवमस्तद्वद् दशमः शर्कराचलः॥ ६॥
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥ ७॥
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये। विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथ वा पुनः॥ ८॥
शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः। धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता॥ ९॥
तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे।
मण्डपं कारयेद् भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम्। प्रागुदक्प्रवणं तद्वत् प्राङ्मुखं च विधानतः॥ १०॥
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान्। तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद् विष्कम्भपर्वतान्वितम्॥ ११॥
[illegible] ॥ १२॥

स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। उसमें चाँदीके चार शिखर बनाये जायँ, जिनके नितम्बभाग भी चाँदीके ही बने हों। उसी प्रकार चारों दिशाओंमें गन्ना और बाँससे ढकी हुई कन्दराएँ तथा घी और जलके झरने भी बनाये जायँ। पुनः पूर्व दिशामें श्वेत वस्त्रोंसे, दक्षिण दिशामें पीले वस्त्रोंसे, पश्चिम दिशामें चितकबरे वस्त्रोंसे और उत्तर दिशामें लाल वस्त्रोंसे बादलोंकी पङ्क्तियाँ बनायी जायँ। फिर चाँदीके बने हुए महेन्द्र आदि आठों लोकपालोंको क्रमशः स्थापित करे और उस पर्वतके चारों ओर अनेकों प्रकारके फल, मनोरम पुष्पमालाएँ और चन्दन भी रख दे। उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा लगा दे और उसे खिले हुए श्वेत पुष्पोंसे विभूषित कर दे। इस प्रकार श्रेष्ठ अमरशैल (सुमेरुगिरि) की स्थापना कर उसके चतुर्थांशसे इसकी चारों दिशाओंमें क्रमशः विष्कम्भ (मर्यादा) पर्वतोंकी स्थापना करनी चाहिये। ये सभी पुष्प और चन्दनसे सुशोभित हों। पूर्व दिशामें यवसे मन्दराचलका आकार बनावे, उसके निकट अनेकों प्रकारके फलोंकी कतारें लगा दे, उसे कनकभद्र (देवदारु) और कदम्ब-वृक्षोंके चिह्नोंसे सुशोभित कर दे, उसपर कामदेवकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित कर दे। फिर उसे अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीके बने हुए वन और दूधनिर्मित अरुणोद नामक सरोवरसे सुशोभित कर दे। तत्पश्चात् वस्त्र, पुष्प और चन्दन आदिसे उसे भरपूर सुसज्जित कर देना चाहिये ॥ १३—२१ ॥

याम्येन गन्धमदनश्च विवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतयुक्तः।
हैमेन यक्षपतिना घृतमानसेन वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ॥ २२ ॥
पश्चात् तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम्।
आकारयेद् रजतपुष्पवनेन तद्वद् वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥ २३ ॥
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रम्।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं तमाकारयेत् कनकधेनुविराजमानम् ॥ २४ ॥
माक्षिकभद्रसरसाथ वनेन तद्वद् रौप्येण भास्वरवता च युतं निधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥ २५ ॥
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥ २६ ॥
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥ २७ ॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तात् परं बीजमतः पाहि सनातन ॥ २८ ॥
यस्मात् त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम्। रुद्रादित्यवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २९ ॥

स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। उसमें चाँदीके चार शिखर बनाये जायँ, जिनके नितम्बभाग भी चाँदीके ही बने हों। उसी प्रकार चारों दिशाओंमें गन्ना और बाँससे बनी हुई कन्दराएँ तथा घी और जलके झरने भी बनाये जायँ। पुनः पूर्व दिशामें श्वेत वस्त्रोंसे, दक्षिण दिशामें पीले वस्त्रोंसे, पश्चिम दिशामें चितकबरे वस्त्रोंसे और उत्तर दिशामें लाल वस्त्रोंसे बादलोंकी पङ्क्तियाँ बनायी जायँ। फिर चाँदीके बने हुए महेन्द्र आदि आठों लोकपालोंको क्रमशः स्थापित करे और उस पर्वतके चारों ओर अनेकों प्रकारके फल, मनोरम पुष्पमालाएँ और चन्दन भी रख दे। उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा लगा दे और उसे खिले हुए श्वेत पुष्पोंसे विभूषित कर दे। इस प्रकार श्रेष्ठ अमरशैल (सुमेरुगिरि) की स्थापना कर उसके चतुर्थांशसे इसकी चारों दिशाओंमें क्रमशः विष्कम्भ (मर्यादा) पर्वतोंकी स्थापना करनी चाहिये। ये सभी पुष्प और चन्दनसे सुशोभित हों। पूर्व दिशामें यवसे मन्दराचलका आकार बनावे, उसके निकट अनेकों प्रकारके फलोंकी कतारें लगा दे, उसे कनकभद्र (देवदारु) और कदम्ब-वृक्षोंके चिह्नोंसे सुशोभित कर दे, उसपर कामदेवकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित कर दे। फिर उसे अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीके बने हुए वन और दूधनिर्मित अरुणोद नामक सरोवरसे सुशोभित कर दे। तत्पश्चात् वस्त्र, पुष्प और चन्दन आदिसे उसे भरपूर सुसज्जित कर देना चाहिये ॥ १३—२१ ॥

याम्येन गन्धमदनश्च विवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतयुक्तः।
हैमेन यक्षपतिना घृतमानसेन वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ॥ २२ ॥
पश्चात् तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम्।
आकारयेद् रजतपुष्पवनेन तद्वद् वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥ २३ ॥
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रम्।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं तमाकारयेत् कनकधेनुविराजमानम् ॥ २४ ॥
माक्षीकभद्रसरसाथ वनेन तद्वद् रौप्येण भास्वरवता च युतं निधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥ २५ ॥
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥ २६ ॥
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु।

नामक वनसे सुशोभित हो और तुम्हारे शिखरपर स्वर्णमय पीपलका वृक्ष विराजमान है, इसलिये (तुम्हारी कृपासे) मुझे निश्चला पुष्टि प्राप्त हो।' 'सुपार्श्व! चूँकि तुम उत्तर कुरुवर्ष और सावित्र नामक वनसे नित्य शोभित हो रहे हो, अतः मुझे अक्षय लक्ष्मी प्रदान करो।' इस प्रकार उन सभी पर्वतोंको आमन्त्रित करके पुनः निर्मल प्रभात होनेपर स्नान आदिसे निवृत्त हो बीचवाला श्रेष्ठ पर्वत गुरु (यज्ञ करानेवाले) को दान कर दे। मुने! इसी प्रकार क्रमशः विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर देना चाहिये। नारद! इसके बाद चौबीस, दस, नौ, आठ, सात अथवा पाँच गौ दान करनेका विधान है। यदि यजमान निर्धन हो तो वह एक ही दुधारू कपिला गौ गुरुको दान कर दे। सभी पर्वतदानोंके लिये यही विधि कही गयी है। उनके पूजनमें ग्रहों, लोकपालों और ब्रह्मा आदि देवताओंके वे ही मन्त्र हैं और वे ही सामग्रियाँ भी मानी गयी हैं। सभी पर्वत-पूजनोंमें उन-उनके मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। यजमानको सदा व्रतमें उपवास करना चाहिये। असमर्थ हो तो रातमें एक बार भोजन किया जा स है। नारद! अब तुम सभी पर्वतदानोंकी दानकालमें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र और उन दानोंसे होनेवाला जो फल है, वह सब क्रमशः सुनो। (देते समय धान्यशैलसे यों प्रार्थना करनी चाहिये- 'पर्वतश्रेष्ठ! अन्नको ही ब्रह्म कहा जाता है; क्यो अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित हैं। अन्नसे ही प्रा उत्पन्न होते हैं, अन्नसे जगत् वर्तमान है, इसलिये अ ही लक्ष्मी है, अन्न ही भगवान् जनार्दन हैं, इसलि धान्यशैलके रूपसे तुम मेरी रक्षा करो।' जो मनु उपर्युक्त विधिसे धान्यमय पर्वतका दान करता है, व सौ मन्वन्तरसे भी अधिक कालतक देवलोकमें प्रतिष्ठि होता है। अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा व्याप्त सुन्द विमानसे वह स्वर्गलोकमें आता है और उनके द्वारा पूजित होता है। पुनः पुण्य-क्षय होनेपर वह इस लोकमें निस्संदेह राजाधिराज होता है॥ ३१-४५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें दानमाहात्म्य नामक तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

लवणाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति शिवसंयुतान्॥ १॥
उत्तमः षोडशद्रोणैः कर्तव्यो लवणाचलः। मध्यमः स्यात् तदर्धेन चतुर्भिरधमः स्मृतः॥ २॥
वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादूर्ध्वं तु कारयेत्। चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान् कारयेत् पृथक्॥ ३॥
विधानं पूर्ववत् कुर्याद् ब्रह्मादीनां च सर्वदा। तद्वद्धेममयान् सर्वांल्लोकपालान् निवेशयेत्॥ ४॥
सरांसि कामदेवादींस्तद्वदत्रापि कारयेत्। कुर्याज्जागरणं चापि दानमन्त्रान् निबोधत॥ ५॥
सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणाचलः। तद्दानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥ ६॥
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना। प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम्। तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥ ८॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम्। उमालोके वसेत् कल्पं ततो याति परां गतिम्॥ ९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे लवणाचलकीर्तनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

नामक वनसे सुशोभित हो और तुम्हारे शिखरपर स्वर्णमय पीपलका वृक्ष विराजमान है, इसलिये (तुम्हारी कृपासे) मुझे निश्चला पुष्टि प्राप्त हो।' 'सुपार्श्व! चूँकि तुम उत्तर कुरुवर्ष और सावित्र नामक वनसे नित्य शोभित हो रहे हो, अतः मुझे अक्षय लक्ष्मी प्रदान करो।' इस प्रकार उन सभी पर्वतोंको आमन्त्रित करके पुनः निर्मल प्रभात होनेपर स्नान आदिसे निवृत्त हो बीचवाला श्रेष्ठ पर्वत गुरु (यज्ञ करानेवाले) को दान कर दे। मुने! इसी प्रकार क्रमशः विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर देना चाहिये। नारद! इसके बाद चौबीस, दस, नौ, आठ, सात अथवा पाँच गौ दान करनेका विधान है। यदि यजमान निर्धन हो तो वह एक ही दुधारू कपिला गौ गुरुको दान कर दे। सभी पर्वतदानोंके लिये यही विधि कही गयी है। उनके पूजनमें ग्रहों, लोकपालों और ब्रह्मा आदि देवताओंके वे ही मन्त्र हैं और वे ही सामग्रियाँ भी मानी गयी हैं। सभी पर्वत-पूजनोंमें उन-उनके मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। यजमानको सदा व्रतमें उपवास करना चाहिये। यदि असमर्थ हो तो रातमें एक बार भोजन किया जा सकता है। नारद! अब तुम सभी पर्वतदानोंकी विधि दानकालमें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र और उन दानोंसे प्राप्त होनेवाला जो फल है, वह सब क्रमशः सुनो। (दान देते समय धान्यशैलसे यों प्रार्थना करनी चाहिये—) 'पर्वतश्रेष्ठ! अन्नको ही ब्रह्म कहा जाता है; क्योंकि अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित हैं। अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे जगत् वर्तमान है, इसलिये अन्न ही लक्ष्मी है, अन्न ही भगवान् जनार्दन हैं, इसलिये धान्यशैलके रूपसे तुम मेरी रक्षा करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे धान्यमय पर्वतका दान करता है, वह सौ मन्वन्तरसे भी अधिक कालतक देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा व्याप्त सुन्दर विमानसे वह स्वर्गलोकमें आता है और उनके द्वारा पूजित होता है। पुनः पुण्य-क्षय होनेपर वह इस लोकमें निस्संदेह राजाधिराज होता है॥ ३१—४५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें दानमाहात्म्य नामक तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

लवणाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति शिवसंयुतान्॥ १॥
उत्तमः षोडशद्रोणैः कर्तव्यो लवणाचलः। मध्यमः स्यात् तदर्धेन चतुर्भिरधमः स्मृतः॥ २॥
वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादूर्ध्वं तु कारयेत्। चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान् कारयेत् पृथक्॥ ३॥
विधानं पूर्ववत् कुर्याद् ब्रह्मादीनां च सर्वदा। तद्वद्धेममयान् सर्वांल्लोकपालान् निवेशयेत्॥ ४॥
सरांसि कामदेवादींस्तद्वदत्रापि कारयेत्। कुर्याज्जागरणं चापि दानमन्त्रान् निबोध मे॥ ५॥
सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणाचलः। तद्दानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥ ६॥
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना। प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम्। तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥ ८॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम्। उमालोके वसेत् कल्पं ततो याति परां गतिम्॥ ९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे लवणाचलकीर्तनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

ईश्वरने कहा—नारद ! अब मैं (उस) उत्तम गुडपर्वतके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका दान करनेसे धनी मनुष्य देवपूजित हो स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है। दस भार गुडसे बना हुआ गुडपर्वत उत्तम, पाँच भारसे बना हुआ मध्यम और तीन भारसे बना हुआ कनिष्ठ कहा जाता है। स्वल्प वित्तवाला मनुष्य इसके आधे परिमाणसे भी काम चला सकता है। इसमें भी देवताओंका आमन्त्रण, पूजन, स्वर्णमय वृक्ष, देव-पूजन, विष्कम्भपर्वत, सरोवर, वन-देवता, हवन, जागरण और लोकपालोंकी स्थापना आदि धान्यपर्वतकी ही भाँति करना चाहिये। उस समय यह मन्त्र उच्चारण करे—'जिस प्रकार देवगणोंमें ये विश्वात्मा जनार्दन, वेदोंमें सामवेद* योगियोंमें महादेव, समस्त मन्[illegible] और नारियोंमें पार्वती श्रेष्ठ हैं, उसी प्र[illegible] इक्षु-रस सदा श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये तुम मुझे उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रदान करो। गुडप[illegible] तुम सौभाग्यदायिनी पार्वतीके भ्राता और [illegible] हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' [illegible] उपर्युक्त विधिके अनुसार गुडपर्वतका दान [illegible] वह गन्धर्वोंद्वारा पूजित होकर गौरीलोकमें [illegible] होता है तथा सौ कल्प व्यतीत होनेपर दी[illegible] नीरोगतासे सम्पन्न होकर भूतलपर जन्म ग्रह[illegible] है और शत्रुओंके लिये अजेय होकर सातों [illegible] अधीश्वर होता है ॥ १—९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें गुडपर्वतकीर्तन नामक पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८५ ॥

छियासीवाँ अध्याय

सुवर्णाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

ईश्वरने कहा—नारद ! अब मैं (उस) उत्तम गुडपर्वतके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका दान करनेसे धनी मनुष्य देवपूजित हो स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है। दस भार गुडसे बना हुआ गुडपर्वत उत्तम, पाँच भारसे बना हुआ मध्यम और तीन भारसे बना हुआ कनिष्ठ कहा जाता है। स्वल्प वित्तवाला मनुष्य इसके आधे परिमाणसे भी काम चला सकता है। इसमें भी देवताओंका आमन्त्रण, पूजन, स्वर्णमय वृक्ष, देव-पूजन, विष्कम्भपर्वत, सरोवर, वन-देवता, हवन, जागरण और लोकपालोंकी स्थापना आदि धान्यपर्वतकी ही भाँति करना चाहिये। उस समय यह मन्त्र उच्चारण करे—'जिस प्रकार देवगणोंमें ये विश्वात्मा जनार्दन, वेदोंमें सामवेद* योगियोंमें महादेव, समस्त मन्त्रोंमें ॐ और नारियोंमें पार्वती श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार इक्षु-रस सदा श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये गुडप॰ तुम मुझे उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रदान करो। गुडपर्वत ! तुम सौभाग्यदायिनी पार्वतीके भ्राता और निवास॰ हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' जो म॰ उपर्युक्त विधिके अनुसार गुडपर्वतका दान करता वह गन्धर्वोंद्वारा पूजित होकर गौरीलोकमें प्रति॰ होता है तथा सौ कल्प व्यतीत होनेपर दीर्घायु नीरोगतासे सम्पन्न होकर भूतलपर जन्म ग्रहण कर॰ है और शत्रुओंके लिये अजेय होकर सातों द्वीपों अधीश्वर होता है ॥ १—९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें गुडपर्वतकीर्तन नामक पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८५ ॥

छियासीवाँ अध्याय

सुवर्णाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्। यस्य प्रदानाद् भवनं वैरिञ्च्यं याति मानवः ॥ १ ॥
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः।
तदर्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः। दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः ॥ २ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वं विदध्यान्मुनिपुंगव। विष्कम्भशैलास्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥
नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः। यस्मादनन्तफलदस्तस्मात् पाहि शिलोच्चय ॥ ४ ॥
यस्मादग्नेरपत्यं† त्वं यस्मात् तेजो जगत्पतेः। हेमपर्वतरूपेण तस्मात् पाहि नगोत्तम ॥ ५ ॥
अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्वतम्।
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम्। तत्र कल्पशतं तिष्ठेत् ततो याति परां गतिम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सुवर्णाचलकीर्तनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अठासीवाँ अध्याय

कार्पासाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १ ॥
कार्पासपर्वतस्तद्वद् विंशद्भारैरिहोत्तमः ।
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः । भारेणाल्पधनो दद्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव । प्रभातायां तु शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयन् ॥ ३ ॥
त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा । कार्पासाद्रे नमस्तुभ्यमघौघध्वंसनो भव ॥ ४ ॥
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ । रुद्रलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥ ५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कार्पासशैलकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ कार्पासाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य धनवाला परमपदको प्राप्त कर लेता है । इस लोकमें बीस भार रूईसे बना हुआ कार्पासपर्वत उत्तम, दस भारसे बना हुआ मध्यम और पाँच भारसे बना हुआ अधम (साधारण) कहा गया है । अल्प [illegible] मनुष्य कृपणता छोड़कर एक भार [illegible] बने हुए पर्वतका दान कर सकता है । [illegible] धान्यपर्वतकी भाँति सारी सामग्री एकत्र कर रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल इसे दान करनेका विधान है । उस समय ऐसा मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—'कार्पासाचल ! चूँकि इस लोकमें तुम्हीं सदा सभी लोगोंके शरीरके आच्छादन हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है । तुम मेरे पापसमूहका विनाश कर दो ।' इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् शिवके संनिधानमें कार्पासाचलका दान करता है, वह एक कल्पतक रुद्रलोकमें निवास करनेके पश्चात् भूतलपर राजा होता है ॥ १–५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कार्पासशैलकीर्तन नामक अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८८ ॥

नवासीवाँ अध्याय

घृताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः ॥ २ ॥
अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्थांशेन कल्पयेत् ॥ ३ ॥
शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् । कारयेत् संहतानुच्चान् यथाशोभं विधानतः ॥ ४ ॥
वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः । धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ॥ ५ ॥
अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमसुरार्चनम् ।
प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे तन्निवेदयेत् । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शान्तमानसः ॥ ६ ॥
संयोगाद् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः । तस्माद् घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकरः ॥ ७ ॥
यस्मात् तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्धि व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तस्मात् त्वं पाहि नोऽनिशम् ॥ ८ ॥

अठासीवाँ अध्याय

कार्पासाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् प्राप्नोति परमं पदम्॥ १ ॥
कार्पासपर्वतस्तद्वद् विंशद्भारैरिहोत्तमः।
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः। भारेणाल्पधनो दद्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ २ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव। प्रभातायां तु शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयन्॥ ३ ॥
त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा। कार्पासाद्रे नमस्तुभ्यमघौघध्वंसनो भव॥ ४ ॥
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ। रुद्रलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह॥ ५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कार्पासशैलकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ कार्पासाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य धनवाला परमपदको प्राप्त कर लेता है। इस लोकमें बीस भार रूईसे बना हुआ कार्पासपर्वत उत्तम, दस भारसे बना हुआ मध्यम और पाँच भारसे बना हुआ अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प ... मनुष्य कृपणता छोड़कर एक भार ... बने हुए पर्वतका दान कर सकता है। ... धान्यपर्वतकी भाँति सारी सामग्री एकत्र कर रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल इसे दान करनेका विधान है। उस समय ऐसा मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—'कार्पासाचल ! चूँकि इस लोकमें तुम्हीं सदा सभी लोगोंके शरीरके आच्छादन हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे पापसमूहका विनाश कर दो।' इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् शिवके संनिधानमें कार्पासाचलका दान करता है, वह एक कल्पतक रुद्रलोकमें निवास करनेके पश्चात् भूतलपर राजा होता है॥ १—५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कार्पासशैलकीर्तन नामक अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८८ ॥

नवासीवाँ अध्याय

घृताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम्। तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम्॥ १ ॥
विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः। दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः॥ २ ॥
अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्थांशेन कल्पयेत्॥ ३ ॥
शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत्। कारयेत् संहतानुच्चान् यथाशोभं विधानतः॥ ४ ॥
वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः। धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते॥ ५ ॥
अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमसुरार्चनम्।
प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे तन्निवेदयेत्। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शान्तमानसः॥ ६ ॥
संयोगाद् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः। तस्माद् घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकरः॥ ७ ॥
यस्मात् तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्धि व्यवस्थितम्। घृतपर्वतरूपेण तस्मात् त्वं पाहि नोऽनिशम्॥ ८ ॥

अनेन विधिना यस्तु दद्याद् रत्नमयं गिरिम्। स याति विष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः ॥ ९ ॥
यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्चेह नराधिप। रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ १० ॥
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्। तत् सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रत्नाचलकीर्तनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ रत्नाचलका वर्णन कर रहा हूँ। एक हजार मुक्ताफल-(मोतियों) द्वारा बना हुआ पर्वत उत्तम, पाँच सौसे बना हुआ मध्यम और तीन सौसे बना हुआ अधम (साधारण) माना गया है। कल्पित पर्वतके चतुर्थांश-से उसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंको स्थापित करना चाहिये। विद्वानोंको पूर्व दिशामें हीरा और गोमेदसे मन्दराचलकी, दक्षिणमें पद्मराग (माणिक्य) और इन्द्रनील (नीलम) मणिके संयोगसे गन्धमादनकी, पश्चिममें वैदूर्य और मूँगेके सम्मिश्रणसे विपुलाचलकी और उत्तरमें गारुत्मतमणिसहित पुष्पराग (पोखराज) मणिसे सुपार्श्व पर्वतकी स्थापना करनी चाहिये।* इस दानमें भी धान्य-पर्वतकी तरह सारे उपकरणोंकी कल्पना करे। उसी प्रकार स्वर्णमय देवताओं वनों और वृक्षोंका स्थापन एवं आवाहन करे तथा पुष्प, गन्ध आदिसे उनका पूजन करे। प्रातःकाल मत्सररहित होकर वह सारा सामान गुरु और ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'अचल ! जब सभी देवगण सम्पूर्ण रत्नोंमें निवास करते हैं, तब तुम तो नित्य रत्नमय ही हो; अतः तुम्हें सदा हमारा नमस्कार प्राप्त हो। पर्वत ! चूँकि सदा रत्नका दान करनेसे श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं, अतः तुम हमारी रक्षा करो।' नराधिप ! जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे रत्नमय पर्वतका दान करता है, वह इन्द्रसे सत्कृत हो विष्णु-सालोक्यको प्राप्त कर लेता है और वहाँ सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास करता है। पुनः इस लोकमें जन्म लेनेपर वह सौन्दर्य, नीरोगता और सद्‌गुणोंसे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। साथ ही उसके द्वारा इहलोक अथवा परलोकमें जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप किये गये होते हैं, वे सभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्रद्वारा प्रहार किया हुआ पर्वत ॥ १—११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रत्नाचलकीर्तन नामक नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

रजताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकमनुत्तमम् ॥ १ ॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः। पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः ॥ २ ॥
अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितस्तदा। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥ ३ ॥
पूर्ववद् राजतान् कुर्वन् मन्दरादीन् विधानतः। कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद् बुधः ॥ ४ ॥
ब्रह्मविष्ण्वर्कवान् कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः। राजतं स्याद् यदन्येषां कार्यं तदिह काञ्चनम् ॥ ५ ॥
शेषं तु पूर्ववत् कुर्याद्धोमजागरणादिकम्। दद्यात् ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥ ६ ॥
विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः†। इमं मन्त्रं पठन् दद्याद् दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥ ७ ॥

* इन रत्नोंकी स्थापनामें नारदपुरा० १। ५६। २८२ शुक्रनी० ४। २ आदिमें निर्दिष्ट दिक्पालों तथा दिगीश ग्रहोंके प्रिय रत्नोंका भी ध्यान रखा गया है।

† हेमाद्रि, कल्पतरु, पद्मपुराणादिमें—यहाँ 'विवेपनैः' पाठ है।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद् रत्नमयं गिरिम्। स याति विष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः ॥ ९ ॥
यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्चेह नराधिप। रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ १० ॥
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्। तत् सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रत्नाचलकीर्तनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ रत्नाचलका वर्णन कर रहा हूँ। एक हजार मुक्ताफल-(मोतियों) द्वारा बना हुआ पर्वत उत्तम, पाँच सौसे बना हुआ मध्यम और तीन सौसे बना हुआ अधम (साधारण) माना गया है। कल्पित पर्वतके चतुर्थांश-से उसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंको स्थापित करना चाहिये। विद्वानोंको पूर्व दिशामें हीरा और गोमेदसे मन्दराचलकी, दक्षिणमें पद्मराग (माणिक्य) और इन्द्रनील (नीलम) मणिके संयोगसे गन्धमादनकी, पश्चिममें वैदूर्य और मूँगेके सम्मिश्रणसे विपुलाचलकी और उत्तरमें गारुत्मतमणिसहित पुष्पराग (पोखराज) मणिसे सुपार्श्व पर्वतकी स्थापना करनी चाहिये।* इस दानमें भी धान्य-पर्वतकी तरह सारे उपकरणोंकी कल्पना करे। उसी प्रकार स्वर्णमय देवताओं वनों और वृक्षोंका स्थापन एवं आवाहन करे तथा पुष्प, गन्ध आदिसे उनका पूजन करे। प्रातःकाल मत्सररहित होकर वह सारा सामान गुरु और ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'अचल ! जब सभी देवगण सम्पूर्ण रत्नोंमें निवास करते हैं, तब तुम तो नित्य रत्नमय ही हो; अतः तुम्हें सदा हमारा नमस्कार प्राप्त हो। पर्वत ! चूँकि सदा रत्नका दान करनेसे श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं, अतः तुम हमारी रक्षा करो।' नराधिप ! जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे रत्नमय पर्वतका दान करता है, वह इन्द्रसे सत्कृत हो विष्णु-सालोक्यको प्राप्त कर लेता है और वहाँ सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास करता है। पुनः इस लोकमें जन्म लेनेपर वह सौन्दर्य, नीरोगता और सद्गुणोंसे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। साथ ही उसके द्वारा इहलोक अथवा परलोकमें जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप किये गये होते हैं, वे सभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्रद्वारा प्रहार किया हुआ पर्वत ॥ १-११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रत्नाचलकीर्तन नामक नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

रजताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकमनुत्तमम् ॥ १ ॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः। पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः ॥ २ ॥
अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितस्तदा। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥ ३ ॥
पूर्ववद् राजतान् कुर्वन् मन्दरादीन् विधानतः। कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद् बुधः ॥ ४ ॥
ब्रह्मविष्ण्वर्कवान् कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः। राजतं स्याद् यदन्येषां कार्यं तदिह काञ्चनम् ॥ ५ ॥
शेषं तु पूर्ववत् कुर्याद्धोमजागरणादिकम्। दद्यात् ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥ ६ ॥
विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः†। इमं मन्त्रं पठन् दद्याद् दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥ ७ ॥

* इन रत्नोंकी स्थापनामें नारदपुरा० १। ५६। २८२ शुक्रनी० ४। २ आदिमें निर्दिष्ट दिक्पालों तथा दिगीश ग्रहोंके प्रिय रत्नोंका भी ध्यान रखा गया है।

† हेमाद्रि, कल्पतरु, पद्मपुराणादिमें—यहाँ 'विधिपत्नैः' पाठ है।

भगवान् शंकरने कहा—नारदजी ! इसके पश्चात् मैं परमोत्तम शर्कराशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे भगवान् विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा संतुष्ट रहते हैं। आठ भार शक्करसे बना हुआ शर्कराचल उत्तम, चार भारसे बना हुआ मध्यम और दो भारसे बना हुआ अधम कहा गया है। जो मानव स्वल्प सम्पत्तिवाला हो, वह एक भार अथवा आधे भारसे भी शर्कराचल बनवा सकता है। प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंका भी निर्माण करना चाहिये। पुनः धान्यपर्वतकी तरह सारी सामग्री प्रस्तुत करके मेरुपर्वतकी भाँति इसके ऊपर भी स्वर्णमयी देवमूर्तिके साथ मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्ष—इन तीनों वृक्षोंकी भी स्वर्ण-निर्मित मूर्ति स्थापित करे। इन तीनों वृक्षोंको तो प्रायः सभी पर्वतोंपर स्थापित कर देना चाहिये। सभी पर्वतोंके पूर्व और पश्चिम भागमें हरिचन्दन और कल्पवृक्षको निविष्ट करना चाहिये। शर्कराचलमें तो इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये। मन्दराचलपर कामदेवकी मूर्ति सदा पश्चिमाभिमुखी, गन्धमादनके शिखरपर कुबेरकी मूर्ति उत्तराभिमुखी, विपुलाचलपर वेदमूर्ति—ब्रह्मा और हंसकी मूर्ति पूर्वाभिमुखी और सुपार्श्व पर्वतपर स्वर्णमयी गौकी मूर्ति दक्षिणाभिमुखी होनी चाहिये ॥ १–८ ॥

धान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनविधानकम्।
कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्। ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान् मन्त्रानुदीरयन् ॥ ९ ॥
सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शर्करायुतः। तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ॥ १० ॥
अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः। देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शर्कराचल ॥ ११ ॥
मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः। तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥ १२ ॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम् ॥ १३ ॥
चन्द्रतारार्कसंकाशमधिरुह्यानुजीविभिः। सहैव यानमातिष्ठेत् तत्र विष्णुप्रचोदितः ॥ १४ ॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्। आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मार्बुदत्रयम् ॥ १५ ॥
भोजनं शक्तितः दद्यात् सर्वशैलेष्वमत्सरः।
सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयात् तदनुज्ञया। पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद् ब्राह्मणालयम्। ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् आवाहन आदि सारा विधान धान्यपर्वतकी भाँति करके अन्तमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए बिचला प्रधान पर्वत गुरुको और चारों विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। (वे मन्त्र इस प्रकारके अर्थवाले हैं—) 'शैलेन्द्र ! यह शक्करद्वारा निर्मित पर्वत सौभाग्य और अमृतका सार है, इसलिये तुम मेरे लिये सदा आनन्द-कारक होओ। शर्कराचल ! देवताओंके अमृत-पान करते समय जो बूँदें भूतलपर टपक पड़ी थीं, उन्हींसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अतः तुम हमारी रक्षा करो। महाशैल ! चूँकि शर्करा कामदेवके धनुषके मध्यभागसे प्रादुर्भूत हुई है और तुम शर्करामय हो, इसलिये संसारसागरसे मुझे बचाओ।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार शर्कराशैलका दान करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है। वहाँ वह भगवान् विष्णुकी आज्ञासे अपने आश्रितोंके साथ ही सूर्य, चन्द्र और तारकाओंके समान कान्तिमान् विमानपर आरूढ़ होकर सुशोभित होता है। पुनः सौ कल्पोंके बाद तीन अरब जन्मोंतक भूतलपर दीर्घायु और नीरोगतासे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। सभी पर्वतदानोंमें मत्सररहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करनेका विधान है। सर्वत्र गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुकूल क्षार (नमक)-रहित भोजन करना चाहिये। पुनः पर्वतदानकी सारी सामग्री ब्राह्मणके घर स्वयं भेजवा देनी चाहिये ॥ ९–१६ ॥

भगवान् शंकरने कहा—नारदजी ! इसके पश्चात् मैं परमोत्तम शर्कराशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे भगवान् विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा संतुष्ट रहते हैं। आठ भार शक्करसे बना हुआ शर्कराचल उत्तम, चार भारसे बना हुआ मध्यम और दो भारसे बना हुआ अधम कहा गया है। जो मानव स्वल्प सम्पत्तिवाला हो, वह एक भार अथवा आधे भारसे भी शर्कराचल बनवा सकता है। प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंका भी निर्माण करना चाहिये। पुनः धान्यपर्वतकी तरह सारी सामग्री प्रस्तुत करके मेरुपर्वतकी भाँति इसके ऊपर भी स्वर्णमयी देवमूर्तिके साथ मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्ष—इन तीनों वृक्षोंकी भी स्वर्ण निर्मित मूर्ति स्थापित करे। इन तीनों वृक्षोंको तो प्राय सभी पर्वतोंपर स्थापित कर देना चाहिये। सभी पर्वतोंके पूर्व और पश्चिम भागमें हरिचन्दन और कल्पवृक्ष निविष्ट करना चाहिये। शर्कराचलमें तो इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये। मन्दराचलपर कामदेवकी मूर्ति सदा पश्चिमाभिमुखी, गन्धमादनके शिखरपर कुबेरकी मूर्ति उत्तराभिमुखी, विपुलाचलपर वेदमूर्ति—ब्रह्मा और हंसकी मूर्ति पूर्वाभिमुखी और सुपार्श्व पर्वतपर स्वर्णमयी गौकी मूर्ति दक्षिणाभिमुखी होनी चाहिये ॥ १—८ ॥

धान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनविधानकम् ।
कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् । ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान् मन्त्रानुदीरयन् ॥ ९ ॥
सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शर्करायुतः । तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ॥ १० ॥
अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः । देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शर्कराचल ॥ ११ ॥
मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः । तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥ १२ ॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम् ॥ १३ ॥
चन्द्रतारार्कसंकाशमधिरुह्यानुजीविभिः । सहैव यानमातिष्ठेत् तत्र विष्णुप्रचोदितः ॥ १४ ॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मार्बुदत्रयम् ॥ १५ ॥
भोजनं शक्तितः दद्यात् सर्वशैलेष्वमत्सरः ।
सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयात् तदनुज्ञया । पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद् ब्राह्मणालयम् । ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् आवाहन आदि सारा विधान धान्यपर्वतकी भाँति करके अन्तमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए बिचला प्रधान पर्वत गुरुको और चारों विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। (वे मन्त्र इस प्रकारके अर्थवाले हैं—) 'शैलेन्द्र ! यह शक्करद्वारा निर्मित पर्वत सौभाग्य और अमृतका सार है, इसलिये तुम मेरे लिये सदा आनन्द-कारक होओ। शर्कराचल ! देवताओंके अमृत-पान करते समय जो बूँदें भूतलपर टपक पड़ी थीं, उन्हींसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अतः तुम हमारी रक्षा करो। महाशैल ! चूँकि शर्करा कामदेवके धनुषके मध्यभागसे प्रादुर्भूत हुई है और तुम शर्करामय हो, इसलिये संसारसागरसे मुझे बचाओ।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार शर्कराशैलका दान करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है। वहाँ वह भगवान् विष्णुकी आज्ञासे अपने आश्रितोंके साथ ही सूर्य, चन्द्र और तारकाओंके समान कान्तिमान् विमानपर आरूढ होकर सुशोभित होता है। पुनः सौ कल्पोंके बाद तीन अरब जन्मोंतक भूतलपर दीर्घायु और नीरोगतासे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। सभी पर्वतदानोंमें मत्सररहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करनेका विधान है। सर्वत्र गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुकूल क्षार (नमक)-रहित भोजन करना चाहिये। पुनः पर्वतदानकी सारी सामग्री ब्राह्मणके घर स्वयं भेजवा देनी चाहिये ॥ ९—१६ ॥

दान किया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्र-जातीय शौण्ड नामक सोनार नौकर था। भूपाल! उसने ही श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण किया था। उसने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये उन मूर्तियोंको गढ़कर अत्यन्त सुन्दर बनाया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्णनिर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनोंकी सहायतासे लीलावतीने गुरु-शुश्रूषा आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। नारद! अधिक कालके व्यतीत होनेपर वह वेश्या लीलावती कर्मयोगके अनुसार जब कालधर्म (मृत्यु)को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने वेश्यासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस समय इस जन्ममें तुम हो, जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सोनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देव-मूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह भानुमती तुम्हारी पटरानी है॥ २३-३०॥

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः संजातमस्मिन् भुवनाधिपत्यम्।
यस्मात् कृतं तत् परिकर्म रात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य॥ ३१॥
तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन् दशधा कुरुष्व॥ ३२॥
तथेति सत्कृत्य स धर्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान्।
धान्याचलादीञ्छतचो मुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः॥ ३३॥
पश्येदपीमानधनोऽतिभक्त्या स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीयमानान्।
शृणोति भक्त्याथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति॥ ३४॥
दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पाठ्यमानैः शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यैः।
यः कुर्यात् किमु मुनिपुंगवेह सम्यक् शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसम्प्रदानम्॥ ३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पर्वतप्रदानमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायक रूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्य-सम्पन्नता लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है। इस कारण तुम भी इस जन्ममें विधानपूर्वक दस प्रकारके धान्याचल आदि पर्वतोंका दान करो। तब राजा धर्ममूर्तिने 'तथेति—ऐसा ही करूँगा' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और सैकड़ों बार धान्याचल आदि सभी पर्वतोंका दान किया, जिसके फलस्वरूप देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् मुरारिके लोकको प्राप्त हुआ। निर्धन मनुष्य भी यदि उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक इन पर्वत-दानोंको देखता है, मनुष्योंद्वारा दान करते समय उनका स्पर्श कर लेता है, उनकी कथाएँ सुनता है और उन्हें करनेके लिये सम्मति देता है तो वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। मुनिपुंगव! जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा भव-भयको विदीर्ण करनेवाले इन शैलेन्द्रोंके प्रसङ्गका पाठ करनेसे दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य स्वयं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इन सम्पूर्ण पर्वतदानोंको करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ ३१-३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पर्वतप्रदानमाहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९२॥

दान किया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्र-जातीय शौण्ड नामक सोनार नौकर था। भूपाल! उसने ही श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण किया था। उसने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये उन मूर्तियोंको गढ़कर अत्यन्त सुन्दर बनाया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्णनिर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनोंकी सहायतासे लीलावतीने गुरु-शुश्रूषा आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। नारद! अधिक कालके व्यतीत होनेपर वह वेश्या लीलावती कर्मयोगके अनुसार जब कालधर्म (मृत्यु)को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने वेश्यासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस समय इस जन्ममें तुम हो, जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सोनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देव-मूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह भानुमती तुम्हारी पटरानी है॥ २३—३०॥

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः संजातमस्मिन् भुवनाधिपत्यम्।
यस्मात् कृतं तत् परिकर्म रात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य॥ ३१॥
तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन् दशधा कुरुष्व॥ ३२॥
तथेति सत्कृत्य स धर्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान्।
धान्याचलादीञ्छतशो मुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः॥ ३३॥
पश्येदपीमानधनोऽतिभक्त्या स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीयमानान्।
शृणोति भक्त्याथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति॥ ३४॥
दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पाठ्यमानैः शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यैः।
यः कुर्यात् किमु मुनिपुंगवेह सम्यक् शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसम्प्रदानम्॥ ३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पर्वतप्रदानमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायक रूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्य-सम्पन्नता लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है। इस कारण तुम भी इस जन्ममें विधान पूर्वक दस प्रकारके धान्याचल आदि पर्वतोंका दान करो। तब राजा धर्ममूर्तिने 'तथेति—ऐसा ही करूँगा' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और सैकड़ों बार धान्याचल आदि सभी पर्वतोंका दान किया, जिसके फलस्वरूप देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् मुरारिके लोकको प्राप्त हुआ। निर्धन मनुष्य भी यदि उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक इन पर्वत-दानोंको देखता है, मनुष्योंद्वारा दान करते समय उनका स्पर्श कर लेता है, उनकी कथाएँ सुनता है और उन्हें करनेके लिये सम्मति देता है तो वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। मुनिपुंगव! जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा भव-भयको विदीर्ण करनेवाले इन शैलेन्द्रोंके प्रसङ्गका पाठ करनेसे दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य स्वयं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इन सम्पूर्ण पर्वतदानोंको करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ ३१—३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पर्वतप्रदानमाहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९२॥

सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः। राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः॥ १०॥
मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु। उत्तरेण गुरुं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु॥ ११॥
पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके।
पश्चिमेन शनिं विद्याद् राहुं पश्चिमदक्षिणे। पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः॥ १२॥
भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा। स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥ १३॥
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम्। शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च॥ १४॥
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः। अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता॥ १५॥
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः।
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च। आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ॥ १६॥
संस्मरेद् रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम्।
सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ। मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः॥ १७॥
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च।
धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद् वितानिकम्। शोभनं स्थापयेत् प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम्॥ १८॥
गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम्। अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम्॥ १९॥
दध्योदनं च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम्।
शनैश्चराय कृसरामजामांसं च राहवे। चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत्॥ २०॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं। श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तरकोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिणपूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तर-कोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियों-के उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेतवर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीतवर्णका, शनि और राहुको कृष्णवर्णका तथा केतुको धूम्रवर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे, ऊपर सुन्दर चँदोवा लगा दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर) का, चन्द्रमाको घी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोझियाका, बुधको क्षीरषष्टिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल)का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको घी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजा नामक वृक्षके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे॥ १०—२०॥

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्। चूतपल्लवसंच्छन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम्॥ २१॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम्। स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत्॥ २२॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च। गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्॥ २३॥
मृदमानीय विप्रेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम्। स्नानार्थं विन्यसेत् तत्र यजमानस्य धर्मवित्॥ २४॥

सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः । राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ॥ १० ॥
मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरुं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु ॥ ११ ॥
पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके ।
पश्चिमेन शनिं विद्याद् राहुं पश्चिमदक्षिणे । पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः ॥ १२ ॥
भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा । स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् ॥ १३ ॥
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् । शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च ॥ १४ ॥
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः । अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता ॥ १५ ॥
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः ।
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च । आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥ १६ ॥
संस्मरेद् रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम् ।
सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ । मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः ॥ १७ ॥
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च ।
धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद् वितानिकम् । शोभनं स्थापयेत् प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम् ॥ १८ ॥
गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम् । अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम् ॥ १९ ॥
दध्योदनं च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम् ।
शनैश्चराय कृसरामजामांसं च राहवे । चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत् ॥ २० ॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं। श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तरकोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिणपूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेतवर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीतवर्णका, शनि और राहुको कृष्णवर्णका तथा केतुको धूम्रवर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे, ऊपर सुन्दर चँदोवा लगा दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर) का, चन्द्रमाको घी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोझियाका, बुधको क्षीरषष्टिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल)का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको घी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजा नामक वृक्षके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे॥ १०—२०॥

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम् । चूतपल्लवसंच्छन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥ २१ ॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम् । स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥ २२ ॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च । गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ॥ २३ ॥
मृदमानीय विप्रेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम् । स्नानार्थं विन्यसेत् तत्र यजमानस्य धर्मवित् ॥ २४ ॥

'परिदीया रथेन०' (ऋक् ५ । ८३ । ७)—ये मन्त्र माने गये हैं ।* शुक्रके लिये 'शुक्रं ते अन्यद्०' (ऋ० सं० ६ । ५८ । १, कृष्णय० तैत्तिरी० सं० ४ । १ । ११ । २)—यह मन्त्र बतलाया गया है । शनैश्चरके लिये 'शं नो देवीरभीष्टये०' (शुक्लयजु० वाज ३६ । १२)—इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये । राहुके 'कया नश्चित्र आभुव०' (वही २७ । ३९)—मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये 'केतुं कृण्वन्०' (वही २९ । ३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये ॥ ३१–३७ ॥

आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत् । आपो हि ष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा ॥ ३८
विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः । इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात् ततः ॥ ३९
तथा यमस्य चायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः । कालस्य ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते ॥ ४०
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः । अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः ॥ ४१ ।
उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः । भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥ ४२ ।
सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः । इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥ ४३ ॥
उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत् । प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ४४ ॥
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते । एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्य इति ब्रह्मणउदाहृतः ॥ ४५ ॥
विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः । जातवेदसे सुनवामिति दुर्गाऽयमुच्यते ॥ ४६ ॥
आदिप्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः । क्राणा शिशुर्महीनां च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥
एषो उषा अपूर्व्या इत्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते । पूर्णाहुतिस्तु मूर्धानं दिव इत्यभिपातयेत् ॥ ४८ ॥

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रम्' (ऋक्सं ४ । ३ । १ कृष्णयजुः तै० सं० १ । ३ । १४ । १)—इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देना चाहिये । तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि ष्ठा०' (वाजस-सं० ११ । ५०)—इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकके [illegible] 'स्योना०'—इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये 'इदं [illegible]०' (शुक्लयजु० वाज० ५ । १५)—इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये 'तमीशानम्०' (वाजस० २५ । १८)—इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिद्देवताय०'—इस मन्त्रसे आहुति डाले । उसी प्रकार यमके लिये 'अयं गौः०' (वही ३ । ६)—इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है । कालके लिये—'ब्रह्मजज्ञानम्०' (वही १३ । ३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है । मन्त्रवेत्तालोग चित्रगुप्तके लिये 'अज्ञातम्०'—यह मन्त्र बतलाते हैं । अग्निके लिये 'अग्निं दूतं वृणीमहे' (ऋक्सं० १ । १२ । १; अथर्व २० । १०१ । १)—यह मन्त्र बतलाया गया है । वरुणके लिये 'उदुत्तमं वरुणपाशम्' (ऋक्स० १ । २४ । १५)—यह मन्त्र कहा गया है । वेदोंमें पृथ्वीके लिये 'पृथिव्यन्तरिक्षम्०—इस मन्त्रका पाठ है । विष्णुके लिये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०, (वाजस० सं० ३१ । १)—यह मन्त्र कहा गया है । इन्द्रके लिये 'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत०'—यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है । देवीके लिये 'उत्तानपर्णे सुभगे०'—यह मन्त्र जानना चाहिये । पुनः प्रजापतिके लिये 'प्रजापतिः०' (वाजस० सं० ३१ । १७)—यह हवन-मन्त्र कहा जाता है । सर्पोंके लिये 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०' (वही १३ । ६)—यह मन्त्र बतलाया जाता है । ब्रह्माके लिये 'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः०'—यह मन्त्र कहा गया है । विनायकके लिये विद्वानोंने 'अनूनम्०'—यह मन्त्र बतलाया है । 'जातवेदसे सुनवाम०' (ऋक्० १ । ९९ । १)—यह दुर्गा-मन्त्र कहा जाता है । 'आदिप्रत्नस्य रेतस०'—

* यहाँ ग्रहों और देवताओंके कुछ मन्त्र अन्य पुराणों, स्मृतियों तथा पद्धतियोंसे भिन्न निर्दिष्ट हुए हैं ।

'परिद्यौवा रथेन०' (ऋक् ५ । ८३ । ७)—ये मन्त्र माने गये हैं।* शुक्रके लिये 'शुक्रं ते अन्यद्०' (ऋ० सं० ६ । ५८ । १, कृष्णय० तैत्तिरी० सं० ४ । १ । ११ । २)—यह मन्त्र बतलाया गया है। शनैश्चरके लिये 'शं नो देवीरभीष्टये०' (शुक्लयजु० वाज ३६ । १२)—इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। रा 'कया नश्चित्र आभुव०' (वही २७ । ३९ मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके 'केतुं कृण्वन्०' (वही २९ । ३७) इस मन्त्रका करना चाहिये ॥ ३१–३७ ॥

आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत्। आपो हि ष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा॥
विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः। इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात् ततः॥
तथा यमस्य चायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः। कालस्य ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते॥
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः। अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः॥
उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः। भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते॥
सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः। इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते॥ ४
उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत्। प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः॥ ४
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते। एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्य इति ब्रह्मणउदाहृतः॥ ४
विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः। जातवेदसे सुनवामिति दुर्गाऽयमुच्यते॥ ४
आदित्प्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः। काण्डा शिशुर्महीनां च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः॥ ४
एषो उषा अपूर्व्या इत्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते। पूर्णाहुतिस्तु मूर्धानं दिव इत्यभिपातयेत्॥ ४

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रम्' (ऋक्सं ४ । ३ । १ कृष्णयजुः तै० सं० १ । ३ । १४ । १)—इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देना चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि ष्ठा०' (वाजस-सं० ११ । ५०)—इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकके [illegible] 'स्योना०'—इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये 'इदं [illegible]' (शुक्लयजु० वाज० ५ । १५)—इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये 'तमीशानम्०' (वाजस० २५ । १८)—इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिद्देवताय०'—इस मन्त्रसे आहुति डाले। उसी प्रकार यमके लिये 'अयं गौः०' (वही ३ । ६)—इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये—'ब्रह्मजज्ञानम्०' (वही १३ । ३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। मन्त्रवेत्तालोग चित्रगुप्तके लिये 'अज्ञातम्०'—यह मन्त्र बतलाते हैं। अग्निके लिये 'अग्निं दूतं वृणीमहे' (ऋक्सं० १ । १२ । १; अथर्व २० । १०१ । १)—यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके 'उदुत्तमं वरुणपाशम्' (ऋक्स० १ । २४ । १५) यह मन्त्र कहा गया है। वेदोंमें पृथ्वीके [illegible] 'पृथिव्यन्तरिक्षम्०—इस मन्त्रका पाठ है। विष्णु लिये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०, (वाजस० सं० ३१ १)—यह मन्त्र कहा गया है। इन्द्रके लिये 'इन्द्रायेन्द मरुत्वत०'—यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। देवी लिये 'उत्तानपर्णे सुभगे०'—यह मन्त्र जानना चाहिये पुनः प्रजापतिके लिये 'प्रजापतिः०' (वाजस० सं० ३१ । १७)—यह हवन-मन्त्र कहा जाता है। सर्पोंके लिये 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०' (वही १३ । ६)—यह मन्त्र बतलाया जाता है। ब्रह्माके लिये 'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः०'—यह मन्त्र कहा गया है। विनायकके लिये विद्वानोंने 'अनूनम्०'—यह मन्त्र बतलाया है। 'जातवेदसे सुनवाम०' (ऋक्० १ । ९९ । १)—यह दुर्गा-मन्त्र कहा जाता है। 'आदित्प्रत्नस्य रेतस०'—

* यहाँ ग्रहों और देवताओंके कुछ मन्त्र अन्य पुराणों, स्मृतियों तथा पद्धतियोंसे भिन्न निर्दिष्ट हुए हैं।

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषध एवं सम्पूर्ण गन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके श्चात् सपत्नीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत न्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त-त्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर जन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके ये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ वं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये वर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेका दान करे। यजमानको ये सारी दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौएँ अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। किंतु सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है ॥ ५८—६३ ॥

कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६४ ॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। विष्णुना विधृतश्चासि ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६५ ॥
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६६ ॥
हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६७ ॥
पीतवस्त्रयुगं यस्माद् वासुदेवस्य वल्लभम्। प्रदानात् तस्य मे विष्णो ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६८ ॥
विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६९ ॥
यस्मात् त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७० ॥
यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७१ ॥
छाग त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७२ ॥
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात् तस्माच्छ्रियै मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ ७३ ॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा। शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥ ७४ ॥
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥ ७५ ॥
यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह ॥ ७६ ॥

(दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् । प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—) 'कपिले! तुम हेणीरूपा हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा । सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति ान करो।* शङ्ख! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण ा है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को नन्दित करनेवाले वृषभ! तुम वृषरूपसे धर्म और मूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान ो। सुवर्ण! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्ण-मय बीज और अनन्त पुण्यफलके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीला वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो! उसका दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, केशवके सदृश फलदायिनी और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो।

* तुलनीय—"इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे" आदि (यजुः ८। ४३ और उसके उवट-महीधरादिभाष्य)।

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषध एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात् सपत्नीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त-चित्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काले गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेका दान करे। यजमानको ये सारे दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौएँ अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। किंतु सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है ॥ ५८—६३ ॥

कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६४ ॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। विष्णुना विधृतश्चासि ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६५ ॥
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६६ ॥
हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६७ ॥
पीतवस्त्रयुगं यस्माद् वासुदेवस्य वल्लभम्। प्रदानात् तस्य मे विष्णो ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६८ ॥
विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६९ ॥
यस्मात् त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७० ॥
यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७१ ॥
छाग त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७२ ॥
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात् तस्माच्छ्रियै मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ ७३ ॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा। शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥ ७४ ॥
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥ ७५ ॥
यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह ॥ ७६ ॥

(दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—) 'कपिले! तुम रोहिणीरूपा हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।* शङ्ख! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को आनन्दित करनेवाले वृषभ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्ण-मय बीज और अनन्त पुण्यफलके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीला वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो! उसका दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, केशवके सदृश फलदायिनी और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो।

* तुलनीय—"इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे" आदि (यजुः ८। ४३ और उसके उवट-महीधरादिभाष्य)।

ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देना चाहिये ॥ ७७–८७½ ॥

प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु ॥ ८८ ॥
शोभनं कारयेत् कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम्। चतुरस्रं समंतात्तु योनिवक्त्रं समेखलम् ॥ ८९ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता। प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता ॥ ९० ॥
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः।
मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत्। यस्मात् तस्मात् सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥ ९१ ॥
अस्माद् दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा। आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ९२ ॥
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः। लक्षहोमे भवेत् कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥ ९३ ॥
तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम्। प्रागुदक्प्लवनं तच्च चतुरस्रं समंततः ॥ ९४ ॥
विष्कम्भार्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा। संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥ ९५ ॥
द्व्यङ्गुलो ह्युच्छ्रितो वप्रः प्रथमः स उदाहृतः। अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥ ९६ ॥
त्र्यङ्गुलस्य च विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः।
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिले स्यात् तथोपरि। तस्मिन्नावाहयेद् देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः ॥ ९७ ॥
आदित्याभिमुखाः सर्वाः साधिप्रत्यधिदेवताः। स्थापनीया मुनिश्रेष्ठ नोत्तरेण पराङ्मुखाः ॥ ९८ ॥
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता।
सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ९९ ॥

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर कुण्ड* तैयार कराये, जो चारों ओरसे चौकोर जिसमें योनिरूप मुख बना हो और जो मेखलासे युक्त। यह मेखला चार अङ्गुल चौड़ी और उतनी ही ऊँची, कुण्डको चारों ओरसे घेरे हुए और पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो। सभी लोगोंके लिये ग्रह-शान्तिके निमित्त नवग्रह-यज्ञ बतलाया गया है। चूँकि उपर्युक्त परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्षहोमको अयुतहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। विश्वकर्माने कुण्डके पूर्वोत्तर दिशामें तीन बित्तेकी दूरीपर देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो चारों ओरसे चौकोर, पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू, विष्कम्भ (कुण्डके व्यास)के आधे परिमाणके बराबर ऊँची और तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची तथा शेष दो एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई तीन अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। मुनिश्रेष्ठ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी

* कल्याण अग्निपुराणाङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप निर्माणकी पूरी विधि है।

तारावलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमि यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देनी चाहिये ॥ ७७–८७½ ॥

प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु ॥ ८८ ॥
शोभनं कारयेत् कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम्। चतुरस्रं समंतात्तु योनिवक्त्रं समेखलम् ॥ ८९ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता। प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता ॥ ९० ॥
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः।
मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत्। यस्मात् तस्मात् सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥ ९१ ॥
अस्माद् दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा। आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ९२ ॥
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः। लक्षहोमे भवेत् कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥ ९३ ॥
तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम्। प्रागुदक्प्लवनं तच्च चतुरस्रं समंततः ॥ ९४ ॥
विष्कम्भार्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा। संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥ ९५ ॥
द्व्यङ्गुलो ह्युच्छ्रितो वप्रः प्रथमः स उदाहृतः। अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥ ९६ ॥
त्र्यङ्गुलस्य च विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः।
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिले स्यात् तथोपरि। तस्मिन्नावाहयेद् देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः ॥ ९७ ॥
आदित्याभिमुखाः सर्वाः साधिप्रत्यधिदेवताः। स्थापनीया मुनिश्रेष्ठ नोत्तरेण पराङ्मुखाः ॥ ९८ ॥
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता।
सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ९९ ॥

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर कुण्ड* तैयार कराये, जो चारों ओरसे चौकोर जिसमें योनिरूप मुख बना हो और जो मेखलासे युक्त। यह मेखला चार अङ्गुल चौड़ी और उतनी ही ऊँची, कुण्डको चारों ओरसे घेरे हुए और पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो। सभी लोगोंके लिये ग्रह-शान्तिके निमित्त नवग्रह-यज्ञ बतलाया गया है। चूँकि उपर्युक्त परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्षहोमको अयुतहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। विश्वकर्माने कुण्डके पूर्वोत्तर दिशामें तीन बित्तेकी दूरीपर देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो चारों ओरसे चौकोर, पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू, विष्कम्भ (कुण्डके व्यास)के आधे परिमाणके बराबर ऊँची और तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची तथा शेष दो एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई तीन अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। मुनिश्रेष्ठ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी

* कल्याण अग्निपुराणाङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप निर्माणकी पूरी विधि है।

उसी प्रकार लक्षहोममें अपनी सामर्थ्यके अनुकूल मत्सररहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कड़े, कुण्डल, अँगूठी और कण्ठसूत्र (हार) आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नदानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विजको और दक्षिणारहित यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है। स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्षहोम करना चाहिये; क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दरी पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ १०६–११८ ॥

अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा। आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ॥११९॥
पूर्ववद् ग्रहदेवानामावाहनविसर्जनैः।
होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च। कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे ॥१२०॥
कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं तु सर्वतः। योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ॥१२१॥
द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः। त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता तद्वद् द्वितीया परिकीर्तिता ॥१२२॥
उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला। द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते ॥१२३॥
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता। कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता ॥१२४॥
गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता। एतत् सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते ॥१२५॥
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसंनिभम्। वेदी च कोटिहोमे स्याद् वितस्तीनां चतुष्टयम् ॥१२६॥
चतुरस्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तु संयुता। वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनां च तथोच्छ्रयः ॥१२७॥
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः। पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम् ॥ १२८ ॥
यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्। अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बुधः ॥ १२९ ॥
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः।
एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूर्ववत् पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः ॥ १३० ॥

*

उसी प्रकार लक्षहोममें अपनी सामर्थ्यके अनुकूल मत्सररहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कड़े, कुण्डल, अँगूठी और कण्ठसूत्र (हार) आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नदानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विजको और दक्षिणारहित यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है। स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्षहोम करना चाहिये; क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दरी पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है॥ १०६—११८॥

अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा। आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च॥११९॥
पूर्ववद् ग्रहदेवानामावाहनविसर्जनैः।
होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च। कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे॥१२०॥
कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं तु सर्वतः। योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्॥१२१॥
द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः। त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता तद्वद् द्वितीया परिकीर्तिता॥१२२॥
उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला। द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते॥१२३॥
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता। कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता॥१२४॥
गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता। एतत् सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते॥१२५॥
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसंनिभम्। वेदी च कोटिहोमे स्याद् वितस्तीनां चतुष्टयम्॥१२६॥
चतुरस्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तु संयुता। वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनां च तथोच्छ्रयः॥१२७॥
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः। पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम्॥१२८॥
यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्। अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बुधः॥१२९॥
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः।
एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूर्ववत् पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः॥१३०॥

*

दानके लिये वे ही पूर्वकथित मन्त्र इसमें भी हैं। लक्षहोममें केवल वसोर्धाराका विधान विशेष होता है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे कोटिहोमका विधान करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मरनेपर विष्णुलोकमें चला जाता है। जो मनुष्य तीनों प्रकारके ग्रहयज्ञोंका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और अन्तमें वह इन्द्रलोकमें चला जाता है। धर्मज्ञ मनुष्य अ॰ हजार अश्वमेधयज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल करता है, वह फल कोटिहोम नामक यज्ञसे हो जाता है। शिवजीने यथार्थरूपसे कहा कि कोटिहोमके अनुष्ठानसे हजारों ब्रह्महत्या अरबों भ्रूणहत्या-जैसे महापातक नष्ट हो जाते ॥ १३१—१३९ ॥

वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्। नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत्॥ १४०॥
अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्। तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत्॥ १४१॥
वृत्तं चोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्मणि। त्रिमेखलैश्चैकवक्त्रमरत्निविस्तरेण तु॥ १४२॥
पलाशसमिधः शस्ता मधुगोरोचनान्विताः। चन्दनागुरुणा तद्वत् कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः॥ १४३॥
होमयेन्मधुसर्पिर्भ्यां बिल्वानि कमलानि च। सहस्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा॥ १४४॥
वश्यकर्मणि बिल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्। सुमित्रिया न आप ओषधय इति होमयेत्॥ १४५॥
न चात्र स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्। स्नानं सर्वौषधैः कृत्वा शुक्लपुष्पाम्बरो गृही॥ १४६॥
कण्ठसूत्रैः सकनकैर्विप्रान् समभिपूजयेत्। सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्ला गावः सकाञ्चनाः॥ १४७॥
अवशानि वशीकुर्यात् सर्वशत्रुबलान्यपि। अमित्राण्यपि मित्राणि होमोऽयं पापनाशनः॥ १४८॥

नारद! यदि वशीकरण, अभिचार तथा उच्चाटन आदि काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करना हो तो पहले नवग्रह-यज्ञ सम्पन्न कर तत्पश्चात् काम्य कर्म करना चाहिये, अन्यथा वह काम्य कर्म मनुष्योंको कहीं भी [illegible] नहीं हो सकता। अतः पहले अयुत-[illegible] सम्पादन कर लेना उचित है। उच्चाटन और [illegible] कर्ममें कुण्डको गोलाकार बनाना चाहिये। उसका विस्तार अर्थात् व्यास एक अरत्नि हो। वह तीन मेखलाओं और एक मुखसे युक्त हो। इन कार्योंमें मधु, गोरोचन, चन्दन, अगुरु और कुङ्कुमसे अभिषिक्त की हुई पलाशकी समिधाएँ प्रशस्त मानी गयी हैं। मधु और घीसे चुपड़े हुए बेल और कमल-पुष्पके हवनका विधान है। ब्रह्माने सदा दस हजार आहुतियोंका ही विधान बतलाया है। धर्मज्ञ यजमानको वशीकरण-कर्ममें '**सुमित्रिया न आप ओषधयः**'—इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। इस कार्यमें कलशका स्थापन और अभिषेचन नहीं किया जाता। गृहस्थ यजमान सर्वौषधमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण कर ले और स्वर्णनिर्मित कण्ठहारोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा उन्हें महीन वस्त्र एवं स्वर्णसे विभूषित श्वेत रंगकी गौएँ प्रदान करे। (इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया) यह पापनाशक हवन वशमें न आनेवाली शत्रुओंकी सारी सेनाओंको वशीभूत कर देता है और शत्रुओंको मित्र बना देता है ॥ १४०—१४८ ॥

विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते। त्रिमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं च सर्वशः॥ १४९॥
होमं कुर्युस्ततो विप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः। निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्बरधारिणः॥ १५०॥
नववायसरक्ताढ्यपात्रत्रयसमन्विताः।
समिधो वामहस्तेन श्येनास्थिबलसंयुताः। होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायद्भिरशिवं रिपोः॥ १५१॥
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु तथा हुंफडितीति च। श्येनाभिचारमन्त्रेण क्षुरं समभिमन्त्र्य च॥ १५२॥

दानके लिये वे ही पूर्वकथित मन्त्र इसमें भी हैं। लक्षहोममें केवल वसोर्धाराका विधान विशेष होता है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे कोटिहोमका विधान करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मरनेपर विष्णुलोकमें चला जाता है। जो मनुष्य तीनों प्रकारके ग्रहयज्ञोंका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और अन्तमें वह इन्द्रलोकमें चला जाता है। धर्मज्ञ मनुष्य अठा हजार अश्वमेधयज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्र करता है, वह फल कोटिहोम नामक यज्ञसे प्रा हो जाता है। शिवजीने यथार्थरूपसे कहा कि कोटिहोमके अनुष्ठानसे हजारों ब्रह्महत्या औ अरबों भ्रूणहत्या-जैसे महापातक नष्ट हो जाते है ॥ १३१—१३९ ॥

वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्। नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत् ॥ १४० ॥
अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्। तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत् ॥ १४१ ॥
वृत्तं चोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्मणि। त्रिमेखलैकवक्त्रं चारत्निविस्तरेण तु ॥ १४२ ॥
पलाशसमिधः शस्ता मधुगोरोचनान्विताः। चन्दनागुरुणा तद्वत् कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः ॥ १४३ ॥
होमयेन्मधुसर्पिर्भ्यां बिल्वानि कमलानि च। सहस्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा ॥ १४४ ॥
वश्यकर्मणि बिल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्। सुमित्रिया न आप ओषधय इति होमयेत् ॥ १४५ ॥
न चात्र स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्। स्नानं सर्वौषधैः कृत्वा शुक्लपुष्पाम्बरो गृही ॥ १४६ ॥
कण्ठसूत्रैः सकनकैर्विप्रान् समभिपूजयेत्। सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्ला गावः सकाञ्चनाः ॥ १४७ ॥
अवशानि वशीकुर्यात् सर्वशत्रुबलान्यपि। अमित्राण्यपि मित्राणि होमोऽयं पापनाशनः ॥ १४८ ॥

नारद! यदि वशीकरण, अभिचार तथा उच्चाटन आदि काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करना हो तो पहले नवग्रह-यज्ञ सम्पन्न कर तत्पश्चात् काम्य कर्म करना चाहिये, अन्यथा वह काम्य कर्म मनुष्योंको कहीं भी [illegible] नहीं हो सकता। अतः पहले अयुत-[illegible] सम्पादन कर लेना उचित है। उच्चाटन और [illegible] कर्मोंमें कुण्डको गोलाकार बनाना चाहिये। [illegible]सका विस्तार अर्थात् व्यास एक अरत्नि हो। वह तीन [मे]खलाओं और एक मुखसे युक्त हो। इन कार्योंमें मधु, [गो]रोचन, चन्दन, अगुरु और कुङ्कुमसे अभिषिक्त की हुई [पल]ाशकी समिधाएँ प्रशस्त मानी गयी हैं। मधु और [घी]से चुपड़े हुए बेल और कमल-पुष्पके हवनका विधान है। ब्रह्माने सदा दस हजार आहुतियोंका ही विधान बतलाया है। धर्मज्ञ यजमानको वशीकरण-कर्ममें 'सुमित्रिया न आप ओषधयः—' इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। इस कार्यमें कलशका स्थापन और अभिषेचन नहीं किया जाता। गृहस्थ यजमान सर्वौषधमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण कर ले और स्वर्णनिर्मित कण्ठहारोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा उन्हें महीन वस्त्र एवं स्वर्णसे विभूषित श्वेत रंगकी गौएँ प्रदान करे। (इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया) यह पापनाशक हवन वशमें न आनेवाली शत्रुओंकी सारी सेनाओंको वशीभूत कर देता है और शत्रुओंको मित्र बना देता है ॥ १४०—१४८ ॥

विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते। त्रिमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं च सर्वशः ॥ १४९ ॥
होमं कुर्युस्ततो विप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः। निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्बरधारिणः ॥ १५० ॥
नववायसरक्ताढ्यपात्रत्रयसमन्विताः।
समिधो वामहस्तेन श्येनास्थियलसंयुताः। होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायद्भिरशिवं रिपोः ॥ १५१ ॥
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु तथा हुंफडितीति च। श्येनाभिचारमन्त्रेण क्षुरं समभिमन्त्र्य च ॥ १५२ ॥

शिवजीने कहा—नारद ! (चित्र-प्रतिमादिमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेतवस्त्र, और श्वेत अश्वयुक्त हैं। उनका वाहन—श्वेत अश्वयुक्त रथ है। उनके दोनों हाथ गदा और वरदमुद्रासे युक्त बनाना चाहिये। धरणीनन्दन मंगलके चार भुजाएँ हैं। उनके शरीरके रोएँ लाल हैं, वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं और उनके चारों हाथ क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, गदा एवं वरमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीर-कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे भी चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी करनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्र-नीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नील रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा) में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबोंके दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्रवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनो हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई एक सौ आठ अङ्गुल (४॥ हाथ)की होनी चाहिये ॥ १–९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहरूपाख्यान नामक चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ अध्याय

माहेश्वर-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश तथान्यदपि यच्छ्रुतम्। भुक्तिमुक्तिफलायालं तत् पुनर्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः। मत्समस्तपसा ब्रह्मन् पुराणश्रुतिविस्तरैः ॥ २ ॥
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः। धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृति नारद ॥ ३ ॥

नारदजीने पूछा—भूत और भविष्यके स्वामी भगवन् ! इनके अतिरिक्त भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेमें समर्थ यदि कोई अन्य व्रत सुना गया हो तो उसे पुनः कहनेकी कृपा करें। ऐसा पूछे जानेपर भगवान् शम्भुने कहा—'ब्रह्मन् ! यह नन्दी शब्दशास्त्रका पारगामी विद्वान् और तपस्या तथा पुराणों एवं श्रुतियोंकी विस्तृत जानकारीमें मेरे समान है। यह वृषरूपसे साक्षात् धर्म और गणका अधीश्वर है। नारद ! अब यही इससे आगे माहेश्वर-धर्मोंका वर्णन करेगा ॥ १–३ ॥

मत्स्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
नारदोऽपि हि शुश्रूषुरपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्। आदिष्टस्त्वं शिवेनेह वद माहेश्वरं व्रतम् ॥ ४ ॥

शिवजीने कहा—नारद ! (चित्र-प्रतिमादिमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेतवस्त्र, और श्वेत अश्वयुक्त हैं। उनका वाहन—श्वेत अश्वयुक्त रथ है। उनके दोनों हाथ गदा और वरदमुद्रासे युक्त बनाना चाहिये। धरणीनन्दन मंगलके चार भुजाएँ हैं। उनके शरीरके रोएँ लाल हैं, वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं और उनके चारों हाथ क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, गदा एवं वरमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीर-कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे भी चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी करनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्र-नीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नील रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा) में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबोंके दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्रवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई एक सौ आठ अङ्गुल (४॥ हाथ)की होनी चाहिये ॥ १—९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहरूपाख्यान नामक चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ अध्याय

माहेश्वर-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश तथान्यदपि यच्छ्रुतम्। भुक्तिमुक्तिफलायालं तत् पुनर्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः। मत्समस्तपसा ब्रह्मन् पुराणश्रुतिविस्तरैः ॥ २ ॥
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः। धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृति नारद ॥ ३ ॥

नारदजीने पूछा—भूत और भविष्यके स्वामी भगवन्! इनके अतिरिक्त भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेमें समर्थ यदि कोई अन्य व्रत सुना गया हो तो उसे पुनः कहनेकी कृपा करें। ऐसा पूछे जानेपर भगवान् शम्भुने कहा—'ब्रह्मन्! यह नन्दी शब्दशास्त्रका पारगामी विद्वान् और तपस्या तथा पुराणों एवं श्रुतियोंकी विस्तृत जानकारीमें मेरे समान है। यह वृषरूपसे साक्षात् धर्म और गणका अधीश्वर है। नारद! अब यही इससे आगे माहेश्वर-धर्मोंका वर्णन करेगा ॥ १—३ ॥

मत्स्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
नारदोऽपि हि शुश्रूषुरपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्। आदिष्टस्त्वं शिवेनेह वद माहेश्वरं व्रतम् ॥ ४ ॥

से पार्वतीका भी पूजन करे। तत्पश्चात् जलपूर्ण कलश-सहित, श्वेत पुष्पमाला और वस्त्रसे सुशोभित, पञ्चरत्न-युक्त स्वर्णमय वृषभको नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंके साथ ब्राह्मणको दान कर दे और यों प्रार्थना करे—'पिनाकधारी देवाधिदेव सद्योजात मेरे व्रतमें प्रसन्न हों।' तदनन्तर माङ्गलिक ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन एवं दक्षिणा आदि देकर तृप्त करे और स्वयं दधिमिश्रित घी खाकर रात्रिमें उत्तराभिमुख हो भूमिपर शयन करे। पूर्णिमा तिथिको प्रातःकाल उठकर ब्राह्मणों-की पूजा करनेके पश्चात् मौन होकर भोजन करे। उसी प्रकार कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें भी यह सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये ॥ ५—१७ ॥

चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात् पूर्ववदर्चनम्। ये तु मासे विशेषाः स्युस्तान् निबोध क्रमादिह ॥१८॥
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत्। शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ॥ १९ ॥
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम्। नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम् ॥ २० ॥
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः। नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे ॥ २१ ॥
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः। गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ २२ ॥
पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरञ्चागुरुं यवाः।
तिलाः कृष्णाश्च विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम्। प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥ २३ ॥
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि। सिन्धुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ॥ २४ ॥
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः। एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत् पार्वतीपतिम् ॥ २५ ॥

इसी प्रकार सभी चतुर्दशी तिथियोंमें पूर्ववत् शिव-पार्वतीका पूजन करना चाहिये। अब प्रत्येक मासमें जो विशेषताएँ हैं, उन्हें क्रमशः (बतला रहा हूँ,) सुनिये। मार्ग-शीर्ष आदि प्रत्येक मासमें क्रमशः इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'शंकराय नमस्तेऽस्तु'—आप शंकरके लिये मेरा नमस्कार प्राप्त हो। 'नमस्ते करवीरक'—करवीरक! आपको नमस्कार है। 'त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु'—आप त्र्यम्बकके लिये प्रणाम है। इसके बाद 'महेश्वराय नमः'—महेश्वरको अभिवादन है। 'महादेव नमस्तेऽस्तु'—महादेव! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। उसके बाद 'स्थाणवे नमः'—स्थाणुको प्रणाम है। 'पशुपतये नमः'—पशुपतिको अभिवादन है। 'नाथ नमस्ते'—नाथ! आपको नमस्कार है। पुनः 'शम्भवे नमः'—शम्भुको प्रणाम है। 'परमानन्द नमस्ते'—परमानन्द! आपको अभिवादन है। 'सोमार्धधारिणे नमः'—ललाटमें अर्धचन्द्र धारण करनेवालेको नमस्कार है। 'भीमाय नमः'—भयंकर रूपधारीको प्रणाम है। ऐसा कहकर अन्तमें कहे कि 'मैं आपके शरणागत हूँ।' प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, पञ्चगव्य, बेल, कर्पूर, अगुरु, यव और काला तिल—इनमेंसे क्रमशः एक-एक पदार्थ-का प्राशन बतलाया गया है। इसी प्रकार प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें मन्दार (पारिभद्र), मालती, धतूरा, सिन्दुवार, अशोक, मल्लिका, पाटल (पाँडर पुष्प या लाल गुलाब), मन्दार-पुष्प (सूर्यमुखी), कदम्ब, शतपत्री (श्वेत कमल या गुलाब) और कमल—इनमेंसे क्रमशः एक-एकके द्वारा पार्वतीपति शंकरकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १८—२५ ॥

पुनश्च कार्तिके मासे प्राप्ते संतर्पयेद् द्विजान्। अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ २६ ॥
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः। उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह ॥ २७ ॥
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम्। सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात् सकुम्भकाम् ॥ २८ ॥
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतम्। स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च ॥ २९ ॥

से पार्वतीका भी पूजन करे । तत्पश्चात् जलपूर्ण कलश-सहित, श्वेत पुष्पमाला और वस्त्रसे सुशोभित, पञ्चरत्न-युक्त स्वर्णमय वृषभको नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंके साथ ब्राह्मणको दान कर दे और यों प्रार्थना करे—'पिनाकधारी देवाधिदेव सद्योजात मेरे व्रतमें प्रसन्न हों।' तदनन्तर माङ्गलिक ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन एवं दक्षिणा आदि देकर तृप्त करे और स्वयं दधिमिश्रित घी खाकर रात्रिमें उत्तराभिमुख हो भूमिपर शयन करे । पूर्णिमा तिथिको प्रातःकाल उठकर ब्राह्मणों-की पूजा करनेके पश्चात् मौन होकर भोजन करे । उसी प्रकार कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें भी यह सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये ॥ ५—१७ ॥

चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात् पूर्ववदर्चनम् । ये तु मासे विशेषाः स्युस्तान् निबोध क्रमादिह ॥ १८ ॥
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् । शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ॥ १९ ॥
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् । नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम् ॥ २० ॥
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः । नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे ॥ २१ ॥
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ २२ ॥
पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरञ्चागुरुं यवाः ।
तिलाः कृष्णाश्च विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम् । प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥ २३ ॥
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि । सिन्धुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ॥ २४ ॥
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः । एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत् पार्वतीपतिम् ॥ २५ ॥

इसी प्रकार सभी चतुर्दशी तिथियोंमें पूर्ववत् शिव-पार्वतीका पूजन करना चाहिये। अब प्रत्येक मासमें जो विशेषताएँ हैं, उन्हें क्रमशः (बतला रहा हूँ,) सुनिये। मार्ग-शीर्ष आदि प्रत्येक मासमें क्रमशः इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'शंकराय नमस्तेऽस्तु'—आप शंकरके लिये मेरा नमस्कार प्राप्त हो। 'नमस्ते करवीरक'—करवीरक ! आपको नमस्कार है । 'त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु'—आप त्र्यम्बकके लिये प्रणाम है। इसके बाद 'महेश्वराय नमः'—महेश्वरको अभिवादन है। 'महादेव नमस्तेऽस्तु'—महादेव ! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। उसके बाद 'स्थाणवे नमः'—स्थाणुको प्रणाम है । 'पशुपतये नमः'—पशुपतिको अभिवादन है । 'नाथ नमस्ते'—नाथ ! आपको नमस्कार है । पुनः 'शम्भवे नमः'—शम्भुको प्रणाम है । 'परमानन्द नमस्ते'—परमानन्द ! आपको अभिवादन है । 'सोमार्धधारिणे नमः'—ललाटमें अर्धचन्द्र धारण करनेवालेको नमस्कार है । 'भीमाय नमः'—भयंकर रूपधारीको प्रणाम है । ऐसा कहकर अन्तमें कहे कि 'मैं आपके शरणागत हूँ।' प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, पञ्चगव्य, बेल, कपूर, अगुरु, यव और काला तिल—इनमेंसे क्रमशः एक-एक पदार्थ-का प्राशन बतलाया गया है । इसी प्रकार प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें मन्दार (पारिभद्र), मालती, धतूरा, सिन्दुवार, अशोक, मल्लिका, पाटल (पाँडर पुष्प या लाल गुलाब), मन्दार-पुष्प (सूर्यमुखी), कदम्ब, शतपत्री (श्वेत कमल या गुलाब) और कमल—इनमेंसे क्रमशः एक-एकके द्वारा पार्वतीपति शंकरकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १८—२५ ॥

पुनश्च कार्तिके मासे प्राप्ते संतर्पयेद् द्विजान् । अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ २६ ॥
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः । उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह ॥ २७ ॥
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम् । सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात् सकुम्भकाम् ॥ २८ ॥
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुताम् । स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च ॥ २९ ॥

बृहस्पति समर्थ हैं न इन्द्र, न ब्रह्मा समर्थ हैं न सिद्ध-गण तथा मैं भी इसका वर्णन नहीं कर सकता। जो मनुष्य मत्सररहित हो सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त करनेवाली इस शिवचतुर्दशीके माहात्म्यको सदा पढ़ता, स्मरण करता अथवा श्रवण करता है, उस पुण्यात्माका करोड़ों देवाङ्गनाएँ स्तवन करती हैं, फिर जो सदा इसका अनुष्ठान करता है, उसकी तो बात ही क्या है! स्त्री भी यदि अपने पति, पुत्र और गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी परमेश्वरकी कृपासे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके परमपदको प्राप्त हो जाती है* ॥ ३३—३८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शिवचतुर्दशी-व्रत नामक पंचानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९५ ॥

छानबेवाँ अध्याय

सर्वफलत्याग-व्रतका विधान और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद् भवेच्छृणु नारद। यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने व्रतम्।
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा। आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ २ ॥
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम। सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥ ३ ॥
अष्टादशानां धान्यानामवर्ज्यं फलमूलकैः।
वर्जयेदब्दमेकं तु ऋते औषधकारणम्। सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजं च कारयेत् ॥ ४ ॥
कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वार्ताकं पनसं तथा। आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथ वालुकम् ॥ ५ ॥
श्रीफलाश्वत्थबदरं जम्बीरं कदलीफलम्। काश्मरं दाडिमं शक्त्या कलधौतानि षोडश ॥ ६ ॥
मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडी करमर्दकम्। कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीरकुटजं शमी ॥ ७ ॥
औदुम्बरं नारिकेलं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम्। रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश ॥ ८ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब कर्म-'फलत्याग' नामक व्रतका जो महत्त्व है, उसे सुनिये। वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। मुने! मङ्गलमय मार्गशीर्ष मासमें शुक्लपक्षकी तृतीया, अष्टमी, द्वादशी अथवा चतुर्दशी तिथिको ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये। मुनिसत्तम! इसी प्रकार यह व्रत अन्य पुण्यप्रद महीनोंमें भी किया जा सकता है। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतमें औषधके अतिरिक्त सामान्यरूपसे निन्द्य फल और मूलके साथ अठारह† प्रकारके धान्य त्याज्य—वर्जनीय माने गये हैं, अतः उन्हें

* मन्वादिके अनुसार पति आदिकी आज्ञाके बिना स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार नहीं है।

† अठारह प्रकारके धान्योंकी बात यहाँके अतिरिक्त मत्स्यपुराणके अगले दानप्रकरणमें (विशेषकर २७६। ७, २७७। ११ आदिमें) भी आयी है, पर इसमें उनका पूर्ण विवरण कहीं नहीं आया है। ये अठारह धान्य-याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपरार्क व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष्ट (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसों, राई या टाँगुन) और मसूर। अन्य मतसे मयुष्टादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

बृहस्पति समर्थ हैं न इन्द्र, न ब्रह्मा समर्थ हैं न सिद्ध-गण तथा मैं भी इसका वर्णन नहीं कर सकता। जो मनुष्य मत्सररहित हो सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त करनेवाली इस शिवचतुर्दशीके माहात्म्यको सदा पढ़ता, स्मरण करता अथवा श्रवण करता है, उस पुण्यात्माका करोड़ों देवाङ्गनाएँ स्तवन करती हैं, फिर जो सदा इसका अनुष्ठान करता है, उसकी तो बात ही क्या है! स्त्री भी यदि अपने पति, पुत्र और गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी परमेश्वरकी कृपासे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके परमपदको प्राप्त हो जाती है* ॥ २३—३८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शिवचतुर्दशी-व्रत नामक पंचानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९५ ॥

छानबेवाँ अध्याय

सर्वफलत्याग-व्रतका विधान और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद् भवेच्छृणु नारद। यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने व्रतम्।
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा। आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ २ ॥
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम। सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥ ३ ॥
अष्टादशानां धान्यानामवर्ज्यं फलमूलकैः।
वर्जयेदब्दमेकं तु ऋते औषधकारणम्। सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजं च कारयेत् ॥ ४ ॥
कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वार्ताकं पनसं तथा। आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथ वालुकम् ॥ ५ ॥
श्रीफलाश्वत्थबदरं जम्बीरं कदलीफलम्। काश्मरं दाडिमं शक्त्या कलधौतानि षोडश ॥ ६ ॥
मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडी करमर्दकम्। कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीरकुटजं शमी ॥ ७ ॥
औदुम्बरं नारिकेलं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम्। रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश ॥ ८ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब कर्म-'फलत्याग' नामक व्रतका जो महत्त्व है, उसे सुनिये। वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। मुने! मङ्गलमय मार्गशीर्ष मासमें शुक्लपक्षकी तृतीया, अष्टमी, द्वादशी अथवा चतुर्दशी तिथिको ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये। मुनिसत्तम! इसी प्रकार यह व्रत अन्य पुण्यप्रद महीनोंमें भी किया जा सकता है। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतमें औषधके अतिरिक्त सामान्यरूपसे निन्द्य फल और मूलके साथ अठारह† प्रकारके धान्य त्याज्य—वर्जनीय माने गये हैं, अतः उन्हें

---

* मन्वादिके अनुसार पति आदिकी आज्ञाके बिना स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार नहीं है।

† अठारह प्रकारके धान्योंकी बात यहाँके अतिरिक्त मत्स्यपुराणके अगले दानप्रकरणमें (विशेषकर २७६। ७, २७७। ११ आदिमें) भी आयी है, पर इसमें उनका पूर्ण विवरण कहीं नहीं आया है। ये अठारह धान्य-याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपरार्क व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष्ट (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसों, राई या टाँगून) और मसूर। अन्य मतसे मयुष्टादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं द्विजपुंगव ।
एतस्मान्नापरं किंचिदिह लोके परत्र च । व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदम् ॥ २२ ॥
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावन्तः परमाणवः ।
भवन्ति चूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम । तावद् युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ २३ ॥
एतत् समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात् ।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःखमाप्नोति धाम च पुरंदरलोकजुष्टम् ॥ २४ ॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद् वा देवालयेषु भवनेषु च धार्मिकाणाम् ।
पापैर्विमुक्तवपुरत्र पुरं मुरारेरानन्दकृत् पदमुपैति मुनीन्द्र सोऽपि ॥ २५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सर्वफलत्यागमाहात्म्यं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार आभूषणोंसे अलंकृत कर वह सारा सामान ब्राह्मणको दान कर दे । यदि सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो समस्त उपकरणोंसे युक्त शय्या भी देनी चाहिये । यदि असमर्थ हो तो पूर्वोक्त फलोंका ही विधिपूर्वक दान करे । तत्पश्चात् शिव और धर्मराजकी स्वर्णमयी मूर्तिको दोनों कलशोंके साथ ब्राह्मणको दान करके स्वयं मौन होकर तेलरहित पदार्थोंका भोजन करे । इसके बाद यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेका विधान है । वेदवेत्तालोग सूर्य, विष्णु और शिवके उपासक भक्तोंके लिये इस मङ्गलमय सर्वफलत्याग-व्रतको बतलाते हैं । द्विजपुंगव ! स्त्रियोंको भी यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये । मुनिश्रेष्ठ ! इस लोक या परलोकमें इससे बढ़कर कोई दूसरा ऐसा व्रत नहीं है, जो अनन्त फलका प्रदायक हो । मुनिसत्तम ! फलोंको चूर्ण कर देनेपर उनमें लगे हुए सोने, चाँदी और ताँबेके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक व्रती रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है । इस व्रतका जीवनपर्यन्त अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंको यह विनष्ट कर देता है, उन्हें जन्मान्तरमें भी पुत्र-वियोगका कष्ट नहीं भोगना पड़ता और मरणोपरान्त वे इन्द्रलोकमें चले जाते हैं । मुनीश्वर ! जो निर्धन पुरुष देव-मन्दिरों अथवा धर्मात्मा पुरुषोंके गृहोंमें इस व्रत-माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ता है, उसका शरीर इस लोकमें पापसे मुक्त हो जाता है और मरणोपरान्त वह विष्णुलोकमें आनन्ददायक स्थान प्राप्त कर लेता है ॥ १८—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सर्वफलत्याग-माहात्म्य नामक छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

आदित्यवार-कल्पका विधान और माहात्म्य

नारद उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम् । यच्छान्त्यै च मर्त्यानां वद नन्दीश तद् व्रतम् ॥ १ ॥

नारदजीने पूछा—नन्दीश्वर ! अब जो व्रत मृत्युलोकवासी पुरुषोंके लिये आरोग्यकारी, अनन्त फलका प्रदाता और शान्तिकारक हो, उसका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

यत् तद् विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम् । सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत् त्रिधा जगति स्थितम् ॥ २ ॥
तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा । तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥ ३ ॥
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम् । तदा शनिदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः ॥ ४ ॥

नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं द्विजपुंगव।
एतस्मान्नापरं किंचिदिह लोके परत्र च। व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदम् ॥ २२ ॥
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावन्तः परमाणवः।
भवन्ति चूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम। तावद् युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ २३ ॥
एतत् समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात्।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःखमाप्नोति धाम च पुरंदरलोकजुष्टम् ॥ २४ ॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद् वा देवालयेषु भवनेषु च धार्मिकाणाम्।
पापैर्वियुक्तवपुरत्र पुरं मुरारेरानन्दकृत् पदमुपैति मुनीन्द्र सोऽपि ॥ २५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सर्वफलत्यागमाहात्म्यं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार आभूषणोंसे अलंकृत कर वह सारा सामान ब्राह्मणको दान कर दे। यदि सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो समस्त उपकरणोंसे युक्त शय्या भी देनी चाहिये। यदि असमर्थ हो तो पूर्वोक्त फलोंका ही विधिपूर्वक दान करे। तत्पश्चात् शिव और धर्मराजकी स्वर्णमयी मूर्तिको दोनों कलशोंके साथ ब्राह्मणको दान करके स्वयं मौन होकर तेलरहित पदार्थोंका भोजन करे। इसके बाद यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेका विधान है। वेदवेत्तालोग सूर्य, विष्णु और शिवके उपासक भक्तोंके लिये इस मङ्गलमय सर्वफलत्याग-व्रतको बतलाते हैं। द्विजपुंगव ! स्त्रियोंको भी यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ ! इस लोक या परलोकमें इससे बढ़कर कोई दूसरा ऐसा व्रत नहीं है, जो अनन्त फलका प्रदायक हो। मुनिसत्तम ! फलोंको चूर्ण कर देनेपर उनमें लगे हुए सोने, चाँदी और ताँबेके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक व्रती रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस व्रतका जीवनपर्यन्त अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंको यह विनष्ट कर देता है, उन्हें जन्मान्तरमें भी पुत्र-वियोगका कष्ट नहीं भोगना पड़ता और मरणोपरान्त वे इन्द्रलोकमें चले जाते हैं। मुनीश्वर ! जो निर्धन पुरुष देव-मन्दिरों अथवा धर्मात्मा पुरुषोंके गृहोंमें इस व्रत-माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ता है, उसका शरीर इस लोकमें पापसे मुक्त हो जाता है और मरणोपरान्त वह विष्णुलोकमें आनन्ददायक स्थान प्राप्त कर लेता है ॥ १८—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सर्वफलत्याग-माहात्म्य नामक छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

आदित्यवार-कल्पका विधान और माहात्म्य

नारद उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम्। यच्छान्त्यै च मर्त्यानां वद नन्दीश तद् व्रतम् ॥ १ ॥

नारदजीने पूछा—नन्दीश्वर ! अब जो व्रत मृत्युलोकवासी पुरुषोंके लिये आरोग्यकारी, अनन्त फलका प्रदाता और शान्तिकारक हो, उसका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

यत् तद् विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम्। सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत् त्रिधा जगति स्थितम् ॥ २ ॥
तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा। तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥ ३ ॥
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम्। तदा शनिदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः ॥ ४ ॥

धर्मसंक्षयमवाप्य भूपतिः शोकदुःखभयरोगवर्जितः।
द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुनर्धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः ॥ १८ ॥
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा वेदमूर्तिदिननक्तमाचरेत्।
सापि लोकममरेशवन्दिता याति नारद रवेर्न संशयः ॥ १९ ॥
यः पठेदपि शृणोति मानवः पठ्यमानमथ वानुमोदते।
सोऽपि शक्रभुवनस्थितोऽमरैः पूज्यते वसति चाक्षयं दिवि ॥ २० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यवारकल्पो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन कर रातमें तेलरहित भोजन करना चाहिये। एक वर्ष पूरा होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे एक उत्तम कमल और एक दो भुजाधारी पुरुषकी मूर्ति बनवाये। फिर गुड़के ऊपर स्थित ताँबेके पूर्णपात्रपर उस कमल और पुरुषको रख दे। उस समय एक सवत्सा कपिला गौ भी प्रस्तुत करे, जो अधिक मूल्यवाली हो, जिसके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा जिसके निकट कांसदोहनी भी रखी हो। तत्पश्चात् लाल रंगके स्वर्णनिर्मित सिंघा बाजाके साथ लाल वस्त्र, पुष्पमाला और धूपसे ब्राह्मणकी पूजा करके संकल्प-पूर्वक गौ एवं कमलसहित उस पुरुष-मूर्तिको ऐसे ब्राह्मणको दान कर दे, जो अनेकों श्रेष्ठ व्रतोंमें दान लेनेका अधिकारी, सुडौल रूपसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय, शान्त-स्वभाव और विशाल कुटुम्बवाला हो। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'जो पापके विनाशक, विश्वके आत्मस्वरूप, सात घोड़ोंसे जुते रथपर आरूढ़ होनेवाले, ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंके तेजकी निधि, विधाता, भवसागरके लिये नौकास्वरूप और जगत्स्रष्टा हैं, उन सूर्यदेवको बारंबार नमस्कार है।' जो मानव इस लोकमें उपर्युक्त विधिके अनुसार एक वर्षतक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पाप-रहित होकर सूर्यलोकको चला जाता है। उस समय उसके ऊपर चँवर डुलाये जाते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह इस लोकमें शोक, दुःख, भय और रोगसे रहित होकर बारंबार अमित ओजस्वी एवं धर्मात्मा भूपाल होता है, उस समय सातों द्वीप उसके अधिकारमें रहते हैं। नारदजी ! पति, गुरुजन और देवताओंकी शुश्रूषामें तत्पर रहनेवाली जो नारी रविवारको इस नक्तव्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी इन्द्रद्वारा पूजित होकर निस्संदेह सूर्यलोकको चली जाती है। जो मानव इस व्रतको पढ़ता या सुनता है अथवा पढ़नेवालेका अनुमोदन करता है, वह भी इन्द्रलोकमें स्थित होकर देवताओंद्वारा पूजित होता है और अक्षय कालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यवार-कल्प नामक सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय

संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रान्त्युद्यापने फलम्। यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥
अयने विषुवे चापि संक्रान्तिव्रतमाचरेत्।
पूर्वेद्युरेकभुक्तेन दन्तधावनपूर्वकम्। संक्रान्तिवासरे प्रातस्तिलैः स्नानं विधीयते ॥ २ ॥
रविसंक्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम्। पद्मं सकर्णिकं कुर्यात् तस्मिन्नावाहयेद् रविम् ॥ ३ ॥

ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिपः स्यात् कुलशीलयुक्तः।
सृष्टेर्मुखेऽव्यङ्गवपुः सभार्यः प्रभूतपुत्रान्वयवन्दिताङ्घ्रिः॥ १४॥
इति पठति शृणोति वाथ भक्त्या विधिमखिलं रविसंक्रमस्य पुण्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपतेर्भवने प्रपूज्यते च॥ १५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे संक्रान्त्युद्यापनविधिर्नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे और बारह गौ एवं रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे। वे गौएँ दूध देनेवाली, सीधी-सादी एवं पुष्प-माला और वस्त्रसे सुसज्जित हों, उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उनके साथ काँसेकी दोहनी भी हो। जो इस प्रकारकी बारह गौओंका दान करनेमें असमर्थ हो, उसके लिये आठ, सात अथवा चार ही गौ दान करनेका विधान है। जो दुर्गतिमें पड़ा हुआ निर्धन हो, वह किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको एक ही कपिला गौका दान कर सकता है। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। पुरुषको इस दानमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। नारदजी! जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दरी पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है॥ १०—१५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें संक्रान्त्युद्यापनविधि नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

विभूतिद्वादशी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम्। विभूतिद्वादशीनाम सर्वदेवनमस्कृतम्॥ १॥
कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने।
आषाढे वा दशम्यां तु शुक्लायां लघुभुङ्नरः। कृत्वा सायन्तनीं संध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः॥ २॥
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्। द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो॥ ३॥
तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्च केशव। नमो नारायणायेति वाच्यं च स्वपता निशि॥ ४॥
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः। पूजयेत् पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ ५॥
विभूतये नमः पादावशोकाय च जानुनी। नमः शिवायेत्यूरू च विश्वमूर्ते नमः कटिम्॥ ६॥
कंदर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय नमः करौ। दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ॥ ७॥

न च व्याधिर्भवेत् तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् । वैष्णवो वाथ शैवो वा भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २
यावद् युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् । तावत् स्वर्गे वसेद् ब्रह्मन् भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥ २

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विष्णुव्रतं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल स्वर्णमय कमल और कलशके साथ वह देव-मूर्ति कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर देनी चाहिये । (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'देव ! जिस प्रकार आप सदा सम्पूर्ण विभूतियोंसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार इस निखिल कष्टोंसे परिपूर्ण संसाररूपी कीचड़से मेरा उद्धार कीजिये ।' मुने ! इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्‌के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करनी चाहिये । उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार यथाशक्ति बारहों द्वादशी-व्रतोंको समाप्त कर वर्षके अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शय्या दान करनी चाहिये । व्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शृङ्गार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर ग्राम अथवा गृहके साथ-साथ खेतका दान करना चाहिये । साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनराशियोंद्वारा करनेका विधान है । स्वल्प धनवाला व्रती अ सामर्थ्यके अनुकूल थोड़ा-थोड़ा ही दान कर सकत तथा जो व्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् मा प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे दो व पुष्पार्चनकी विधिसे इस व्रतका पालन करना चाहि जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-व्र अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अ सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है । उसे लाख जन्मोंतक न तो शोकरूप फलका भागी ह पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है । वह प्रत्येक जन विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है । ब्रह्मन् ! जब एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तब वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य क्षी होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है ॥१२—२१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-सम्बन्धी विष्णु-व्रत नामक निन्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९९ ॥

सौवाँ अध्याय

विभूतिद्वादशी*के प्रसङ्गमें राजा पुष्पवाहनका वृत्तान्त

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे राजाऽऽसीत् पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसंनिभः ॥ १
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण नारद । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगमं मुने ॥ २
लोकैः समस्तैर्नगरवासिभिः सहितो नृपः । द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं व्यचरत् तदा ॥ ३
कल्पादौ सप्तमं द्वीपं तस्य पुष्करवासिनः । लोकेन पूजितं यस्मात् पुष्करद्वीपमुच्यते ॥ ४
देवेन ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतोऽम्बुजम् । पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात् तं देवदानवाः ॥ ५
नागम्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।
पत्नी च तस्याप्रतिमा मुनीन्द्र नारीसहस्रैरभितोऽभिनन्द्या ।
नाम्ना च लावण्यवती बभूव सा पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ॥ ६ ॥

---

* इस व्रतका वर्णन पद्म० सृष्टिखं० २० । १-४२, भविष्योत्तर, विष्णुधर्मो, व्रतरत्न, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदि भी यों ही प्राप्त होता है । प्राचीन कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है ।

*

अतिलम्मता परमभीष्टतमाभिमुखी जाता महीश तव योषिदियं सुरूपा ।
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तमस्मिन् ।
क्षुत्पीडितेनाथ तदा न किंचिद्‌वासादितं वन्यफलादि खाद्यम् ॥ १३ ॥
अथाभिदृष्टं महदम्बुजाढ्यं सरोवरं पङ्कजषण्डमण्डितम् ।
पद्मान्यथादाय ततो बहूनि गतः पुरं वैदिशनामधेयम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—राजन्! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्गसंधि-युक्त तथा बेडौल था। तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धयुक्त और नख बहुत बढ़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और वह बड़ा कुरूप था। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहन ही थी। भूपाल! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पत्नी ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी बड़ी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीडित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कोई जंगली (कन्द-मूल) फल आदि कुछ भी खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिश* नामक नगर (विदिशा नगरी)में चले गये। ११—१४।

तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहस्तदासीत् ।
क्रेता न कश्चित् कमलेषु जातः क्लान्तो भृशं क्षुत्परिपीडितश्च ॥ १५ ॥
उपविष्टस्त्वमेकस्मिन् सभार्यो भवनाङ्गणे । अथ मङ्गलशब्दश्च त्वया रात्रौ महाञ्श्रुतः ॥ १६ ॥
सभार्यस्तत्र गतवान् यत्रासौ मङ्गलध्वनिः । तत्र मण्डपमध्यस्था विष्णोरर्चा विलोकिता ॥ १७ ॥
वेश्यानङ्गवती नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् । समाप्तौ माघमासस्य लवणाचलमुत्तमम् ॥ १८ ॥
निवेदयन्ती गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम् । अलंकृत्य हृषीकेशं सौवर्णमरपादपम् ॥ १९ ॥
तां तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम् । किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः ॥ २० ॥
इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नराधिप ।
तत्प्रसङ्गात् समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम् । शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्च सर्वतः ॥ २१ ॥

वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीददार न मिला। उस समय तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त चूर होकर पत्नीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पत्नीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गल शब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघ-मासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शय्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा होती

* यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके [illegible] इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है। इसपर कनिंघमका Bhelsa-Topes ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गव्रती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रति*के सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। वह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी ॥ २९—३३ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्ब्रह्मंस्तत्रैवान्तरधीयत । राजा यथोक्तं च पुनरकरोत् पुष्पवाहनः ॥ ३४ ॥
इदमाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत् । यथाकथंचित् कमलैर्द्वादश द्वादशीर्मुने ॥ ३५ ॥
कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणानघ । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत भक्त्या तुष्यति केशवः ॥ ३६ ॥
इति कलुषविदारणं जनानामपि पठतीह शृणोति चाथ भक्त्या ।
मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स कोटिशतानि वत्सराणाम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विभूतिद्वादशीव्रतं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! ऐसा कहकर प्रचेता मुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। ब्रह्मन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड व्रतका पालन करना आवश्यक है। मुने! जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमल-पुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य लोगोंके पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है ॥ ३४—३७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-व्रत नामक सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०० ॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

साठ व्रतोंका विधान और माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि व्रतषष्टिमनुत्तमाम् । रुद्रेणाभिहितां दिव्यां महापातकनाशिनीम् ॥ १ ॥
नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्धं कुटुम्बिने । हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद् विप्राय वाससी ॥ २ ॥
शिवरूपस्ततोऽस्माभिः शिवलोके स मोदते । एतद्देवव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥
यस्त्वेकभक्तेन क्षिपेत् समो हैमवृषान्वितम् ।
धेनुं तिलमयीं दद्यात् स पदं याति शांकरम् । एतद् रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनम् ॥ ४ ॥
यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम् ।
एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतम् । स वैष्णवं पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ५ ॥

---

* हरिवंश, अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये कामदेवकी दो पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यहीं है।

भरे हुए घड़ेके साथ स्वर्णनिर्मित भाँटा ब्राह्मणको दान करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसे 'शिवव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य हेमन्त और शिशिर ऋतुओंमें पुष्पोंको काममें नहीं लेता और फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिको अपनी शक्तिके अनुकूल सोनेके तीन पुष्प बनवाकर उन्हें सायंकालमें 'भगवान् शिव और केशव मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य फाल्गुन मासकी आदि तृतीया तिथिको नमक खाना छोड़ देता है तथा वर्षान्तके दिन 'भवानी मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे द्विज-दम्पतिकी भलीभाँति पूजा करके गृहस्थीके उपकरणोंसे युक्त गृह और शय्या दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य संध्याकी वेलामें मौन रहनेका नियम पालन कर वर्षकी समाप्तिमें घृतपूर्ण घट, दो वस्त्र, तिल और घंटा ब्राह्मणको दान करता है, वह पुनरागमनरहित सारस्वत-पदको प्राप्त होता है। सौन्दर्य और विद्या प्रदान करनेवाला यह 'सारस्वत' नामक व्रत है ॥ ९–१८ ॥

लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः। समान्ते हेमकमलं दद्याद् धेनुसमन्वितम् ॥ १९ ॥
स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीवाञ् जन्मजन्मनि। एतत् सम्पद्व्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥ २० ॥
कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च। यावदब्दं पुनर्दद्याद् धेनुं जलघटान्विताम् ॥ २१ ॥
जन्मायुतं स राजा स्यात् ततः शिवपुरं व्रजेत्। एतदायुर्व्रतं नाम सर्वकामप्रदायकम् ॥ २२ ॥
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकत्र वाग्यतः। एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः ॥ २३ ॥
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम्।
वृक्षं हिरण्मयं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्। एतत् कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ॥ २४ ॥
घृतेन स्नपनं कुर्याच्छम्भोर्वा केशवस्य च। अक्षताभिः सपुष्पाभिः कृत्वा गोमयमण्डलम् ॥ २५ ॥
तिलधेनुसमोपेतं समान्ते हेमपङ्कजम्।
शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते। सामगाय ततश्चैतत् सामव्रतमिहोच्यते ॥ २६ ॥

जो मनुष्य पञ्चमी तिथिको निराहार रहकर लक्ष्मीकी [illegible] करता है और वर्षकी समाप्तिके दिन गौके साथ स्वर्ण-निर्मित कमलका दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और प्रत्येक जन्ममें लक्ष्मीसे सम्पन्न रहता है। यह 'सम्पद्व्रत' है, जो दुःख और शोकका विनाश करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक भगवान् शिव और केशवकी मूर्तिके सामनेकी भूमिको लीपकर वहाँ जलपूर्ण घटसहित गौका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक राजा होता है और मरणोपरान्त शिवलोकमें जाता है। यह 'आयुव्रत' है, जो सभी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक मत्सररहित हो दिनमें एक बार भोजन कर मौन-धारणपूर्वक एक ही स्थानपर पीपल, सूर्य और गङ्गाको प्रणाम करता है तथा व्रतकी समाप्तिमें पूजनीय ब्राह्मण-दम्पतिको तीन गौओंके साथ स्वर्णनिर्मित वृक्षका दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। यह 'कीर्तिव्रत' है, जो वैभव और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक गोबरसे मण्डल बनाकर वहाँ भगवान् शिव अथवा केशवको घीसे स्नान कराकर पुष्प, अक्षत आदिसे पूजा करता है और वर्षान्तमें तिल-धेनुसहित आठ अङ्गुल लम्बा शुद्ध स्वर्णनिर्मित कमल सामवेदी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे इस लोकमें 'सामव्रत' कहा जाता है ॥ १९–२६ ॥

भागी होता है और कल्पान्तमें राजा होता है। यह 'अहिंसाव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य माघमासमें ब्राह्मवेलामें स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार एक द्विज-दम्पतिको भोजन कराकर पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनकी पूजा करता है, वह एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। यह 'सूर्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से आरम्भकर चार महीनेतक नित्य प्रातःकाल स्नान करता है और ब्राह्मणोंको भोजन देता है तथा कार्तिकी पूर्णिमाको गो-दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यह मङ्गलमय 'विष्णुव्रत' है। जो मनुष्य एक अयनसे दूसरे अयनतक (उत्तरायणसे दक्षिणायन अथवा दक्षिणायनसे उत्तरायणतक) पुष्प और घीका त्याग कर देता है और व्रतान्तके दिन घृत धेनुसहित पुष्पोंकी मालाएँ एवं घी और दूधसे बने हुए खाद्य पदार्थ ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको जाता है। यह 'शीलव्रत' है, जो सुशीलता एवं नीरोगतारूप फल प्रदान करता है। जो एक वर्षतक नित्य सायंकाल दीप-दान करता है और तेल-घी खाना छोड़ देता है, पुनः वर्षान्तमें ब्राह्मणको स्वर्ण-निर्मित चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्रके साथ दीपकका दान देता है, वह इस लोकमें तेजस्वी होता है और मरणोपरान्त रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'दीप्तिव्रत' कहलाता है ॥ ३३-४१ ॥

कार्तिक्यादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम्। नक्तं चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत् ॥ ४२ ॥
गौरीलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह। एतद् रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम् ॥ ४३ ॥
वर्जयेच्चैत्रमासे च यश्च गन्धानुलेपनम्।
शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी। वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयित्वाथ गोप्रदः।
भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजा भवेदिह। एतत् कान्तिव्रतं नाम कान्तिकीर्तिफलप्रदम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम्। त्र्यहं तिलप्रदो भूत्वा वह्निं संतर्प्य सद्द्विजम् ॥ ४६ ॥
सम्पूज्य विप्रदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः। शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥ ४७ ॥
पुण्येऽह्नि दद्यात् स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम्। एतद् ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणपददायकम् ॥ ४८ ॥
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्विताम्।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत् स याति परमं पदम्। एतद् धेनुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ४९ ॥
त्र्यहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम्।
पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या तण्डुलैस्तूपसंयुतम्। दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ५० ॥
मासोपवासी यो दद्याद् धेनुं विप्राय शोभनाम्। स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ५१ ॥

जो एक वर्षतक कार्तिक माससे प्रारम्भ कर तृतीया तिथिको गोमूत्र एवं जौसे बने हुए खाद्य पदार्थोंको खाकर नक्तव्रतका पालन करता है और वर्षान्तमें गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है और (पुण्य क्षीण होनेपर) भूतलपर राजा होता है। यह 'रुद्रव्रत' है, जो सदाके लिये कल्याणकारी है। जो चैत्र मासमें सुगन्धित वस्तुओंका अनुलेपन छोड़ देता है अर्थात् शरीरमें सुगन्धित पदार्थ नहीं लगाता और व्रतान्तमें ब्राह्मणको दो श्वेत वस्त्रोंके साथ गन्ध-धारियोंकी शुक्ति (गन्धद्रव्यविशेष) का दान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। यह 'दृढव्रत' कहलाता है। जो वैशाख मासमें पुष्प और नमकका परित्याग कर व्रतान्तमें गोदान करता है, वह एक कल्पतक विष्णु-लोकमें निवास करके (पुण्य क्षीण होनेपर) इस

ब्राह्मणको दो कपिला गौका दान करता है, वह देवताओं एवं असुरोंद्वारा सुपूजित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और एक कल्प बीतनेपर भूतलपर राजाधिराज होता है। इसे 'प्रभाव्रत' कहते हैं। जो एक वर्षतक दिनमें एक ही बार भोजन करके व्रतान्तमें खाद्य पदार्थोंसहित जलपूर्ण घटका दान करता है, वह एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्राप्तिव्रत' कहा जाता है। जो प्रत्येक मासकी अष्टमी तिथियोंमें रातमें एक बार भोजन करता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहा जाता है। जो वर्षा-ऋतुसे लेकर चार ऋतुओंतक ब्राह्मणको ईंधनका दान देता है और व्रतान्तमें घृत-धेनु प्रदान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला यह 'वैश्वानरव्रत' है। जो एकादशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें सोनेका विष्णु-चक्र बनवाकर दान करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता और एक कल्पके बीतनेपर भूतलपर राज्यका भागी त है। यह 'कृष्णव्रत' है। जो खीरका भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको दो गौ दान क वह लक्ष्मीलोकको प्राप्त होता है। इसे 'देवीव्रत जाता है। जो सप्तमी तिथिको रातमें एक बार करते हुए वर्षकी समाप्तिमें दुधारू गौका दान क वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'भानुव्रत' क है। जो चतुर्थी तिथिको रातमें एक बार भोजन हुए वर्षकी समाप्तिके अवसरपर सोनेका हाथी करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। शिव रूप फल प्रदान करनेवाला यह 'विनायकव्रत' है चौमासेमें (बेल, जामुन, बेर, कैथ और बीजपुर नं इन पाँच महाफलोंका परित्याग कर कार्तिक मासमें सो इन फलोंका निर्माण कराकर दो गौओंके साथ दान क है, वह विष्णुलोकको जाता है। विष्णुलोकरूप प्रदान करनेवाला यह 'फलव्रत' है। जो सप्तमी तिथि निराहार रहते हुए वर्षके अन्तमें अपनी शक्ति अनुसार स्वर्णनिर्मित कमल तथा सुवर्ण, अन्न अं वटसहित गौओंका दान करता है, वह सूर्यलोकमें जात है। सूर्यलोकरूप फलका प्रदाता यह 'सौरव्रत' है ॥ ५२–६३ ॥

द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेन च।
गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान् पूजयेच्छक्तितो नरः। परमं पदमाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ६४ ॥
कार्तिक्यां च वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति वार्षव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ६५ ॥
कृच्छ्रान्ते गोप्रदः कुर्याद् भोजनं शक्तितः पदम्। विप्राणां शांकरं याति प्राजापत्यमिदं व्रतम् ॥ ६६ ॥
चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समान्ते गोधनप्रदः। शैवं पदमवाप्नोति त्रैयम्बकमिदं व्रतम् ॥ ६७ ॥
सप्तरात्रोषितो दद्याद् घृतकुम्भं द्विजातये। घृतव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम् ॥ ६८ ॥
आकाशशायी वर्षासु धेनुमन्ते पयस्विनीम्। शक्रलोके वसेन्नित्यमिन्द्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ६९ ॥
अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः।
गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। इह चानन्दकृत् पुंसां श्रेयोव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७० ॥
हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम्।
दद्यात् कृतोपवासः स्याद् दिवि कल्पशतं वसेत्। कल्पान्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७१ ॥
तद्वद्धेमरथं दद्यात् करिभ्यां संयुतं नरः।
सत्यलोके वसेत् कल्पं सहस्रमथ भूपतिः। भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७२ ॥
उपवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत्। यक्षाधिपत्यमाप्नोति सुखव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७३ ॥
निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत्। वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते ॥ ७४ ॥

यः पठेच्छृणुयाद् वापि व्रतषष्टिमनुत्तमाम् । मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत् ॥ ८४ ॥
षष्टिव्रतं नारद पुण्यमेतत् तवोदितं विश्वजनीनमन्यत् ।
श्रोतुं तवेच्छा तदुदीरयामि प्रियेषु किं वाकथनीयमस्ति ॥ ८५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षष्टिव्रतमाहात्म्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

जो तृतीया तिथिको शिवालयमें एक बार चँदोवा या चाँदनी लगा देता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह भवानीलोकको जाता है। इसे 'भवानीव्रत' कहते हैं । जो माघ मासमें सप्तमी तिथिको रातभर गीला वस्त्र धारण किये रहता है और प्रातःकाल गौका दान करता है, वह एक कल्पतक स्वर्गमें निवास करके भूतल-पर राजा होता है । यह 'पवनव्रत' है। जो तीन राततक उपवास करके फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिको सुन्दर गृह दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है । यह 'धामव्रत' नामसे प्रसिद्ध है । जो निराहार रहकर तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) संध्याओंमें आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करता है, उसे इस लोकमें इन्द्रव्रतसे भी बढ़कर अधिक मात्रामें अन्न एवं गोधनकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह मोक्षलाभ करता है । जो शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको चन्द्रमाके उद्देश्यसे नमकसे परिपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान करता है और वर्षकी समाप्तिमें गोदान देता है, वह शिवलोकको जाता है और एक कल्प व्यतीत होनेपर भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह 'सोमव्रत' नामसे विख्यात है । जो प्रतिपदा तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षान्तमें कपिला गौका दान देता है, वह वैश्वानरलोकको जाता है। इसे 'शिवव्रत' कहते हैं । जो दशमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षकी समाप्तिके अवसरपर स्वर्णनिर्मित दसों दिशाओंकी प्रतिमाके साथ दस गायें दान करता है, वह ब्रह्माण्डका अधीश्वर होता है। यह 'विश्वव्रत' है, जो महापातकोंका विनाशक है। जो इस सर्वोत्तम 'षष्टिव्रत' (६० व्रतोंकी चर्चा)को पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी सौ मन्वन्तरतक गन्धर्वलोकका अधिपति होता है। नारद ! यह षष्टिव्रत* परम पुण्यप्रद और सभी जीवोंके लिये लाभदायक है, मैंने आपसे इसका वर्णन कर दिया । अब यदि आपकी और भी कुछ सुननेकी इच्छा हो तो मैं उसका वर्णन करूँगा; क्योंकि प्रियजनोंके प्रति भला कौन-सी वस्तु अकथनीय हो सकती है ॥ ७७–८५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें षष्टिव्रतमाहात्म्य नामक एक सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०१ ॥
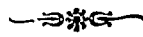
एक सौ दोवाँ अध्याय

स्नान† और तर्पणकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते । तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ॥ १ ॥
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् ।
तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । नमो नारायणायेति मन्त्र एष उदाहृतः ॥ २ ॥
दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः ।

---

* स्वल्पान्तरसे ये सभी व्रत पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० २० श्लोक ४५से १४४ तकमें तथा भविष्योत्तरपुराणके १२०वें अध्यायमें भी निर्दिष्ट हैं ।

† स्नानविधिकी विस्तृत चर्चा 'स्नानव्यास' में है । यह सुन्दर प्रकरण वृहद्व्यासादि स्मृतियोंमें भी संगृहीत है ।

हुई हो, सारा धन तुम्हारे ही भीतर वर्तमान है, इसलिये मेरेद्वारा जो कुछ भी पाप घटित हुए हैं, उन सभीको दूर लो। मृत्तिके! शतबाहु भगवान् विष्णुने श्यामवर्णका वराहरूप धारण कर तुम्हारा पातालसे उद्धार किया है, पुनः महर्षि कश्यपद्वारा आमन्त्रित होकर तुम ब्राह्मणोंको प्रदान की गयी हो, अतः मेरे अङ्गोंपर आरूढ़ होकर मेरे सारे पापोंको दूर कर दो। मृत्तिके! विश्वके सारे पदार्थ तो तुम्हारे भीतर ही स्थित हैं, अतः तुम हमें पुष्टि प्रदान करो। सुव्रते! तुम समस्त जीवोंकी उत्पत्तिके लिये अरणिस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है।' इस प्रकार मिट्टी लगाकर स्नान करनेके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करे। पुनः जलसे बाहर निकलकर दो श्वेत रंगके शुद्ध वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् त्रिलोकीको तृप्त करनेके इस प्रकार तर्पण करना चाहिये। उस समय उप
होकर (जनेऊको जैसे पहनते हैं, बायें कंधेपर र
दाहिने हाथके नीचे कर) सर्वप्रथम देवतर्पण क
हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'देव, यक्ष, ना
गन्धर्व, अप्सरा, असुर, क्रूर सर्प, गरुड आदि पक्षी, वृ
शृगाल, अन्य पक्षिगण तथा जो जीव वायु एवं जल
आधारपर जीवित रहनेवाले हैं, आकाशचारी हैं, निराधा
हैं और जो जीव पाप एवं धर्ममें लगे हुए हैं, उन सबक
तृप्तिके लिये मैं यह जल दे रहा हूँ।' तदनन्तर निवीत
हो जाय (जनेऊको मालाकार कर ले) ॥ ९—१७ ॥

मनुष्यांस्तर्पयेद् भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥ १८ ॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा ॥ १९ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च। देवब्रह्मऋषीन् सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः ॥ २० ॥
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले। अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ॥ २१ ॥
सुकालिनो बर्हिषदस्तथा चैवाज्यपाः पुनः। संतर्प्याः पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः ॥ २२ ॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ २३ ॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः। दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् संतर्पयेद् बुधः ॥ २४ ॥
पित्रादीन् नामगोत्रेण तथा मातामहानपि। संतर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २५ ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते तृप्तिमखिलां यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥ २६ ॥

फिर भक्तिपूर्वक मनुष्यों तथा ब्रह्मपुत्र ऋषियोंके तर्पणका विधान है—'सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु तथा पञ्चशिख—ये सभी मेरेद्वारा दिये हुए जलसे सदा तृप्त हो जायँ।' तत्पश्चात् मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन सभी देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंका अक्षत और जलसे तर्पण करनेका विधान है। तदनन्तर अपसव्य होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर रखकर) और बायें घुटनेको भूमिपर टेककर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा अन्य आज्यप नामक पितरोंको भक्तिपूर्वक तिल, जल, चन्दन आदिसे तृप्त करना चाहिये। पुनः बुद्धिमान् मनुष्य हाथमें कुश लेकर यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह दिव्य पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करके इन्हें नमस्कार करे। तत्पश्चात् अपने पिता आदि तथा नाना आदिके नाम और गोत्रका उच्चारण कर भक्तिपूर्वक विधानके साथ तर्पण करनेके पश्चात् इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो लोग इस जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों या इनके अतिरिक्त कुटुम्बमें पैदा हुए हों अथवा जन्मान्तरमें भाई-बन्धु रहे हों तथा जो कोई भी मुझसे जलकी इच्छा रखते हों, वे सभी पूर्णतया तृप्त हो जायँ' ॥ १८—२६ ॥

येनाहं शीघ्रमामुञ्चे महापातककिल्बिषात्। यत्र स्थित्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम्॥ ९
कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितोऽस्म्यहम्। धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं हतम्॥ १०।
एवं वैक्लव्यमापन्ने धर्मराजे युधिष्ठिरे। रुदन्ति पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः॥ ११।
ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाः स्मृताः।
कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः। भूमौ निपतिताः सर्वे रुदन्तस्तु समंततः॥ १२।

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! इसके बाद मैं प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे पूर्वकालमें महर्षि मार्कण्डेयने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे कहा था। जब महाभारत-युद्ध समाप्त हो गया और कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिरको राज्य प्राप्त हो गया, इसी बीच कुन्ती-नन्दन महाराज युधिष्ठिर भाइयोंके शोकसे अत्यन्त दुःखी होकर बारंबार इस प्रकार चिन्तन करने लगे—'हाय! जो राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, वह हमलोगोंको अनेकों बार कष्टमें डालकर अपने सभी सहायकोंके साथ कालके गालमें चला गया। श्रीकृष्णका आश्रय लेनेके कारण केवल हम पाँच पाण्डव ही शेष रह गये हैं। गोविन्द ! हमलोगोंने भीष्म, द्रोण, महाबली [illegible] और पुत्रों एवं भाइयोंसमेत राजा दुर्योधनको [illegible] जो अन्य शूर, मानी नरेश थे, उन सबका भी [illegible] कर डाला, ऐसी परिस्थितिमें हमें राज्यसे क्या लेना है, अथवा भोगों एवं जीवनसे ही क्या प्रयोजन है? 'हाय! धिक्कार है, महान् कष्ट आ पड़ा'—ऐसा सोचकर राजा युधिष्ठिर व्याकुल हो गये और निश्चेष्ट एवं उत्साहरहित हो कुछ देरतक नीचे मुख किये बैठे ही रह गये। जब राजा युधिष्ठिरको पुनः चेतना प्राप्त हुई, तब वे इस प्रकार सोचने लगे—'ऐसा कौन-सा विनियोग (प्रायश्चित्त), नियम (व्रतोपवास) अथवा तीर्थ है, जिसका सेवन करनेसे मैं शीघ्र ही इस महापातकके पापसे मुक्त हो सकूँगा, अथवा जहाँ निवास कर मनुष्य सर्वोत्तम विष्णुलोकको प्राप्त कर सकता है। इसके लिये मैं श्रीकृष्णसे कैसे पूछूँ; क्योंकि उन्होंने ही तो मुझसे ऐसा कर्म करवाया है। दादा धृतराष्ट्रसे भी किसी प्रकार नहीं पूछ सकता; क्योंकि उनके सौ पुत्र मार डाले गये हैं।' ऐसा सोचकर धर्मराज युधिष्ठिर व्याकुल हो गये। उस समय सभी पाण्डव भ्रातृ-शोकमें निमग्न होकर रुदन कर रहे थे। उस समय राजा युधिष्ठिरके समीप जो अन्य महात्मा पुरुष आये थे तथा कुन्ती, द्रौपदी एवं अन्यान्य जो लोग आ गये थे, वे सभी रोते हुए युधिष्ठिरको घेरकर पृथ्वीपर पड़ गये॥ १—१२॥

वाराणस्यां मार्कण्डेयस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः। यथा वैक्लव्यमापन्नो रोदमानस्तु दुःखितः॥ १३॥
अचिरेणैव कालेन मार्कण्डेयो महातपाः। सम्प्राप्तो ह्यस्तिनपुरं राजद्वारे ह्यतिष्ठत॥ १४॥
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम्।
त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारि तिष्ठत्यसौ मुनिः। त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमागादतः परम्॥ १५॥

उस समय महर्षि मार्कण्डेय वाराणसीमें निवास कर रहे थे। उन्हें जिस प्रकार युधिष्ठिर दुःखी और व्याकुल हो रो रहे थे, ये सारी बातें (योगबलसे) ज्ञात हो गयीं। तब महातपस्वी मार्कण्डेय थोड़े ही समयमें हस्तिनापुर जा पहुँचे और राजद्वारपर उपस्थित हुए। उन्हें आया हुआ देखकर द्वारपालने तुरंत राजाको सूचना देते हुए कहा—'महाराज ! ये महामुनि मार्कण्डेय आपसे मिलनेके लिये दरवाजेपर खड़े हैं।' यह सुनते ही धर्म-पुत्र युधिष्ठिर शीघ्रतापूर्वक दरवाजेपर आ पहुँचे॥ १३—१५॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो सर्वपातकनाशनम्। प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महाबाहु राजन् ! सुनो, पापोंका विनाश करनेवाला सर्वश्रेष्ठ साधन पुण्यकर्मा मनुष्योंके लिये प्रयाग-गमन ही सम्पूर्ण है ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें एक सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०३ ॥

एक सौ चारवाँ अध्याय

प्रयाग*-माहात्म्य-प्रसङ्गमें प्रयाग-क्षेत्रके विविध तीर्थस्थानोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि पुरा कल्पे यथास्थितम्। ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत् कथितं मुने ॥ १ ॥
कथं प्रयागे गमनं नराणां तत्र कीदृशम्। मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किं फलम् ॥ २ ॥
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम्। एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुने ! प्राचीन कल्पमें प्रयाग-क्षेत्रकी जैसी स्थिति थी तथा देवश्रेष्ठ ब्रह्माने जिस प्रकार इसका वर्णन किया था, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। मुने ! प्रयागकी यात्रा किस प्रकार करनी चाहिये ? वहाँ मनुष्योंको कैसा आचार-व्यवहार करनेका विधान है ? वहाँ मरनेवालेको कौन-सी गति प्राप्त होती है ? वहाँ स्नान करनेसे क्या फल मिलता है ? जो लोग सदा प्रयागमें निवास करते हैं, उन्हें कैसे फलकी प्राप्ति होती है ? यह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि इसे जाननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है ॥ १—३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स यच्छ्रेष्ठं तत्र यत् फलम्। पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥ ४ ॥
आप्रयागं प्रतिष्ठानादापुराद् वासुकेर्ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात्। एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ५ ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः ॥ ६ ॥
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः।
न शक्याः कथितुं राजन् बहुवर्षशतैरपि। संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ॥ ७ ॥
षष्टिर्धनुः सहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्। यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ॥ ८ ॥
प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः। मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः ॥ ९ ॥
तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः। स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥ १० ॥
अधर्मेणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम्।
अल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप। प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥ ११ ॥
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि। मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ १२ ॥

* भारतमें देव, रुद्र, कर्ण, नंदादि पञ्चप्रयाग प्रसिद्ध हैं। यह तीर्थराज उनमें भी सर्वश्रेष्ठ है। इसकी महिमापर प्रयागशताध्यायीके अतिरिक्त महाभारत, वनपर्व ८५-७, ऋकप० ७ । ५ । १, अग्नि, गरुड, नारद, कूर्म ३५, पद्म-स्कन्दसौरादि पुराणोंमें भी कई अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त 'त्रिस्थलीसेतु', 'तीर्थकल्पतरु', 'चिन्तामणि' आदिमें भी इनकी महामहिमा वर्णित है।

पापसे मुक्त हो जाता है तथा जो मनसे चिन्तनमात्र करता है, वह अपने अधिक-से-अधिक मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये समस्त देवताओंद्वारा सुरक्षित प्रयाग-क्षेत्रमें जाकर वहाँ एक मासतक ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करते हुए देवों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। वहाँ रहते हुए मनुष्य जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अभिलषित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। वहाँ सूर्य-कन्या महाभागा यमुना देवी, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हैं, नदीरूपमें आयी हुई हैं और साक्षात् भगवान् शंकर वहाँ नित्य निवास करते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! यह पुण्यप्रद प्रयाग मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। राजेन्द्र! देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण आदि गङ्गा-जलका स्पर्श कर स्वर्गलोकमें विराजमान होते हैं ॥ १३—२० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०४ ॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

प्रयागमें मरनेवालोंकी गति और गो-दानका महत्त्व

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव च। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥
आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्। स्थानमुक्तं प्रयागं तु नाख्येयं तु कदाचन ॥ २ ॥
व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वापि भवेन्नरः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥ ३ ॥
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्यवर्चसैः।
गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः। ईप्सिताँल्लभते कामान् वदन्ति ऋषिपुंगवाः ॥ ४ ॥
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः। वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः ॥ ५ ॥
गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते। यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते ॥ ६ ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले। तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति ॥ ७ ॥
देशस्थो यदि वारण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुंगवाः ॥ ८ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागके माहात्म्यका ही वर्णन सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। दुःखियों, दरिद्रों और निश्चित व्यवसाय करनेवालोंके कल्याणके लिये प्रयागक्षेत्र ही प्रशस्त कहा गया है। इसे कभी (कहीं) प्रकट नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है कि जो मनुष्य रोगग्रस्त, दीन अथवा वृद्ध होकर गङ्गा और यमुनाके संगममें प्राणोंका त्याग करता है, वह तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले एवं सूर्य-सदृश तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गमें जाकर गन्धर्वों और अप्सराओंके मध्यमें आनन्दका उपभोग करता है और अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। वहाँ वह सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित, अनेकों रंगोंकी ध्वजाओंसे मण्डित, अप्सराओंसे खचाखच भरे हुए शुभ लक्षणसम्पन्न दिव्य विमानोंमें बैठकर आनन्द मनाता है तथा माङ्गलिक गीतों और बाजोंके शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार जबतक वह अपने जन्मका स्मरण नहीं करता, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है। इस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ वह जीव सुवर्ण-रत्नसे परिपूर्ण एवं समृद्ध कुलमें जन्म धारणकर

जो मनुष्य प्रयागमें जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए हों, निकटमें काँसेकी दोहनी भी रखी हो, ऐसी लाल रंगकी दुधारू कपिला* गौका दान करना चाहता हो तो उसे वह गौ गङ्गा-यमुनाके संगमपर विधिपूर्वक ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जो श्रोत्रिय, साधुस्वभाव, श्वेत वस्त्र धारण करनेवाला, शान्त, धर्मज्ञ और वेदोंका पारगामी विद्वान् हो। उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और अनेकों प्रकारके रत्न भी दान करना चाहिये। राजसत्तम! ऐसा करनेसे उस गौके अङ्गोंमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् जहाँ वह जन्म लेता है, वहीं वह गौ भी उसके घर उत्पन्न होती है। उस पुण्यकर्मके प्रभावसे उसे नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरु-प्रदेशको पाकर अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दुधारू गौका दान प्रशस्त माना गया है; क्योंकि वह एक ही गौ पुत्रों, स्त्रियों और नौकरोंतकका उद्धार कर देती है। यही कारण है कि समस्त दानोंमें गो-दानका विशेष महत्त्व बतलाया जाता है। दुर्गम स्थानपर, भयंकर विषम परिस्थितिमें और महापातकके घटित हो जानेपर केवल गौ ही रक्षा कर सकती है, अतः मनुष्यको श्रेष्ठ ब्राह्मणको गो-दान देना चाहिये ॥ १७—२३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१०५॥

एक सौ छठा अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें वहाँके विविध तीर्थोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

यथा यथा प्रयागस्य माहात्म्यं कथ्यते त्वया। तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः ॥ १ ॥
भगवन् केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः। प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि महामुने ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप ज्यों-ज्यों प्रयागके [illegible]का वर्णन कर रहे हैं, त्यों-त्यों मैं निःसंदेह पापोंसे मुक्त होता जा रहा हूँ। महामुने! धर्ममें सुदृढ़ बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंको किस विधिसे प्रयागकी यात्रा करनी चाहिये? इसके लिये शास्त्रोंमें जिस विधिका वर्णन किया गया है, वह मुझे बतलाइये ॥ १-२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते राजंस्तीर्थयात्राविधिक्रमम्। आर्षेण विधिनानेन यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥
प्रयागतीर्थं यात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्। बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ ४ ॥
नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणः। सलिलं न च गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ॥ ५ ॥
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा। यथात्मना तथा सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥
ऐश्वर्यलोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत् ॥ ७ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति। आर्षेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम् ॥ ८ ॥
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।
उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्। पुत्रान् दारांश्च लभते धार्मिकान् रूपसंयुतान् ॥ ९ ॥
तत्र दानं प्रकर्तव्यं यथाविभवसम्भवम्।
तेन तीर्थफलं चैव वर्धते नात्र संशयः। स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १० ॥

* कपिला गौ 'स्वर्णकपिला' आदिके भेदसे दस प्रकारकी होती है। इसका विस्तृत वर्णन महाभारत, आश्वमेधिक वैष्णवधर्म पर्व अ० ९५ गी० प्रेसमें दाक्षि० प्र० के श्लोकमें तथा वृद्ध गौतम स्मृतिमें अ० ९-१० में देखना चाहिये।

प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १९ ॥
श्रवणात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि । मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ २० ॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे शंसितव्रतः । तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ २१ ॥
न वेदवचनात् तात न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥ २२ ॥
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः । तेषां सांनिध्यमत्रैव ततस्तु कुरुनन्दन ॥ २३ ॥
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्यस्थस्य मनीषिणः । सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ २४ ॥
न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिंस्तत्र तत्र युधिष्ठिर । ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः ॥ २५ ॥
एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम् । मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा ॥ २६ ॥

भारत ! यह प्रयाग तीनों लोकोंमें विख्यात है । इससे बढ़कर पुण्यप्रद तीर्थ तीनों लोकोंमें दूसरा नहीं है । इस प्रयागतीर्थका नाम सुननेसे, इसके नामोंका संकीर्तन करनेसे अथवा इसकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है । जो व्रतनिष्ठ मनुष्य उस संगममें स्नान करता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंके समान फलकी प्राप्ति होती है । तात ! इसलिये न तो किसी वेद-वचनसे, न लोगोंके आग्रहपूर्ण कथनसे ही तुम्हें प्रयाग-मरणके प्रति निश्चित की हुई अपनी बुद्धिमें किसी प्रकारका उलट-फेर करना चाहिये । कुरुनन्दन ! इस भूतलपर जो दस हजार बड़े तीर्थ हैं तथा इनके अतिरिक्त जो तीन करोड़ अन्य तीर्थ हैं, उन सबका प्रयागमें ही निवास है । गङ्गा-यमुनाके संगमपर प्राण छोड़नेवालेको वही गति प्राप्त होती है, जो गति योगनिष्ठ एवं सत्यपरायण विद्वान्को मिलती है । युधिष्ठिर ! जिन लोगोंने प्रयागकी यात्रा नहीं की, वे तो मानो तीनों लोकोंमें ठग लिये गये और उनका जीवन इस लोकमें नहींके समान है । इस प्रकार परमपदस्वरूप इस प्रयागतीर्थका दर्शन करके मनुष्य उसी प्रकार समस्त पापोंसे छूट जाता है, जैसे (ग्रहणकालके बाद) राहुग्रस्त चन्द्रमा ॥ १९–२६ ॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुना दक्षिणे तटे । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥
तत्र गत्वा च संस्थानं महादेवस्य विश्रुतम् । नरस्तारयते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान् ॥ २८ ॥
कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत् । स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ २९ ॥
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत । कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ॥ ३० ॥
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति । सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३१ ॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानाद् भागीरथ्यास्तु पूर्वतः । हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ३२ ॥
अश्वमेधफलं तस्मिन् स्नानमात्रेण भारत । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते ॥ ३३ ॥
उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे । परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ ३४ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । सेव्यते पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप ॥ ३५ ॥
उर्वशीं तु सदा पश्येत् स्वर्गलोके नरोत्तम । पूज्यते सततं पुत्र ऋषिगन्धर्वकिंनरैः ॥ ३६ ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः । उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम् ॥ ३७ ॥
मध्ये नारीसहस्राणां बह्वीनां च पतिर्भवेत् । दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिपः ॥ ३८ ॥
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते । भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः ॥ ३९ ॥

कम्बल और अश्वतर नामवाले दोनों नाग यमुनाके दक्षिण तटपर निवास करते हैं, अतः वहाँ स्नान और जलपान कर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है । प्रयागक्षेत्रमें स्थित महादेवजीके सुप्रसिद्ध स्थानकी यात्रा करके मनुष्य अपनी दस आगेकी और दस पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है । जो मनुष्य वहाँ

बाद वासुकि-ह्रदकी उत्तर दिशामें स्थित भोगवती नामक तीर्थमें जानेपर वहाँ दशाश्वमेध नामवाला दूसरा तीर्थ मिलता है। वहाँ जो मनुष्य स्नान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह सम्पत्ति-शाली, सौन्दर्य-सम्पन्न, चतुर, दानी और धर्मात्मा होता है। चारों वेदोंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्य-भाषणसे जो पुण्य कहा गया है तथा अहिंसा-व्रतका पालन करनेसे जो धर्म बतलाया गया है, वह सारा फल प्रयागतीर्थकी यात्रासे ही प्राप्त हो जाता है। गङ्गामें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रके समान फलदायिका मानी गयी हैं, परंतु जहाँ वह विन्ध्य-पर्वतसे संयुक्त हुई हैं, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रसे दसगुना अधिक फलदायिनी हो जाती हैं। ॥ ४०—४९ ॥

यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्था तपोधना। सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५० ॥
क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥ ५१ ॥
यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति हि शरीरिणः। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ५२ ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनां तु महानदी। मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि ॥ ५३ ॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे। तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ५४ ॥
सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिमन्विष्यमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥ ५५ ॥
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

जहाँ बहुतसे तीर्थोंसे युक्त, महाभाग्यशालिनी एवं तपस्विनी गङ्गा बहती हैं, उस स्थानको सिद्धक्षेत्र मानना चाहिये, इसमें अन्यथा विचार करना अनुचित है। गङ्गा भूतलपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको तथा स्वर्गलोकमें देवताओंको तारती हैं, इसी कारण उन्हें 'त्रिपथगा' कहा जाता है*। मृत प्राणीकी हड्डियाँ जितने समयतक गङ्गामें वर्तमान रहती हैं, उतने वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका स्वामी होता है। गङ्गा सभी तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, नदियोंमें महानदी और महान्-से-महान् पाप करनेवाले सभी प्राणियोंके लिये मोक्षदायिनी हैं। गङ्गा सर्वत्र तो सुलभ हैं, परंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसंगममें दुर्लभ मानी गयी हैं। इन स्थानोंपर स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं और जो यहाँ शरीर-त्याग करते हैं, उनका तो पुनर्जन्म होता ही नहीं, अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। जिनका चित्त पापसे आच्छादित है, अतः उद्धार पानेके लिये गतिकी खोजमें लगे हैं, उन सभी प्राणियोंके लिये गङ्गाके समान दूसरी गति नहीं है। महेश्वरके जटाजूटसे च्युत हुई मङ्गलमयी गङ्गा समस्त पापोंका हरण करनेवाली हैं। ये पवित्रोंमें परम पवित्र और मङ्गलोंमें मङ्गल-स्वरूपा हैं ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०६ ॥

---

* तुलनीय वाल्मी० १ । ४३—त्रीन् पथो भावयन्त्येषा तेन त्रिपथगा स्मृता ।

स्वर्गे च शक्रलोकेऽस्मिन्नृषिगन्धर्वसेविते । परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले ॥ १४ ॥
अधःशिरास्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः । शतवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ १५ ॥
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र सोऽग्निहोत्री भवेन्नरः । भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः ॥ १६ ॥
यः स्वदेहं तु कर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति । विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ १७ ॥
शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते । तस्मादपि परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ॥ १८ ॥
गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांश्च प्रियवाचकः । भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः ॥ १९ ॥
यामुने चोत्तरे कूले प्रयागस्य तु दक्षिणे । ऋणप्रमोचनं नाम तत् तीर्थं परमं स्मृतम् ॥ २० ॥
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते । स्वर्गलोकमवाप्नोति ह्यनृणश्च सदा भवेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

राहुद्वारा चन्द्रमाको ग्रस्त कर लिये जानेपर अर्थात् चन्द्रग्रहणके अवसरपर जो मनुष्य इस लोकप्रसिद्ध संगमके जलमें प्रवेश करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सोमलोकको प्राप्त होता है और वहाँ चन्द्रमाके साथ आनन्द मनाता है। पुनः साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोक तथा ऋषियों एवं गन्धर्वोंद्वारा सेवित इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र! स्वर्गसे च्युत होनेपर वह समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य प्रयागमें पैरोंको ऊपर और सिरको नीचे कर अग्निकी ज्वालाका पान करता है, वह एक लाख वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा स्वर्गसे च्युत होनेपर भूतलपर अग्निहोत्री होता है। यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें अपने शरीरके मांसको काटकर पक्षियोंको खानेके लिये दे देता है, पक्षियोंद्वारा खाये गये शरीरवाले उस प्राणीको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। वह एक लाख वर्षोंतक सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह इस लोकमें धर्मात्मा, गुणसम्पन्न, सौन्दर्यशाली, विद्वान् और प्रियभाषी राजा होता है तथा यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर पुनः प्रायगतीर्थकी यात्रा करता है। प्रयागके दक्षिण और यमुनाके उत्तर तटपर ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो परम श्रेष्ठ कहा जाता है। वहाँ एक रात निवास कर स्नान करनेसे मनुष्य सभी ऋणोंसे मुक्त हो जाता है और सदाके लिये ऋणरहित होकर स्वर्गलोकमें चला जाता है॥ १२—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०७ ॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

प्रयागमें अनशन-व्रत तथा एक मासतकके निवास (कल्पवास) का महत्त्व

युधिष्ठिर उवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत् त्वया परिकीर्तितम् । विशुद्धं मेऽद्य हृदयं प्रयागस्य तु कीर्तनात् ॥ १ ॥
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम् । यं च लोकमवाप्नोति विशुद्धः सर्वकिल्बिषैः ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो प्रयागके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे सुनकर प्रयागका कीर्तन ... विशुद्ध हो गया है। अब मुझे यह बतलाइये कि प्रयागमें अनशन (उपवास) करनेसे कैसा फल प्राप्त होता है और उसके प्रभावसे सकल पापोंसे मुक्त होकर मनुष्य किस लोकमें जाता है ? ॥

कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञानसे विहीन पुरुष उसकी क्या गति होती है ? यह सब वहाँ सभी प्रकारके पात्रोंका व्यापार करता है, बतलाइये ॥ १२-१३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् । मासमेकं तु यः स्नायात् प्रयागे नियतेन्द्रियः ॥ १४
शुचिस्तु प्रयतो भूत्वाहिंसकः श्रद्धयान्वितः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत् परमं पदम् ॥ १५
विश्रम्भघातकानां तु प्रयागे शृणु यत् फलम् ।
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत् । त्रिभिर्मासैः स मुच्येत प्रयागे नात्र संशयः ॥ १६
अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत् ।
सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते । स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम् ॥ १७
एवं ज्ञानेन सम्पूर्णः सदा भवति भोगवान् । तारिताः पितरस्तेन नरकात् सपितामहाः ॥ १८
धर्मानुसारि तत्त्वज्ञ पृच्छतस्ते पुनः पुनः । त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत् सनातनम् ॥ १९

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! यह प्रसङ्ग तो परम गोपनीय एवं समस्त पापोंका विनाशक है, इसे बतला रहा हूँ, सुनो । जो मनुष्य जितेन्द्रिय, श्रद्धायुक्त और अहिंसाव्रती होकर पवित्रभावसे नियमपूर्वक एक मासतक प्रयागमें स्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और परमपदको प्राप्त कर लेता है । अब विश्वासघात (रूप पाप) करनेवालोंको प्रयागमें आनेपर जो फल मिलता है, उसे सुनो । वह यदि प्रयागमें तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) वेलामें स्नान करे और भिक्षा माँगकर भोजन करे तो निस्संदेह तीन महीनेमें उस पापसे मुक्त हो सकता है । जो मनुष्य अनजानमें : प्रयागकी यात्रा आदि कार्य कर बैठता है, वह भी सम्पू कामनाओंसे परिपूर्ण होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता तथा धनधान्यसे परिपूर्ण अविनाशी पदको प्राप्त कर लेत है । इसी प्रकार जो जान-बूझकर नियमानुसार प्रयागकी यात् करता है, वह भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है तथा अप प्रपितामह आदि पितरोंका नरकसे उद्धार कर देता है । तत्त्वज्ञ तुम्हारे बारंबार पूछनेके कारण मैंने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये इस धर्मानुकूल परम गोपनीय एवं सनातन (अविनाशी) विषयका वर्णन किया है ॥ १४—१९ ॥

जाता है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रसङ्गका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है ॥ २४—३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०८ ॥

एक सौ नवाँ अध्याय

अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा प्रयागकी महत्ताका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे ब्रह्मसम्भवे।
तीर्थानां तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च। सर्वे पुण्याः पवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता ॥ १ ॥
सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम्।
स्नानमात्रेण राजेन्द्र पुरुषांस्तारयेच्छतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र ! मैंने ब्रह्माके मुखसे प्रादुर्भूत हुए पुराणोंमें ब्रह्माद्वारा कहे जाते हुए सुना है कि तीर्थोंकी संख्या कहीं सौ, कहीं हजार और कहीं लाखोंतक बतलायी गयी है। ये सभी पुण्यप्रद एवं परम पवित्र हैं। (इनमें स्नान करनेसे) परम गतिकी प्राप्ति बतलायी गयी है। इन्हीं तीर्थोंमें सोमतीर्थ महान् पुण्यप्रद एवं महापातकोंका विनाशक है। वहाँ केवल स्नान करनेसे वह स्नानकर्ताके सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है, अतः सभी उपायोंद्वारा वहाँ स्नान अवश्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

पृथिव्यां नैमिशं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्। त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ॥ ३ ॥
सर्वाणि तानि संत्यज्य कथमेकं प्रशंससि। अप्रमाणं तु तत्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम् ॥ ४ ॥
गतिं च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान्।
किमर्थमल्पयोगेन बहु धर्मं प्रशंससि। एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने ! भूतलपर नैमिशारण्य और अन्तरिक्षमें पुष्कर पुण्यप्रद माने गये हैं तथा तीनों लोकोंमें कुरुक्षेत्रकी विशेषता बतलायी जाती है, परंतु आप इन सबको छोड़कर एक प्रयागकी ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? साथ ही वहाँ जानेसे परम दिव्य गति और अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति भी बतला रहे हैं, आपका यह कथन मुझे प्रमाणरहित, अश्रद्धेय और अनुचित प्रतीत हो रहा है। आप थोड़े-से परिश्रमसे बहुत बड़े धर्मकी प्राप्तिकी प्रशंसा किसलिये कर रहे हैं ? अतः इस विषयमें आपने जैसा देखा अथवा सुना हो, उसके अनुसार कहकर मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ ३—५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि यद् भवेत्। नरस्याश्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः ॥ ६ ॥
अश्रद्दधानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः। एते पातकिनः सर्वे तेनेदं भाषितं त्वया ॥ ७ ॥
शृणु प्रयागमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यत्सं भविष्यति ॥ ८ ॥
शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा च युज्यते योगमात्मनः। क्लिश्यते चापरस्तत्र नैव योगमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥
जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत वा न वा। तथा युगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः ॥ १० ॥

*

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो यथोक्तकरणं महीम्। गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः ॥
मातरं पितरं चैव ये निन्दन्ति नराधमाः। न तेषामूर्ध्वगमनमिदमाह प्रजापतिः ॥
एवं योगस्य सम्प्राप्तिस्थानं परमदुर्लभम्। गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराः पापकर्मिणः ॥
हस्त्यश्वं गामनड्वाहं मणिमुक्तादिकाञ्चनम्। परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद् दानं प्रयच्छति ॥ २३ ॥
न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः। अनेककर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरके पुनः ॥ २४ ॥
एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्फलम्। निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाह स्वयमंशुमान् ॥ २५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—महाबाहु राजन्! मैंने जैसा करनेके लिये कहा है, उस विषयमें पुनः सुनो। जो नीच मनुष्य पृथ्वी, गौ, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, काञ्चन, जल, स्त्री, माता और पिताकी निन्दा करते हैं, उनकी ऊर्ध्वगति नहीं होती—ऐसा प्रजापति ब्रह्माने कहा है। अतः इस प्रकारके कर्मोंद्वारा योगकी प्राप्तिका स्थान परम दुर्लभ है; क्योंकि जो मनुष्य पापकर्ममें निरत रहते हैं, वे घोर नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य परोक्षमें दूसरेकी हाथी, घोड़ा, गौ, बैल, मणि, मुक्ता और सुवर्ण आदि वस्तुओंको चुरा लेता है और पीछे उसे दान कर देता है, ऐसे लोग उस स्वर्गलोकमें नहीं जाते, जहाँ (अपनी वस्तु दान करनेवाले) दाता सुख भोगते हैं, अपितु वे अनेकों पाप-कर्मोंसे युक्त होकर पुनः नरकमें कष्ट भोगते हैं। युधिष्ठिर! इस प्रकार योग, धर्म, दाता, सत्य, असत्य, अस्ति, नास्तिका जो फल कहा गया है तथा स्वयं सूर्यने जैसा बतलाया है, वही मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ ॥ २०—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०९ ॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

जगत्‌के समस्त पवित्र तीर्थोंका प्रयागमें निवास

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। नैमिशं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम् ॥ १ ॥
गया च धेनुकं चैव गङ्गासागरमेव च। एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्चयाः ॥ २ ॥
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः। प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी। प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थनमस्कृता ॥ ४ ॥
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकभाविनी ॥ ५ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत् सर्वं तव जाह्नवि ॥ ७ ॥
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ। भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर। प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ९ ॥
यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः। ततः पुण्यतमो नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य सुनो। विद्वानोंका ऐसा कथन है कि नैमिषारण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धुसागर, गयातीर्थ, धेनुक (गयाके पास-का एक तीर्थ) और गङ्गासागर—ये तथा इनके अतिरिक्त

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके निवासका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

कथं सर्वमिदं प्रोक्तं प्रयागस्य महामुने। एतन्नः सर्वमाख्याहि यथा हि मम तारयेत्॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! आपने तो यह सारा महत्त्व प्रयागका ही बतलाया है, इसका क्या कारण है? यह सब मुझे बतलाइये, जिससे मेरा तथा मेरे कुटुम्बका उद्धार हो जाय॥ १॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु प्रोक्तं सर्वमिदं जगत्। ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानो देवताः प्रभुरव्ययः॥ २॥
ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जङ्गमं च यत्। तान्येतानि परं लोके विष्णुः संवर्धते प्रजाः॥ ३॥
कल्पान्ते तत् समग्रं हि रुद्रः संहरते जगत्। तदा प्रयागतीर्थं च न कदाचिद् विनश्यति॥ ४॥
ईश्वरं सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति। यत्नेनानेन तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! इसका कारण सुनो। प्रयागमें इस सारे जगत्का निवास बतलाया जाता है। यहाँ अविनाशी एवं सामर्थ्यशाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सम्पूर्ण देवता वास करते हैं। ब्रह्मा जिन स्थावर-जङ्गमरूप प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, उन सभी जीवोंका इस लोकमें भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्र इस सारे जगत्का संहार कर देते हैं, किंतु इस प्रयागतीर्थका कभी विनाश नहीं होता। सम्पूर्ण प्राणियोंका जो ईश्वर है, उसे जो देखता है, वही सचमुच देखनेवाला है। इस प्रयत्नसे जो लोग प्रयागमें निवास करते हैं, वे परमगतिको प्राप्त होते हैं॥ २—५॥

युधिष्ठिर उवाच

आख्याहि मे यथातथ्यं यथैषा तिष्ठति श्रुतिः। केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ते लोकसत्तमाः॥ ६॥

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! ये लोकश्रेष्ठ देवगण किस कारणवश प्रयागमें निवास करते हैं, इस विषयमें जैसा श्रुति-वचन हो, उसके अनुसार मुझे यथार्थरूपसे बतलाइये॥ ६॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। कारणं तत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर॥ ७॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। तिष्ठन्ति रक्षणायात्र पापकर्मनिवारणात्॥ ८॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति। वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥ ९॥
महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥ १०॥
यस्मिन्नुद्धन् स्वकं पापं नरकं च न पश्यति। एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे समहेश्वरः॥ ११॥
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च महीतले। रक्षमाणाश्च तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १२॥
ये चान्ये बहवः सर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर। पृथिवीं तत्समाश्रित्य निर्मिता दैवतैस्त्रिभिः॥ १३॥
प्रजापतेरिदं क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम्।
एतत् पुण्यं पवित्रं वै प्रयागं च युधिष्ठिर। स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितोऽनघ॥ १४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११॥

वासुदेव उवाच

मम वाक्यं च कर्तव्यं महाराज ब्रवीम्यहम् । नित्यं जपस्व जुह्वस्व प्रयागे विगतज्वरः ॥ ७
प्रयागं स्मर वै नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर । स्वयं प्राप्स्यति राजेन्द्र स्वर्गलोकं न संशयः ॥ ८
प्रयागमनुगच्छेद् वा वसते वापि यो नरः । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ९
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः । अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १०
अक्रोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम् । न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ॥ १२
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः । प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ॥ १३
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर । तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १४
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम । तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते ॥ १५
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथाऽऽपगाः । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायां भरतर्षभ ॥ १६
स्वस्थो भव महाराज भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् । पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र यजमानो विशेषतः ॥ १७

भगवान् वासुदेवने कहा—महाराज युधिष्ठिर ! मैं जैसा कह रहा हूँ, मेरे उस वचनका पालन कीजिये । आप प्रयागमें जाकर संतापरहित हो नित्य भगवन्नामका जप और हवन कीजिये तथा हमलोगोंके साथ नित्य प्रयागका स्मरण कीजिये । राजेन्द्र ! ऐसा करनेसे आप स्वयं स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । जो मनुष्य प्रयागकी यात्रा करता है अथवा [illegible] निवास करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे [illegible] हो जाता है और वह रुद्रलोकको चला जाता है । जो प्रतिग्रह (दान लेने) से विमुख, संतुष्ट, [illegible], पवित्र और अहंकारसे दूर रहता है, उसे तीर्थफलकी प्राप्ति होती है । जो क्रोधरहित, ईमानदार, सत्यवादी, दृढ़व्रत और समस्त प्राणियोंके प्रति अपने समान ही व्यवहार करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है । महीपते ! ऋषियों तथा देवताओंने क्रमशः जिन यज्ञोंका विधान बतलाया है, उन यज्ञोंका अनुष्ठान निर्धन मनुष्य नहीं कर सकता; क्योंकि उन यज्ञोंमें बहुत-से उपकरणों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है । इनका अनुष्ठान तो राजा अथवा कहीं-कहीं कुछ समृद्धिशाली मनुष्य ही कर सकते हैं । नरेश्वर युधिष्ठिर ! निर्धन मनुष्योंद्वारा भी जिस विधिका पालन किया जा सकता है और जो पुण्यमें यज्ञफलके समान है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो । भरतसत्तम ! यह पुण्यमयी तीर्थयात्रा ऋषियोंके लिये भी परम गोपनीय है तथा यज्ञोंसे भी बढ़कर फलदायक है । भरतर्षभ ! दस हजार तीर्थ तथा तीन करोड़ नदियाँ माघमासमें गङ्गामें आकर निवास करती हैं । महाराज ! आप स्वस्थ हो जायँ और निष्कण्टक राज्यका उपभोग करें । राजेन्द्र ! पुनः कभी विशेषरूपसे यज्ञ करते समय आप मुझे देख सकेंगे ॥ ७–१७ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागो वासुदेवो महातपाः । युधिष्ठिरस्य नृपतेस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १८ ॥
ततस्तत्र समाप्लाव्य गात्राणि सगणो नृपः । यथोक्तेनाथ विधिना परां निर्वृतिमागमत् ॥ १९ ॥
तथा त्वमपि देवर्षे प्रयागाभिमुखो भव । अभिषेकं तु कृत्वात्र कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ २० ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! महान् भाग्यशाली एवं महान् तपस्वी वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने सकुटुम्ब प्रयागमें जाकर यथोक्त विधिके अनुसार स्नान किया, जिससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई । देवर्षे ! इसलिये आप भी प्रयागकी ओर पधारिये और वहाँ स्नान कर आज ही कृतकृत्य हो जाइये ॥ १८–२० ॥

वही अचिन्त्यका लक्षण है। अब मैं सातों वर्षोंका वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ। इनमें सर्वप्रथम योजनके परिमाणसे जम्बूद्वीपका जितना बड़ा विस्तृत मण्डल है, उसे बतला रहा हूँ, सुनिये। जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। यह अनेकों प्रकारके सुन्दर देशों एवं नगरोंसे परिपूर्ण है। इसमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं। यह सभी प्रकारकी धातुओंसे संयुक्त एवं शिलासमूहोंसे समन्वित पर्वतोंद्वारा सुशोभित है; उन पर्वतोंसे निकलनेवाली नदियोंसे यह चारों ओरसे व्याप्त है। इसमें पूर्व पश्चिमतक फैले हुए अत्यन्त विस्तृत छः वर्षपर्वत हैं इसमें पूर्व और पश्चिम—दोनों ओरके समुद्रोंतक फैल हुआ हिमवान् नामक पर्वत है, जो सदा बर्फसे ढक रहता है। इसके बाद सुवर्णसे व्याप्त हेमकूट नामक पर्वत है। तत्पश्चात् जो चारों ओरसे देखनेमें अत्यन्त सुन्दर है, वह निषध नामक महान् पर्वत है ॥ ४—११३ ॥

चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः। चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णं च चतुर्दिशम् ॥ १२ ॥
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समाहितः। नानावर्णैः समः पार्श्वैः प्रजापतिगुणान्वितः ॥ १३ ॥
नाभीबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै ॥ १४ ॥
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते।
भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः। तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोर्नामार्थकर्मतः ॥ १५ ॥
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः। तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ १६ ॥
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः। मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान् ॥ १७ ॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमुच्यते ॥ १८ ॥

इसके एक ओर सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसके चारों पार्श्वभाग चार रंगोंके हैं और जो उल्ब (गर्भाशयके समान) कहा जाता है। यह चारों दिशाओंमें चौबीस हजार योजनोंतक फैला हुआ है। इसका ऊपरी भाग वृत्तकी आकृतिका अर्थात् गोलाकार है तथा निचला भाग चौकोर है। इसके पार्श्वभाग नाना प्रकारकी रंग-बिरंगी समतल भूमियोंसे युक्त हैं, जिससे प्रजापतिके गुणोंसे युक्त-सा दीखता है। यह अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके नाभि-बन्धनसे उद्भूत हुआ है। इसका पूर्वी भाग श्वेत रंगका है, इसीसे इसकी ब्राह्मणता झलकती है। इसका दक्षिणी भाग पीले रंगका है, इसीसे इसमें वैश्यत्वकी प्रतीति होती है। इसका पश्चिमी भाग भँवरेके पंख-सरीखा काला है, इसीसे इसकी शूद्रता तथा अर्थ और काम—दोनों दृष्टियोंसे मेरुके नामकी सार्थकता सिद्ध होती है। इसका उत्तरी भाग स्वभावसे ही लाल रंगका है, इसीसे इसका क्षत्रियत्व सूचित होता है। इस प्रकार मेरुके चारों रंगोंका विवरण बतलाया गया है। तदनन्तर नील पर्वत है, जो वैदूर्यमणिसे व्याप्त है। पुनः श्वेत पर्वत है, जो सुवर्णमय होनेके कारण पीले रंगका है तथा सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित शृङ्गवान् पर्वत है, जो मयूर-पिच्छ-सरीखे चित्र-विचित्र रंगोंवाला है। ये सभी पर्वतराज सदा सिद्धों एवं चारणोंसे सेवित होते रहते हैं। उनका भीतरी व्यास नौ हजार योजन बतलाया जाता है। ॥ १२—१८ ॥

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समन्ततः। चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः ॥ १९ ॥
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः। वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम् ॥ २० ॥
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः। द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम् ॥ २१ ॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते। नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे ॥ २२ ॥

प्रदेश है, वह हिरण्यक-वर्षके नामसे प्रसिद्ध है। हिरण्यकवर्षके बाद शृङ्गशाक नामक वर्ष है, जिसे कुरुवर्ष भी कहते हैं। मेरुपर्वतके दक्षिण और उत्तर दिशामें धनुषके आकारमें दो वर्ष स्थित हैं। उन्हींके मध्यमें इलावृतवर्ष है। निषध पर्वतके पूर्व दिशामें मेरुकी वेदीका अर्धभाग दक्षिणवेदी और इलावृतसे पश्चिमकी ओर वेदीका आधा भाग उत्तरवेदीके नामसे विख्यात है। इन्हीं दोनोंके बीचमें मेरुकी स्थिति समझनी चाहिये, जहाँ इलावृतवर्ष अवस्थित है। नील पर्वतके दक्षिण और निषध पर्वतके उत्तर माल्यवान् नामक पर्वत है, जिसकी गणना विशाल पर्वतोंमें है। यह उत्तरसे दक्षिणकी ओर लम्बा है। यह पश्चिम दिशामें सागर-पर्यन्त बत्तीस हजार योजनमें फैला हुआ है। इस प्रकार माल्यवान् पर्वत नील और निषध पर्वतोंके बीचमें एक हजार योजनके विस्तारमें स्थित है। इसी तरह गन्ध-मादन पर्वत भी बत्तीस हजार योजन विस्तृत बतलाया गया है। इन दोनोंके मण्डलके मध्यमें मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत है। यह चार प्रकारके रंगोंसे युक्त, चौकोर और अत्यन्त ऊँचा है॥ २९—३७॥

नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते।
पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम्। उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः॥ ३८॥
मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः। आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः॥ ३९॥
योजनानां सहस्राणि चतुराशीति सूच्छ्रितः। प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः॥ ४०॥
विस्तराद् द्विगुणश्चास्य परीणाहः समंततः। स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः॥ ४१॥
भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः।
तत्र देवगणाश्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः। शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः॥ ४२॥
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः। यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः॥ ४३॥
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे। उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥ ४४॥
विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्धमादनः। विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषिताः॥ ४५॥
अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसंज्ञितम्। तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च॥ ४६॥
तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने। जम्बूवृक्षस्तथाश्वत्थो विपुलेऽथ वटः परम्॥ ४७॥

उसके पार्श्वभाग अनेक प्रकारके रंगोंसे विभूषित हैं। इसका पूर्वीय भाग श्वेत, दक्षिणी भाग पीला, पश्चिमका भाग भ्रमरके पंखके समान काला और उत्तरी हिस्सा लाल है। इस प्रकार यह चार रंगोंसे युक्त कहा जाता है। इस तरह चारों ओरसे पर्वतोंसे घिरा हुआ दिव्य पर्वत मेरु राजाकी भाँति सुशोभित होता है। इसकी कान्ति तरुण सूर्य अर्थात् मध्याह्नकालिक सूर्यकी-सी है। यह धूमरहित अग्निके सदृश चमकता रहता है। पृथ्वीके ऊपर इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजन-तक पृथ्वीके नीचे धँसा हुआ है और अट्ठाईस हजार योजनतक फैला हुआ है। चारों ओरसे इसका फैलाव विस्तारसे दुगुना है। यह महान् दिव्य पर्वत मेरु दिव्य ओषधियोंसे परिपूर्ण तथा सभी सुवर्णमय भुवनोंसे घिरा हुआ है। इस पर्वतराजपर देवगण, गन्धर्व, असुर और राक्षस सर्वत्र अप्सराओंके साथ रहकर आनन्दका अनुभव करते हैं। यह मेरु प्राणियोंके निमित्त-कारण-भूत भुवनोंसे घिरा हुआ है। इसके विभिन्न पार्श्वभागोंमें चार देश अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—(पूर्वमें) भद्राश्व, (दक्षिणमें) भारत, (पश्चिममें) केतुमाल और (उत्तरमें) किये हुए पुण्योंके आश्रयस्थानरूप उत्तरकुरु। इसी प्रकार उसके चारों दिशाओंमें सभी प्रकारके रत्नोंसे विभूषित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक विष्कम्भ पर्वत भी विद्यमान हैं। उनके ऊपर अरुणोद,

ऋषियोंने पूछा—मुने! पूर्व और पश्चिम दिशामें त जो देश हैं; उनके विषयमें तो आप हमलोगोंको ला चुके। अब उत्तर दिशामें स्थित वर्षों और तोंका वर्णन कीजिये। साथ ही उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले लोगोंका चरित्र भी यथार्थ-रूपसे बतलाइये। ऋषियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सूतजीने पुनः उनसे वर्णन करना आरम्भ किया॥ ५८-५९॥

सूत उवाच

शृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ ६०॥
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः।
रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः। शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः॥ ६१॥
तत्रापि च महावृक्षो न्यग्रोधो रोहिणो महान्। तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति हि॥ ६२॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः॥ ६३॥
उत्तरेण तु श्वेतस्य पार्श्वे शृङ्गस्य दक्षिणे। वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी॥ ६४॥
महाबला महासत्त्वा नित्यं मुदितमानसाः। शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः॥ ६५॥
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः। आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च॥ ६६॥
तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः। तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः॥ ६७॥
शृङ्गसाह्वस्य शृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै।
एकं मणियुतं तत्र एकं तु कनकान्वितम्। सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरुपशोभितम्॥ ६८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पहले मैं आपलोगोंसे न वर्षोंके विषयमें वर्णन कर चुका हूँ, (उनके तेरिक्त अन्य वर्षोंका वर्णन) सुनिये। नीलपर्वतसे क्षेण और निषध पर्वतसे उत्तर दिशामें रमणक नामक है, जहाँकी प्रजाएँ विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौर-[वर्ण]वाली होती हैं। वहाँ उत्पन्न हुए सारे मानव गौर-[वर्ण]ी, कुलीन और देखनेमें प्रिय लगनेवाले होते हैं। वहाँ रोहिण नामक एक महान् बरगदका वृक्ष है, उसीके [फल]ोंका रस पान करके वहाँके निवासी जीवन-निर्वाह [कर]ते हैं। वे सभी महान् भाग्यशाली श्रेष्ठ पुरुष सदा [प्रस]न्न रहते हुए ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते [हैं]। श्वेत पर्वतके उत्तर और शृङ्गवान् पर्वतके दक्षिण पार्श्वमें हिरण्वत नामक वर्ष है, जहाँ हैरण्वती नामकी नदी प्रवाहित होती है। वहाँके निवासी श्रेष्ठ मानव, महाबली, महापराक्रमी, नित्य प्रसन्नचित्त, गौरवर्ण, कुलीन और देखनेमें मनोरम होते हैं। वे बारह हजार पाँच सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं। उस वर्षमें पत्तोंसे आच्छादित लकुच (बड़हर) का एक महान् वृक्ष है, उसके फलोंका रस पीकर वहाँके मानव जीवन-यापन करते हैं। शृङ्गवान् पर्वतके तीन शिखर हैं, जो बड़े ऊँचे-ऊँचे हैं। उनमेंसे एक मणिसे परिपूर्ण, एक सुवर्णसे सम्पन्न और एक सर्वरत्नमय एवं भुवनोंसे सुशोभित है॥ ६०—६८॥

उत्तरे चास्य शृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे। कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्॥ ६९॥
तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयाऽऽपगाः। वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च॥ ७०॥
सर्वकामप्रदातारः केचिद् वृक्षा मनोरमाः।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः। ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम्॥ ७१॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्चनवालुका। सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः॥ ७२॥
देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः। शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते स्थिरयौवनाः॥ ७३॥
मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः। तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्ति ह्यमृतोपमम्॥ ७४॥

एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लोमहर्षणिः । पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३ ॥
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः । तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ॥ ४ ॥

प्रसिद्ध पौराणिक लोमहर्षणके पुत्र सूतजीने उन पवित्रात्मा ऋषियोंका प्रश्न सुनकर अपनी बुद्धिसे बारंबार बहुधा विचार-विमर्श करके उन ऋषियोंसे 'उत्तरश्रवण' (उत्तरवर्ती वर्षों) के विषयमें कहना आरम्भ किया ॥

सूत उवाच

अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः । भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ॥ ५ ॥
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम् । यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥ ६ ॥
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः । भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत ॥ ७ ॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ८ ॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ ९ ॥
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः । तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥ १० ॥
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः । यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥ ११ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः । इज्यायुधवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ १२ ॥
तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम् । धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥ १३ ॥
सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि । इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे ॥ १४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं इस भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाली प्रजाओंका वर्णन कर रहा हूँ । इन प्रजाओंकी सृष्टि करने तथा इनका भरण-पोषण करनेके कारण मनुको भरत कहा जाता है। निरुक्त-वचनोंके आधारपर यह वर्ष (उन्हींके नामपर) भारतवर्ष*के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ स्वर्ग, मोक्ष तथा इन दोनोंके अन्तर्वर्ती (भोग) पदकी प्राप्ति होती है । इस भूतलपर भारतवर्षके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्राणियोंके लिये कर्मका विधान नहीं सुना जाता । इस भारतवर्षके नौ भेद हैं, उनके नाम सुनिये— इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप और वारुण-द्वीप—ये आठ तथा उनमें नवाँ यह समुद्रसे घिरा हुआ भारतद्वीप† (या खण्ड) है। यह द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसका विस्तार गङ्गाके उद्गम-स्थानसे लेकर कन्याकुमारी अथवा कुमारी अन्तरीपतक है । यह तिरछेरूपमें ऊपर-ही-ऊपर दस हजार योजन विस्तृत है । इस द्वीपके चारों ओर सीमावर्ती प्रदेशोंमें म्लेच्छ जातियोंकी बस्तियाँ हैं । इसकी पूर्व एवं पश्चिम दिशामें क्रमशः किरात और यवन निवास करते हैं । इसके मध्यभागमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विभाग-पूर्वक यज्ञ, शस्त्र-ग्रहण और व्यवसाय आदिके द्वारा जीवन-यापन करते हुए निवास करते हैं । उन चारों वर्णोंका पारस्परिक व्यवहार धर्म, अर्थ और कामसे संयुक्त होता है और वे अपने-अपने कर्मोंमें ही लगे रहते हैं । यहाँ कल्पसहित पाँचों वर्णों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, योगी और संन्यासी) तथा आश्रमोंका विधिपूर्वक पालन होता है । इस द्वीपके मनुष्योंकी कर्म-प्रवृत्ति स्वर्ग और मोक्षके लिये होती है ॥ ५-१४ ॥

---

* सभी पुराणोंमें प्रायः सर्वत्र ऋषभ-पुत्र भरतके नामपर ही देशका नाम भारत कहा गया है । नाभिसे अजनाभ तथा उनके पोते भरतसे देशका भारत नाम पड़ा । मनु इनके भी पूर्वज थे, अतः यह कथन भी ठीक है । पर पाश्चात्योंने शकुन्तलापुत्रके नामपर देशका नाम पड़ना गलत बतलाया है और भ्रमसे आज उसीका प्रचार है (विशेष जानकारीके लिये देखिये कल्याण वर्ष ३० । ८) । यह अध्याय वायुपुराण ४५ । ७२-१३७ तथा ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी प्राप्त है ।

† इस प्रकार आजका दीखनेवाला सारा भूमण्डल बृहत्तर भारतके ही अन्तर्गत सिद्ध होता है । इसीलिये हेमाद्रि संकल्पमें 'भारतवर्षे भरतखण्डे' पढ़ा जाता है ।

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा चोत्पलावती। मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभा
त्रिषामा ऋषिकुल्या च इक्षुला त्रिदिवाचला। लाङ्गलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृता
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी। कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृता
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वाश्चैव समुद्रगाः। विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः

शोण, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, करतोया, पिशाचिका, चिमला, चञ्चला, वञ्जुला, वालुवाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा और ह्रदिका—ये स्वच्छसलिला कल्याणमयी नदियाँ ऋक्षवन्त (ऋक्षवान्) पर्वतसे उद्भूत हुई हैं। तापी, पयोष्णी (पूर्णानदी या पैनगङ्गा), निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, निषधा, वेण्या, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा तथा अन्तःशिला—ये सभी पुण्यतोया मङ्गलमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी उपत्यकाओंसे निकली हुई हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वञ्जुला (मंजीरा), कर्णाटककी तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या (वर्धानदी) और कावेरी—ये सभी दक्षिणापथमें प्रवाहित होनेवाली नदियाँ हैं, जो सह्यपर्वतकी शाखाओंसे प्रकट हुई हैं। कृतमाला (वैगई), ताम्रपर्णी, पुष्पजा (कुसुमाङ्गा, पेम्बै या पेल) और उत्पलावती—ये कल्याणमयी नदियाँ म[लय]से निकली हुई हैं। इनका जल बहुत शीतल है। त्रिषामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, अचल[ा, लाङ्ग]लिनी और वंशधरा—ये सभी नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे [निकली] हुई मानी जाती हैं। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दवाहिनी, कृपा और पलाशिनी—इन न[दियोंका] उद्गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है। ये सभी पु[ण्यसलिला] नदियाँ पुण्यप्रद, सर्वत्र बहनेवाली तथा साक्षा[त् या] परम्परासे समुद्रगामिनी हैं। ये सब-की-सब [विश्वके] लिये माता-सदृश हैं तथा इन सबको कल्याणक[ारिणी] एवं पापहारिणी माना गया है*॥ २५–३३॥

तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः। तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः॥ ३
शूरसेना भद्रकारा वाह्याः सहपटच्चराः। मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोसलाः॥ ३
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह। मध्यदेशा जनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः॥ ३
सह्यस्यानन्तरे चैते यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥ ३
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः। रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः॥ ३
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः। ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः॥ ३
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः। पुरंध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः॥ ४
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः। शका द्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः॥ ४
रामठाः कण्टकाराश्च कैकेय्या दशनामकाः। क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च॥ ४
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा पह्लवा तथा। अत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरकाः॥ ४
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः। एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान् निबोधत॥ ४
अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिबहिर्गिरी।
ततः प्लवङ्गमातङ्गा यमका मालवर्णकाः। सुह्मोत्तराः प्रविजया मार्गवागेयमालवाः॥ ४
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः। शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः॥ ४

अथवा इनकी सैकड़ों-हजारों छोटी-बड़ी सहायक [नदियाँ हैं] सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, बाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य नदियाँ भी हैं, जिनके कछारोंमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, किरात, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोसल, आवन्त, कलि[ङ्ग]

* इन नदियोंका पूरा परिचय कल्याण, वामनपुराणाङ्क, पृष्ठ ३८०-२० में द्रष्टव्य है।

† यहाँ पाणिनि अष्टाध्यायीके काशिका (४। १। १६०) कौमुदि (४। १। १७०) उसपदावलीमें दो सूत्रोंका अ... होकर प्रतिलिपिकी भूलसे 'सूरमत्स्य' की जगह 'सूरमस' पाठ हो गया है। 'मागधमदोदधिमें' वर्धमानका पाठ ठीक है।

तथा अवन्ति—ये सभी प्रदेश विन्ध्यपर्वतकी घाटियोंमें स्थित बतलाये जाते हैं। इसके बाद अब मैं उन देशों-का वर्णन कर रहा हूँ, जो पर्वतपर स्थित हैं। उनके नाम हैं—निराहार, सर्वग, कुपथ, अपथ, कुथप्रावरण, ऊर्णादर्व, समुद्गक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात और चामर। मुनियोंका कथन है कि इस भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंकी व्यवस्था है। अब मैं उनके वृत्तान्तका पूर्णतया वर्णन कर रहा हूँ॥

मत्स्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते। शुश्रूषवस्तमूचुस्ते प्रकामं लोमहर्षणिम्॥ ५९॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजर्षे! सूतजीद्वारा कहे हुए इस प्रकरणको सुनकर मुनियोंको और भी आगे सुननेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गयी, तब वे पुनः लोमहर्षण-पुत्र सूतजीसे बोले॥ ५९॥

ऋषय ऊचुः

यच्च किम्पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च। आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया॥ ६०॥
जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषां विदांवर। द्वीपानां वासिनां तेषां वृक्षाणां प्रब्रवीहि नः॥ ६१॥
पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः। उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं तथा॥ ६२॥

ऋषियोंने पूछा—वेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! आपने भारतवर्षका तो वर्णन कर दिया। अब हमें किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षके विषयमें बतलाइये। साथ ही जम्बूखण्डके विस्तारका तथा अन्य द्वीपोंके निवासियोंका एवं वहाँ उद्भत होनेवाले वृक्षोंका भी वर्णन हमें सुनाइये। उन ब्रह्मर्षियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सूतजीने उनके प्रश्नके अनुकूल जैसा देखा था तथा जो पुराण-सम्मत था, वैसा उत्तर देना प्रारम्भ किया॥ ६०—६२॥

बाधा नहीं पहुँचाती। न उन्हें भूख लगती है और न थकावट ही प्रतीत होती है तथा न किसी प्रकारका दुःख ही होता है। वहाँ जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है, जो देवताओंके लिये आभूषणके काममें आता है। वह इन्द्रगोप (बीरबहूटी) के समान लाल और अत्यन्त चमकीला होता है। उस वर्षके सभी वृक्षोंमें इस जामुन-वृक्षके फलोंका रस परम शुभकारक है। वह वृक्षसे टपकनेपर निर्मल सुवर्ण बन जाता है, जिससे देवताओंके आभूषण बनते हैं। ईश्वरकी कृपासे वहाँकी भूमि आठों दिशाओंमें सब ओर इलावृत-निवासियोंके मूत्र, विष्ठा और मृत शरीरोंको आत्मसात् कर लेती है। राक्षस, पिशाच और यक्ष—ये सभी हिमालय पर्वतपर निवास करते हैं। हेमकूट पर्वतपर अप्सराओंसहित गन्धर्वोंका निवास जानना चाहिये तथा शेष, वासुकि और तक्षक आदि सभी प्रधान नाग भी उसपर स्थित रहते हैं। महामेरुपर यज्ञसम्बन्धी मङ्गलमय तैंतीस देवता क्रीडा करते रहते हैं। नीलम एवं वैदूर्य मणियोंसे सम्पन्न नीलपर्वतपर सिद्धों और ब्रह्मर्षियोंका निवास है। श्वेतपर्वत दैत्यों और दानवोंका निवासस्थान बतलाया जाता है। पर्वतश्रेष्ठ शृङ्गवान् पितरोंका विहारस्थल है। इस प्रकार मैंने भारतवर्षके अन्तर्गत इन नौ वर्षोंका वर्णन कर दिया। इनमें प्राणी निवास करते हैं। ये परस्पर गतिमान् और स्थिर हैं। देवताओं और मनुष्योंने अनेकों प्रकारसे इनकी वृद्धि देखी है। उनकी गणना करना असम्भव है, अतः मङ्गलार्थी मनुष्यको इनपर श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ ७४—८७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनमें एक सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११४ ॥

एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

राजा पुरूरवाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

मनुरुवाच

चरितं बुधपुत्रस्य जनार्दन मया श्रुतम्। श्रुतः श्राद्धविधिः पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः ॥ १ ॥
धेन्वाः प्रसूयमानायाः फलं दानस्य मे श्रुतम्। कृष्णाजिनप्रदानं च वृषोत्सर्गस्तथैव च ॥ २ ॥
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव। कौतूहलं समुत्पन्नं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ३ ॥
केन कर्मविपाकेन स तु राजा पुरूरवाः। अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम् ॥ ४ ॥
देवांस्त्रिभुवनश्रेष्ठान् गन्धर्वांश्च मनोरमान्। उर्वशी संगता त्यक्त्वा सर्वभावेन तं नृपम् ॥ ५ ॥

मनुने पूछा—जनार्दन! मैंने आपके मुखसे बुधपुत्र राजा पुरूरवाका जीवन-चरित्र तो सुना और समस्त पापोंका विनाश करनेवाली पुण्यमयी श्राद्धविधिका भी श्रवण किया तथा ब्याती हुई गौके दानका, काले मृग-चर्मके दानका एवं वृषोत्सर्गका भी फल सुन लिया, परंतु केशव! बुधपुत्र नरेश्वर पुरूरवाके रूपको सुनकर मुझे महान् कौतूहल उत्पन्न हो गया है, इसीलिये पूछ रहा हूँ। अब आप मुझे यह बतलाइये कि किस कर्मके परिणामस्वरूप राजा पुरूरवाको वैसा सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ था? (जिसपर मोहित होकर अप्सराओंमें श्रेष्ठ) उर्वशी त्रिलोकीमें श्रेष्ठ देवताओं और सौन्दर्यशाली गन्धर्वोंका त्याग करके सब प्रकारसे राजा पुरूरवाकी सङ्गिनी बनी थी ॥ १—५ ॥

मत्स्य उवाच

शृणु कर्मविपाकेन येन राजा पुरूरवाः। अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम् ॥ ६ ॥
अतीते जन्मनि पुरा योऽयं राजा पुरूरवाः। पुरूरवा इति ख्यातो मद्रदेशाधिपो हि सः ॥ ७ ॥
चाक्षुषस्यान्वये राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। स वै नृपगुणैर्युक्तः केवलं रूपवर्जितः ॥ ८ ॥

लय पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। उस समय तपरूप ाय ही उसका सहायक था। वह महायशस्वी नरेश थानोंका दर्शन करनेकी लालसासे पैदल ही चल रहा आगे बढ़नेपर उसने अपने देशकी सीमापर ऐरावती ी) नामसे विख्यात अत्यन्त मनोहारिणी नदीको देखा। वह नदी हिमालय पर्वतसे निकली हुई थी, अथाह जलके कारण गम्भीर वेगसे प्रवाहित हो रही थी, उसका ज चन्द्रमाके समान शीतल था और वह वर्फकी राशि-सरीखे उज्ज्वल प्रतीत हो रही थी। वर्फसदृश निर्मल यशवाले राजा पुरूरवाने उस नदीको देखा॥ १०–१९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तपोवनागमन नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११५॥

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

ऐरावती नदीका वर्णन

सूत उवाच

स ददर्श नदीं पुण्यां दिव्यां हैमवतीं शुभाम्। गन्धर्वैश्च समाकीर्णां नित्यं शक्रेण सेविताम्॥ १॥
सुरेभमदसंसिक्तां समंतात् तु विराजिताम्। मध्येन शक्रचापाभां तस्मिन्नहनि सर्वदा॥ २॥
तपस्विशरणोपेतां महाब्राह्मणसेविताम्। ददर्श तपनीयाभां महाराजः पुरूरवाः॥ ३॥
सितहंसावलिच्छन्नां काशचामरराजिताम्। साभिषिक्तामिव सतां पश्यन् प्रीतिं परां ययौ॥ ४॥
पुण्यां सुशीतलां हृद्यां मनसः प्रीतिवर्धिनीम्। क्षयवृद्धियुतां रम्यां सोममूर्तिमिवापराम्॥ ५॥
सुशीतशीघ्रपानीयां द्विजसंघनिषेविताम्। सुतां हिमवतः श्रेष्ठां चञ्चद्वीचिविराजिताम्॥ ६॥
अमृतस्वादुसलिलां तापसैरुपशोभिताम्। स्वर्गारोहणनिःश्रेणीं सर्वकल्मषनाशिनीम्॥ ७॥
अर्घ्यां समुद्रमहिषीं महर्षिगणसेविताम्। सर्वलोकस्य चौत्सुक्यकारिणीं सुमनोहराम्॥ ८॥
हितां सर्वस्य लोकस्य नाकमार्गप्रदायिकाम्। गोकुलाकुलतीरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम्॥ ९॥
हंससारससंघुष्टां जलजैरुपशोभिताम्। आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरुजघनस्थलीम्॥ १०॥
नीलनीरजनेत्राभामुत्फुल्लकमलाननाम्।
हिमाभफेनवसनां चक्रवाकाधरां शुभाम्। बलाकापङ्क्तिदशनां चलन्मत्स्यावलिभ्रुवम्॥ ११॥
स्वजलोद्भूतमातङ्गरम्यकुम्भपयोधराम्। हंसनूपुरसंघुष्टां मृणालवलयावलीम्॥ १२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! वह मङ्गलकारिणी काश-पुष्परूपी चँवरसे सुशोभित और समुद्रोंद्वारा

ताओंके समान सुन्दर एवं पवित्र अङ्गोंवाले एवं कमल और चन्द्रमाकी-सी मुखवाली स्त्रियाँ भी पायी जाती थीं, जो देवगणों, तंगली जातियों), नृपसमूहों और व्याघ्रदलोंसे र्थात् परम पवित्र जल धारण करती थी, क जल धारण करनेके कारण तारिकाओं-र्मल आकाशके समान सुशोभित तथा अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी, हुए राजा पुरूरवा आगे बढ़े। जिस नदीके तीरभूमिमें उगे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल काश-पुष्पों तथा अनेकों शाल वृक्षोंसे सुशोभित थे, जो सदा विविध ब्राह्मणों और देवताओंसे सुसेवित थी, जो सदा भक्तजनोंके सम्पूर्ण पापोंका शीघ्र ही विनाश क देती थी, जिसमें बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ आक मिली थीं, जो निरन्तर मुनीश्वरोंद्वारा सेवित थी, ज पुत्रकी तरह मनुष्योंका पालन करती थी, जो सदा हि (बर्फ) राशिसे आच्छादित रहती थी, जो निरन्तर देवगणों संयुक्त रहती थी, अपना कल्याण करनेके लिये मनुष जिसका आश्रय लेते थे, जिसके किनारे झुंड-के-झुं सिंह घूमते रहते थे, जो हाथी-समूहोंसे सेवित थ जिसका जल कल्पवृक्षके पुष्पोंसे युक्त और सुवर्णक समान चमकीला था तथा जिसके तटवर्ती कदम्ब-वृ सूर्यकी किरणोंके तापसे बढ़े हुए थे—ऐसी ऐराव नदीको चन्द्रमा-सरीखे निर्मल यशवाले राजा पुरूरवा देखा ॥ १३—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनप्रसंगमें सुरनदी-वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११६ ॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

हिमालयकी अद्भुत छटाका वर्णन

सूत उवाच

...कयन् नदीं पुण्यां तत्समीरहृतश्रमः। स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १ ॥
...लिखद्भिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः। पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभाम् ॥ २ ॥
...वाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः। असंश्रुतान्यशब्दं तं शीततोयं मनोरमम् ॥ ३ ॥
...रुवने नीलैः कृताधोवसनं शुभम्। मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः ॥ ४ ॥
...मेघकृतोष्णीषं चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित्। हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद् धातुविमिश्रितम् ॥ ५ ॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा।
...प्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम्। सालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित् ॥ ६ ॥
...वेत् संस्पृष्टसूर्यांशुं क्वचिच्च तमसावृतम्। दरीमुखैः क्वचिद् भीमैः पिबन्तं सलिलं महत् ॥ ७ ॥
...चिद् विद्याधरगणैः क्रीडद्भिरुपशोभितम्। उपगीतं तथा मुख्यैः किन्नराणां गणैः क्वचित् ॥ ८ ॥
...नभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित्। पुष्पैः संतानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम् ॥ ९ ॥
...थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित्। मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ॥ १० ॥
...द्रुपवनैर्देशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः। क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम् ॥ ११ ॥

...जी कहते हैं—ऋषियो! ऐरावती नदीके जलका ...के बहती हुई वायुके स्पर्शसे राजा पुरूरवाकी थकावट दूर हो गयी थी। वे उस पुण्यमयी नदीको देखते हुए आगे बढ़ रहे थे। इतनेमें उन्हें महान्

दीख रही थी, जिसके तटवर्ती प्रदेश निकुञ्जों और तपस्वियोंसे अलंकृत थे, जिससे उत्पन्न हुए रत्नोंसे त्रिलोकी अलंकृत होती है, वासुकि आदि बड़े-बड़े नागोंके आश्रयस्थान, सत्पुरुषोंद्वारा सेवित तथा रत्न-सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण उस पर्वतको कोई सत्पुरुष ही देख सकता है। जहाँ तपस्वीलोग थोड़े ही तपसे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। जिसके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है। जिसके किन्हीं-किन्हीं स्थलोंपर वायुद्वारा लाये गये बड़े-बड़े झरनोंके गिरनेसे उत्पन्न हुए छोटे-छोटे झरनोंके जलसे पर्वतीय प्रदेश तृप्त होते हैं। वहीं उसके ऊँचे-ऊँचे शिखर जलसे आप्लावित थे तथा कहीं सूर्यके तापसे संतप्त होनेके कारण अगम्य थे। वहाँ केवल मनसे ही जाया जा सकता था। जो कहीं-कहीं देवदारुके विशाल वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखाओंसे घनीभूत हुए तथा वहीं बाँसोंकी झुरमुटरूपी वनोंके आकारसे युक्त प्रदेशोंसे सुशोभित था। कहीं छत्तेके समान बड़े-बड़े शिखर बर्फसे आच्छादित थे, कहीं सैकड़ों झरने झर रहे थे, कहीं जलके गिरनेसे उत्पन्न हुए शब्दोंसे ही जलकी प्रतीति होती थी, कहीं गुफाएँ बर्फसे ढकी हुई थीं। इस प्रकार सुन्दर नितम्बरूपी भूमिसे युक्त उस हिमालय पर्वतको देखकर महानुभाव मद्रेश्वर पुरूरवा हर्षपूर्वक वहीं (अपने मनोऽनुकूल स्थानकी खोज करते हुए) घूमने लगे। तब उन्हें एक स्थान प्राप्त हुआ ॥ १२—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोषवर्णनमें हिमवद्वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११७ ॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

हिमालयकी अनोखी शोभा तथा अत्रि-आश्रमका वर्णन

सूत उवाच

पर्वतेन्द्रस्य प्रदेशं सुमनोरमम्। अगम्यं मानुषैरन्यैर्दैवयोगादुपागतः ॥ १ ॥
वती सरिच्छ्रेष्ठा यस्माद् देशाद् विनिर्गता। मेघश्यामं च तं देशं द्रुमषण्डैरनेकशः ॥ २ ॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैः सशाल्मलैः। न्यग्रोधैश्च तथाश्वत्थैः शिरीषैः शिंशपाद्रुमैः ॥ ३ ॥
श्लेष्मातकैरामलकैर्हरीतकविभीतकैः। भूर्जैः समुञ्जकैर्वाणैर्वृक्षैः सप्तच्छदद्रुमैः ॥ ४ ॥
महानिम्बैस्तथा निम्बैर्निर्गुण्डीभिर्हरिद्रुमैः। देवदारुमहावृक्षैस्तथा कालेयकद्रुमैः ॥ ५ ॥
पद्मकैश्चन्दनैर्बिल्वैः कपित्थै रक्तचन्दनैः। आम्रातारिष्टकाक्षोटैर्लकुचैश्च तथार्जुनैः ॥ ६ ॥
हस्तिकर्णैः सुमनसैः कोविदारैः सुपुष्पितैः। प्राचीनामलकैश्चापि धनकैः समपाटलैः ॥ ७ ॥
खर्जूरैर्नारिकेलैश्च प्रियालाम्रातकेङ्गुदैः। तन्तुमालैर्यवैर्भव्यैः काश्मरीपर्णिभिस्तथा ॥ ८ ॥
जातीफलैः पूगफलैः कटुफलैर्वल्लीफलैः। मन्दारैः कोविदारैश्च किंशुकैः कुङ्कुमांशुकैः ॥ ९ ॥
यवासैः शमिपर्णासैर्वेतसैरम्बुवेतसैः। रक्तातिरक्तनारङ्गैर्हिङ्गुभिः सप्रियङ्गुभिः ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! दैवयोगसे महाराज ... समान श्यामल था तथा अनेकों प्रकारके वृक्षसमूहोंसे ... रूरवा उसी पर्वतराजके परम सुरम्य प्रदेशमें पहुँच गया हुआ था। वहाँ शाल (साखू), ताल (ताड़),

(छोटी जामुन या कठजामुन), नृपजम्बू (बड़ी जामुन), बिजौरा, कपूर, गुरु, अगुरु, बिम्ब (एक फल), प्रतिबिम्ब और संतानक वृक्ष (कल्पवृक्ष) वितानकी तरह फैले हुए थे ॥ ११—२० ॥

तथा गुग्गुलवृक्षैश्च हिन्तालधवलेक्षुभिः । तृणशून्यैः करवीरैरशोकैश्चक्रमर्दनैः ॥ २१ ॥
पीलुभिर्धातकीभिश्च चिरिबिल्वैः समाकुलैः । तिन्तिडीकैस्तथा लोध्रैर्विडङ्गैः क्षीरिकाद्रुमैः ॥२२॥
अश्मन्तकैस्तथा कालैर्जम्बीरैः श्वेतकद्रुमैः । भल्लातकैरिन्द्रयवैर्वल्गुजैः सिन्दुवारकैः ॥ २३ ॥
करमर्दैः कासमर्दैरविष्टकवरिष्टकैः । रुद्राक्षैर्द्राक्षसम्भूतैः सप्ताह्वैः पुत्रजीवकैः ॥ २४ ॥
कङ्कोलकैर्लवङ्गैश्च त्वग्द्रुमैः पारिजातकैः । प्रतानैः पिप्पलीनां च नागवल्यश्च भागशः ॥ २५ ॥
मरीचस्य तथा गुल्मैर्नवमल्लिकया तथा । मृद्वीकामण्डपैर्मुख्यैरतिमुक्तकमण्डपैः ॥ २६ ॥
त्रपुषैर्नर्तिकानां च प्रतानैः सफलैः शुभैः । कूष्माण्डानां प्रतापैश्च अलाबूनां तथा क्वचित् ॥ २७ ॥
चिर्भिटस्य प्रतानैश्च पटोलीकारवेल्लकैः । कर्कोटकीवितानैश्च वर्ताकैर्बृहतीफलैः ॥ २८ ॥
कण्टकैर्मूलकैर्मूलशाकैस्तु विविधैस्तथा । कह्लारैश्च विदार्या च रुरूटैः स्वादुकण्टकैः ॥ २९ ॥
सभाण्डीरविदूसारराजजम्बूकवालुकैः । सुवर्चलाभिः सर्वाभिः सर्षपाभिस्तथैव च ॥ ३० ॥
काकोलीक्षीरकाकोली छत्रया चातिच्छत्रया । कासमर्दीसहासद्भिः सकन्दलसकाण्डकैः ॥ ३१ ॥
तथा क्षीरकशाकेन कालशाकेन चाप्यथ । शिम्बीधान्यैस्तथा धान्यैः सर्वैर्निरवशेषतः ॥ ३२ ॥

गुग्गुलवृक्ष, हिंताल, श्वेत ईख, केतकी, कनेर, [illegible], चक्रमर्दन (चकवड़), पीलु, धातकी (धव), चिलविल, तिन्तिडीक (इमली), लोध, विडंग, [illegible] (खिरनी), अश्मन्तक (लहसोड़ा), काल (रक्तचित्र-नामका एक वृक्ष), जम्बीर, श्वेतक (वरुण या वरना नामक एक वृक्षविशेष), भल्लातक (भिलावा), इन्द्रयव, वल्गुज (सोमराजी नामसे प्रसिद्ध), सिन्दुवार, करमर्द (करौंदा), कासमर्द (कसौंदी), अविष्टक (मिर्च), वरिष्टक (हुरहुर), रुद्राक्षके वृक्ष, अंगूरकी लता, सप्तपर्ण, पुत्रजीवक (पतजुग), कंकोलक (शीतलचीनी), लौंग, त्वग्द्रुम (दालचीनी) और पारिजातके वृक्ष लहलहा रहे थे। कहीं पिप्पली (पीपर) तथा कहीं नागवल्लीकी लताएँ फैली हुई थीं। कहीं काली मिर्च और नवमल्लिकाकी लताओंके कुञ्ज बने हुए थे। कहीं अंगूर और माधवीकी लताओंके मण्डप शोभा पा रहे थे। कहीं फलोंसे लदी हुई नीले रंगके फूलोंवाली लताएँ, कहीं कुम्हड़े तथा कद्दूकी लताएँ और कहीं घुँघुची, परवल, करैला एवं कर्कोटकी (पीतघोषा) की लताएँ शोभा दे रही थीं। कहीं बैगन और भटकटैयाके फल, मूली, जड़वाले शाक तथा अनेकों प्रकारके काँटेदार वृक्ष शोभा पा रहे थे। कहीं श्वेत कमल, कंदविदारी, रुरूट (एक फलदार वृक्ष), स्वादुकण्टक, (सफेद पिंडालु), भाण्डीर (एक प्रकारका वट), विदूसार (विदारकन्द), राजजम्बूक (बड़ी जामुन), वालुक (एक प्रकारका आँवला), सुवर्चला (सूर्यमुखी) तथा सभी प्रकारके सरसोंके पौधे भी विद्यमान थे। काकोली (कंकोल), क्षीरकाकोली (कंकोलका एक भेद), छत्रा (छत्ता), अतिच्छत्रा (तालमखाना), कासमर्दी (अडूसा), कन्दल (केलेका एक भेद), काण्डक (करैला), क्षीरशाक (दूधी), कालशाक (करेमू) नामक शाकों, सेमकी लताओं तथा सभी प्रकारके अन्नोंके पौधोंसे वह सारा प्रदेश सुशोभित हो रहा था ॥ २१—३२ ॥

औषधीभिर्विचित्राभिर्दीप्यमानाभिरेव च । आयुष्याभिर्यशस्याभिर्वल्याभिश्च नराधिप ॥ ३३ ॥
जरामृत्युभयघ्नीभिः क्षुद्भयघ्नीभिरेव च । सौभाग्यजननीभिश्च कृत्स्नाभिश्चाप्यनेकशः ॥ ३४ ॥
तत्र वेणुलताभिश्च तथा कीचकवेणुभिः । काशैः शशाङ्ककाशैश्च शरगुल्मैस्तथैव च ॥ ३५ ॥

गोक्ष्वेडकांस्तथा कुम्भान् धार्तराष्ट्राञ्छुकान् बकान् । घातुकांश्चक्रवाकांश्च कटाकूण्टिट्टिभान् भटान्॥ ५१ ॥
पुत्रप्रियाँल्लोहपृष्ठान् गोचर्मगिरिवर्तकान् । पारावतांस्त्र कमलान् सारिकाञ्जीवजीवकान् ॥ ५२ ॥
लाववर्तकवार्ताकान् रक्तवर्मप्रभद्रकान् । ताम्रचूडान् स्वर्णचूडाङ्कुक्कुटान् काष्ठकुक्कुटान् ॥ ५३ ॥
कपिञ्जलाङ्कलविङ्कांस्तथा कुङ्कुमचूडकान् । भृङ्गराजान् सीरपादान् भूलिङ्गाण्डिण्डिमान् नवान् ॥ ५४ ॥
मञ्जुलीतकदात्यूहान् भारद्वाजांस्तथा चषान् । एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पक्षिसङ्घान् मनोहरान् ॥ ५५ ॥

नरेन्द्र ! (यहाँतक कि) नागलोक, स्वर्गलोक, मृत्युलोक, जलप्रा स्थान तथा वनमें उत्पन्न होनेवाला ऐसा कोई भी अनाज, धान्य, शाक, फल, मूल, कन्द और फूल नहीं था, जो वहाँ विद्यमान न हो अर्थात् सभी प्राप्य थे। वहाँके वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मद्रेश्वर पुरूरवाने अपनी तपस्याके प्रभावसे उस वनप्रान्तको देखा। राजाको वहाँ अनेकों प्रकारके रूप-रंगवाले पक्षी भी दीख पड़े। जैसे मोर, शतपत्र (कठफोरवा), कलविंक (गौरैया), कोयल, कादम्बक (कलहंस), हंस, कोयष्टि (जलकुक्कुट), खंजरीट (खिड़रिच), कुरर (कराँकुल), कालकूट (जलकौआ), लोभी खट्वाङ्ग (पक्षी विशेष), गोक्ष्वेडक (हारिल), कुम्भ (डोम कौआ), धार्तराष्ट्र (काली चोंच और काले पैरोंवाले हंस), तोते, बगुले, निष्ठुर चक्रवाक, कटाकू (कर्कश ध्वनि करनेवाले विशेष पक्षी), टिटिहिरी, भट (तीतर), पुत्रप्रिय (शरभ), लोहपृष्ठ (श्वेत चील्ह), गोचर्म (चरखा), गिरिवर्तक (बतख), कबूतर, कमल (सारस), मैना, जीवजीवक (चकोर), लवा, वर्तक (बटेर), वार्ताक (बटेरोंकी एक जाति), रक्तवर्म (मुर्गा), प्रभद्रक (हंसका एक भेद), ताम्रचूड (लाल शिखावाले मुर्गे), स्वर्णचूड (स्वर्ण-सदृश शिखावाले मुर्गे), सामान्य मुर्गे, काष्ठकुक्कुट (मुर्गेका एक भेद), कपिञ्जल (पपीहा), कलविंक (गौरैया), कुङ्कुमचूड (केसर-सरीखी शिखावाले पक्षी), भृङ्गराज (पक्षिविशेष), सीरपाद (बड़ा सारस), भूलिंग (भूमिमें रहनेवाले पक्षी), डिण्डिम (हारिल पक्षीकी एक जाति), नव (काक), मञ्जुलीतक (चील्हकी जातिविशेष), दात्यूह (जलकाक), भारद्वाज (भरदूल) तथा चाष (नीलकण्ठ)—इन्हें तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से मनोहर पक्षिसमूहोंको राजाने देखा ॥ ४६—५५ ॥

श्वापदान् विविधाकारान् मृगांश्चैव महामृगान् । व्याघ्रान् केसरिणः सिंहान् द्वीपिनः शरभान् वृकान् ॥५६॥
ऋक्षांस्तरक्षूंश्च बहून् गोलाङ्गूलान् सवानरान् । शशलोमान् सकादम्बान् मार्जारान् वायुवेगिनः ॥ ५७ ॥
तथा मत्तांश्च मातङ्गान् महिषान् गवयान् वृषान् । चमरान् सृमरांश्चैव तथा गौरखरानपि ॥ ५८ ॥
उरभ्रांश्च तथा मेषान् सारङ्गानथ कूकुरान् । नीलांश्चैव महानीलान् करालान् मृगमातृकान्॥ ५९ ॥
सदंष्ट्रालोमशरभान् क्रोष्ट्राकारकशम्बरान् । करालान् कृतमालांश्च कालपुच्छांश्च तोरणान् ॥ ६० ॥
उष्ट्रान् खड्गान् वराहांश्च तुरङ्गान् खरगर्दभान् । एतानद्रिष्टान् मद्रेशो विरुद्धांश्च परस्परम् ॥ ६१ ॥
अविरुद्धान् वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ । तच्चाश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृप ॥ ६२ ॥
तत्प्रसादात् प्रभायुक्तं स्थावरैर्जङ्गमैस्तथा । हिंसन्ति हि न चान्योन्यं हिंसकास्तु परस्परम्॥ ६३ ॥

इसी प्रकार राजाको वहाँ विभिन्न रूप-रंगवाले जंगली जीव भी देखनेको मिले। जैसे—हिरन, बारह- [illegible] (सुरा गाय), सृमर (बालमृग), [illegible] रंगके गधे, भेंड़, भेड़ [illegible]

फल भी सफलताको प्राप्त करते रहते हैं। वह श्रेष्ठ आश्रम सदा भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान एवं देवाङ्गनाओंसे सुसेवित तथा उस पर्वतके प्रहरीकी तरह सम्पूर्ण पापोंका विनाशक था। नरेश्वर! एक स्थानसे दूसरे स्थानपर क्रीडा करते हुए बन्दरोंने वहाँकी बर्फराशिको चाँदनीके समान उज्ज्वल बना दिया था। वह आश्रम चारों ओरसे हिमाच्छादित कन्दराओं और कँकरीले-पथरीले मार्गोंसे घिरा हुआ था, इसलिये वह मनुष्योंके लिये सदा : था। पूर्वजन्मकी आराधनाके प्रभावसे युक्त मह पुरूरवा देवाधिदेव भगवान्‌की कृपासे उस आः पहुँचे थे। वह आश्रम थकावटको दूर करनेवाला, मन मनोमोहक पुष्पोंसे अलंकृत, स्वयं महर्षिद्वारा सुन्दर निर्मित, मङ्गलमय एवं शुभकारक था, उसे मह पुरूरवाने देखा ॥ ६४—७७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें अत्रि-आश्रमवर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११८ ॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

आश्रमस्थ विवरमें पुरूरवा*का प्रवेश, आश्रमकी शोभाका वर्णन तथा पुरूरवाकी तपस्या

सूत उवाच

तत्र यौ तौ महाशृङ्गौ महावर्णौ महाहिमौ। तृतीयं तु तयोर्मध्ये शृङ्गमत्यन्तमुच्छ्रितम् ॥ १
नित्यातप्तशिलाजालं सदाभ्रपरिवर्जितम्। तस्याधस्ताद् वृक्षगणो दिशां भागे च पश्चिमे ॥ २
जातीलतापरिक्षिप्तं विवरं चारुदर्शनम्। दृष्ट्वैव कौतुकाविष्टस्तं विवेश महीपतिः ॥ ३
तमसा चातिनिबिडं नल्वमात्रं सुसंकटम्। नल्वमात्रमतिक्रम्य स्वप्रभाभरणोज्ज्वलम् ॥ ४ ॥
तमुच्छ्रितमथात्यन्तं गम्भीरं परिवर्तुलम्। न तत्र सूर्यस्तपति न विराजति चन्द्रमाः ॥ ५ ॥
तथापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम्। क्रोशाधिकपरीमाणं सरसा च विराजितम् ॥ ६ ॥
समंतात् सरसस्तस्य शैललग्ना तु वेदिका। सौवर्णैं राजतैर्वृक्षैर्विद्रुमैरुपशोभितम् ॥ ७ ॥
नानामाणिक्यकुसुमैः सुप्रभाभरणोज्ज्वलैः। तस्मिन् सरसि पद्मानि पद्मरागच्छदानि तु ॥ ८ ॥
वज्रकेशरजालानि सुगन्धीनि तथा युतम्। पत्रैर्मरकतैर्नीलैर्वैदूर्यस्य महीपते ॥ ९ ॥
कर्णिकाश्च तथा तेषां जातरूपस्य पार्थिव।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! वहाँ सदा हिमाच्छादित तथा रंग-बिरंगे जो दो महान् शिखर थे, उनके बीचमें एक तीसरा शिखर था, जो अत्यन्त ऊँचा था। वह बादलोंसे सदा शून्य रहता था, जिससे उसकी शिलाएँ नित्य संतप्त बनी रहती थीं। उस शिखरके नीचे पश्चिम दिशामें वृक्षोंके समूह शोभा पा रहे थे। उन्हींके बीचमें एक अत्यन्त सुन्दर विवर (छिद्र) था, जो मालतीकी लताओंसे आच्छादित था। उसे देखते ही राजा पुरूरवा आश्चर्यचकित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने उस विवरमें प्रवेश किया। वह मार्ग चार सौ हाथ (एक फर्लांग) तक घने अन्धकारसे समावृत होनेके कारण अत्यन्त संकटमय था। उस चार सौ हाथकी दूरीको पार कर लेनेपर राजा ऐसे स्थानपर पहुँचे, जो अपनी कान्तिसे ही उद्भासित हो रहा था। वह स्थान ऊँचा, अत्यन्त गम्भीर और गोलाकार था तथा एक कोसके विस्तारवाला था। यद्यपि वहाँ न सूर्य तपते थे न चन्द्रमा ही

* इस पुराणमें—यजुर्वेद ५। २, ऋग्वेद १०। ९५, शतपथ०ब्रा० ११। ५ आदिमें संकथित पुरूरवाके कथानकका सर्वाधिक विस्तारसे उपबृंहण हुआ है और कई बार उसकी पुनरुक्ति भी हुई है। इससे विक्रमोर्वशीयमें कालिदास एवं पार्जीटर आदि आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् लेखक बहुत प्रभावित हैं। निघण्टु ५। ४ तथा यास्कीय निरुक्त १०। ४६ एवं ऋग्वेद ८। ५। २। २के अनुसार ये पुरूरवा सूर्य या मूल प्राणतत्त्व हैं। पाणि० ६। ३। १३७ के अनुसार यहाँ 'पुरु' में दीर्घ हुआ है।

न क्षिणोति यथा कण्ठं कुक्षिं नापूरयत्यपि। तृप्तिं विधत्ते परमां शरीरे च महत् सुखम्॥ २४॥
मध्ये तु तस्याः प्रासादं निर्मितं तपसात्रिणा। रुक्मसेतुप्रवेशान्तं सर्वरत्नमयं शुभम्॥ २५॥
शशाङ्करश्मेः संकाशं प्रासादं राजतं हितम्। रम्यवैदूर्यसोपानं विद्रुमामलसारकम्॥ २६॥
इन्द्रनीलमहास्तम्भं मरकतासक्तवेदिकम्। वज्रांशुजालैः स्फुरितं रम्यं दृष्टिमनोरमम्॥ २७॥
प्रासादे तत्र भगवान् देवदेवो जनार्दनः। भोगिभोगावलीसुप्तः सर्वालंकारभूषितः॥ २८॥
जान्वाच्य कुञ्चितस्त्वेको देवदेवस्य चक्रिणः। फणीन्द्रसंनिविष्टोऽङ्घ्रिर्द्वितीयश्च तथानघ॥ २९॥
लक्ष्म्युत्सङ्गतोऽङ्घ्रिस्तु शेषभोगप्रशायिनः। फणीन्द्रभोगसंन्यस्तबाहुः केयूरभूषणः॥ ३०॥

राजन्! उस शिलातलपर एक रमणीय पुष्करिणी (पोखरी) थी, जो चौकोर, मनोमोहिनी तथा आकाशके समान निर्मल थी। वह अत्यन्त शीतल एवं निर्मल जलसे परिपूर्ण तथा कमलोंसे सुशोभित थी। उसका वह जल सुस्वादु, पचनेमें हल्का, शीतल और सुगन्धयुक्त था। वह जैसे गलेको कष्ट नहीं पहुँचाता था, उसी प्रकार कुक्षिको भी वायुसे परिपूर्ण नहीं करता था अर्थात् वायुविकार नहीं उत्पन्न करता था, अपितु शरीरमें पहुँचकर परम तृप्ति उत्पन्न करता तथा महान् सुख पहुँचाता था। उस पुष्करिणी (बावली)के मध्य-भागमें महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके बलसे एक महलका निर्माण किया था। वह सुन्दर प्रासाद चाँदीका बना हुआ था, जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमक रहा था। उसमें सभी प्रकारके रत्न जड़े गये थे तथा भीतर प्रवेश करनेके लिये सोनेकी सीढ़ियाँ बनी थीं, जिनमें रमणीय वैदूर्य एवं निर्मल मूँगे लगे हुए थे। उसमें इन्द्रनील मणिके विशाल खम्भे लगे थे। उसकी वेदिका अर्थात् फर्शपर मरकतमणि जड़ी हुई थी। हीरेकी किरणोंसे चमचमाता हुआ वह रमणीय महल देखते ही मनको लुभा लेता था। उस महलमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दन (मूर्ति-रूपसे) सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित होकर शेषनागके फणोंपर शयन कर रहे थे। अनघ! देवाधिदेव चक्रधारी भगवान्‌का एक चरण घुटनेसे मुड़ा हुआ था और दूसरा चरण शेषनागके ऊपरसे होता हुआ लक्ष्मीकी गोदमें स्थित था। शेषनागके फणोंपर शयन करनेवाले भगवान्‌का बाजूबंदसे विभूषित एक हाथ शेषनागके फणोंपर स्थापित था॥ २२—३०॥

अङ्गुलीपृष्ठविन्यस्तदेवशीर्षधरं भुजम्। एकं वै देवदेवस्य द्वितीयं तु प्रसारितम्॥ ३१॥
समाकुञ्चितजानुस्थमणिबन्धेन शोभितम्। किंचिदाकुञ्चितं चैव नाभिदेशकरस्थितम्॥ ३२॥
तृतीयं तु भुजं तस्य चतुर्थं तु तथा शृणु। आत्तसंतानकुसुमं घ्राणदेशानुसर्पिणम्॥ ३३॥
लक्ष्म्या संवाह्यमानाङ्घ्रिः पद्मपत्रनिभैः करैः। संतानमालामुकुटं हारकेयूरभूषितम्॥ ३४॥
भूषितं च तथा देवमङ्गदैरङ्गुलीयकैः। फणीन्द्रफणविन्यस्तचारुरत्नशिखोज्ज्वलम्॥ ३५॥
अज्ञातवस्तुचरितं प्रतिष्ठितमथात्रिणा। सिद्धानुपूज्यं सततं संतानकुसुमार्चितम्॥ ३६॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यधूपेन धूपितम्। सुरसैः सुफलैर्हृद्यैः सिद्धैरुपहृतैः सदा॥ ३७॥
शोभितोत्तमपार्श्वं तं देवमुत्पलशीर्षकम्।

उस हाथकी अङ्गुलियोंका पृष्ठभाग शेषके सिरपर रखा हुआ था। उनका दूसरा हाथ फैला हुआ था। तीसरे हाथका मणिबन्ध मुड़े हुए घुटनेपर सुशोभित था तथा कुछ मुड़कर नाभिदेशपर फैले हुए पहले हाथपर अवलम्बित था। अब उनके चौथे हाथकी दशा सुनो। चौथे हाथमें भगवान् कल्पवृक्षका पुष्प धारण किये हुए थे और उसे अपनी नासिकातक ले गये थे। उस समय लक्ष्मी अपने कमल-दलके समान कोमल हाथोंसे भगवान्‌का चरण दबा रही थीं। भगवान्‌के मस्तकपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालाओंका मुकुट शोभा दे रहा था। वे हार, केयूर, बाजूबंद और अँगूठीसे विभूषित तथा शेषनागके फणोंपर रखे हुए सुन्दर रत्नोंसे प्रकाशित हो रहे थे। इन्हीं

एक सौ बीसवाँ* अध्याय

राजा पुरूरवाकी तपस्या, गन्धर्वों और अप्सराओंकी क्रीडा, महर्षि अत्रिका आगमन तथा राजाको वर-प्राप्ति

सूत उवाच

स त्वाश्रमपदे रम्ये त्यक्ताहारपरिच्छदः। क्रीडाविहारं गन्धर्वैः पश्यत्यप्सरसां सह ॥ १ ॥
कृत्वा पुष्पोच्चयं भूरि ग्रथयित्वा तथा स्रजः। अर्घ्यं निवेद्य देवाय गन्धर्वेभ्यस्तदा ददौ ॥ २ ॥
पुष्पोच्चयप्रसक्तानां क्रीडन्तीनां यथासुखम्। चेष्टा नानाविधाकाराः पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ३ ॥
काचित् पुष्पोच्चये सक्ता लताजालेन वेष्टिता। सखीजनेन संत्यक्ता कान्तेनाभिसमुज्झिता ॥ ४ ॥
काचित् कमलगन्धाभा निःश्वासपवनाहृतैः। मधुपैराकुलमुखी कान्तेन परिमोचिता ॥ ५ ॥
मकरन्दसमाक्रान्तनयना काचिदङ्गना। कान्तनिःश्वासवातेन नीरजस्ककृतेक्षणा ॥ ६ ॥
काचिदुच्चीय पुष्पाणि ददौ कान्तस्य भामिनी। कान्तसंग्रथितैः पुष्पै रराज कृतशेखरा ॥ ७ ॥
उच्चीय स्वयमुद्ग्रथ्य कान्तेन कृतशेखरा। कृतकृत्यमिवात्मानं मेने मन्मथवर्धिनी ॥ ८ ॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार राजकीय सामग्रियों तथा आहारका परित्याग कर राजा पुरूरवा उस रमणीय आश्रममें निवास करने लगे। वहाँ उन्हें गन्धर्वोंके साथ अप्सराओंका क्रीडाविहार भी देखनेको मिलता था। राजा बहुत-से फूलोंको तोड़कर उसकी [माला] गूँथते थे और उन्हें अर्घ्यसहित पहले भगवान् [शंकर]को निवेदित कर पुनः गन्धर्वोंको दे देते थे। वे [राजा] पुष्प-चयनमें लगी हुई एवं सुखपूर्वक क्रीडा करती [हुई] अप्सराओंकी विभिन्न प्रकारकी चेष्टाओंको देखकर [भी] अनदेखी कर जाते थे। वहाँ पुष्प-चयनमें निरत कोई अप्सरा लता-समूहमें उलझ गयी और सखियाँ उसे उसी दशामें छोड़कर चलती बनीं, तब उसके पतिने आकर उसे बन्धन-मुक्त किया। किसी अप्सराके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकल रही थी। इस कारण उसकी निःश्वासवायुसे आकृष्ट होकर भ्रमर उसके ऊपर मँडरा रहे थे। उन भ्रमरोंसे उसका मुख ढक-सा गया था; तब उसके पतिने उसे उस कष्टसे मुक्त किया। किसी अप्सराकी आँखें पुष्प-रजसे आक्रान्त हो गयीं, तब उसके पतिने अपनी श्वासवायुसे फूँककर उन्हें धूलरहित कर दिया। किसी सुन्दरीने पुष्पोंको एकत्रकर अपने पतिको दे दिया। तत्पश्चात् वह अपने पतिद्वारा गूँथी गयी पुष्प-मालाको अपने मस्तकपर रखकर सुशोभित होने लगी। तभी किसीके पतिने पुष्प-चयन करके अपने ही हाथों माला गूँथकर उसे अपनी पत्नीके मस्तकपर रखकर उसे सुसज्जित कर दिया, इससे उसने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥ १—८ ॥

अस्त्यस्मिन् गहने कुञ्जे विशिष्टकुसुमा लता। काचिदेवं रहो नीता रमणेन रिरंसुना ॥ ९ ॥
कान्तसंनामितलता कुसुमानि विचिन्वती। सर्वाभ्यः काचिदात्मानं मेने सर्वगुणाधिकम् ॥ १० ॥
काश्चित् पश्यन्ति भूपालं नलिनीषु पृथक् पृथक्। क्रीडमानास्तु गन्धर्वैर्दिवरामा मनोरमाः ॥ ११ ॥
काचिदाताडयत् कान्तमुदकेन शुचिस्मिता। ताड्यमानाथ कान्तेन प्रीतिं काचिदुपाययौ ॥ १२ ॥
कान्तं च ताडयामास जातखेदा वराङ्गना। अदृश्यत वरारोहा श्वासनृत्यत्पयोधरा ॥ १३ ॥

* इस अध्यायके अनेक शब्दार्थालंकारोंसे उद्दीपित अधिकांश श्लोक भागवत १० । ३३ से मिलते हैं। कोई एक दूसरेसे अवश्य प्रभावित है। वैसे इस प्रकारका वर्णन गर्गसंहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराणके रासप्रकरणोंमें तथा भागवतके रामनारायण-कृत भावविभाविक तथा किशोरीदासकृता विशुद्धरसदीपिकामें इनकी भी पूरी व्याख्या है।

राजन् ! वे अप्सराएँ सदा प्रदोषकालमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दनके समक्ष नाना प्रकारके बाजोंके साथ नृत्य करती थीं। एक पहर रात बीत जानेपर वे गुफाके मुखद्वारसे बाहर निकलकर अपने पतियोंके साथ ऐसी सजी-सजायी गुफामें निवास करती थीं, जिसपर अनेकों प्रकारके गन्धोंवाली लताएँ फैली हुई थीं, जिसमेंसे विभिन्न प्रकारकी सुगन्ध निकल रही थी, जो पुष्प-समूहसे सुशोभित थी तथा जिसमें अनेकों विचित्र शय्याएँ बिछी थीं। महाराज ! इस प्रकार उस पर्वतपर अप्सराओंकी क्रीडाका अवलोकन करते हुए राजा पुरूरवा भगवान् केशवमें मनको एकाग्र करके तपस्या करते रहे। एक दिन यूथ-के-यूथ गन्धर्व और अप्सराएँ राजाके निकट जाकर उनसे बोलीं—'शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश ! (बड़े सौभाग्यसे) आप इस स्वर्ग-तुल्य देशमें आ गये हैं, अतः हमलोग आपको मनोऽभिलषित वर प्रदान करेंगी। उन्हें ग्रहणकर यदि आपकी इच्छा हो तो घर चले जाइये अथवा यहीं रहिये' ॥ २३—३७ ॥

राजोवाच

अमोघदर्शनाः सर्वे भवन्तस्त्वमितौजसः। वरं वितरताद्यैव प्रसादं मधुसूदनात् ॥ ३८ ॥
एवमस्त्वित्यथोक्तस्तैः स तु राजा पुरूरवाः। तत्रोवास सुखी मासं पूजयानो जनार्दनम् ॥ ३९ ॥
प्रिय एव सदैवासीद् गन्धर्वाप्सरसां नृपः। तुतोष स जनो राज्ञस्तस्यालौल्येन कर्मणा ॥ ४० ॥
मासस्य मध्ये स नृपः प्रविष्टस्तदाश्रमं रत्नसहस्रचित्रम्।
तोयाशनस्तत्र ह्युवास मासं यावत्सितान्तो नृप फाल्गुनस्य ॥ ४१ ॥
फाल्गुनामलपक्षान्ते राजा स्वप्ने पुरूरवाः। तस्यैव देवदेवस्य श्रुतवान् गदितं शुभम् ॥ ४२ ॥
रात्र्यामस्यां व्यतीतायामत्रिणा त्वं समेष्यसि। तेन राजन् समागम्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ४३ ॥
स्वप्नमेवं स राजर्षिर्दृष्ट्वा देवेन्द्रविक्रमः। प्रत्यूषकाले विधिवत् स्नातः स प्रयतेन्द्रियः ॥ ४४ ॥
कृतकृत्यो यथाकामं पूजयित्वा जनार्दनम्। ददर्शात्रिं मुनिं राजा प्रत्यक्षं तपसां निधिम् ॥ ४५ ॥
स्वप्नं तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्मिकः। ततः शुश्राव वचनं देवतानां समीरितम् ॥ ४६ ॥
एवमेतन्महीपाल नात्र कार्या विचारणा। एवं प्रसादं सम्प्राप्य देवदेवाज्जनार्दनात् ॥ ४७ ॥
कृतदेवार्चनो राजा तथा हुतहुताशनः। सर्वान् कामानवाप्तोऽसौ वरदानेन केशवात् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ऐलाश्रमवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

राजाने कहा—गन्धर्वो एवं अप्सराओ ! आपलोग अमित तेजस्वी हैं, इससे आपलोगोंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता, इसलिये आपलोग आज ही मुझे ऐसा वरदान दें, जिससे भगवान् मधुसूदनकी कृपा प्राप्त हो जाय। यह सुनकर वे 'एवमस्तु—ऐसा ही होगा'—ऐसा कहकर वहाँसे चले गये। तत्पश्चात् राजा पुरूरवा वहाँ एक मासतक भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हुए सुखपूर्वक निवास करते रहे। वे सदा गन्धर्वों एवं अप्सराओंके प्रेमपात्र बने रहे। वे लोग राजाके निर्लोभ कर्मसे परम संतुष्ट थे। राजन् ! उस मासके बीचमें ही राजा पुरूरवाने हजारों रत्नोंसे चित्रित उस आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ वे एक मासतक केवल जल पीकर तबतक निवास करते रहे, जबतक फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथि नहीं आ गयी। राजा पुरूरवाने फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिकी रातमें स्वप्नमें उन्हीं देवाधिदेव भगवान् विष्णुद्वारा कहे जाते हुए इस प्रकारके मङ्गलमय शब्दोंको सुना—'राजन् ! इस रात्रिके व्यतीत हो जानेपर अत्रिसे तुम्हारी भेंट होगी और उनसे मिलकर तुम कृतकृत्य हो जाओगे।

कोंसे घिरे हुए अपने अनुयायियोंके साथ निवास ते हैं। पुण्यमयी मन्दाकिनी तथा कल्याणकारिणी अच्छोदा—ये दोनों नदियाँ पृथ्वी-मण्डलके मध्यभागसे प्रवाहित होती हुई महासागरमें मिली हैं ॥ १—९½ ॥

कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम् ॥ १० ॥
मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति। लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ॥ ११ ॥
तस्य पादे महद् दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः। तस्मात् प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदो महान् ॥ १२ ॥
दिव्यारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महद् वनम्। तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी ॥ १३ ॥
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः। कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधीगिरिः ॥ १४ ॥
ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः। तदञ्जनं त्रैककुदं शैलं त्रिककुदं प्रति ॥ १५ ॥
सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः। तस्य पादे महद् दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम् ॥ १६ ॥
तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी। यस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम् ॥ १७ ॥
कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी। ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥ १८ ॥

कैलासके दक्षिण-पूर्व दिशामें लाल वर्णवाला हेमशृङ्ग क एक विशाल पर्वत है। वह दिव्य सुवेल पर्वततक हुआ है। उसकी कान्ति सूर्यके समान है। वह श्प्रद पर्वत सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न तथा ल नामक धातुसे परिपूर्ण है। उसके पाद-प्रान्तमें विशाल दिव्य सरोवर है, जिसका नाम लोहित है। पुण्यमय लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नामक महान् नदका :स्य है। उस नदके तटपर विशोक नामक एक एवं विस्तृत वन है। उस पर्वतपर मणिधर नामक यक्ष वशमें करके परम धार्मिक एवं सौम्य-स्वभाव- गुह्यकोंके साथ निवास करता है। कैलासकी ोत्त दिशामें ककुद्मान् नामक पर्वत है, जिसपर सभी प्रकारकी ओषधियाँ सुलभ हैं। वह अञ्जन-जैसा काला तथा तीन शिखरोंसे सुशोभित है। उस ककुद्मान् पर्वतपर भगवान् रुद्रके गण ककुद्मी (नन्दिकेश्वर)की उत्पत्ति हुई है। वहीं समस्त धातुओंसे सम्पन्न वैद्युत नामक अत्यन्त महान् पर्वत है, जो त्रिककुद् पर्वततक विस्तृत है। उसके पाद-प्रान्तमें सिद्धोंद्वारा सेवित एक महान् दिव्य मानस सरोवर है। उस सरोवरसे लोकपावनी पुण्य-सलिला सरयू* निकली हुई हैं, जिनके तटपर (वरुणका) वैभ्राज नामक सुप्रसिद्ध दिव्य वन है। उस वनमें प्रहेतिका पुत्र ब्रह्मधाता नामक राक्षस निवास करता है। वह जितेन्द्रिय, अनन्तपराक्रमी और कुबेरका अनुचर है ॥ १०—१८ ॥

कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः। वरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ॥ १९ ॥
भवस्य दयितः श्रीमान् पर्वतो हैमसंनिभः। शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः ॥ २० ॥
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन्। शृङ्गवान् सुमहादिव्यो दुर्गः शैलो महाचितः ॥ २१ ॥
तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः। तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ॥ २२ ॥
तस्मात् प्रभवते पुण्या नदी शैलोदका शुभा। सा चक्षुषी तयोर्मध्ये प्रविष्टा पश्चिमोदधिम् ॥ २३ ॥
अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधो गिरिः। गौरं तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ॥ २४ ॥
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः। तस्य पादे महद् दिव्यं सरः काञ्चनवालुकम् ॥ २५ ॥
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः। गङ्गार्थं स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः ॥ २६ ॥
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गङ्गातोयाप्लुतास्थिकाः। तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥

* इस अध्यायका हिमालयसे सम्बद्ध भौगोलिक विवरण बड़े महत्त्वका है और यह वर्णन बहुत कुछ कालिदा- ासे मिलता है।

जाऊँगी। जब शंकरजीको गङ्गाकी यह कुचेष्टा और क्रूर अभिप्राय ज्ञात हुआ, तब वे उसे गङ्गाका अभिमान समझकर क्रुद्ध हो गये और उस नदी-रूपिणी गङ्गाको अपने अङ्गोंमें ही लीन कर लेनेका विचार करने लगे; परंतु ठीक इसी समय राजा भगीरथ, जिनकी इन्द्रियाँ भूखसे व्याकुल हो गयी थीं तथा जिनके शरीरमें नसेंमात्र दीख रही थीं, शिवजीके सम्मुख आ गये। उन क्षीण-काय नरेशको देखकर शंकरजी विचारमें पड़ गये कि इसने तो पहले ही इस नदीको भूतलपर ला[ने] तपस्याद्वारा मुझे संतुष्ट कर लिया है। फिर [इ] राजाको दिये गये वरदानको यादकर उन्होंने अप[ने] रोक लिया। तत्पश्चात् गङ्गा नदीको धारण क[र] ब्रह्माद्वारा कहे गये वचनोंको सुनकर तथा भगीर[थ] तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शंकरने अपने तेज हुई गङ्गा-नदीको छोड़ दिया। इसके बाद ग[ङ्गा] धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित हुईं ॥ ३०-३

त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रीण्यथैव तु। स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा॥
नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगाः। सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्रस्ता वै प्रतीच्यगाः।
सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम्। तस्माद् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्।
सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षं तु हिमसाह्वयम्। प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवाः॥
तान् देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः। सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान्
पुलिन्दांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोक्यान् वरांश्च यान्। कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥
अथ वीरमरूंश्चैव कालिकांश्चैव शूलिकान्। तुषारान् बर्बरान् कारान् पह्लवान् पारदाञ्छकान्॥
एताञ्जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिं गता। दरदोर्जगुडांश्चैव गान्धारानौरसान् कुहून्॥
शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम्। सैन्धवानुर्वशान् वर्वान् कुपथान् भीमरोमकान्॥
शुनामुखांश्चोर्दमरून् सिन्धुरेतान् निषेवते। गन्धर्वान् किंनरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्॥
कलापग्रामकांश्चैव तथा किम्पुरुषान् नरान्। किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतानपि॥
पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च। सुह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च॥
एताञ्जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा। ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥

उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः।

वंशौकसाराके तटपर सुरभि नामक वह वन है, तमें जितेन्द्रिय एवं विद्वान् हिरण्यश्रृङ्ग निवास ता है। वह कुबेरका अनुचर, यज्ञसे विमुख, अमित स्वी एवं परम पराक्रमी है। वहीं अगस्त्यगोत्रीय न् ब्रह्मराक्षसोंका भी निवासस्थान है। (उनकी ा चार है।) वे चारों कुबेरके अनुचर हैं, जो हिरण्यश्रृङ्गके आश्रममें रहते हैं। इसी प्रकार निवासियोंकी सिद्धि समझनी चाहिये। वह धर्म, और अर्थके अनुसार परस्पर दुगुना फल देनेवाली है। हेमकूट पर्वतके पृष्ठभागपर जो सर्पोंका र बतलाया जाता है, उसीसे सरस्वती और ज्योतिष्मती नामकी दो नदियाँ निकली हैं। वे ः पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली हैं। श्रेष्ठ निषधपर विष्णुपद नामक सरोवर है, जो उसी के अग्रभागसे निकला हुआ है। वे दोनों (नाग विष्णुपद) सरोवर गन्धर्वोंके अनुकूल हैं। मेरुके पार्श्वभागसे चन्द्रप्रभ नामक महान् सरोवर तथा पुण्यसलिला जम्बूनदी निकलती है। जम्बूनदीमें जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है। वहीं पयोद और पुण्डरीकवान् नामक दो सरोवर और हैं, जिनका जल क्रमशः नील और श्वेत है। इन पुण्डरीक और पयोद सरोवरोंसे दो सरोवर और प्रकट हुए हैं। उनमें एक सरोवरसे निकला हुआ सर उत्तरमानस नामसे प्रसिद्ध है। उससे मृग्या और मृगकान्ता नामकी दो नदियाँ निकली हैं। कुरुदेशमें सागरके समान अगाध एवं विस्तृत बारह ह्रद हैं, जो कमलों और मछलियोंसे भरे रहते हैं, वे 'वैजय' नामसे विख्यात हैं। उनसे शान्ती और मध्वी नामकी दो नदियाँ निकली हैं। किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें इन्द्रदेव वर्षा नहीं करते, अपितु वहाँकी बड़ी-बड़ी नदियाँ ही अन्नोत्पादक जलको प्रवाहित करती हैं॥ ६१—७१½॥

बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च॥ ७२॥

विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्ना लवणाम्बुधिम्। चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्च शिलोच्चयः॥ ७३॥
उदगायता उदीच्यां तु अवगाढा महोदधिम्। चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः॥ ७४॥
प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम्। जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः॥ ७५॥
आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति। चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि संदक्षिणापथे॥ ७६॥
तत्र संवर्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्। अग्निः समुद्रवासस्तु और्वोऽसौ वडवामुखः*॥ ७७॥
इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम्। छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्॥ ७८॥
तेषां तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः। ते भारतस्य वर्षस्य भेदा येन प्रकीर्तिताः॥ ७९॥
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः। उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः॥ ८०॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः। समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः॥ ८१॥
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै। इत्येतद् धारयद् विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता॥ ८२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥

बलाहक, ऋषभ, चक्र और मैनाक—ये चारों पर्वत ः चारों दिशाओंमें लवणसागरतक फैले हुए हैं। कान्त, द्रोण तथा सुमहान्—इन पर्वतोंका विस्तार उत्तर दिशामें महासागरतक है। चक्र, बधिरक और नारद—ये पर्वत पश्चिम दिशामें फैले हुए हैं। इनका विस्तार महासागरतक है। जीमूत, द्रावण, मैनाक और चन्द्र—

* आर्यभट्टीय आदिके अनुसार वडवामुख दक्षिणीध्रुवके पास एक स्थान है, जिस मार्गसे लोग पातालमें प्रवेश ये। बडवाग्निको वडवाचक्र, वडवाभुग; हुत् आदि भी कहा गया है। महावीरचरितमें इसके रूप आदिका भी वर्णन है।

दिशाओंमें सीधे फैले हुए हैं। ये ही वहाँ वर्षपर्वत कहलाते हैं। ये रत्नाकराद्रि नामवाले वर्षपर्वत ऊँचे शिखरोंसे युक्त तथा वृक्षोंसे सम्पन्न हैं। ये द्वीप विस्तारके परिमाणकी समानतामें चारों दिशाओंमें फैले हुए हैं और एक ओर क्षीरसागरतक तथा दूसरी ओर लवणसागरतक पहुँच गये हैं। अब मैं शाकद्वीपके सातों दिव्य महापर्वतोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनमें पहला पर्वत मेरु कहा जाता है, जो देवों, ऋषियों और गन्धर्वोंसे सुसेवित है। वह स्वर्णमय पर्वत पूर्व दिशामें फैला हुआ है। उसक दूसरा नाम 'उदयगिरि' है। वहाँ मेघगण वृष्टि करनेके लि आते हैं और (जल बरसाकर) चले जाते हैं। उसं पार्श्वभागमें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न जलधार नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है। वह चन्द्र नामसे भी विख्या है। उसी पर्वतसे इन्द्र नित्य अधिक-से-अधिक ज ग्रहण करते हैं ॥ १—१० ॥

नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः। तत्राचलौ समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ ॥ ११ ॥
तस्यापरेण सुमहाञ् श्यामो नाम महागिरिः। यत्र श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल ॥ १२ ॥
स एव दुन्दुभिर्नाम श्यामपर्वतसंनिभः। शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन् दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः ॥ १३ ॥
रत्नमालान्तरमयः शाल्मलश्चान्तरालकृत्। तस्यापरेण रजतो महानस्तो गिरिः स्मृतः ॥ १४ ॥
स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा। सम्भृतं च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥ १५ ॥
तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाश्चैव स स्मृतः। हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्शैले निषूदितः ॥ १६ ॥
आम्बिकेयात् परो रम्यः सर्वौषधिनिषेवितः। विभ्राजस्तु समाख्यातः स्फाटिकस्तु महान् गिरिः ॥ १७ ॥
यस्माद् विभ्राजते वह्निर्विभ्राजस्तेन स स्मृतः। सैवेह केशवेत्युक्तो यतो वायुः प्रवाति च ॥ १८ ॥

वहीं महान् समृद्धिशाली नारद नामक पर्वत है, जिसे दुर्गशैल भी कहते हैं। पूर्वकालमें ये दोनों नारद और दुर्गशैल पर्वत यहीं उत्पन्न हुए थे। उसके बाद श्याम नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है, जहाँ पूर्वकालमें ये सारी प्रजाएँ श्यामलताको प्राप्त हो गयी थीं। श्यामपर्वतके सदृश काले रंगवाला वहीं दुन्दुभि पर्वत भी है, जिसपर प्राचीनकालमें देवताओंद्वारा दुन्दुभिके बजाये जानेपर उसके शब्दसे ही (शत्रुओंकी) मृत्यु हो जाती थी। इसके अन्तःप्रदेशमें रत्नोंके समूह भरे पड़े हैं और यह सेमलके वृक्षोंसे सुशोभित है। सोमक भी कहते हैं। इसी पर्वतपर पूर्वकालमें गरुड़ने अपनी माताके हितार्थ देवताओंद्वारा संचित किये गये अमृतका अपहरण किया था। उसके बाद आम्बिकेय नामक महापर्वत है, जिसे सुमना भी कहते हैं। इसी पर्वतपर वराह भगवान्ने हिरण्याक्षका वध किया था। आम्बिकेय पर्वतके बाद सम्पूर्ण ओषधियोंसे परिपूर्ण एवं स्फटिककी शिलाओंसे व्याप्त परम रमणीय महान् पर्वत है, जो विभ्राज नामसे विख्यात है। इससे अग्नि विशेष उद्दीप्त होती है, इसी कारण इसे विभ्राज कहते हैं। इसीको 'केशव' भी कहते हैं। यहींसे वायुकी गति प्रारम्भ होती है ॥ ११—१८ ॥

आनन्दाश्च सुखाश्चैव क्षेमकाश्च नवैः सह। वर्णाश्रमाचारयुता देशास्ते सप्त विश्रुताः॥ ३८॥
आरोग्या बलिनश्चैव सर्वे मरणवर्जिताः। अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी पुनः॥ ३९॥
न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित्। त्रेतायुगसमः कालः सदा तत्र प्रवर्तते॥ ४०॥
शाकद्वीपादिषु ज्ञेयं पञ्चस्वेतेषु सर्वशः। देशस्य तु विचारेण कालः स्वाभाविकः स्मृतः॥ ४१॥
न तेषु संकरः कश्चिद् वर्णाश्रमकृतः क्वचित्। धर्मस्य चाव्यभीचारादेकान्तसुखिनः प्रजाः॥ ४२॥
न तेषु माया लोभो वा ईर्ष्यासूया भयं कुतः। विपर्ययो न तेष्वस्ति तद्वै स्वाभाविकं स्मृतम्॥ ४३॥
कालो नैव च तेष्वस्ति न दण्डो न च दाण्डिकः। स्वधर्मेण च धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्॥ ४४॥

उन सहायक नदियोंके नाम और परिमाणकी गणना नहीं की जा सकती। ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पुण्यतोया हैं। इनके तटपर निवास करनेवाले जनपदवासी सदा हर्षपूर्वक इनका जल पीते हैं। उनके तटपर स्थित शान्तमय, मोद, शिव, आनन्द, सुख, क्षेमक और नव—ये सात नेत्र-विख्यात देश हैं। यहाँ वर्ण और आश्रमके धर्मोंका सुचारुरूपसे पालन होता है। यहाँके सभी निवासी नीरोग, बलवान् और मृत्युसे रहित होते हैं। उनमें अवसर्पिणी (अधोगामिनी) तथा उत्सर्पिणी (ऊर्ध्वगामिनी) क्रिया नहीं होती है। वहाँ कहीं भी चारों युगोंद्वारा की गयी युगव्यवस्था नहीं है। वहाँ सदा त्रेतायुगके समान ही समय वर्तमान रहता है। शाकद्वीप आदि इन पाँचों द्वीपोंमें ऐसी ही दशा जाननी चाहिये; क्योंकि देशके विचारसे ही कालकी स्वाभाविक गति जानी जाती है। उन द्वीपोंमें कहीं भी वर्ण एवं आश्रमजन्य संकर नहीं पाया जाता। इस प्रकार धर्मका परित्याग न करनेके कारण वहाँकी प्रजा एकान्त सुखका अनुभव करती है। उनमें न तो माया (छल-कपट) है, न लोभ, तब भला ईर्ष्या, असूया और भय कैसे हो सकते हैं? उनमें धर्मका विपर्यय भी नहीं देखा जाता। धर्म तो उनके लिये स्वाभाविक कर्म माना गया है। उनपर कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वहाँ न तो दण्डका विधान है, न कोई दण्ड देनेवाला ही है। वहाँके निवासी धर्मके ज्ञाता हैं, अतः वे स्वधर्मानुसार परस्पर एक-दूसरेकी रक्षा करते रहते हैं॥ ३६—४४॥

परिमण्डलस्तु सुमहान् द्वीपो वै कुशसंज्ञकः। नदीजलैः परिवृतः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः॥ ४५॥
सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः। अन्यैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा॥ ४६॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सर्वतो धनधान्यवान्। नित्यं पुष्पफलोपेतः सर्वरत्नसमावृतः॥ ४७॥
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्राम्यारण्यैश्च सर्वशः। आनुपूर्व्यात् समासेन कुशद्वीपं निबोधत॥ ४८॥
अथ तृतीयं वक्ष्यामि कुशद्वीपं च कृत्स्नशः। कुशद्वीपेन क्षीरोदः सर्वतः परिवारितः॥ ४९॥
शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्वितः। तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः॥ ५०॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु। द्विनामानश्च ते सर्वे शाकद्वीपे यथा तथा॥ ५१॥
प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः। विद्रुमोच्चय इत्युक्तः स एव च महीधरः॥ ५२॥
सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमन्वितैः। द्वितीयः पर्वतस्तत्र उन्नतो नाम विश्रुतः॥ ५३॥
हेमपर्वत इत्युक्तः स एव च महीधरः।

कुश नामक द्वीप अत्यन्त विशाल मण्डलवाला है। इसके चारों ओर नदियोंका जल प्रवाहित होता रहता है। वह बादल-सदृश रंगवाले, सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त होनेके कारण रंगे-बिरंगे तथा मणियों और मूँगोंसे विभूषित पर्वतोंद्वारा घिरा हुआ है। उसमें चारों ओर विभिन्न आकारवाले रमणीय जनपद तथा फूल-फलोंसे लदे हुए वृक्षोंके समूह शोभायमान हो रहे हैं। वह धन-धान्यसे परिपूर्ण है। वह सदा पुष्पों और फलोंसे युक्त रहता है। उसमें सभी प्रकारके रत्न पाये जाते हैं। वह सर्वत्र ग्रामीण एवं जंगली पशुओंसे भरा हुआ है।

*

द्रोणस्य हरिकं नाम लवणं च पुनः स्मृतम्। कङ्कस्यापि ककुन्नाम धृतिमच्चैव तत् स्मृतम्॥ ६७॥
महिषं महिषस्यापि पुनश्चापि प्रभाकरम्। ककुद्मिनस्तु तद्वर्षं कपिलं नाम विश्रुतम्॥ ६८॥
एतान्यपि विशिष्टानि सप्त सप्त पृथक् पृथक्। वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत॥ ६९॥
तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं हि ताः स्मृताः। द्विनामवत्यस्ताः सर्वाः सर्वाः पुण्यजलाः स्मृताः॥ ७०॥
धूतपापा नदी नाम योनिश्चैव पुनः स्मृता। सीता द्वितीया विज्ञेया सा चैव हि निशा स्मृता॥ ७१॥
पवित्रा तृतीया विज्ञेया वितृष्णापि च या पुनः। चतुर्थी ह्लादिनीत्युक्ता चन्द्रभा इति च स्मृता॥ ७२॥
विद्युच्च पञ्चमी प्रोक्ता शुक्ला चैव विभाव्यते। पुण्ड्रा षष्ठी तु विज्ञेया पुनश्चैव विभावरी॥ ७३॥
महती सप्तमी प्रोक्ता पुनश्चैषा धृतिः स्मृता। अन्यास्ताभ्योऽपि संजाताः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७४॥
अभिगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः। इत्येष संनिवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः॥ ७५॥
शाकद्वीपेन विस्तारः प्रोक्तस्तस्य सनातनः। कुशद्वीपः समुद्रेण घृतमण्डोदकेन च॥ ७६॥
सर्वतः सुमहान् द्वीपश्चन्द्रवत् परिवेष्टितः। विस्तारान्मण्डलाच्चैव क्षीरोदाद् द्विगुणो मतः॥ ७७॥

द्रोणपर्वतके वर्षका नाम हरिक है, इसे लवण भी कहते हैं। कङ्क पर्वतका वर्ष ककुद् है, इसे धृतिमान् भी कहा जाता है। महिष पर्वतके वर्षका नाम महिष है, इसे प्रभाकर नामसे अभिहित किया जाता है। ककुद्मी पर्वतका जो वर्ष है, वह कपिल नामसे विख्यात है। कुशद्वीपमें ये सातों विशिष्ट वर्ष तथा सात पर्वत पृथक्-पृथक् हैं। अब उन वर्षोंकी नदियोंको सुनिये। वहाँ प्रत्येक वर्षमें नदियाँ भी सात ही बतलायी जाती हैं। वे सभी दो नामोंवाली तथा पुण्यसलिला हैं। उनमें पहली नदीका नाम धूतपापा है, उसे योनि भी कहते हैं। दूसरी नदीको सीता नामसे जानना चाहिये। यही निशा भी कही जाती है। पवित्राको तीसरी नदी समझना चाहिये। उसीका नाम वितृष्णा भी है। चौथी ह्लादिनी नामसे पुकारी जाती है, यही चन्द्रमा नामसे भी प्रसिद्ध है। पाँचवीं नदीको विद्युत् कहते हैं, यही शुक्ला नामसे भी अभिहित होती है। पुण्ड्राको छठी नदी जानना चाहिये, इसको विभावरी भी कहते हैं। सातवीं नदीका नाम महती है, यही धृति नामसे भी कही जाती है। इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें जाकर मिली हैं। इन्हींसे जल ग्रहण करके इन्द्र यहाँ वर्षा करते हैं। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कुशद्वीपकी संस्थितिका वर्णन कर दिया तथा उसके शाकद्वीपसे दुगुने सनातन विस्तारको भी बतला दिया। यह महान् कुशद्वीप चारों ओरसे चन्द्रमाकी भाँति घृत और मट्ठेसे भरे हुए सागरसे घिरा हुआ है। यह विस्तार एवं मण्डल (घेराव)में क्षीरसागरसे दुगुना माना गया है॥ ६७—७७॥

ततः परं प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चद्वीपं यथा तथा। कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः॥ ७८॥
घृतोदकः समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः। चक्रनेमिप्रमाणेन वृतो वृत्तेन सर्वशः॥ ७९॥
तस्मिन् द्वीपे नराः श्रेष्ठा देवनो गिरिरुच्यते। देवनात् परतश्चापि गोविन्दो नाम पर्वतः॥ ८०॥
गोविन्दात् परतश्चापि क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः। क्रौञ्चात् परः पावनकः पावनादन्धकारकः॥ ८१॥
अन्धकारात् परेश्चापि देवावृन्नाम पर्वतः। देवावृतः परेणापि पुण्डरीको महान् गिरिः॥ ८२॥
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः। परस्परस्य द्विगुणो विष्कम्भो वर्षपर्वतः॥ ८३॥
वर्षाणि तस्य वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत। क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः॥ ८४॥
मनोऽनुगात् परे चोष्णस्तृतीयोऽपि स उच्यते। उष्णात् परे पावनकः पावनादन्धकारकः॥ ८५॥
अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशस्तथापरः। मुनिदेशात् परे चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः॥ ८६॥
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायः शुचिर्जनः। श्रुतास्तत्रैव नद्यस्तु प्रतिवर्षं गताः शुभाः॥ ८७

इसके बाद मैं शाल्मलद्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। शाल्मलद्वीप क्रौञ्चद्वीपके विस्तारसे दुगुना है। यह घृतमण्डोदसागरको घेरकर स्थित है। इसमें पुण्यमय जनपद हैं। वहाँके निवासी क्षमाशील एवं तेजस्वी होते हैं तथा दीर्घायुका उपभोग कर मृत्युको प्राप्त होते हैं। वहाँ अकालकी कोई सम्भावना ही नहीं है। वहाँ पहले पर्वतका नाम सुमना है, जो सूर्यके समान चमकीला होनेके कारण पीले रंगका है। उसके बाद दूसरा कुम्भमय नामक पर्वत है। उसका दूसरा नाम सर्वसुख है। वह दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न है। तीसरा स्वर्णसम्पन्न एवं भ्रमरके पंखके समान रंगवाला रोहित नामक विशाल पर्वत है। यह पर्वत-श्रेष्ठ दिव्य है। सुमना पर्वतका देश कुशल एवं दूसरे सर्वसुख पर्वतका देश सुखोदय है, जो सभी सुखोंको उत्पन्न करनेवाला है। तीसरे रोहित पर्वतका प्रदेश रोहिण नामसे विख्यात है। वहाँ अनेकों प्रकारके रत्नोंकी खानें हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं और वे ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँकी प्रजाओंके लिये कार्यका विधान करते हैं। वहाँ न तो मेघ वर्षा करते हैं, न शीत एवं उष्णकी ही अधिकता रहती है। इन तीनों द्वीपोंमें वर्णाश्रमकी चर्चा चलती रहती है अर्थात् यहाँ वर्णाश्रमका पूर्णरूपसे प्रचार है। यहाँ न ग्रहगण हैं, न चन्द्रमा हैं और न यहाँके निवासियोंमें ईर्ष्या, असूया और भय ही देखा जाता है। यहाँ पर्वतोंसे झरते हुए जल ही अन्नके उत्पादक हैं। वहाँके निवासियोंके लिये षट्-रसयुक्त भोजन स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। उनमें न तो ऊँच-नीचका भाव है, न लोभ है और न परिग्रह (दान लेनेकी प्रवृत्ति) ही है। वे नीरोग एवं बलवान् होते हैं तथा एकान्त सुखका उपभोग करते हैं। वे लोग तीस हजार वर्ष-तककी मानसी सिद्धिको प्राप्त होकर सुख, दीर्घायु, सुन्दर रूप, धर्म और ऐश्वर्यका उपभोग करते हुए जीवन-यापन करते हैं। कुश, क्रौञ्च और शाल्मल— इन तीनों द्वीपोंमें यही स्थिति समझनी चाहिये। इस प्रकार मैं इन तीनों द्वीपोंकी शुभमयी विधिका विवरण बतला चुका। इस शाल्मलद्वीपका मण्डल (घेरा) दुगुने परिमाणवाले सुरोदसागरसे चारों ओर चक्रकी भाँति गोलाकार घिरा हुआ है ॥ ९१—१०४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनप्रसङ्गमें द्वीपवर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१२२॥

एक सौ तेईसवाँ अध्याय

गोमेदकद्वीप* और पुष्करद्वीपका वर्णन

सूत उवाच

गोमेदकं प्रवक्ष्यामि षष्ठं द्वीपं तपोधनाः। सुरोदकसमुद्रस्तु गोमेदेन समावृतः ॥ १ ॥
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः। तस्मिन् द्वीपे तु विज्ञेयौ पर्वतौ द्वौ समाहितौ ॥ २ ॥
प्रथमः सुमना नाम भात्यञ्जनमयो गिरिः। द्वितीयः कुमुदो नाम सर्वौषधिसमन्वितः ॥ ३ ॥
शातकौम्भमयः श्रीमान् विज्ञेयः सुमहाचितः। समुद्रेक्षुरसोदेन वृतो गोमेदकश्च सः ॥ ४ ॥
षष्ठेन तु समुद्रेण सुरोदाद् द्विगुणेन च। धातकी कुमुदश्चैव हव्यपुत्रौ सुविस्तृतौ ॥ ५ ॥

* इस द्वीपका वर्णन प्रायः अन्य पुराणोंमें नहीं है। पर सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय ३। २५ आदिमें इसका वर्णन है। अन्य पुराणमें गोमेद प्लक्षद्वीपमें एक मर्यादा पर्वत मात्र है।

यह महान् गिरि सत्ताईस योजन विस्तृत और चौबीस योजन ऊँचा है। इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें समुद्र-तटपर मानस नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्व दिशामें निकले हुए चन्द्रमाके समान शोभायमान है। यह साढ़े पचास हजार योजन ऊँचा है। मानस पर्वतके पूर्वार्धमें स्थित रहते हुए भी इसका पुत्र महावीत नामक पर्वत द्वीपके पश्चिमार्ध भागकी रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त कहा जाता है। पुः स्वादिष्ट जलवाले महासागरसे घिरा हुआ है विस्तार एवं मण्डल (घेराव)में गोमेदक द्वीपसे है। इस द्वीपके अन्तःस्थित प्रदेशोंके मानव तीस वर्षतक जीवित रहते हैं। उनमें वृद्धावस्थाका प्रवेश होता। वे स्वाभाविक रूपसे युवावस्था, नीरोगता, अत्य सुख और मानसी सिद्धिसे युक्त होते हैं ॥ १२—२

सुखमायुश्च रूपं च त्रिषु द्वीपेषु सर्वशः। अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते वीर्यरूपतः ॥ २१
न तत्र वध्यवधकौ नेर्ष्यासूया भयं तथा। न लोभो न च दम्भो वा न च द्वेषः परिग्रहः ॥ २२
सत्यानृते न तेष्वास्तां धर्माधर्मौ तथैव च। वर्णाश्रमाणां वार्ता च पाशुपाल्यं वणिक् कृषिः ॥ २३
त्रयीविद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा दण्ड एव च। न तत्र वर्षं नद्यो वा शीतोष्णं च न विद्यते ॥ २४
उद्भिदान्युदकानि स्युर्गिरिप्रस्रवणानि च। तुल्योत्तरकुरूणां तु कालस्तत्र तु सर्वदा ॥ २५
सर्वतः सुखकालोऽसौ जराक्लेशविवर्जितः। सर्गस्तु धातकीखण्डे महावीते तथैव च ॥ २६
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्समस्तु वै ॥ २७ ॥
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्। अपां चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः ॥ २८ ॥
ऋषन्त्यस्यां वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः। ऋषिरित्येष गमने वर्षं त्वेतेन तेषु वै ॥ २९ ॥
उदयतीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्यते सदा। प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते च वै ॥ ३० ॥
आपूर्यमाणो ह्युदधिरात्मनैवाभिपूर्यते। ततो वै क्षीयमाणे तु स्वात्मन्येव ह्यपां क्षयः ॥ ३१ ॥

तीनों द्वीपोंमें सर्वत्र सुख, दीर्घायु और सुन्दर रूपकी सुलभता रहती है। उनमें ऊँच-नीचका भाव नहीं होता। पराक्रम और रूपकी दृष्टिसे वे एक-तुल्य होते हैं। उनमें न कोई वध करनेयोग्य होता है और न मारनेवाला ही पाया जाता है। उनमें ईर्ष्या, असूया, भय, लोभ, दम्भ, द्वेष और संग्रहका नामतक नहीं है। उनमें सत्य-असत्य एवं धर्म-अधर्मका विवाद, वर्णाश्रमकी चर्चा, पशुपालन, व्यवसाय, खेती, त्रयीविद्या, दण्डनीति (शत्रुओं या अपराधियोंको दण्ड देकर वशमें करनेकी नीति), नौकरी और परस्पर दण्ड-विधान भी नहीं पाया जाता। वहाँ न तो वर्षा होती है, न नदियाँ ही हैं तथा सर्दी-गरमी भी नहीं पड़ती। पर्वतोंसे टपकते हुए जल ही अन्न और जलका काम पूरा करते हैं। वहाँ सर्वदा उत्तरकुरु देशके सदृश समय बना रहता है। वहाँ सब लोग सर्वत्र वृद्धावस्थाके कष्टसे रहित सुखमय समय व्यतीत करते हैं। यही स्थिति धातकीखण्ड तथा महावीत—दोनों प्रदेशोंमें पायी जाती है। इस प्रकार सातों द्वीप पृथक्-पृथक् सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जो समुद जिस द्वीपके बाद पड़ता है, वह परिमाणमें उसी द्वीपके बराबर माना गया है। इस प्रकार द्वीपों और समुद्रोंकी परस्पर वृद्धि समझनी चाहिये। जलकी सम्यक् प्रकारसे वृद्धि होनेके कारण इस जलराशिको समुद कहते हैं। 'ऋषि' धातुका अर्थ

द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशस्तु वै। आर्जवाद् ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ ४२ ॥
आरोग्यायुष्प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्षकेषु च ॥ ४३ ॥
गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः। भोजनं चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥
षड्रसं तन्महावीर्यं तत्र ते भुञ्जते जनाः। परेण पुष्करस्याथ आवृत्यावस्थितो महान् ॥ ४५ ॥
स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत्। स्वादूदकस्य परितः शैलस्तु परिमण्डलः ॥ ४६ ॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते। आलोकस्तत्र चार्वाक् च निरालोकस्ततः परम् ॥ ४७ ॥
लोकविस्तारमात्रं तु पृथिव्यर्धं तु बाह्यतः। प्रतिच्छन्नं समन्तात् तु उदकेनावृतं महत् ॥ ४८ ॥
भूमेर्दशगुणाश्चापः समन्तात् पालयन्ति गाम्। अद्भ्यो दशगुणश्चाग्निः सर्वतो धारयत्यपः ॥ ४९ ॥
अग्नेर्दशगुणो वायुर्धारयञ् ज्योतिरास्थितः। तिर्यक् च मण्डलो वायुर्भूतान्यावेष्ट्य धारयन् ॥ ५० ॥
दशाधिकं तथाऽऽकाशं वायोर्भूतान्यधारयत्। भूतादि धारयन् व्योम तस्माद् दशगुणस्तु वै ॥ ५१ ॥
भूतादितो दशगुणं महद्भूतान्यधारयत्। महत्तत्त्वं ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते ॥ ५२ ॥
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणाम्। पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम् ॥ ५३ ॥
परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च परस्परम्। एवं परस्परोत्पन्ना धार्यन्ते च परस्परम् ॥ ५४ ॥

उपर्युक्त उन सभी द्वीपों और वर्षोंमें क्रमशः प्रजाओंकी सरलता, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता, इन्द्रियनिग्रह, नीरोगता और आयुका प्रमाण एक-दूसरेसे दुगुना बढ़ता जाता है। वे सभी स्वाभाविक ही पण्डित होते हैं, अतः उनके द्वारा स्वयं प्रजाओंकी रक्षा होती रहती है। वहाँ भोजन अनायास ही स्वयं उपस्थित हो जाता है, जो छहों रसोंसे युक्त और महान् बलदायक होता है। उसे ही वहाँके निवासी खाते हैं। पुष्करद्वीपके बाद स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण महासागर उस द्वीपको चारों ओरसे घेरकर अवस्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले सागरके चारों ओर एक मण्डलाकार पर्वत है, जो प्रकाश और अन्धकारसे युक्त है। उसीको 'लोकालोक' नामसे पुकारा जाता है। उसका अगला भाग प्रकाशयुक्त तथा पेछला भाग अन्धकारसे आच्छादित रहता है। उसका विस्तार लोकोंके विस्तारके बराबर है, किंतु वह बाहरसे पृथ्वीके अर्धभाग-जितना दीख पड़ता है। वह महान् पर्वत चारों ओर जल-राशिसे आच्छन्न एवं घिरा हुआ है। पृथ्वीसे दसगुना जल चारों ओरसे पृथ्वीकी रक्षा करता है। जलसे दसगुनी अग्नि सब ओरसे जलको धारण करती है। अग्निसे दसगुनी वायु तेजको धारण करके स्थित है। वह वायु-मण्डल तिरछा होकर समस्त प्राणियोंमें प्रविष्ट हो सबको धारण किये हुए है। वायुसे दसगुना आकाश भूतोंको धारण किये हुए है। उस आकाशसे दसगुना भूतादि अर्थात् तामस अहंकार है। उस भूतादिसे दसगुना महद्भूत (महत्तत्त्व) है और वह महत्तत्त्व अनन्त अव्यक्तद्वारा धारण किया जाता है। इन विकृतिशील तत्त्वोंके विकार आधाराधेयभावसे कल्पित हैं। ये पृथ्वी आदि विकार परस्पर विभक्त हैं, परस्पर एक दूसरेसे अधिक तथा एक-दूसरेमें घुसे हुए भी हैं। इसी प्रकार ये परस्पर उत्पन्न होते हैं और परस्पर एक-दूसरेको धारण भी करते हैं* ॥ ४२—५४ ॥

यस्मात् प्रविष्टास्तेऽन्योन्यं तस्मात् ते स्थिरतां गताः। आसंस्ते ह्यविशेषाश्च विशेषा अन्यवेशनात् ॥ ५५ ॥
पृथ्व्यादयस्तु वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्तु तत्र ते। भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यलोकः सर्वतः स्मृतः ॥ ५६ ॥
तथा ह्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः। पात्रे महति पात्राणि यथा ह्यन्तर्गतानि च ॥ ५७ ॥

---

* यह वर्णन अन्यपुराणमें भी है। पर इन सबोंका आचार्य यामुनने स्तोत्ररत्नमें परमात्मसम्बन्धसहित—
'यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद्दशोत्तराण्यावरणानि यानि च। गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः ॥'
इस एक ही श्लोकमें बड़े संक्षेपमें, पर सुन्दर शब्दों तथा भावोंमें चित्रण कर दिया है।

मत्स्यावतार-कथा-प्रसंग

स्रुतिनि हित हरि मच्छ रूप धार्‌यौ। सदा ही भक्त-संकट निवार्‌यौ॥
चतुरमुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयो, सत्यव्रत कह्यौ परलय दिखायौ।
भक्त-वत्सल, कृपाकरन, असरन-सरन, मत्स्यकौ रूप तब धारि आयौ॥
स्नान करि अंजली जल जबै नृप लियौ, मत्स्य जौ देखि कह्यो डारि दीजै।
मत्स्य कह्यौ, मैं गही आइ तुम्हरी सरन, करि कृपा मोहिं अब राखि लीजै॥
नृप सुनत बचन, चकित प्रथम ह्वै रह्यौ, कह्यौ, मछ बचन किहिं भाँति भाष्यौ।
पुनि कमंडल धर्‌यौ, तहाँ सो बढि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ॥
पुनि धर्‌यौ खाइ, तालाव मैं पुनि धर्‌यौ, नदी मैं बहुरि पुनि डारि दीन्हौ।
बहुरि जब बढ़ि गयौ, सिंधु तब लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्हि लीन्हौ॥
कह्यौ करि बिनय तुम ब्रह्म जो अनंत हौ, मत्स्यकौ रूप किहिं काज कीन्हौ।
बेद-बिधि चहत, तुम प्रलय देखन कहत, तुम दुहुँनि हेत अवतार लीन्हौ॥
कबहुँ बाराह, नरसिंह कबहूँ भयौ, कबहुँमैं कच्छकौ रूप लीन्हो।
कबहुँ भयौ राम, बसुदेव-सुत कबहुँ भयौ, और बहु रूप हित-भक्त कीन्हौ॥
सातवें दिवस दिखराइहौं प्रलय तोहिं सप्त-रिषि नाव मैं बैठि आवैं।
तोहिं बैठारिहौं नावमैं हाथ गहि, बहुरि हम ज्ञान तोहिं कहि सुनावैं॥
सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरे निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग बाँधौ।
यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु, बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ॥
सातवैं दिवस आयौ निकट जलधि जब, नृप कह्यौ अब कहाँ नाव पावैं।
आइ गइ नाव, तब रिषिन तासौं कह्यौ, आउ हम नृपति तुमकौं बचावैं॥
पुनि कह्यौ, मत्स्य हरि अब कहाँ पाइय, रिषिन कह्यौ, ध्यान चित माहिं धारौ।
मत्स्य अरु सर्पु तिहिं ठौर परगट भए, बाँधि नृप नाव यौं कहि उचारौ॥
ज्यौं महाराज या जलधितैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यों करौ स्वामी।
अहं-ममता हमैं सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मंद कामी॥
कर्म सुख-हित करत, होत तहँ दुःख नित, तऊ नर मूढ नाहीं सँभारत।
करन-कारन महराज हैं आप हो, ध्यान प्रभुकौ न मन माहिं धारत॥
बिन तुम्हारी कृपा गति नहीं नरनिकी, जानि मोहिं आपनौ कृपा कीजै।
जनम अरु मरनमैं सदा दुःखित देहु मोहिं ज्ञान जिहिं सदा जीजै॥
मत्स्य भगवान कह्यौ ज्ञान पुनि नृपति सौं, भयो सो पुरान सब जगत जान्यौ।
लह्यो नृप ज्ञान, कह्यौ आँखि अब मीचि तू, मत्स्य कह्यौ सो नृपति मान्यौ॥
आँखिकौं खोलि जब नृपति देख्यौ बहुरि, कह्यौ, हरि प्रलय-माया दिखाई।
कह्यौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आयु इहिं बिधि बिताई॥
बहुरि सँखासुरहि मारि, बेद आनि दिए, चतुरमुख बिबिध अस्तुति सुनाई।
सूरके प्रभूकी नित्य लीला नई, सकै कहि कौन, यह कछुक गाई॥

('सूरदास' १६। ४४३)

हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।*

भारतीय संस्कृतिमें मनुष्य-जीवनका परम उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। भगवत्प्राप्तिके विविध मार्ग हैं। मार्गोंमें ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा उनके विविध अवान्तर भेदोंके साथ ही कठिनता, सुगमताको भी लेकर अनेक भेद हैं। हमारा पवित्र पुराण-साहित्य विविध ज्ञानका भण्डार है। पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए विभिन्न रुचि और अधिकारके अनुसार विभिन्न व्यक्तियोंके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गोंका, मार्गोंके विघ्नोंका तथा विघ्नोंसे छूटनेके उपायोंका बड़ा ही सुन्दर निरूपण करते हैं। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि और शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनके द्वारा जीवमात्रका कल्याण करनेमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय भगवत्प्राप्तिके मार्गपर आसानीसे बढ़ सकता है—इसके विविध साधन बड़ी ही रोचक भाषामें सच्चे तथा उपदेशपूर्ण इतिवृत्त कथानकोंके साथ पुराणोंमें बताये गये हैं। पुराणोंके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्यलाभ, अन्तःकरणकी परिशुद्धि, भगवान्‌में रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही सभीको यथाधिकार समानरूपसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन और सुन्दर तथा पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा मिलती है।

मत्स्यपुराणमें ऐसे अनेक महान् साधन, उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य सहज ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयसका पथ प्राप्त कर सकता है। सर्वप्रथम मत्स्यावतारकी कथा है। फिर मनु महाराजका मत्स्य भगवान्‌से संवाद है। इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथ्वीदोहन, सूर्यवंश, पितृवंशवर्णन, विविध श्राद्धोंका वर्णन, चन्द्रवंशके राजाओंका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, ययाति-चरित्र एवं इनके अन्य पुत्रोंका वर्णन, विविध व्रत, दान, ग्रहशान्ति तथा स्नानका महत्त्व बताकर फिर तीर्थोंका माहात्म्य बतलाया गया है। इसके अन्तर्गत तीर्थराज प्रयागके माहात्म्यका विस्तारसे वर्णन मिलता है तथा त्रिपुरवध एवं तारक-वधकी कथा भी विस्तारसे कही गयी है। इसके उत्तरार्धमें भगवान् विष्णुके दशावतारवृत्त, शिव-चरित्र तथा उनका विवाह-मङ्गल, गो-महिमा, राजधर्म, देवासुर-संग्राम आदिकी ललित कथाएँ वर्णित हैं। भगवान् शंकर जगत्-प्रसिद्ध वाराणसीके सम्बन्धमें कहते हैं—'गिरिजे! मेरी परम प्रिय नगरी वाराणसी तीनों लोकोंमें सारभूता है। विविध दुष्कृत करनेवाले व्यक्तियोंको भी यहाँ आ जानेपर मैं तारक मन्त्र देकर उनके पापोंको नष्ट कर देता हूँ। अतः वे निर्मल अन्तःकरण होकर मरनेके बाद मोक्ष प्राप्तकर मुझमें तन्मय हो जाते हैं†।'

इसके अतिरिक्त पतिव्रता-माहात्म्य, तीर्थ-माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञानयोग, सदाचार और लीलामय भगवान्‌के

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥
(पद्मपु० स्व० ६२। ६०-६१)

† वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षयाद् विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः॥ (मत्स्य० १८०। ८८)

ते थे । अपने मनोभावोंको व्यक्त करते हुए वे कहा करते थे कि 'गीताजीके १८ वें अध्यायके ६८ वें ए वें श्लोकोंमें कही गयी भगवद्वाणीको (जिसमें यह कहा गया है कि भगवद्भावोंका प्रचार करनेवालेसे र कोई मुझे प्रिय है नहीं, तथा भविष्यमें उससे बढ़कर कोई प्रिय होगा नहीं) जब मैंने पढ़ा, तबसे मेरे भगवद्भावोंका जोरोंसे प्रचार करनेकी बात आयी ।' आज गीताप्रेस और 'कल्याण'का जो स्वरूप हमें दिखायी है, वह श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीको गीताके इन दो श्लोकोंसे प्राप्त —प्रेरणाका ही फल है ।

'कल्याण'को अपनी गौरवमयी परम्परामें विकसित तथा प्रतिष्ठापित करनेका श्रेय 'कल्याण'के आदि-दक नित्यलीलालीन परमपूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको है, जिनका सम्पूर्ण जीवन अध्यात्मनिष्ठ, दृढ़विश्वास एवं प्रेम तथा भगवद्भक्तिसे, युक्त था । पूज्य भाईजीका सम्पूर्ण जीवन 'कल्याण'की सेवामें ही त था । आज मैं इन दोनों भगवदर्पित मनीषियोंके पद-पद्मोंपर अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ ।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय सन्तों, महात्माओं, आदरणीय विद्वान् महानुभावोंके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-भक्ति-सहित प्रणाम करते हुए जानते तथा न जानते हुए बने तथा वाले सभी छोटे-बड़े अपराधोंके लिये हाथ जोड़कर क्षमा चाहते हैं । 'कल्याण'के प्रचार-प्रसारमें हम उन्हींको प्रधान मानते हैं; क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त लेखोंसे ही 'कल्याण'को सदा शक्तिस्रोत मिलता है । इसी तरह हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी सादर करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य अबतक चला और चल रहा है । हम अपनी त्रुटियों व्यवहारके दोषोंके लिये इन सबसे भी क्षमा चाहते हैं ।

इस पुराणका अनुवाद कार्य पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल-द्वारा सम्पन्न हुआ है तथा सम्पादन एवं संशोधन कार्यमें पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा तथा पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठीका हार्दिक योगदान प्राप्त हुआ है ।

इसके अनुवाद, सम्पादन, चित्र-निर्माण, प्रूफसंशोधन आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली है, भी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते ।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्‌का कार्य है । अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं । हम तो केवल मात्र हैं । कल्याण-सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका पवित्र संयोग सौभाग्यवश हम प्राप्त हुआ है, पाठकोंको भी यह प्राप्त होगा, यह हम सबके लिये कम लाभकी बात नहीं है ।

अन्तमें अपनी त्रुटियोंके लिये हम सबसे पुनः क्षमा माँगते हुए अपने इस लघु प्रयासको श्रीभगवान्‌के चरण-कमलोंमें अर्पित करते हैं—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।' और साथ ही अन्तमें भूतभावन न् विश्वनाथके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करते हैं—

करचरणकृतं वा कायजं कर्मजं वा श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो !!

—राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् । सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ॥ १ ॥*
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः । विस्तरार्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ॥ २ ॥
पर्याप्तपरिमाणं च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः । पर्याप्तपरिमाण्यात्तु भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम् ॥ ३ ॥
भवति त्रीनि माँल्लोकान् सूर्यो यस्मात् परिभ्रमन् । अव धातुः प्रकाशाख्यो अवनात्तु रविः स्मृतः ॥ ४ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः । महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते ॥ ५ ॥
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भं तु सुविस्तरम् । मण्डलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निबोधत ॥ ६ ॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु । विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहोऽत्र मण्डले ॥ ७ ॥
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी । अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः ॥ ८ ॥
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु । इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इसके बाद अब मैं सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन कर रहा हूँ *। ये सूर्य और चन्द्रमा सातों द्वीपों एवं सातों समुद्रोंके विस्तारको तथा समग्र भूतलके अर्धभागको और उसके बाहरके अन्य प्रदेशोंको ये अपने प्रकाशसे उद्भासित करते हैं। ये विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश फैलाते हैं। तुलना परिभ्रमणके प्रमाणको लेकर ही विद्वान् लोग आकाशकी करते हैं। सूर्य सामान्यतः तीनों लोकोंमें शीघ्रतापूर्वक भ्रमण करते हैं। 'अव्' धातु रक्षण और प्रकाशार्थक है। प्रकाश फैलाने तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके कारण सूर्यको 'रवि' कहा जाता है। पुनः सूर्य और चन्द्रमाका प्रमाण बतला रहा हूँ। महनीय होनेके कारण पृथ्वीके लिये 'मही' शब्दका प्रयोग किया जाता है। अब भारतवर्षका तथा सूर्य-मण्डलके व्यासका परिमाण योजनोंमें बतला रहा हूँ, उसे सुनिये। सूर्य-मण्डलका परिमाण नौ हजार योजन है। इस मण्डलमें परिणाह (घेरा) विस्तारसे तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। व्यास और मण्डलकी दृष्टिसे भी सूर्यसे चन्द्रमा बहुत छोटे हैं। पुनः सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वीमण्डलके विस्तारका प्रमाण, जिन्हें विद्वानोंने पुराणोंमें बतलाया है, (योजनोंकी संख्यामें) बतला रहा हूँ ॥ १–९ ॥

तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतं चाभिमानिभिः । अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैस्त्विह ॥ १० ॥
देवा ये वै ह्यतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च । तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि† वसुधातलम् ॥ ११ ॥
दिव्यस्य संनिवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः । शतार्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशः स्मृता ॥ १२ ॥
तस्याश्चार्धप्रमाणं च मेरोर्वै चातुरन्तरम् । मेरोर्मध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता ॥ १३ ॥
तथा शतसहस्राणामेकोननवतिं पुनः । पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्याः स तु विस्तरः ॥ १४ ॥
पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत । तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारात्संख्यातास्तु चतुर्दिशम् ॥ १५ ॥
विस्तारं त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम् । गणितं योजनानां तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ॥ १६ ॥
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः । इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम् ॥ १७ ॥
तारकासंनिवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम् । पर्यासः संनिवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥ १८ ॥

* इस अध्यायके सभी श्लोक वायुपु० ५० । ५६–१६९ (किसी प्रतिमें ५१ । १–११२) तथा ब्रह्माण्डपुराणके सर्वांशमें मिल जाते हैं। उनके श्लोक विशेष शुद्ध हैं।

† यहाँ 'विद्वांसो ह वै देवाः' के अनुसार विद्वान् ही देवता हैं।

*

जिस समय सूर्य अमरावती पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय वे गगनमण्डलके मध्यभागमें रहते हैं अर्थात् मध्याह्न होता है। उसी समय वे यमराजकी संयमनीपुरीमें उदित होते हुए और विभावरी नगरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा सुखा नगरीमें आधी रात होती है। इसी प्रकार जब सूर्य मध्याह्न-कालमें यमराजकी संयम पुरीमें पहुँचते हैं, तब वरुणकी सुखानगरीमें उगते हुए और महेन्द्रकी वस्वौकसारा (अमरावती) पुरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा विभावरी पुरीमें आधी रात होती है। जब दोपहरके समय सूर्य वरुणकी सुखानगरीमें पहुँचते हैं, तब चन्द्रदेवकी पुरी विभावरीमें उदय होते हैं। जब सूर्य महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें उदय होते हैं, तब वरुणकी सुखा नगरीमें अस्त होते (दीखते) हैं और संयमनीपुरीमें आधी रात होती है। इस प्रकार सूर्य अलातचक्र (जलती बनेठी)की भाँति बड़ी शीघ्रतासे चक्कर लगाते हैं ॥ २१—३२ ॥

भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः। एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणान्तेषु सर्पति ॥ ३३ ॥
उदयास्तमये वासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः। पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥ ३४ ॥
पतत्येकं तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः। उदितो वर्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः ॥ ३५ ॥
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति। उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ॥ ३६ ॥
यादृक्पुरस्तात्तपति तादृक्पृष्ठे तु पार्श्वयोः। यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषां स उदयः स्मृतः ॥ ३७ ॥
प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते। सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ॥ ३८ ॥
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च। ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥ ३९ ॥
ऊर्ध्वं शतसहस्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते। एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः ॥ ४० ॥
त्रिंशद्भागं च मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति। योजनानां सहस्रस्य इमां संख्यां निबोधत ॥ ४१ ॥
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशच्च सा स्मृता। पञ्चाशच्च सहस्राणि तथान्यान्यधिकानि च ॥ ४२ ॥
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते।

इस प्रकार स्वयं भ्रमण करते हुए सूर्य नक्षत्रोंको भी भ्रमण कराते हैं। वे चारों दक्षिणान्त पार्श्व भागोंमें चलते रहते हैं। उदय और अस्तके समय वे पुनः-पुनः उदय और अस्त होते रहते हैं और पूर्वाह्ण एवं अपराह्णमें दो-दो देवपुरियोंमें तथा मध्याह्नके समय एक पुरीमें पहुँचते हैं। इस प्रकार सूर्य उदय होकर अपनी बढ़ती हुई तेजस्विनी किरणोंसे दोपहरके समय तपते हैं और उसके बाद धीरे-धीरे ह्रासको प्राप्त होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त हो जाते हैं। सूर्यके इसी उदय और अस्तसे पूर्व और पश्चिम दिशाका ज्ञान होता है। यों तो सूर्य जैसे पूर्व दिशामें तपते हैं, उसी तरह पश्चिम तथा पार्श्वभाग (उत्तर और दक्षिण) में भी प्रकाश फैलाते हैं, परंतु उन दिशाओंमें जहाँ सूर्यका उदय दीखता है, वही उदय-स्थान कहलाता है तथा जिस दिशामें सूर्य अदृश्य हो जाते हैं, उसे अस्त-स्थान कहते हैं। मेरुपर्वत सभी पर्वतोंसे उत्तर तथा लोकालोक पर्वत दक्षिण दिशामें स्थित है, इसलिये सूर्यके बहुत दूर हो जाने तथा पृथ्वीकी छायासे आवृत होनेके कारण उनकी किरणें अवरुद्ध हो जाती हैं, इसी कारण सूर्य रातमें नहीं दीख पड़ते। इस प्रकार एक लाख किरणोंसे सुशोभित सूर्य जब पुष्करद्वीपके मध्यभागमें पहुँचते हैं, तब वहाँ ऊँचाईपर स्थित होनेके कारण दीख पड़ते हैं। सूर्य एक मुहूर्त (दो घड़ी)में पृथ्वीके तीसवें भागतक पहुँच जाते हैं। उनकी गतिका प्रमाण योजनोंके हजारोंकी गणनामें सुनिये। सूर्यकी एक मुहूर्तकी गतिका परिमाण एकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक बतलाया जाता है ॥ ३३—४२३ ॥

दोनों आषाढ़ अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ और मूल—ये तीनों अजवीथी हैं। अभिजित्, श्रवण और स्वाती—ये तीनों नागवीथी हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीनों नागवीथी नामसे प्रसिद्ध हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा भी नागवीथी कहलाते हैं। पुष्य, श्लेषा और पुनर्वसु—ये तीनों ऐरावती वीथी कहे जाते हैं। ये तीनों वीथियाँ उत्तर दिशाका मार्ग कहलाती हैं। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—ये तीनों 'आर्षभी' वीथी हैं। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये तीनों 'गोवीथी' नामसे पुकारे जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये तीनों 'जरद्गववीथी' हैं। ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहलाती हैं। हस्त, चित्रा और स्वाती—ये तीनों 'अजवीथी' कहलाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा और अनुराधा—ये 'मृगवीथी' कहलाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये 'वैश्वानर'-वीथी हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिण-मार्गमें बतलायी गयी हैं। अब उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओंका अन्तर योजनोंमें बतला रहा हूँ। इन दोनों दिशाओंका अन्तर एकतीस लाख तीन हजार छः सौ योजन बतलाया जाता है। अब उत्तरायण और दक्षिणायन-कालमें दोनों दिशाओं और दोनों रेखाओंका अन्तर योजनोंमें परिगणित करके बतला रहा हूँ, सुनिये। उनमें एकसे दूसरीका अन्तर एकहत्तर लाख पचीस हजार योजन है। सूर्य दोनों दिशाओं और रेखाओंके बाहरी और भीतरी भागमें चक्कर लगाते हैं। यह सूर्यमण्डल सदा उत्तरायणमें मण्डलोंके भीतर और दक्षिणायनमें बाहरसे चक्कर लगाता है। उत्तर दिशामें विचरते हुए सूर्य एक सौ अस्सी मण्डलोंके भीतरसे गुजरते हुए उन्हें पार करते हैं ॥ ५३—६६ ॥

प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानां निबोधत। योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम्॥ ६७॥
अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः। विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते॥ ६८॥
अहस्तु चरते नाभेः सूर्यो वै मण्डलं क्रमात्। कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा॥ ६९॥
दक्षिणे चक्रवत्सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते। तस्मात् प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति॥ ७०॥
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने। त्रयोदशार्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम्॥ ७१॥
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्। कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति॥ ७२॥
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः। तस्माद् दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति॥ ७३॥
सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने।
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः। मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन्॥ ७४॥
ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रं तु भ्रमते पुनः। मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा॥ ७५॥
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन्। उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु॥ ७६॥

अब मण्डलका प्रमाण योजनोंकी गणनामें सुनिये। इसका परिमाण अठारह हजार अट्ठावन योजन बतलाया जाता है। इस मण्डलका व्यास तिरछा जानना चाहिये। सूर्य दिनभर कुम्हारके चाककी तरह नाभि-मण्डलपर चक्कर लगाते हैं। सूर्यकी भाँति चन्द्रमा भी वैसा ही भ्रमण करते हैं। उसी प्रकार दक्षिणायनमें भी सूर्य चाककी तरह शीघ्रतापूर्वक चलते हुए उसे पार करते हैं। इसी कारण वे इतनी विस्तृत भूमिको थोड़े ही समयमें पार कर जाते हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलको शीघ्रतापूर्वक मध्यभागसे गुजरते हुए बारह मुहूर्तोंमें पार करते हैं, किंतु रातके समय उन्हीं नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हें अठारह मुहूर्त लगता है। जैसे कुम्हारके चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तुकी गति मन्द हो जाती है, वैसे

लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः । चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥ ९४ ॥
सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः । हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः ॥ ९५ ॥
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः । लोकपालाः स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥ ९६ ॥

तीस कलाका एक मुहूर्त होता है और एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होते हैं । जिस प्रकार अहर्गणके हिसाबसे दिनोंकी ह्रास-वृद्धि होती है, उसी तरह संध्याके मुहूर्तमें भी ह्रास-वृद्धि माने गये हैं । तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे दिनके पाँच भाग माने गये हैं । सूर्योदय होनेके पश्चात् तीन मुहूर्ततकका काल प्रातःकाल कहा जाता है । उस प्रातःकालके व्यतीत होनेपर तीन मुहूर्ततकका समय संगव-काल कहलाता है । उस संगव-कालके बाद तीन मुहूर्ततक मध्याह्न नामसे अभिहित होता है । उस मध्याह्नकालके बादका समय अपराह्न कहा जाता है । इसका भी समय विद्वानोंने तीन मुहूर्त ही माना है । अपराह्णके बीत जानेके बादका काल सायं कहलाता है । इस प्रकार पंद्रह मुहूर्तोंका दिन तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे पाँच भागोंमें विभक्त है । इसी प्रकार (रातमें भी १५ मुहूर्त होती है) दोनोंविषुवोंमें (ठीक) पंद्रह मुहूर्तका दिन होता है—शरद् और वसन्त ऋतुओंके मध्य (मेष-तुलासंक्रान्ति) का समय विषुव कहलाता है, उत्तरायणमें दिन-रात्रिको दक्षिणायनमें रात्रि दिनको ग्रस करती है । जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, उसे लोक कहते हैं और उस लोकके बाद जो तमसाच्छन्न प्रदेश है, उसे अलोक कहा जाता है । इसी लोक और अलोकके मध्यमें स्थित (लोकालोक) पर्वतपर चारों लोकपाल महाप्रलयपर्यन्त निवास करते हैं । उनके नाम हैं—वैराज सुधामा, प्रजापति कर्दम, पर्जन्य हिरण्यरोमा और राजस केतुमान् । ये सभी लोकपाल सुख-दुःख आदि द्वन्द्व, अभिमान, आलस्य और परिग्रहसे रहित होकर लोकालोकके चारों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८६–९६ ॥

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम् । पितृयाणः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः ॥ ९७ ॥
तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः । लोकस्य संतानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ॥ ९८ ॥
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्च विशाम्पते । प्रारभन्ते लोककास्मैतेषां पन्थाः स दक्षिणः ॥ ९९ ॥
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे । संततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥१००॥
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु ते । पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥१०१॥
एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसम्पलवम् । अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम् ॥१०२॥
सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसम्प्लवम् । क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे ॥१०३॥
लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च । इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ॥१०४॥
तथा कामकृतेनेह सेवनाद् विषयस्य च । इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे ॥१०५॥

लोकालोक पर्वतका जो उत्तरी शिखर है, वह अगस्त्य-शिखर कहलाता है । देवर्षिगण उसका सेवन करते हैं । वह वैश्वानर-मार्गसे बाहर है और पितृयाण-मार्गके नामसे प्रसिद्ध है । उस पितृयाण-मार्गपर प्रजाभिलाषी अग्निहोत्री तथा लोगोंको संतान प्रदान करनेवाले ऋषिगण निवास करते हैं । राजन् ! लौकिक कामनाओंसे युक्त वे ऋषिगण अपने आशीर्वादके प्रयोगसे प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मको सफल बनाते हैं । उनका मार्ग दक्षिणायनमें है । वे प्रत्येक युगमें अपनी उग्र तपस्या तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादाद्वारा मर्यादासे स्खलित हुए धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं । इनमें जो पहले उत्पन्न हुए थे, वे अपनेसे पीछे उत्पन्न होनेवालोंके घरोंमें जन्म लेते हैं और पीछे उत्पन्न होनेवाले मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके गृहोंमें चले आते हैं । इस प्रकार वे प्रलयपर्यन्त आवागमनके चक्करमें पड़े रहते हैं । इन क्रियानिष्ठ गृहस्थ ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है । ये सूर्यके दक्षिण

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले। अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासंकरेण वा ॥ २ ॥
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम्। एतद् वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम ॥ ३ ॥

ऋषियोंने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी ! ये ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण तिर्यग्व्यूहमें निबद्ध हो सूर्यमण्डलमें किस प्रकार घूमते हैं ? ये सभी परस्पर मिलकर घूमते हैं अथवा पृथक्-पृथक् ? इन्हें कोई घुमाता है या ये स्वयं घूमते हैं ? हमें इस रहस्यको जाननेकी विशेष उत्कण्ठा है, अतः आप इसका वर्णन कीजिये ॥ २—३ ॥

सूत उवाच

भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत। प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् सम्मोहयति वै प्रजाः ॥ ४ ॥
योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥ ५ ॥
सैष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह। भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ ६ ॥
ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषां गणः। वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धः प्रसर्पति ॥ ७ ॥
तेषां भेदाश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः। अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ॥ ८ ॥
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम्। जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ॥ ९ ॥
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः। इतो योजनमात्राच्च अध्यर्धविकृता अपि ॥ १० ॥
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासारः प्रकीर्तितः। पुष्करावर्तका नाम ते मेघाः पक्षसम्भवाः ॥ ११ ॥
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा। कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम् ॥ १२ ॥
पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः। पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः ॥ १३ ॥
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते। कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः ॥ १४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डाल देनेवाला है; क्योंकि यह प्रत्यक्षरूपसे दृश्य होनेपर भी प्रजाओंको मोहित कर देता है। मैं इसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ! आकाशमण्डलमें जो यह (चौदह) नक्षत्रोंके मध्यमें स्थित शिशुमार*नामक चक्र है, वही उत्तानपादका पुत्र ध्रुव है, जो (उस चक्रमें) मेंढी†के समान है। वह ध्रुव स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहोंके साथ सूर्य और चन्द्रमाको भी घुमाता है। नक्षत्रगण भी चक्रकी भाँति घूमते हुए ध्रुवके पीछे-पीछे चलते हैं। जो ज्योतिर्गण वायुमय बन्धनोंद्वारा ध्रुवमें निबद्ध है, वह ध्रुवके मानसिक संकल्पसे ही घूमता है। उन ज्योतिर्गणोंके भेद, योग, कालका निश्चय, अस्त, उदय, उत्पात, उत्तरायण एवं दक्षिणायनमें गमन, विषुवत् रेखापर स्थिति और ग्रहोंके वर्ण आदि सभी कार्य ध्रुवकी प्रेरणासे होते हैं। (भगणके नीचे मेघ हैं।) जिनसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है, उन मेघोंको जीमूत कहते हैं। वे मेघ यहाँसे एक योजन दूर आवह नामक दूसरी वायुके आश्रयपर टिके हुए हैं। उनमें कुछ विकार उत्पन्न हो जानेपर वे ही वृष्टि करते हैं, जो महावृष्टि कही जाती है। पूर्वकालमें महान् ओजस्वी इन्द्रने प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे स्वच्छन्दचारी एवं समृद्धिशाली पर्वतोंके पंखोंको काट डाला था। उन पंखोंसे उत्पन्न हुए मेघोंको पुष्करावर्तक कहते हैं। पर्वतोंके पंखोंका नाम पुष्कर था, वे बहुत बड़े-बड़े और जलसे भी परिपूर्ण थे, इसी कारण वे मेघ भी पुष्करावर्तक नामसे कहे गये

* शिशुमार (सूँस) एक जलीय जन्तु होता है, जो प्रायः सर्पवत् वृत्ताकार कुण्डल (गेंडुर) मारकर स्थित रहता है। उसके समान स्थितिको 'शिशुमार' चक्र कहते हैं। उसीके समान गोल होनेसे नक्षत्रमण्डलकी उससे उपमा दी गयी है।

† दौंरीके केन्द्रमें स्थित खम्भेको मेंढ़ी कहते हैं। उसके आश्रयपर कई बैल चलकर अन्नकणको दाँते हैं। इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण देखना चाहिये।

समुद्राद् वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गभस्तयः। ततस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तन् दिवाकरः॥ ३२॥
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तु रश्मिभिः। अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः॥ ३३॥
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये। वायुभिः स्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः॥
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्यापस्तस्मादभ्रस्य वै स्थितिः। स्रष्टासौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः॥ ३
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः। ग्रहान्निवृत्त्या सूर्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम्॥ ३
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम्।

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टियोंके मूल कारण कहे जाते हैं। इस लोकमें वर्षा, धूप, हिम, रात्रि, दिन, दोनों संध्याएँ और शुभ एवं अशुभ कर्मोंके फल ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवद्वारा अधिष्ठित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। जल सभी प्राणियोंके शरीरोंमें परमाणुरूपसे स्थित है। इसी कारण स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके शरीरोंके जलाये जानेपर उनमेंसे वह जल धुएँके रूपमें बाहर निकलता है। उसी धूमसे बादल बनते हैं, इसलिये धूमको अभ्रमय स्थान कहा जाता है। सूर्य अपनी तेजोमयी किरणोंद्वारा सभी लोक (स्थानों)से जल ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार वे ही किरणें वायुके संयोगसे समुद्रसे भी जल खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ऋतुओंके अनुसार समय-समयपर जलको परिवर्तित कर अपनी श्वेत किरणोंद्वारा वह शुद्ध जल मेघोंको देते हैं। तब वायुद्वारा प्रेरित हुआ वह मेघस्थित जल वर्षाके रूपमें भूतलपर गिरता है। इस प्रकार सूर्य प्राणियोंकी समृद्धिके निमित्त छः महीनेतक वर्षा [illegible] हैं। उस समय वायुके आघातसे मेघ-निर्घोष भी ह[illegible] है। (बिजली भी चमकती है।) ये बिजलि[illegible] अग्निसे प्रादुर्भूत बतलायी जाती हैं। 'मिह सेच[illegible]' अर्थात् 'मिह' धातु सेचन अथवा मेहनके अर्थमें प्रयु[illegible] होती है, इसलिये 'मिह'—धातुसे मेघ शब्द निष्प[illegible] होता है। इसी प्रकार **'अपो विभ्रति'** या **'न भ्रश्यन[illegible] आपो यस्मात्'** जिससे जल नहीं गिरते, उसे अभ्र [illegible] अभ्र कहते हैं। इस तरह ध्रुवद्वारा अधिकृत सूर्य वृष्टि सर्गकी सृष्टि करते हैं। पुनः ध्रुवद्वारा नियुक्त वायु उ[illegible] वृष्टिका संहार करती है। नक्षत्रमण्डल सूर्यमण्डलसे निवृत्त होकर विचरण करता है और जब विचरण समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अधिष्ठित सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है॥ २७—३६½॥

अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते। स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना॥ ३७॥
हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना। चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पिणा॥ ३८॥
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते। द्विगुणश्च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः॥ ३९॥
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु। असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः॥ ४०॥
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः। वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः॥ ४१॥
तेनासौ चरति व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि।
अथाङ्गानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च। संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम्॥ ४२॥
अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः। अराः संवत्सरास्तस्य नेम्यः षडृतवः स्मृताः॥ ४३॥
रात्रिर्वरूथो धर्मश्च ध्वज ऊर्ध्वं व्यवस्थितः। अक्षकोट्योर्युगान्यस्य आर्तवाह्याः कलाः स्मृताः॥ ४४॥
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै। निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता॥ ४५॥
युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ।

दोनों युगाक्षकोटि और वातोर्मिके चारों दिशाओंमें मण्डलाकार घूमते समय उस रथकी किरणें बढ़ जाती हैं और दक्षिणायनमें घट जाती हैं। वे दोनों किरणें रथकी युगाक्षकोटिमें बँधी हुई हैं और वे ध्रुवमें निबद्ध हैं। ये सूर्यसे भी सम्बद्ध हैं। ध्रुव जब उन दोनों किरणोंको खींचते हैं, तब सूर्य मण्डलके अन्तर्गत ही भ्रमण करते हैं। उस समय सूर्य दोनों दिशाओंके एक सौ अस्सी मण्ड चक्कर लगाते हैं। पुनः जब ध्रुव दोनों किरण छोड़ देते हैं, तब सूर्य मण्डलोंके बाह्य भागमें घू लगते हैं। उस समय वे मण्डलोंको उद्वेष्टित करते बड़े वेगसे चलते हैं॥ ४७—५८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सूर्य-चन्द्रमाकी गति नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

सूर्य-रथ*पर प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न देवताओंका अधिरोहण तथा चन्द्रमाकी विचित्र गति

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैर्मासि मासि यथाक्रमम्। ततो वहत्यथादित्यं बहुभिर्ऋषिभिः सह॥ १॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः। एते वसन्ति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण च॥ २॥
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः। उरगौ वासुकिश्चैव संकीर्णश्चैव तावुभौ॥ ३॥
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ। क्रतुस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला॥ ४॥
ग्रामण्यौ रथकृत्तस्य रथौजाश्चैव तावुभौ। रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुभौ स्मृतौ॥ ५॥
मधुमाधवयोर्ह्येष गणो वसति भास्करे। वसन् ग्रीष्मे तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च वै॥ ६॥
ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च नागौ तक्षकरम्भकौ। मेनका सहजन्या च हाहा हूहूश्च गायकौ॥ ७॥
रथन्तरश्च ग्रामण्यौ रथकृच्चैव तावुभौ। पुरुषादो वधश्चैव यातुधानौ तु तौ स्मृतौ॥ ८॥
एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः। ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसन्ति स्म देवताः॥ ९॥
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च। एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगः॥ १०॥
विश्वावसुसुषेणौ च प्रातश्चैव रथश्च हि। प्रम्लोचेत्यप्सराश्चैव निम्लोचन्ती च ते उभे॥ ११॥
यातुधानस्तथा हेतिर्व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ। नभस्यनभसोरेतैर्वसन्तश्च दिवाकरे॥ १२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सूर्यका वह रथ प्रत्येक मासमें क्रमशः देवताओंद्वारा अधिष्ठित रहता है। इस प्रकार वह बहुत-से ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियों, सर्पों और राक्षसोंके साथ सूर्यको वहन करता है। ये सभी देवगण दो-दो मासके क्रमसे सूर्यके निकट निवास करते हैं। धाता और अर्यमा दो देव, प्रजापति पुलस्त्य और प्रजापति पुलह दो ऋषि, वासुकि और संकीर्ण दो नाग, गायकोंमें श्रेष्ठ तुम्बुरु और नारद दो गन्धर्व, क्रतुस्थला और पुञ्जिकस्थला दो अप्सराएँ, रथकृत् और रथौजा दो ग्रामणी, हेति और प्रहेति दो राक्षस—इन सबका दल चैत्र और वैशाख मासमें सूर्यके रथपर निवास करता है। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें मित्र और वरुण देवता, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक और रम्भक नाग, मेनका और सहजन्या अप्सरा, हाहा और हूहू गन्धर्व, रथन्तर और रथकृत् ग्रामणी, पुरुषाद और वध राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट रहते हैं। इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपद मासमें इन्द्र और विवस्वान् देवता, अङ्गिरा और भृगु ऋषि, एलापत्र और

* यह विषय भी भागवत स्कन्ध १२, अ० ११, वायुपुराण अध्या० ५२ तथा अन्य विष्णु आदि सभी पुराणोंमें रूपान्तरसे प्राप्त होता है।

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमानो घर्मं हिमं च वर्षं च दिनं निशां च ।
गच्छत्यसावनुदिनं परिवृत्य रश्मीन् देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च सुतर्पयन् वै ॥ ३५ ॥
शुक्ले तु पूर्णं तदहःक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ।
पीतं तु सोमं द्विकलावशिष्टं सुवृष्टये रश्मिषु रक्षितं तु ॥ ३६ ॥
स्वधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ।
सूर्येण गोभिर्हि विवर्धिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुच्छ्रिताभिः ॥ ३७ ॥
वृष्ट्याभिवृष्टाभिरथौषधीभिर्मर्त्या अथान्नेन क्षुधं जयन्ति ।
तृप्तिश्चाप्यमृतेनार्धमासं सुराणां मासं स्वाहाभिः स्वधया पितॄणाम् ॥ ३८ ॥
अन्नेन जीवन्त्यनिशं मनुष्याः सूर्यः श्रितं तद्धि बिभर्ति गोभिः ।

ये बारह सप्तक (देव, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी और राक्षस) गण अपने-अपने स्थानके अभिमानी देवता हैं । ये अपने तेजसे सूर्यके तेजको उत्कृष्ट कर देते हैं । वहाँ ऋषिगण स्वरचित वचनों—स्तोत्रोंद्वारा सूर्यका स्तवन करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सराएँ नाच-गानके द्वारा सूर्यकी उपासना करती हैं । सूत-विद्यामें निपुण यक्षगण (सूर्यके रथके अश्वोंकी) बागडोर सँभालते हैं । सर्प-सूर्यमण्डलमें इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण सूर्यका अनुगमन करते हैं । बालखिल्य नामक ऋषि उदयकालसे ही सूर्यको घेरकर अस्ताचलको ले जाते हैं । इन देवताओंका जैसा पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व और शारीरिक बल होता है, उसीके अनुसार उनके तेजसे समृद्ध हुए सूर्य तपते हैं । वे अपने तेजसे प्राणियोंके सभी अमङ्गलको दूर कर देते हैं तथा इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंद्वारा मनुष्योंके पापका अपहरण करते हैं । ये सहायकगण अपनी ओर अभिमुख होनेवालोंके पापको नष्ट कर देते हैं और अपने अनुचरों-सहित आकाशमण्डलमें सूर्यके साथ ही भ्रमण करते हैं । ये जप-तप करके सभी प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए उनकी रक्षा करते हैं और दयावश सभी प्राणियोंकी शुभ-कामना करते हैं । भूत, भविष्य और वर्तमान कालके इन स्थानाभिमानियोंका यह स्थान प्रत्येक मन्वन्तरमें वर्तमान रहता है । इस प्रकार दो-दोके हिसाबसे उन सातों गणोंके चौदह देवता सूर्यके रथपर निवास करते हैं और चौदहों मन्वन्तरोंतक वर्तमान रहते हैं । इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षा ऋतुओंमें क्रमशः अपनी किरणोंको परिवर्तित कर धूप, हिम और जलकी वर्षा करके देवताओं, पितरों और मानवोंको भलीभाँति तृप्त करते हुए प्रतिदिन रात-दिन चलते रहते हैं । जो शुद्ध अमृत उत्तम वृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंमें सुरक्षित रहता है, उसे देवगण प्रत्येक मासमें चन्द्रमामें प्रविष्ट होनेपर शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें दिनके क्रमसे काल-क्षयके अनुसार पीते हैं । सभी देवगण तथा पितर कव्यस्वरूप उस अमृत चन्द्रमाका पान करते हैं । मानवगण सूर्यकी किरणोंद्वारा पोषित, जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा सिंचित ओषधियों और अन्नसे अपनी क्षुधा शान्त करते हैं । उस स्वाहारूप अमृतसे देवताओंकी तृप्ति पंद्रह दिनतक तथा उस स्वधारूप अमृतसे पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है । मनुष्य अन्नरूप अमृतसे सर्वदा जीवन धारण करते हैं । वह अमृत सूर्यकी किरणोंमें स्थित है, अतः सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सबका पालन करते हैं ॥ २५—३८ ॥

इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं प्रसर्पति । तत्र तैरक्रमैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिनक्षये ॥ ३९ ॥
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरंगमैः पिबत्यथाऽपो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्चत्यथ ताश्च यो हरिः संमुह्यमानो हरिभिस्तुरंगमैः ॥ ४० ॥

पीतं पञ्चदशाहं च रश्मिनैकेन भास्करः । आपूरयन् ददौ तेन भागं भागमहःक्रमात् ॥ ५५ ॥
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ले वर्धन्ति वै कलाः । तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले ह्याप्याययन्ति च ॥ ५६ ॥
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायते तनुः । पौर्णमास्यां प्रदृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ॥ ५७ ॥
एवमाप्यायते सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात् । ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ॥ ५८ ॥
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च । पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं तथामृतम् ॥ ५९ ॥
सम्भृतं त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा । भक्षार्थमागताः सोमं पौर्णमास्यामुपासते ॥ ६० ॥
एकरात्रं सुराः सार्धं पितृभिर्ऋषिभिश्च वै । सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य वै ॥ ६१ ॥
प्रक्षीयते परो ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात् । त्रयश्च त्रिशता सार्धं त्रीणि चैव शतानि तु ॥ ६२ ॥
त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै । इत्येवं पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति ताः कलाः ॥ ६३ ॥
क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः कृष्णा ह्याप्याययन्ति च ।

शुक्लपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके परभागमें स्थित होनेपर चन्द्रमाका परभाग दिनके क्रमसे पूर्ण होता है । उस समय (देवताओंद्वारा अमृत) पी लेनेसे क्षीण हुए चन्द्रमाको सूर्य एक ही बारमें पूर्ण कर देते हैं । इस प्रकार पंद्रह दिनोंतक देवताओंद्वारा चूसे गये चन्द्रमाके एक-एक भागको सूर्य अपनी एक ही किरणद्वारा दिनके क्रमसे परिपूर्ण करते रहते हैं । सूर्यकी सुषुम्ना नामक किरणद्वारा परिवर्धित चन्द्रमाकी कलाएँ शुक्लपक्षमें वृद्धिको प्राप्त होती हैं तथा कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाती हैं । पुनः शुक्लपक्षमें वे बढ़ती जाती हैं । इस प्रकार सूर्यके पराक्रमसे चन्द्रमाका शरीर वृद्धिगत होता है और धीरे-धीरे पूर्णिमा तिथिको पूर्ण होकर सम्पूर्ण मण्डल श्वेत वर्णका दिखायी पड़ता है । इस प्रकार शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त होते हैं । तदनन्तर जलके सारभूत एवं रसमात्रात्मक चन्द्रमाके मधु-सदृश जलमय अमृतको देवगण कृष्णपक्षकी द्वितीयासे लेकर चतुर्दशी तिथितक पान करते हैं । पंद्रह दिनोंतक सूर्यके तेजसे सञ्चित किये हुए अमृतको खानेके लिये पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमाके निकट आये हुए देवगण पितरों और ऋषियोंके साथ एक राततक चन्द्रमाकी उपासना करते हैं । कृष्णपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके सम्मुख उपस्थित चन्द्रमाका मन पान की जाती हुई कलाओंके क्रमसे अत्यन्त क्षीण हो जाता है । उस समय तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस देवता चन्द्रमाकी अमृतकलाको पीते* हैं । इस प्रकार पान किये जाते हुए चन्द्रमाकी वे कृष्णपक्षीय कलाएँ (शुक्लपक्षमें) बढ़ती हैं और शुक्लपक्षीय कलाएँ (कृष्णपक्षमें) घटती हैं । पुनः कृष्णपक्षीय कलाएँ बढ़ती हैं । (यही शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें बढ़ने-घटनेका क्रम है ।) ॥ ५३–६३½ ॥

एवं दिनक्रमात् पीते देवैश्चापि निशाकरे ॥ ६४ ॥
पीत्वार्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुराश्च ते । पितरश्चोपतिष्ठन्ति ह्यमावास्यां निशाकरम् ॥ ६५ ॥
ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छेषे निशाकरे । ततोऽपराह्णे पितरो यद्न्यद्दिवसे पुनः ॥ ६६ ॥
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टास्तस्य तु याः कलाः । विनिःसृष्टं त्वमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ॥ ६७ ॥
अर्धमाससमाप्तौ तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् । सौम्या वर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये स्मृताः ॥ ६८ ॥
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते । संवत्सरास्तु वै काव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ॥ ६९ ॥
सौम्यास्तुऋतवो ज्ञेयाः मासा वर्हिषदस्तथा । अग्निष्वात्तास्तथा पक्षः पितृसर्गस्थिता द्विजाः ॥ ७० ॥

* देवताओंद्वारा चन्द्रकला-पानका वर्णन—कालिदासादिके रघुवंश (५ । १६) के—'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः' आदिमें बड़े सरस ढंगसे किया गया है । हेमाद्रि आदि व्याख्याताओंने इसकी—'प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः' आदिसे व्याख्या भी सुन्दरकी है । पर वस्तुतः कालिदास तथा 'भर्तृ०के 'क्षयपक्षश्चन्द्रः' आदिका मूलाधार मत्स्य पुराणका यह प्रकरण ही दीखता है ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं (ग्रहकक्षानुसार बुधादि) ग्रहों, नक्षत्रों और राहुके रथका वर्णन कर रहा हूँ। सोमपुत्र बुधका रथ उज्ज्वल एवं तेजोमय है। उसमें वायुके समान वेगशाली पीले रंगके दस घोड़े जोते जाते हैं। उनके नाम हैं—श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृषत और पृष्णि। इन्हीं महान् भाग्यशाली, अनुपम एवं वायुसे उत्पन्न दस घोड़ोंसे वह रथ युक्त है। इसके बाद मंगलका रथ सुवर्णनिर्मित बतलाया जाता है। वह रथके सम्पूर्ण आठों अङ्गोंसे संयुक्त है तथा लाल रंगवाले आठ घोड़ोंसे युक्त है। उसपर अग्निसे प्रकट हुआ ध्वज फहराता रहता है। उसपर सवार होकर किशोरावस्थाके मङ्गल कभी सीधी एवं कभी वक्र गतिसे विचरण करते हैं। अङ्गिराके पुत्र देवाचार्य विद्वान् बृहस्पति पीले रंगके तथा वायुके-से वेगशाली आठ दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथपर चलते हैं। वे एक राशिपर एक वर्षतक रहते हैं, इसलिये इस रथके द्वारा स्वाधिष्ठित राशिकी दिशाकी ओर (दोनों गतियों)से अपने वर्ग सहित जाते हैं। शुक्र भी अपने वेगशाली रथपर आरूढ़ होकर भ्रमण करते हैं। उनके रथमें अग्निके समान रंगवाले आठ घोड़े जुते रहते हैं और वह ध्वजाओंसे सुशोभित रहता है। शनैश्चर अपने लोहनिर्मित रथपर सवार होकर चलते हैं। उसमें वायुतुल्य वेगशाली एवं बलवान् घोड़े जुते रहते हैं। राहुका रथ तमोमय है। उसे कवच आदिसे सुसज्जित वायुके समान वेगवाले काले रंगके आठ घोड़े खींचते हैं। सूर्यके भवनमें निवास करनेवाला यह राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पास चला जाता है और अमावास्या आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पाससे सूर्यके निकट लौट आता है। इसी प्रकार केतुके रथमें भी वायुके समान शीघ्रगामी आठ घोड़े जोते जाते हैं। उनके शरीरकी कान्ति पुआलके धुएँके सदृश है। वे दुबले-पतले शरीरवाले और बड़े भयंकर हैं। ये सभी वायुरूपी रस्सीसे ध्रुवके साथ सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मैंने ग्रहोंके रथोंके साथ-साथ घोड़ोंका वर्णन कर दिया ॥ १—१२ ॥

एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्ति वै। वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥ १३ ॥
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि। यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषां गणः ॥ १४ ॥
यथा नद्युदके नौस्तु उदकेन सहोह्यते।
तथा देवगृहाणि स्युरुह्यन्ते वातरंहसा। तस्माद्यानि प्रगृह्यन्ते व्योम्नि देवगृहा इति ॥ १५ ॥
यावन्त्यश्चैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः। सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च ॥ १६ ॥
तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद् भ्रामयते यथा। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ॥ १७ ॥
अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्मात् प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥ १८ ॥
एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषां गणः। एष तारामयः प्रोक्तः शिशुमारे ध्रुवो दिवि ॥ १९ ॥
यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुञ्चति।

वायुरूपी अदृश्य रस्सियोंद्वारा बँधे हुए ये सभी अश्व भ्रमण करते हुए नियमानुसार उन रथोंको खींचते हैं। जिस प्रकार ध्रुवसे बँधे हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह गगनमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गण ध्रुवके पीछे-पीछे घूमता है। जिस प्रकार नदीके जलमें पड़ी हुई नौका जलके साथ बहती जाती है, उसी तरह देवताओंके गृह भी वायुके वेगसे वहन किये जाते हैं, इसीलिये वे आकाशमण्डलमें देव-गृह नामसे पुकारे जाते हैं। आकाशमण्डलमें जितनी तारकाएँ हैं, उतनी ही

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

देव-गृहों तथा सूर्य-चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

यदेतद् भवता प्रोक्तं श्रुतं सर्वमशेषतः। कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय॥ १॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने जो यह सारा विषय पूर्णरूपसे वर्णन किया है, उसे तो हमलोगोंने सुना, परंतु देव-गृह कैसे होते हैं? (यह जाननेकी विशेष उत्कण्ठा हो रही है।) अतः आप पुनः (पूर्वकथित) ज्योतिश्चक्रका कुछ और विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

एतत् सर्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्। यथा देवगृहाणि स्युः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा॥ २॥
अग्नेर्व्युष्टौ रजन्यां वै ब्रह्मणाव्यक्तयोनिना। अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसाऽऽवृतम्॥ ३॥
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् ब्रह्मणा समधिष्ठिते। स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकतत्त्वार्थसाधकः॥ ४॥
खद्योतरूपी विचरन्नाविर्भावं व्यचिन्तयत्। ज्ञात्वाग्निं कल्पकालादावपः पृथ्वीं च संश्रिताः॥ ५॥
स सम्भूत्य प्रकाशार्थं त्रिधा तुल्योऽभवत् पुनः। पाचको यस्तु लोकेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते॥ ६॥
यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निश्च स स्मृतः। वैद्युतो जाठरः सौम्यो वैद्युतश्चाप्यनिन्धनः॥ ७॥
तेजोभिश्चाप्यते कश्चित् कश्चिदेवाप्यनिन्धनः। काष्ठेन्धनस्तु निर्मथ्यः सोऽद्भिः शाम्यति पावकः॥ ८॥
अर्चिष्मयान् पचनोऽग्निस्तु निष्प्रभः सौम्यलक्षणः। यश्चासौ मण्डले शुक्ले निरूष्मा न प्रकाशते॥ ९॥
प्रभा सौरी तु पादेन अस्तं याति दिवाकरे। अग्निमाविशते रात्रौ तस्मादग्निः प्रकाशते॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं जिस प्रकार देव-गृह एवं सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके गृह होते हैं तथा जैसी सूर्य और चन्द्रमाकी गति होती है, वह सब बतला रहा हूँ। (ब्रह्माकी) रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल अव्यक्तयोनि ब्रह्माने देखा कि जगत्की कोई वस्तु दीख नहीं रही है। सारा जगत् रात्रिके अन्धकारसे आच्छन्न है। (कहीं प्रकाशका चिह्नमात्र भी अवशेष नहीं है।) ब्रह्मद्वारा अधिष्ठित इस जगत्में केवल चार पदार्थ अवशिष्ट थे, तब लोकोंके तत्त्वार्थको सिद्ध करनेवाले स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा खद्योत (जुगनू)-के रूपमें विचरण करते हुए प्रकाशको आविर्भूत करनेके लिये विचार करने लगे। (उस समय उन्हें स्मरण हुआ कि) कल्पकालके आदिमें अग्नि-तत्त्व जल और पृथ्वीमें सम्मिलित हो गया था। यह जानकर उन्होंने तीनोंको एकत्र कर प्रकाश करनेके लिये तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार इस लोकमें जो पाचक नामक अग्नि है, उसे पार्थिव अग्नि कहते हैं। जो अग्नि सूर्यमें स्थित होकर ताप पैदा करती है वह शुचि अग्नि कहलाती है। उदरमें स्थित अग्नि विद्युत्से उत्पन्न हुई मानी जाती है। उसे सौम्य कहते हैं। इस वैद्युताग्निका इन्धन जल है। कोई अग्नि अपने तेजसे ही बढ़ती है और कोई बिना इन्धनके भी उद्दीप्त होती है। काष्ठरूपी इन्धनसे जलनेवाली अग्निका नाम निर्मथ्य* है। यह अग्नि जलके संयोगसे शान्त हो जाती है। पचमान अग्नि ज्वालाओंसे संयुक्त रहता है और प्रभाहीन रहना सौम्य अग्निका लक्षण है। जो श्वेत मण्डलमें स्थित रहकर ऊष्मारहित हो प्रकाशित नहीं होती, सूर्यकी वह कान्ति सूर्यके अस्त हो जानेपर अपने चतुर्थांशसे अग्निमें प्रवेश कर जाती है, इसी कारण रातमें अग्निका प्रकाश अधिक होता है॥ २—१०॥

* प्रकारान्तरसे इन अग्नियोंका बहुत कुछ उल्लेख अ० ५१ में भी हो चुका है। यहाँ १२६—२८तकके तीन अध्यायोंमें ग्रहोंके स्वरूप तथा उनके रथ, आयुध आदिका परिचय-प्रदान बहुत सुन्दर रूपमें हुआ है। पद्म० १४ वें अध्यायमें भी इन—ग्रहोंका स्वरूपनिरूपण हुआ है।

ये धूपको उत्पन्न करनेवाली हैं । वे सभी मनुष्यों, देवताओं और पितरोंका भरण-पोषण करती हैं । ये किरणें ओषधियों (एवं अन्नों) द्वारा सभी मनुष्योंको, स्वधाद्वारा पितरोंको और अमृतके माध्यमसे देवताओंको सदा तृप्त करती रहती हैं । सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें शनैः-शनैः अपनी तीन सौ किरणोंसे ताप उत्पन्न करते हैं । इसी प्रकार वर्षा और शरद्-ऋतुमें चार सौ किरणोंके माध्यमसे वर्षा करते हैं । पुनः हेमन्त और शिशिर ऋतुमें तीन सौ किरणोंद्वारा बर्फ गिराते हैं । यही सूर्य ओषधियोंमें बल, स्वधामें सुधा और अमृतमें अमरत्वका आधान करते हैं अर्थात् तीनों पदार्थोंमें तीन तरहके गुण उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार सूर्यकी ये हजारों किरणें लोगोंका प्रयोजन सिद्ध करनेवाली हैं । ऋतुओंके क्रमानुसार जलकी शीतलता और उष्णतामें परिवर्तन होता रहता है । इस प्रकार उद्दीप्त एवं श्वेत वर्णवाला वह लोकसंज्ञक मण्डल नक्षत्र, ग्रह और सोमकी प्रतिष्ठा एवं योनि है । इन सभी चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहोंको सूर्यसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥

सुषुम्ना सूर्यरश्मिर्या क्षीणं शशिनमेधते । हरिकेशः पुरस्तात्तु यो वै नक्षत्रयोनिकृत् ॥ २९ ॥
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिराप्याययद् बुधम् । विश्वावसुश्च यः पश्चाच्छुक्रयोनिश्च स स्मृतः ॥ ३० ॥
संवर्धनस्तु यो रश्मिः स योनिर्लोहितस्य च । षष्ठस्तु ह्यश्वभू रश्मिर्योनिः सा हि बृहस्पतेः ॥ ३१ ॥
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते सुराट् । न क्षीयन्ते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥ ३२ ॥
क्षेत्राण्येतानि वै सूर्यमापतन्ति गभस्तिभिः । क्षेत्राणि तेषामादत्ते सूर्यो नक्षत्रता ततः ॥ ३३ ॥
अस्माल्लोकादमुं लोकं तीर्णानां सुकृतात्मनाम् । तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव शुक्लिकाः ॥ ३४ ॥
दिव्यानां पार्थिवानां च वंशानां चैव सर्वशः । तपनस्तेजसो योगादादित्य इति गद्यते ॥ ३५ ॥
सुवतिः स्पन्दनार्थे च धातुरेष निगद्यते । सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता स्मृतः ॥ ३६ ॥
बह्वर्थश्चन्द इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते । शुक्लत्वे ह्यमृतत्वे च शीतत्वेऽपि विमान्यते ॥ ३७ ॥

सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, वह क्षीण हुए चन्द्रमाको पुनः बढ़ाती है । पूर्वदिशामें जो हरिकेश नामकी किरण है, वह नक्षत्रोंकी जननी है । दक्षिण दिशामें स्थित विश्वकर्मा नामकी किरण बुधको तृप्त करती है । पश्चिम दिशामें जो विश्वावसु नामक किरण है, उसे शुक्रकी योनि (उत्पत्तिस्थान) कहा जाता है । जो संवर्धन किरण है, वह लोहित (मंगल) की योनि है । छठी किरणको अश्वभू कहते हैं, वह बृहस्पतिकी योनि है । पुनः सुराट् नामक किरण शनैश्चरकी वृद्धि करती है । चूँकि ये (चन्द्र, नक्षत्र और ग्रह) कभी नष्ट नहीं होते, इसीलिये इनकी नक्षत्रता मानी गयी है । उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य अपनी किरणोंद्वारा उन क्षेत्रोंको ग्रहण करते हैं, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है । इस लोकसे परलोकमें जानेवाले पुण्यात्माओंका उद्धार करनेके कारण ये किरणें तारका नामसे प्रसिद्ध हैं तथा शुक्ल-वर्णकी होनेके कारण शुक्ला भी कही जाती हैं । दिव्य (स्वर्गीय) एवं पार्थिव (भौमिक) सभी प्रकारके वंशोंके तेजके संयोगसे सम्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'तपन' कहा जाता है । 'सवति (सूते) अर्थात् 'सु' धातु 'उत्पत्ति अथवा चेतनाभाव'के अर्थमें प्रयुक्त होती है । इसलिये (भूमि-)जल-तेजके उत्पादक होनेके कारण सूर्य सविता कहलाते हैं । इसी प्रकार 'चदि ह्लादने' यह बह्वर्थक धातु आह्लादित करनेके अर्थमें भी प्रयुक्त होती है । इसका शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व आदि अन्य अनेकों अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है । (इसी धातुसे चन्द्र या चन्द्रमा शब्द निष्पन्न हुआ है ।)॥ २९—३७ ॥

* निरुक्त, अमरटीका, धातुवृत्ति, उणादि कोश आदिके अनुसार भी षूङ्-प्रसवे-धातुसे सविता शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला ।

रूपमें विकेशी (भूमि) के* गर्भसे उत्पन्न हुए थे। नक्षत्र नामवाली सत्ताईस नक्षत्राभिमानी देवियाँ दाक्षायणीकी कन्या मानी गयी हैं। राहु सिंहिकाका पुत्र है। यह सभी प्राणियोंको कष्ट देनेवाला राक्षस है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रोंके अभिमानी देवताओंका वर्णन किया गया। साथ ही उनके स्थान तथा स्थानी देवता भी बतलाये गये। सहस्र किरणधारी सूर्यका स्थान दिव्य, श्वेत वर्णवाला तथा अग्निके समान तेजस्वी है। चन्द्रमाका स्थान तैजस एवं जलमय है। बुधका स्थान जलमय है और वह सूर्यकी किरणरूपी गृहमें स्थित है। शुक्रदेवका स्थान सोलह किरणोंसे युक्त एवं जलमय है। मंगल नौ किरणोंसे युक्त हैं, उनका स्थान जलमय है। बृहस्पतिका स्थान बारह किरणोंसे युक्त है और उसकी कान्ति हल्दीके समान पीली है। शनैश्चरका स्थान आठ किरणोंसे युक्त, प्राचीन, लौहमय एवं काले रंगका है। राहुका स्थान लोहेका बना है, वह प्राणियोंको कष्ट देनेवाला है। ताराएँ सुकृतीजनोंका आश्रय स्थान हैं। इनकी किरणें स्वर्णमयी हैं। जीवोंका निस्तार करनेके कारण ये तारका कहलाती हैं और शुक्लवर्ण होनेके कारण इनका शुक्ला भी नाम है॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः। मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्तारो भास्करस्य तु॥ ५७॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः। त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम्॥ ५८॥
सर्वोपरि निसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः। योजनार्धप्रमाणानि ताभ्योऽन्यानि गणानि तु॥ ५९॥
तुल्यो भूत्वा तु स्वर्भानुस्तदधस्तात् प्रसर्पति। उद्धृत्य पार्थिवीं छायां निर्मितां मण्डलाकृतिम्॥ ६०॥
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयं तु तमोमयम्। आदित्यात् स तु निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु॥ ६१॥
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु। स्वभासा तुदते यस्मात्स्वर्भानुरिति स स्मृतः॥ ६२॥
चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते। विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनानां तु स स्मृतः॥ ६३॥
भार्गवात्पादहीनश्च विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। बृहस्पतेः पादहीनौ कुंजसौरावुभौ स्मृतौ॥ ६४॥
विस्तारमण्डलाभ्यां तु पादहीनस्तयोर्बुधः। तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै॥ ६५॥
बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलात्तु वै। तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्॥ ६६॥

सूर्यके व्यासका विस्तार नौ हजार योजन है और इनका सम्पूर्ण मण्डल इस (व्यास)से तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। चन्द्रमाका विस्तार सूर्यके विस्तारसे दुगुना बतलाया जाता है। चन्द्रमाका सम्पूर्ण मण्डल विपुलतामें सूर्य-मण्डलसे तिगुना है। सबके ऊपर तारकाओंके मण्डल हैं। उनका विस्तार आधे योजनका बतलाया जाता है। उनसे नीचे अन्य गणोंके स्थान हैं। राहु उनकी तुलनामें समान होते हुए भी उनके नीचेसे भ्रमण करता है। ब्रह्माद्वारा निर्मित वह तीसरा स्थान तमोमय है। उसे पृथ्वीकी छायाको ऊपर उठाकर मण्डलाकार बनाया गया है। राहु पूर्णिमा आदि पर्वोमें सूर्यमण्डलसे निकलकर चन्द्रमण्डलमें चला जाता है और सूर्य-सम्बन्धी अमावास्या आदि पर्वोमें पुनः चन्द्रमण्डलसे निकलकर सूर्यमण्डलमें चला आता है। वह अपनी कान्तिसे प्राणियोंको कष्ट पहुँचाता है, इसीलिये उसे स्वर्भानु कहते हैं। व्यास और वाह्य-वृत्त—दोनोंके योजन-परिमाणमें शुक्रका परिमाण चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर बतलाया जाता है। बृहस्पतिका परिमाण शुक्रके परिमाणसे एक चतुर्थांश कम जानना चाहिये। शनि और मंगल—ये दोनों प्रमाणमें बृहस्पतिसे चतुर्थांश कम बतलाये गये हैं। बुध इन दोनों ग्रहोंसे विस्तार और

* सभी पुराणों तथा नृत्यंष्क शिवव्याख्यानोंमें विकेशीको भूमि कहा गया है। उनके पुत्र होनेसे ही मङ्गलको भौम कहा जाता है।

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र अपने-अपने नीचे-ऊँचे गृहोंमें स्थित होते हैं । इसी क्रमसे इनका समागम और वियोग भी होता है । उस अवसरपर सभी प्राणी इन्हें एक साथ देखते हैं । इस प्रकार स्थित रहकर ये परस्पर संयुक्त होते हैं । विद्वान्लोग इनके इस सम्बन्धको अमिश्रित ही मानते हैं । इसी प्रकार पृथ्वी, ज्योतिर्गणों, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष, नदी तथा उनमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी स्थिति है । ज्योतिर्गणोंका यह स्थिति-क्रम सूर्यके कारण ही है । (मण्डलाकार घूमते समय) उन गणोंके मध्यमें आवर्त-सा दीख पड़ता है । वह बीचमें ध्रुवके आ जानेसे संक्षिप्त हो जाता है । वह चारों ओर ऊँचाईपर गोलाकार फैला रहता है । परमेश्वरने लोकोंकी प्रयोजन-सिद्धिके लिये उसे बनाया है । ब्रह्माने कल्पके आदिमें बहुत सोच-विचारकर इसे स्थापित किया है । इस प्रकार यह सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलकी स्थिति है । प्रधान (प्रकृति)का यह विश्वरूप परिणाम अत्यन्त अद्भुत है । कोई भी इसकी यथार्थ गणना नहीं कर सकता । मनुष्य अपने चर्मचक्षुओंसे इन ज्योतिर्गणोंके गमनागमनको नहीं देख सकता ॥ ७७—८४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें देवगृहवर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२८ ॥

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुर-निर्माणका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं जगाम भगवान् पुरारित्वं महेश्वरः । ददाह च कथं देवस्तन्नो विस्तरतो वद ॥ १ ॥
पृच्छामस्त्वां वयं सर्वे बहुमानात् पुनः पुनः ।
त्रिपुरं तद् यथा दुर्गं मयमायाविनिर्मितम् । देवेनैकेषुणा दग्धं तथा नो वद मानद ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सबको मान देनेवाले सूतजी ! भगवान् महेश्वर पुरारि (त्रिपुरके शत्रु) किस कारण हो गये तथा उन देवाधिदेवने उसे कैसे दग्ध किया ? यह आप हमलोगोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये । हम सब लोग परम सम्मानपूर्वक आपसे बारंबार पूछ रहे हैं कि मय दानवकी मायाद्वारा विनिर्मित उस त्रिपुर दुर्गको भगवान् शंकरने एक ही बाणसे जिस प्रकार जला दिया था, हमलोगोंसे उस प्रसङ्गका विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वं त्रिपुरं* देवो यथा दारितवान् भवः । मयो नाम महामायो मायानां जनकोऽसुरः ॥ ३ ॥
निर्जितः स तु संग्रामे तताप परमं तपः । तपस्यन्तं तु तं विप्रा दैत्यावन्यावनुग्रहात् ॥ ४ ॥
तस्यैव कृत्यमुद्दिश्य तेपतुः परमं तपः । विद्युन्माली च बलवांस्तारकाख्यश्च वीर्यवान् ॥ ५ ॥
मयतेजःसमाक्रान्तौ तेपतुर्मयपार्श्वगौ । लोका इव यथा मूर्तास्त्रयस्त्रय इवाग्नयः ॥ ६ ॥
लोकत्रयं तापयन्तस्ते तेपुर्दानवास्तपः । हेमन्ते जलशय्यासु ग्रीष्मे पञ्चतपे तथा ॥ ७ ॥
वर्षासु च तथाऽऽकाशे क्षपयन्तस्तनूः प्रियाः । सेवानाः फलमूलानि पुष्पाणि च जलानि च ॥ ८ ॥

---

* यह महत्त्वपूर्ण प्राप्त प्रसङ्ग बहुत कुछ स्कन्द ५ । ४३, शिव, सौर पु. २९-३० लिङ्गपु. ७३-७४, आदि पुराणोंमें मिलता है । वैसे यह अपेक्षाकृत सर्वाधिक विस्तृत है तथा आगेके नर्मदा-माहात्म्यमें यह प्रसङ्ग इसी ग्रन्थमें पुनः आया है । इसका बीज तै. सं. ६ । ३ । २ । १, शतप. ६ । ३ । ३ । २५ आदिमें है और पुष्पदन्तने भी 'शिवमहिम्नःस्तव' १८-१९ आदिके 'रथः क्षोणी यन्ता''''त्रिपुरतृण,' 'त्रिपुरहर' आदिमें खूब उत्प्रेक्षा की है ।

दिया था। उन्होंने अस्त्रोंके प्रहारसे कुछको तो मौतके घाट उतार दिया था और कुछको बुरी तरहसे घायल कर दिया था। उस समय देवताओंके साथ वैर बँध जानेके कारण हमलोग भयसे कम्पित होकर चारों दिशाओंमें भागते फिरे, परंतु हम शरणार्थियोंको यह ज्ञात न हुआ कि हमारे लिये शरणदाता कौन है तथा हमारा कल्याण कैसे होगा। इसलिये मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे तथा आपकी भक्तिके बलपर एक ऐसे दुर्गका निर्माण करना चाहता हूँ, जिसका पार करना देवताओंके लिये भी कठिन हो। सुकृती पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह! मेरेद्वारा निर्मित उस त्रिपुरमें पृथ्वी, जल एवं अग्निसे निर्मित तथा सुरक्षित दुर्गोंका और मुनियोंके प्रभावसे दिये गये शापों, देवताओंके अस्त्रों और देवोंका प्रवेश न हो सके। प्रजापते! यदि आपको अच्छा लगे तो वह त्रिपुर सभीके लिये अलङ्घनीय हो जाय ॥ १२—२०½ ॥

अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम्। विश्वकर्मा इतीवोक्तः स तदा विश्वकर्मणा ॥ २१ ॥
उवाच प्रहसन् वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम्। सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव ॥ २२ ॥
तस्माद् दुर्गविधानं हि तृणादपि विधीयताम्। पितामहवचः श्रुत्वा तदैव दानवो मयः ॥ २३ ॥
प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्। यस्तदेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत् ॥ २४ ॥
समं स संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत्। एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा मयं देवः पितामहः ॥ २५ ॥
स्वप्ने लब्धो यथार्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ। गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः ॥ २६ ॥
वरदानाद् विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः। स मयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः ॥ २७ ॥
दुर्गं व्यवसितः कर्तुमिति चाचिन्तयत् तदा। कथं नाम भवेद् दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम् ॥ २८ ॥
वत्स्यते तत्पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः। यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते ॥ २९ ॥
देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम्। विस्तारो योजनशतमेकैकस्य पुरस्य तु ॥ ३० ॥
कार्यस्तेषां च विष्कम्भश्चैकैकशतयोजनम्।

तब असुरोंके विश्वकर्मा (महाशिल्पी) मयद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर विश्व-स्रष्टा ब्रह्मा दैत्यगणोंके अधीश्वर मयसे हँसते हुए बोले—'दानव! (तुझ-जैसे) असदाचारीके लिये सर्वामरत्वका विधान नहीं है, अतः तुम तृणसे ही अपने दुर्गका निर्माण करो।' उस समय पितामहकी ऐसी बात सुनकर मय दानवने हाथ जोड़कर पुनः पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा—'जो एक ही बारके छोड़े गये एक ही बाणसे उस दुर्गको जला दे, वही युद्धस्थलमें हम सबको मार सके, शेष प्राणियोंसे हमलोग अवध्य हो जायँ।' तदनन्तर मयसे 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर भगवान् ब्रह्मा स्वप्नमें प्राप्त हुए धनकी तरह वहीं अन्तर्हित हो गये। पितामहके चले जानेपर सूर्यके समान प्रभावशाली मय आदि दानव भी अपने स्थानको चले गये। वे महाबली दानव तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे अत्यन्त शोभित हो रहे थे। कुछ समयके बाद दानवश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् मय दानव दुर्गकी रचना करनेके लिये उद्यत हो विचार करने लगा। मेरेद्वारा निर्मित होनेवाला वह त्रिपुर दुर्ग कैसा बनाया जाय, जिससे उस दिव्य पुरमें निस्संदेह मेरे अतिरिक्त अन्य कोई निवास न कर सके तथा उसके द्वारा छोड़े गये एक बाणसे वह पुर बींधा न जा सके। देवगण उसे नष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे ही, किंतु मुझे तो अपनी बुद्धिसे विचार कर लेना चाहिये। उनमें एक-एक पुरका विस्तार सौ योजनका करना है तथा उनके विष्कम्भ (खम्भ या शहतीर) भी एक-एक सौ योजनके बनाने हैं ॥ २१—३०½ ॥

पुण्ययोगेण निर्माणं पुराणां च भविष्यति ॥ ३१ ॥
पुण्ययोगेण च दिवि समेष्यन्ति परस्परम्। पुण्ययोगेण युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति ॥ ३२ ॥

सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम्। स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः॥ ९
तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम्। विद्युन्मालिपुरं चापि शतयोजनकेऽन्तरे॥ १०
मेरुपर्वतसंकाशं मयस्यापि पुरं महत्।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार सोच-विचारकर (महाशिल्पी)मय दानव दिव्य उपायोंके प्रभावसे बननेवाले तथा मनके संकल्पानुसार चलनेवाले त्रिपुर नामक दुर्गकी रचना करनेको उद्यत हुआ। उसने सोचा कि इस मार्गमें परकोटा बनेगा, यहाँ अथवा वहाँ गोपुर (नगरका फाटक) रहेगा, यहाँ अट्टालिका-का दरवाजा तथा यहाँ महलका मुख्य द्वार रखना उचित है। इधर विशाल राजमार्ग होना चाहिये, यहाँ दोनों ओर पगडंडियोंसे युक्त सड़कें और गलियाँ होनी चाहिये, यहाँ चबूतरा रखना ठीक है, यह स्थान अन्तःपुरके योग्य है, यहाँ शिव-मन्दिर रखना अच्छा होगा, यहाँ वट-वृक्षसहित तड़ागों, बावलियों और सरोवरोंका निर्माण उचित होगा। यहाँ बगीचे, सभाभवन और वाटिकाएँ रहेंगी तथा यहाँ दानवोंके निकलनेके लिये मनोहर मार्ग रहेगा। इस प्रकार नगर-रचनामें निपुण मयने केवल मनःसंकल्पमात्रसे उस दि[व्य] त्रिपुर नगरकी रचना कर डाली थी, ऐसा हमने सु[ना] है। मयने जो काले लोहेका पुर निर्मित किया थ[ा] उसका अधिपति तारकासुर हुआ। वह उसपर अप[ना] आधिपत्य जमाकर वहाँ निवास करने लगा। दूसरा [जो] पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रजतमय पुर निर्मि[त] हुआ, उसका स्वामी विद्युन्माली हुआ। यह विद्युत्समूहों[से] युक्त बादलकी तरह जान पड़ता था। मयद्वारा जि[स] तीसरे स्वर्णमय पुरकी रचना हुई, उसमें सामर्थ्यशाल[ी] मय स्वयं गया और उसका अधिपति हुआ। जिस प्रकार तारकासुरके पुरसे विद्युन्मालीका पुर सौ योजनकी दूरीपर था, उसी प्रकार विद्युन्माली और मयके पुरोंमें भी सौ योजनका अन्तर था। मय दानवका विशाल पुर मेरुपर्वतके समान दीख पड़ता था॥ १—१०½॥

पुष्यसंयोगमात्रेण कालेन स मयः पुरा॥ ११॥
कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्पकं यथा। येन येन मयो याति प्रकुर्वाणः पुरं पुरात्॥ १२॥
प्रशस्तास्तत्र तत्रैव वारुण्या मालया स्वयम्। रुक्मरूप्यायसानां च शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३॥
रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम्। प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च॥ १४॥
सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च। सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च॥ १५॥
अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च। चित्रशालविशालानि चतुःशालोत्तमानि च॥ १६॥
सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च। बहुध्वजपताकानि स्रग्दामालंकृतानि च॥ १७॥
किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च। सुसंयुक्तोपलिप्तानि पुष्पनैवेद्यवन्ति च॥ १८॥
यज्ञधूमान्धकाराणि सम्पूर्णकलशानि च। गगनावरणाभानि हंसपङ्क्तिनिभानि च॥ १९॥
पङ्क्तीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे। मुक्ताकलापैर्लम्बद्भिर्हसन्तीव शशिश्रियम्॥ २०॥

जिस प्रकार पूर्वकालमें त्रिलोचन भगवान् शंकरने पुष्पककी रचना की थी, उसी प्रकार मय दानवने केवल पुष्यनक्षत्रके संयोगसे कालकी व्यवस्था करके त्रिपुरका निर्माण किया। पुरकी रचना करता हुआ मय जिस-जिस मार्गसे एक पुरसे दूसरे पुरमें जाता था, वहाँ-वहाँ वरुणकी दी हुई मालाद्वारा उत्पन्न चमत्कारसे सोना, चाँदी और लोहेके सैकड़ों-हजारों भवन स्वयं ही बनते जाते थे। उन देव-शत्रुओंके पुर रत्नखचित होनेके कारण विशेष शोभा पा रहे थे। वे सैकड़ों महलोंसे युक्त थे। उनमें ऊँचे-ऊँचे कूटागार (छतके ऊपरकी कोठरियाँ) बने थे। उनमें सभी लोग स्वच्छन्द विचरण करते थे। वे (सुन्दरतामें) सभी लोकोंका अतिक्रमण करनेवाले

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

त्रिपुरमें दैत्योंका सुखपूर्वक निवास, मयका स्वप्न-दर्शन और दैत्योंका अत्याचार

सूत उवाच

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना। तद् दुर्गं दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः॥ १॥
सकलत्राः सपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽन्तकोपमाः। मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते॥ २॥
सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम्। रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः॥ ३॥
तद्वद् बलिभिरध्यस्तं तत्पुरं देवतारिभिः। त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम्॥ ४॥
सुतलादपि निष्पत्य पातालाद् दानवालयात्। उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः॥ ५॥
यो यं प्रार्थयते कामं सम्प्राप्तस्त्रिपुराश्रयात्। तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः॥ ६॥
सचन्द्रेषु प्रदोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च। आरामेषु सचूतेषु तपोधनवनेषु च॥ ७॥
स्वङ्गाश्चन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गाः समदा इव। मृष्टाभरणवस्त्राश्च मृष्टस्रगनुलेपनाः॥ ८॥
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः। नारीभिः सततं रेमुर्मुदिताश्चैव दानवाः॥ ९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार असुरशिल्पी मयने त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया, परंतु अन्ततोगत्वा परस्पर बँधे हुए वैरवाले देवताओं और असुरोंके लिये वह दुर्ग दुर्गम हो गया। उस समय वे सभी शस्त्रधारी दैत्य जो यमराजके समान भयंकर थे, मयके आदेशसे अपनी स्त्रियों और पुत्रोंके साथ हर्षपूर्वक उन गृहोंमें प्रविष्ट हुए। जैसे अनेकों सिंह वनको, अनेकों मगर-मच्छ सागरको और क्रोध एवं अत्यन्त कठोरता परस्पर सम्मिलित होकर शरीरको अपने अधिकारमें कर लेते हैं, वैसे ही उन महाबली देव-शत्रुओंद्वारा वह पुर व्याप्त हो गया। इस प्रकार वह त्रिपुर असंख्य (अरबों) दैत्योंसे भर गया। उस समय सुतल और पाताल (दानवोंके निवासस्थान)से निकलकर आये हुए दानव तथा (देवताओंके भयसे छिपकर) पर्वतोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले दैत्य भी, जो काले बादलकी-सी कान्तिवाले थे, (शरणार्थीके रूपमें) वहाँ उपस्थित हुए। त्रिपुरमें आश्रय लेनेके कारण जो असुर जिस वस्तुकी कामना करता था, उसकी उस कामनाको मय दानव मायाद्वारा पूर्ण कर देता था। जिनके सुडौल शरीरपर चन्दनका अनुलेप लगा था, जो निर्मल आभूषण, वस्त्र, माला और अङ्गरागसे अलंकृत थे तथा मतवाले गजेन्द्र-सरीखे दीख रहे थे, ऐसे दानव चाँदनी रातोंमें एवं सायंकालके समय कमलसे सुशोभित सरोवरोंके तटपर, आमके बगीचों और तपोवनोंमें अपनी पत्नियोंके साथ निरन्तर हर्षपूर्वक विहार करते थे॥

मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः। अर्थे धर्मे च कामे च निदधुस्ते मतीः स्वयम्॥ १०॥
तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम्। व्रजति स्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा॥ ११॥
शुश्रूषन्ते पितॄन् पुत्राः पत्न्यश्चापि पतींस्तथा। विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराभवन्॥ १२॥
नाधर्मस्त्रिपुरस्थानां बाधते वीर्यवानपि। अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम्॥ १३॥
पुण्याहशब्दानुच्चैरुराशीर्वादांश्च वेदगान्। स्वनूपुररवोन्मिश्रान् वेणुवीणारवानपि॥ १४॥
हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः। त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा॥ १५॥
तेषामर्चयतां देवान् ब्राह्मणांश्च नमस्यताम्। धर्मार्थकामतत्त्वानां महान् कालोऽभ्यवर्तत॥ १६॥
अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च। कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह॥ १७॥
संध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरं च भयावहाः। समभ्यासुः समं घोराः शरीराणि यथाऽऽमयाः॥ १८॥
सर्वं एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम्। स्वप्ने भयावहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान्॥ १९॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होनेके कारण जिनके क्रोध शेष रह गये थे, वे सभी देवशत्रु दानव वहाँ आकर यथास्थान बैठ गये। इस प्रकार उन सबके सुखपूर्वक आसनपर बैठ जानेके पश्चात् मायाके उत्पादक मयने उन दानवोंसे इस प्रकार कहा—'अरे दाक्षायणी*के पुत्रो! तुमलोग आकाशमें विचरण करनेवाले तथा आकाशचारियोंमें विशेषरूपसे गर्जना करनेवाले हो। मैंने यह एक भयानक स्वप्न देखा है, उसे तुमलोग ध्यानपूर्वक सुनो। मैंने स्वप्नमें चार स्त्रियों और तीन पुरुषोंको पुरमें प्रवेश करते हुए देखा है। उनके रूप भयानक थे तथा मुख क्रोधाग्निसे उद्दीप्त हो रहे थे, जिससे ऐसा लगता था मानो वे त्रिपुरके विनाशक हैं। वे अतुल पराक्रमशाली प्राणी क्रोधसे भरे हुए थे और पुरोंमें प्रवेश करके अनेकों शरीर धारणकर दानवोंके शरीरोंमें भी घुस गये हैं। यह त्रिपुर नगर अन्धकारसे आच्छन्न हो गया है और गृह तथा तुमलोगोंके साथ ही सागरके जलमें डूब गया है। एक सुन्दरी स्त्री नंगी होकर उल्लूकपर सवार थी तथा उसके साथ एक पुरुष था, जिसके ललाटमें लाल तिलक लगा था। उसके चार पैर और तीन नेत्र थे। वह गधेपर चढ़ा हुआ था। उसने उस स्त्रीको प्रेरित किया, तब उसने मु: जगा दिया। इस प्रकारकी अत्यन्त भयावनी मैंने स्वप्नमें देखा है। दिति-पुत्रो! मैंने इस ऽ स्वप्न देखा है और यह भी देखा है कि स्वप्न असुरोंके लिये किस प्रकार कष्टदायक है इसलिये यदि तुमलोग हमें अपना उचितरूपसे मानते हो और यह समझते हो कि इनका हितकारक होगा तो मन लगाकर मेरी सुनो। तुमलोग किसीकी असूया (झूठी निन्द मत करो। काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया उ दुर्गुणोंको एकदम छोड़कर सत्य, दम, धर्म और मु मार्गका आश्रय लो। शान्तिदायक अनुष्ठानोंका प्रय करो और महेश्वरकी पूजा करो। सम्भवतः ऐसा करने स्वप्नकी शान्ति हो जाय। असुरो! (ऐसा प्रती हो रहा है कि) त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव भगवान् रु: निश्चय ही हमलोगोंपर कुपित हो गये हैं; क्योंकि हमारे त्रिपुरमें भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाएँ अभीसे दीख पड़ रही हैं। अतः तुमलोग कलहका परित्याग तथा सरलताका आश्रय लेकर इस दुःस्वप्नके परिणामस्वरूप आनेवाले कालकी प्रतीक्षा करो' ॥ २३—३६ ॥

श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्राः* इत्येवं मयभाषितम्। क्रोधेर्ष्यावस्थया युक्ता दृश्यन्ते च विनाशगाः ॥ ३७ ॥
विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्याव्यापितासुराः। तत्रैव दृष्ट्वा तेऽन्योन्यं संक्रोधापूरितेक्षणाः ॥ ३८ ॥
अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः। हित्वा सत्यं च धर्मं च अकार्याण्युपचक्रमुः ॥ ३९ ॥
द्विषन्ति ब्राह्मणान् पुण्यान् न चार्चन्ति हि देवताः। गुरुं चैव न मन्यन्ते ह्यन्योन्यं चापि चुक्रुधुः ॥ ४० ॥
कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च। परस्परं च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः ॥ ४१ ॥
उच्चैर्गुरून् प्रभाषन्ते नाभिभाषन्ति पूजिताः। अकस्मात् साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः ॥ ४२ ॥
दधिसक्तून् पयश्चैव कपित्थानि च रात्रिषु। भक्षयन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाः संवृतास्तथा ॥ ४३ ॥
मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्ति चाकृत्वा पादधावनम्। संविशन्ति च शय्यासु शौचाचारविवर्जिताः ॥ ४४ ॥
संकुचन्ति भयाच्चैव मार्जाराणां यथाऽऽखुकः। भार्यां गत्वा न शुध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः ॥ ४५ ॥
पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः। देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालयाः ॥ ४६ ॥
मयेन वार्यमाणापि ते विनाशमुपस्थिताः। विप्रियाण्येव विप्राणां कुर्वाणाः कलहप्रियाः ॥ ४७ ॥
वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम्। अशोकं च वराशोकं सर्वर्तुकमथापि च ॥ ४८ ॥

* दक्षकी कन्या दनुको ही यहाँ दाक्षायणी कहा गया है। सभी दानव कश्यपजीके द्वारा उत्पन्न इन्हीं दनुके पुत्र थे। दैत्यगण दितिके पुत्र थे।

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुरवासी दैत्योंका अत्याचार, देवताओंका ब्रह्माकी शरणमें जाना और ब्रह्मासहित शिवजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना

सूत उवाच

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु । लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च ॥ १ ॥
सिंहनादे व्योमगानां तेषु भीतेषु जन्तुषु । त्रैलोक्ये भयसम्मूढे तमोऽन्धत्वमुपागते ॥ २ ॥
आदित्या वसवः साध्याः पितरो मरुतां गणाः । भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम् ॥ ३ ॥
ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः । नेमुरूचुश्च सहिताः पञ्चास्यं चतुराननम् ॥ ४ ॥
वरगुप्तास्त्ववैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः । बाधन्तेऽस्मान् यथा प्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ ॥ ५ ॥
मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव । दानवानां भयात् तद्वद् भ्रमामो हि पितामह ॥ ६ ॥
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च । दानवैर्भ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ ॥ ७ ॥
देववेश्मप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च । दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च ॥ ८ ॥
यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम् । धर्षणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत् ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! त्रिपुरनिवासी दानवोंका शील तो भ्रष्ट ही हो गया था, उनमें दुष्टता भी कूट-कूटकर भर गयी थी । उन दुरात्माओंने लोकों एवं तपोवनोंका विनाश करना आरम्भ किया । वे आकाशमें जाकर सिंहनाद करते, जिसे सुनकर सारे जीव-जन्तु भयभीत हो जाते थे । इस प्रकार जब सारी त्रिलोकी …के कारण …किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी और सर्वत्र …कार-सा छा गया, तब भयसे डरे हुए आदित्य, वसु, …ध्य, पितृ-गण और मरुद्गण—ये सभी संगठित होकर …तामह ब्रह्माकी शरणमें पहुँचे । वहाँ पञ्चमुख ब्रह्मा स्वर्णमय कमलासनपर आसीन थे । ये देवगण उनके निकट जाकर उन्हें नमस्कार कर (दानवोंके अत्याचारका) वर्णन करने लगे—'निष्पाप पितामह ! त्रिपुरनिवासी दानव आपके ही वरदानसे सुरक्षित होकर हमलोगोंको सेवकोंकी तरह कष्ट दे रहे हैं, अतः आप उन्हें मना कीजिये । पितामह ! जैसे बादलोंके उमड़नेपर हंस और सिंहकी दहाड़से मृग भयभीत होकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार दानवोंके भयसे हमलोग इधर-उधर लुक-छिप रहे हैं । पापरहित ब्रह्मन् ! यहाँतक कि दानवोंद्वारा खदेड़े जानेके कारण हमलोगोंको अपने पुत्रों तथा पत्नियोंके नामतक भूल गये हैं । लोभ एवं मोहसे अंधे हुए दानवगण देवताओंके निवासस्थानोंको तोड़ते-फोड़ते तथा ऋषियोंके आश्रमोंको विध्वस्त करते हुए घूम रहे हैं । यदि आप शीघ्र ही दानवोंद्वारा विध्वंस किये जाते हुए लोककी रक्षा नहीं करेंगे तो सारा जगत् देवता, मनुष्य और आश्रमसे रहित हो जायगा' ॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः । प्रत्याह त्रिदशान् सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः ॥ १० ॥
मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमतां वराः । तस्यान्त एष सम्प्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः ॥ ११ ॥
तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदशर्षभाः । एकेषुपातमोक्षेण हन्तव्यं नेपुणुद्गिभिः ॥ १२ ॥
भवतां च न पश्यामि कमप्यत्र सुरर्षभाः । यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात् सदानवम् ॥ १३ ॥
त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु । एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम् ॥ १४ ॥
ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम् । याचामः सहिता देवं त्रिपुरं स हनिष्यति ॥ १५ ॥
कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम् ।

विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते। नमोऽस्तु दिव्यरूपाय प्रभवे दिव्यशम्भवे ॥ २८ ॥
अभिगम्याय काम्याय स्तुत्यायार्च्याय सर्वदा। भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे ब्रह्मादिसर्वदेवकृतमहेश्वरस्तवो नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

देवताओंने कहा—भगवन्! आप **भव**—सृष्टिके उत्पादक और पालक, **शर्व**—प्रलयकालमें सबके संहारक, **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **वरद**—वरप्रदाता, **पशुपति***—समस्तजीवोंके स्वामी, **उग्र**—बहुत ऊँचे, एकादश रुद्रोंमेंसे एक और **कपर्दी**—जटाजूटधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप **महादेव**—देवताओंके भी पूज्य, **भीम**—भयंकर, **त्र्यम्बक**—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, **शान्त**—शान्तस्वरूप, **ईशान**—नियन्ता, **भयघ्न**—भयके विनाशक और **अन्धकघाती**—अन्धकासुरके वधकर्ताको प्रणाम है। **नीलग्रीव**—ग्रीवामें नील चिह्न धारण करनेवाले, **भीम**—भयदायक, **वेधाः**—ब्रह्मस्वरूप, **वेधसा स्तुतः**—ब्रह्माजीकेद्वारा स्तुत, **कुमारशत्रुनिघ्न**—कुमार कार्तिकेयके शत्रुओंको मारनेवाले, **कुमारजनक**—स्वामी कार्तिकके पिता, **विलोहित**—लाल रंगवाले, **धूम्र**—धूम्रवर्ण, **वर**—जगत्‌को ढकनेवाले, **क्रथन**—प्रलयकारी, **नीलशिखण्ड**—नीली जटावाले, **शूली**—त्रिशूलधारी, **दिव्यशायी**—दिव्य समाधिमें लीन रहनेवाले, **उरग**—सर्पधारी, **त्रिनेत्र**—तीन नेत्रोंवाले, **हिरण्यवसुरेता**—सुवर्ण आदि धनके उद्गम-स्थान, **अचिन्त्य**—अतर्क्य, **अम्बिकाभर्ता**—पार्वतीपति, **सर्वदेवस्तुत**—सम्पूर्ण देवोंद्वारा स्तुत, **वृषध्वज**—बैल-चिह्नसे यु[क्त] ध्वजवाले, **मुण्ड**—मुण्डधारी, **जटी**—जटाधा[री], **ब्रह्मचारी**—ब्रह्मचर्यसम्पन्न, **सलिले तप्यमान**—जलमें तपस्या करनेवाले, **ब्रह्मण्य**—ब्राह्मण-भक्त, **अजित**—अजेय, **विश्वात्मा**—विश्वके आत्मस्वरू[प], **विश्वसृक्**—विश्वके स्रष्टा, **विश्वमावृत्य तिष्ठते**—संसारमें व्याप्त रहनेवाले, **दिव्यरूप**—दिव्यरूपवाले, **प्रभु**—सामर्थ्यशाली, **दिव्यशम्भु**—अत्यन्त मङ्गलमय, **अभिगम्य**—शरण लेने योग्य, **काम्य**—अत्यन्त सुन्दर, **स्तुत्य**—स्तवन करनेयोग्य, **सर्वदा अर्च्य**—सदा पूजनीय, **भक्तानुकम्पी**—भक्तोंपर दया करनेवाले औ[र] **यन्मनोगतं नित्यं दिशते**—मनकी अभिलाषा पू[र्ण] करनेवालेको हमारा अभिवादन है॥ २२—२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें ब्रह्मादि-सर्वदेवकृत महेश्वरस्तव नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३२ ॥

* पाशुपत-शैवागमानुसार जीवमात्र पाशबद्ध होनेसे पशु और सबके स्वामी (पाशमुक्त) शिव पशुपति कहे गये हैं।

दिया था । उन्होंने अस्त्रोंके प्रहारसे कुछको तो मौतके घाट उतार दिया था और कुछको बुरी तरहसे घायल कर दिया था । उस समय देवताओंके साथ वैर बँध जानेके कारण हमलोग भयसे कम्पित होकर चारों दिशाओंमें भागते फिरे, परंतु हम शरणार्थियोंको यह ज्ञात न हुआ कि हमारे लिये शरणदाता कौन है तथा हमारा कल्याण कैसे होगा । इसलिये मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे तथा आपकी भक्तिके बलपर एक ऐसे दुर्गका निर्माण करना चाहता हूँ, जिसका पार करना देवताओंके लिये भी कठिन हो । सुकृती पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह ! मेरेद्वारा निर्मित उस त्रिपुरमें पृथ्वी, जल एवं अग्निसे निर्मित तथा सुरक्षित दुर्गोंका और मुनियोंके प्रभावसे दिये गये शापों, देवताओंके अस्त्रों और देवोंका प्रवेश न हो सके । प्रजापते ! यदि आपको अच्छा लगे तो वह त्रिपुर सभीके लिये अलङ्घनीय हो जाय ॥ १२–२०½ ॥

अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम् । विश्वकर्मा इतीवोक्तः स तदा विश्वकर्मणा ॥ २१ ॥
उवाच प्रहसन् वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम् । सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव ॥ २२ ॥
तस्माद् दुर्गविधानं हि तृणादपि विधीयताम् । पितामहवचः श्रुत्वा तदैव दानवो मयः ॥ २३ ॥
प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम् । यस्तदेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत् ॥ २४ ॥
समं स संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत् । एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा मयं देवः पितामहः ॥ २५ ॥
स्वप्ने लब्धो यथार्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ । गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः ॥ २६ ॥
वरदानाद् विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः । स मयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः ॥ २७ ॥
दुर्गं व्यवसितः कर्तुमिति चाचिन्तयत् तदा । कथं नाम भवेद् दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम् ॥ २८ ॥
वत्स्यते तत्पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः । यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते ॥ २९ ॥
देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम् । विस्तारो योजनशतमेकैकस्य पुरस्य तु ॥ ३० ॥
कार्यस्तेषां च विष्कम्भश्चैकैकशतयोजनम् ।

तब असुरोंके विश्वकर्मा (महाशिल्पी) मयद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर विश्व-स्रष्टा ब्रह्मा दैत्यगणोंके अधीश्वर मयसे हँसते हुए बोले—'दानव ! (तुझ-जैसे) असदाचारीके लिये सर्वामरत्वका विधान नहीं है, अतः तुम तृणसे ही अपने दुर्गका निर्माण करो ।' उस समय पितामहकी ऐसी बात सुनकर मय दानवने हाथ जोड़कर पुनः पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा—'जो एक ही बारके छोड़े गये एक ही बाणसे उस दुर्गको जला दे, वही युद्धस्थलमें हम सबको मार सके, शेष प्राणियोंसे हमलोग अवध्य हो जायँ ।' तदनन्तर मयसे 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर भगवान् ब्रह्मा स्वप्नमें प्राप्त हुए धनकी तरह वहीं अन्तर्हित हो गये । पितामहके चले जानेपर सूर्यके समान प्रभावशाली मय आदि दानव भी अपने स्थानको चले गये । वे महाबली दानव तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे अत्यन्त शोभित हो रहे थे । कुछ समयके बाद दानवश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् मय दानव दुर्गकी रचना करनेके लिये उद्यत हो विचार करने लगा । मेरेद्वारा निर्मित होनेवाला वह त्रिपुर दुर्ग कैसा बनाया जाय, जिससे उस दिव्य पुरमें निस्संदेह मेरे अतिरिक्त अन्य कोई निवास न कर सके तथा उसके द्वारा छोड़े गये एक बाणसे वह पुर बींधा न जा सके । देवगण उसे नष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे ही, किंतु मुझे तो अपनी बुद्धिसे विचार कर लेना चाहिये । उनमें एक-एक पुरका विस्तार सौ योजनका करना है तथा उनके विष्कम्भ (लम्बा या दूहतीर) भी एक-एक सौ योजनके बनाने हैं ॥ २१–३०½ ॥

पुण्ययोगेण निर्माणं पुराणां च भविष्यति ॥ ३१ ॥
पुण्ययोगेण च दिवि समेष्यन्ति परस्परम् । पुष्ययोगेण युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति ॥ ३२ ॥

सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम् । स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः ॥ ९
तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम् । विद्युन्मालिपुरं चापि शतयोजनकेऽन्तरे ॥ १०
मेरुपर्वतसंकाशं मयस्यापि पुरं महत् ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार सोच-विचारकर (महाशिल्पी)मय दानव दिव्य उपायोंके प्रभावसे बननेवाले तथा मनके संकल्पानुसार चलनेवाले त्रिपुर नामक दुर्गकी रचना करनेको उद्यत हुआ । उसने सोचा कि इस मार्गमें परकोटा बनेगा, यहाँ अथवा वहाँ गोपुर (नगरका फाटक) रहेगा, यहाँ अट्टालिका-का दरवाजा तथा यहाँ महलका मुख्य द्वार रखना उचित है । इधर विशाल राजमार्ग होना चाहिये, यहाँ दोनों ओर पगडंडियोंसे युक्त सड़कें और गलियाँ होनी चाहिये, यहाँ चबूतरा रखना ठीक है, यह स्थान अन्तःपुरके योग्य है, यहाँ शिव-मन्दिर रखना अच्छा होगा, यहाँ वट-वृक्षसहित तड़ागों, बावलियों और सरोवरोंका निर्माण उचित होगा । यहाँ बगीचे, सभाभवन और वाटिकाएँ रहेंगी तथा यहाँ दानवोंके निकलनेके लिये मनोहर मार्ग रहेगा । इस प्रकार नगर-रचनामें निपुण मयने केवल मनःसंकल्पमात्रसे उस दि[व्य] त्रिपुर नगरकी रचना कर डाली थी, ऐसा हमने सु[ना] है । मयने जो काले लोहेका पुर निर्मित किया थ[ा] उसका अधिपति तारकासुर हुआ । वह उसपर अप[ना] आधिपत्य जमाकर वहाँ निवास करने लगा । दूसरा ज[ो] पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रजतमय पुर निर्मि[त] हुआ, उसका स्वामी विद्युन्माली हुआ । यह विद्युत्समूहोंसे युक्त बादलकी तरह जान पड़ता था । मयद्वारा जिस तीसरे स्वर्णमय पुरकी रचना हुई, उसमें सामर्थ्यशाली मय स्वयं गया और उसका अधिपति हुआ । जिस प्रकार तारकासुरके पुरसे विद्युन्मालीका पुर सौ योजनकी दूरीपर था, उसी प्रकार विद्युन्माली और मयके पुरोंमें भी सौ योजनका अन्तर था । मय दानवका विशाल पुर मेरुपर्वतके समान दीख पड़ता था ॥ १—१०½ ॥

पुष्यसंयोगमात्रेण कालेन स मयः पुरा ॥ ११ ॥
कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्पकं यथा । येन येन मयो याति प्रकुर्वाणः पुरं पुरात् ॥ १२ ॥
प्रशस्तास्तत्र तत्रैव वारुण्या मालया स्वयम् । रुक्मरूप्यायसानां च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १३ ॥
रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम् । प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च ॥ १४ ॥
सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च । सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च ॥ १५ ॥
अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च । चित्रशालविशालानि चतुःशालोत्तमानि च ॥ १६ ॥
सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च । बहुध्वजपताकानि स्रग्दामालंकृतानि च ॥ १७ ॥
किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च । सुसंयुक्तोपलिप्तानि पुष्पनैवेद्यवन्ति च ॥ १८ ॥
यज्ञधूमान्धकाराणि सम्पूर्णकलशानि च । गगनावरणाभानि हंसपङ्क्तिनिभानि च ॥ १९ ॥
पङ्क्तीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे । मुक्ताकलापैर्लम्बद्भिर्हसन्तीव शशिश्रियम् ॥ २० ॥

जिस प्रकार पूर्वकालमें त्रिलोचन भगवान् शंकरने पुष्पककी रचना की थी, उसी प्रकार मय दानवने केवल पुष्यनक्षत्रके संयोगसे कालकी व्यवस्था करके त्रिपुरका निर्माण किया । पुरकी रचना करता हुआ मय जिस-जिस मार्गसे एक पुरसे दूसरे पुरमें जाता था, वहाँ-वहाँ वरुणकी दी हुई मालाद्वारा उत्पन्न चमत्कारसे सोना, चाँदी और लोहेके सैकड़ों-हजारों भवन स्वयं ही बनते जाते थे । उन देव-शत्रुओंके पुर रत्नखचित होनेके कारण विशेष शोभा पा रहे थे । वे सैकड़ों महलोंसे युक्त थे । उनमें ऊँचे-ऊँचे कूटागार (छतके ऊपरकी कोठरियाँ) बने थे । उनमें सभी लोग स्वच्छन्द विचरण करते थे । वे (सुन्दरतामें) सभी लोकोंका अतिक्रमण करनेवाले

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

त्रिपुरमें दैत्योंका सुखपूर्वक निवास, मयका स्वप्न-दर्शन और दैत्योंका अत्याचार

सूत उवाच

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना । तद् दुर्गं दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः ॥ १ ॥
सकलत्राः सपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽन्तकोपमाः । मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते ॥ २ ॥
सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम् । रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः ॥ ३ ॥
तद्वद् बलिभिरध्यस्तं तत्पुरं देवतारिभिः । त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम् ॥ ४ ॥
सुतलादपि निष्पत्य पातालाद् दानवालयात् । उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः ॥ ५ ॥
यो यं प्रार्थयते कामं सम्प्राप्तस्त्रिपुराश्रयात् । तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः ॥ ६ ॥
सचन्द्रेषु प्रदोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च । आरामेषु सचूतेषु तपोधनवनेषु च ॥ ७ ॥
स्वङ्गाश्चन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गाः समदा इव । मृष्टाभरणवस्त्राश्च मृष्टस्रगनुलेपनाः ॥ ८ ॥
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः । नारीभिः सततं रेमुर्मुदिताश्चैव दानवाः ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार असुरशिल्पी मयने त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया, परंतु अन्ततोगत्वा परस्पर बँधे हुए वैरवाले देवताओं और असुरोंके लिये वह दुर्ग दुर्गम हो गया । उस समय वे सभी शस्त्रधारी दैत्य जो यमराजके समान भयंकर थे, मयके आदेशसे अपनी स्त्रियों और पुत्रोंके साथ हर्षपूर्वक उन गृहोंमें प्रविष्ट हुए । जैसे अनेकों सिंह वनको, अनेकों मगर-मच्छ सागरको और क्रोध एवं अत्यन्त कठोरता परस्पर सम्मिलित होकर शरीरको अपने अधिकारमें कर लेते हैं, वैसे ही उन महाबली देव-शत्रुओंद्वारा वह पुर व्याप्त हो गया । इस प्रकार वह त्रिपुर असंख्य (अरबों) दैत्योंसे भर गया । उस समय सुतल और पाताल (दानवोंके निवासस्थान)से निकलकर आये हुए दानव तथा (देवताओंके भयसे छिपकर) पर्वतोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले दैत्य भी, जो काले बादलकी-सी कान्तिवाले थे, (शरणार्थीके रूपमें) वहाँ उपस्थित हुए । त्रिपुरमें आश्रय लेनेके कारण जो असुर जिस वस्तुकी कामना करता था, उसकी उस कामनाको मय दानव मायाद्वारा पूर्ण कर देता था । जिनके सुडौल शरीरपर चन्दनका अनुलेप लगा था, जो निर्मल आभूषण, वस्त्र, माला और अङ्गरागसे अलंकृत थे तथा मतवाले गजेन्द्र-सरीखे दीख रहे थे, ऐसे दानव चाँदनी रातोंमें एवं सायंकालके समय कमलसे सुशोभित सरोवरोंके तटपर, आमके बगीचों और तपोवनोंमें अपनी पत्नियोंके साथ निरन्तर हर्षपूर्वक विहार करते थे ॥

मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः । अर्थे धर्मे च कामे च निदधुस्ते मतीः स्वयम् ॥ १० ॥
तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम् । व्रजति स्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा ॥ ११ ॥
शुश्रूषन्ते पितॄन् पुत्राः पत्न्यश्चापि पतींस्तथा । विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराभवन् ॥ १२ ॥
नाधर्मस्त्रिपुरस्थानां बाधते वीर्यवानपि । अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम् ॥ १३ ॥
पुण्याहशब्दानुच्चैरुराशीर्वादांश्च वेदगान् । स्वनूपुररवोन्मिश्रान् वेणुवीणारवानपि ॥ १४ ॥
हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः । त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा ॥ १५ ॥
तेषामर्चयतां देवान् ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् । धर्मार्थकामतन्त्राणां महान् कालोऽभ्यवर्तत ॥ १६ ॥
अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च । कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह ॥ १७ ॥
संध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरं च भयावहाः । समभ्यासुः समं घोराः शरीराणि यथाऽऽमयाः ॥ १८ ॥
सर्व एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम् । स्वप्ने भयावहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान् ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होनेके कारण जिनके क्रोध शेष रह गये थे, वे सभी देवशत्रु दानव वहाँ आकर यथास्थान बैठ गये । इस प्रकार उन सबके सुखपूर्वक आसनपर बैठ जानेके पश्चात् मायाके उत्पादक मयने उन दानवोंसे इस प्रकार कहा—'अरे दाक्षायणी*के पुत्रो ! तुमलोग आकाशमें विचरण करनेवाले तथा आकाशचारियोंमें विशेषरूपसे गर्जना करनेवाले हो । मैंने यह एक भयानक स्वप्न देखा है, उसे तुमलोग ध्यानपूर्वक सुनो । मैंने स्वप्नमें चार स्त्रियों और तीन पुरुषोंको पुरमें प्रवेश करते हुए देखा है । उनके रूप भयानक थे तथा मुख क्रोधाग्निसे उद्दीप्त हो रहे थे, जिससे ऐसा लगता था मानो वे त्रिपुरके विनाशक हैं । वे अतुल पराक्रमशाली प्राणी क्रोधसे भरे हुए थे और पुरोंमें प्रवेश करके अनेकों शरीर धारणकर दानवोंके शरीरोंमें भी घुस गये हैं । यह त्रिपुर नगर अन्धकारसे आच्छन्न हो गया है और गृह तथा तुमलोगोंके साथ ही सागरके जलमें डूब गया है । एक सुन्दरी स्त्री नंगी होकर उलूकपर सवार थी तथा उसके साथ एक पुरुष था, जिसके ललाटमें लाल तिलक लगा था । उसके चार पैर और तीन नेत्र थे । वह गधेपर चढ़ा हुआ था । उसने उस स्त्रीको प्रेरित किया, तब उसने मु: जगा दिया । इस प्रकारकी अत्यन्त भयावनी मैंने स्वप्नमें देखा है । दिति-पुत्रो ! मैंने इस : स्वप्न देखा है और यह भी देखा है f स्वप्न असुरोंके लिये किस प्रकार कष्टदायक ह इसलिये यदि तुमलोग हमें अपना उचितरूपसे मानते हो और यह समझते हो कि इनका हितकारक होगा तो मन लगाकर मेरी सुनो । तुमलोग किसीकी असूया (झूठी निन्द मत करो । काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया उ दुर्गुणोंको एकदम छोड़कर सत्य, दम, धर्म और मु मार्गका आश्रय लो । शान्तिदायक अनुष्ठानोंका प्र करो और महेश्वरकी पूजा करो । सम्भवतः ऐसा करने स्वप्नकी शान्ति हो जाय । असुरो ! (ऐसा प्रती हो रहा है कि) त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव भगवान् रु: निश्चय ही हमलोगोंपर कुपित हो गये हैं; क्योंकि हमारे त्रिपुरमें भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाएँ अभीसे दीख पड़ रही हैं । अतः तुमलोग कलहका परित्याग तथा सरलताका आश्रय लेकर इस दुःस्वप्नके परिणामस्वरूप आनेवाले कालकी प्रतीक्षा करो' ॥ २३—३६ ॥

श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्रा* इत्येवं मयभाषितम् । क्रोधेर्ष्यावस्थया युक्ता दृश्यन्ते च विनाशगाः ॥ ३७ ॥
विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्याव्यापितासुराः । तत्रैव दृष्ट्वा तेऽन्योन्यं संक्रोधापूरितेक्षणाः ॥ ३८ ॥
अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः । हित्वा सत्यं च धर्मं च अकार्याण्युपचक्रमुः ॥ ३९ ॥
द्विषन्ति ब्राह्मणान् पुण्यान् न चार्चन्ति हि देवताः । गुरुं चैव न मन्यन्ते ह्यन्योन्यं चापि चुक्रुधुः ॥ ४० ॥
कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च । परस्परं च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः ॥ ४१ ॥
उच्चैर्गुरून् प्रभाषन्ते नाभिभाषन्ति पूजिताः । अकस्मात् साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः ॥ ४२ ॥
दधिसक्तून् पयश्चैव कपित्थानि च रात्रिषु । भक्षयन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाः संवृतास्तथा ॥ ४३ ॥
मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्ति चाकृत्वा पादधावनम् । संविशन्ति च शय्यासु शौचाचारविवर्जिताः ॥ ४४ ॥
संकुचन्ति भयाच्चैव मार्जाराणां यथाऽऽखुकः । भार्यां गत्वा न शुध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः ॥ ४५ ॥
पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः । देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालयाः ॥ ४६ ॥
मयेन वार्यमाणापि ते विनाशमुपस्थिताः । विप्रियाण्येव विप्राणां कुर्वाणाः कलहप्रियाः ॥ ४७ ॥
वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम् । अशोकं च वराशोकं सर्वर्तुकमथापि च ॥ ४८ ॥

* दक्षकी कन्या दनुको ही यहाँ दाक्षायणी कहा गया है । सभी दानव कश्यपजीके द्वारा उत्पन्न इन्हीं दनुके पुत्र थे । दैत्यगण दितिके पुत्र थे ।

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुरवासी दैत्योंका अत्याचार, देवताओंका ब्रह्माकी शरणमें जाना और ब्रह्मासहित शिवजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना

सूत उवाच

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु । लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च ॥ १ ॥
सिंहनादे व्योमगानां तेषु भीतेषु जन्तुषु । त्रैलोक्ये भयसम्मूढे तमोऽन्धत्वमुपागते ॥ २ ॥
आदित्या वसवः साध्याः पितरो मरुतां गणाः । भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम् ॥ ३ ॥
ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः । नेमुरूचुश्च सहिताः पद्मास्यं चतुराननम् ॥ ४ ॥
वरगुप्तास्त्वयैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः । बाधन्तेऽस्मान् यथा प्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ ॥ ५ ॥
मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव । दानवानां भयात् तद्वद् भ्रमामो हि पितामह ॥ ६ ॥
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च । दानवैर्भ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ ॥ ७ ॥
देववेश्मप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च । दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च ॥ ८ ॥
यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम् । धर्षणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत् ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! त्रिपुरनिवासी दानवोंका शील तो भ्रष्ट ही हो गया था, उनमें दुष्टता भी कूट-कूटकर भर गयी थी । उन दुरात्माओंने लोकों एवं तपोवनोंका विनाश करना आरम्भ किया । वे आकाशमें जाकर सिंहनाद करते, जिसे सुनकर सारे जीव-जन्तु भयभीत हो जाते थे । इस प्रकार जब सारी त्रिलोकी के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी और सर्वत्र कार-सा छा गया, तब भयसे डरे हुए आदित्य, वसु, ध्य, पितृ-गण और मरुद्गण—ये सभी संगठित होकर पितामह ब्रह्माकी शरणमें पहुँचे । वहाँ पञ्चमुख ब्रह्मा स्वर्णमय कमलासनपर आसीन थे । ये देवगण उनके निकट जाकर उन्हें नमस्कार कर (दानवोंके अत्याचारका) वर्णन करने लगे—'निष्पाप पितामह ! त्रिपुरनिवासी दानव आपके ही वरदानसे सुरक्षित होकर हमलोगोंको सेवकोंकी तरह कष्ट दे रहे हैं, अतः आप उन्हें मना कीजिये । पितामह ! जैसे बादलोंके उमड़नेपर हंस और सिंहकी दहाड़से मृग भयभीत होकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार दानवोंके भयसे हमलोग इधर-उधर लुक-छिप रहे हैं । पापरहित ब्रह्मन् ! यहाँतक कि दानवोंद्वारा खदेड़े जानेके कारण हमलोगोंको अपने पुत्रों तथा पत्नियोंके नामतक भूल गये हैं । लोभ एवं मोहसे अंधे हुए दानवगण देवताओंके निवासस्थानोंको तोड़ते-फोड़ते तथा ऋषियोंके आश्रमोंको विध्वस्त करते हुए घूम रहे हैं । यदि आप शीघ्र ही दानवोंद्वारा विध्वंस किये जाते हुए लोककी रक्षा नहीं करेंगे तो सारा जगत् देवता, मनुष्य और आश्रमसे रहित हो जायगा' ॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः । प्रत्याह त्रिदशान् सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः ॥ १० ॥
मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमतां वराः । तस्यान्त एष सम्प्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः ॥ ११ ॥
तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदशर्षभाः । एकेषुपातमोक्षेण हन्तव्यं नेपुणर्षिभिः ॥ १२ ॥
भवतां च न पश्यामि कमप्यत्र सुरर्षभाः । यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात् सदानवम् ॥ १३ ॥
त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु । एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम् ॥ १४ ॥
ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम् । याचामः सहिता देवं त्रिपुरं स हनिष्यति ॥ १५ ॥
कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम् ।

विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते। नमोऽस्तु दिव्यरूपाय प्रभवे दिव्यशम्भवे ॥ २८ ॥
अभिगम्याय काम्याय स्तुत्यायार्च्याय सर्वदा। भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे ब्रह्मादिसर्वदेवकृतमहेश्वरस्तवो नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

देवताओंने कहा—भगवन्! आप **भव**—सृष्टिके उत्पादक और पालक, **शर्व**—प्रलयकालमें सबके संहारक, **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **वरद**—वरप्रदाता, **पशुपति***—समस्तजीवोंके स्वामी, **उग्र**—बहुत ऊँचे, एकादश रुद्रोंमेंसे एक और **कपर्दी**—जटाजूटधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप **महादेव**—देवताओंके भी पूज्य, **भीम**—भयंकर, **त्र्यम्बक**—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, **शान्त**—शान्तस्वरूप, **ईशान**—नियन्ता, **भयघ्न**-भयके विनाशक और **अन्धकघाती**—अन्धकासुरके वधकर्ताको प्रणाम है। **नीलग्रीव**—ग्रीवामें नील चिह्न धारण करनेवाले, **भीम**—भयदायक, **वेधाः**—ब्रह्मस्वरूप, **वेधसा स्तुतः**—ब्रह्माजीकेद्वारा स्तुत, **कुमारशत्रुनिघ्न**—कुमार कार्तिकेयके शत्रुओंको मारनेवाले, **कुमारजनक**—स्वामी कार्तिकके पिता, **विलोहित**—लाल रंगवाले, **धूम्र**—धूम्रवर्ण, **वर**—जगत्को ढकनेवाले, **क्रथन**—प्रलयकारी, **नीलशिखण्ड**—नीली जटावाले, **शूली**—त्रिशूलधारी, **दिव्यशायी**—दिव्य समाधिमें लीन रहनेवाले, **उरग**—सर्पधारी, **त्रिनेत्र**—तीन नेत्रोंवाले, **हिरण्यवसुरेता**—सुवर्ण आदि धनके उद्गम-स्थान, **अचिन्त्य**—अतर्क्य, **अम्बिकाभर्ता**—पार्वतीपति, **सर्वदेवस्तुत**—सम्पूर्ण देवोंद्वारा स्तुत, **वृषध्वज**—बैल-चिह्नसे युक्त ध्वजवाले, **मुण्ड**—मुण्डधारी, **जटी**—जटाधारी, **ब्रह्मचारी**—ब्रह्मचर्यसम्पन्न, **सलिले तप्यमान**—जलमें तपस्या करनेवाले, **ब्रह्मण्य**—ब्राह्मण-भक्त, **अजित**—अजेय, **विश्वात्मा**—विश्वके आत्मस्वरूप, **विश्वसृक्**—विश्वके स्रष्टा, **विश्वमावृत्य तिष्ठते**—संसारमें व्याप्त रहनेवाले, **दिव्यरूप**—दिव्यरूपवाले, **प्रभु**—सामर्थ्यशाली, **दिव्यशम्भु**—अत्यन्त मङ्गलमय, **अभिगम्य**—शरण लेने योग्य, **काम्य**—अत्यन्त सुन्दर, **स्तुत्य**—स्तवन करनेयोग्य, **सर्वदा अर्च्य**—सदा पूजनीय, **भक्तानुकम्पी**—भक्तोंपर दया करनेवाले और **यन्मनोगतं नित्यं दिशते**—मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालेको हमारा अभिवादन है ॥ २२—२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें ब्रह्मादि-सर्वदेवकृत महेश्वरस्तव नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३२ ॥

* पाशुपत-शैवागमानुसार जीवमात्र पाशबद्ध होनेसे पशु और सबके स्वामी (पाशमुक्त) शिव पशुपति कहे गये हैं।